ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

१४ सितम्बर सन् १९४२, में उत्तर-प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर-सलेमाबाद में एक विशेष बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था। और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, श्वासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो उसकी गर्दन दायें-बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त विभिन्न ऋषि-मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक, एक दिव्य प्रवचन का प्रसारण होता। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन-मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, शृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन-मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। -**शृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान**

१ 26 07 1963 आर्यों के भूषण

जीते रहो !देखो, मुनिवरोंअभी ! अभी हमारा पर्ययण समाप्त हुआ। आज हम तुम्हारे समक्ष, पुनः की भांति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का पाठ कर रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, कि जिन वेद मन्त्रों को हमने अभी अभी पाठ किया। आज से पूर्व मैंने संहिताओं के कुछ मुख्य विवरण भी दिए। आज मुझे उन संहिताओं पर नहीं जाना है जिन संहिताओं को हमारे ऋषि मुनियों ने महत्वपूर्ण कहा है। आज तो हम उनकी महानता का गुणगान ही गा सकते हैं।

एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा था, कि न करने से कुछ करना भी सुन्दर कहा गया है। वह बड़ा महान है, हमारे लिए बड़ा उपयोगी है, जिससे मानव का जीवन उज्ज्वल बनता है। मनुष्य कुछ कुछ करता रहता है, तो एक समय वह भी आता है, कि पूर्णता को प्राप्त कर लेता है और मनुष्य यह जान बैठा है कि जब परमात्मा के गुणगान गाने में वाणी असमर्थ है, वाणी से वह जाना ही नहीं जाता, तो प्रयत्न किसके लिए करें। परन्तु इसका यही भाव नहीं। इसका उत्तर तो यह है, कि मानव जो भी कुछ करता है, वह अपने लिए करता है, और अपना मानवत्व ऊँचा बनाने के लिए परिश्रम करता है। वाणी से गुणगान गाता है, अपनी महानता के लिए। वह कर्म अवश्य करना चाहिए, जिससे मनुष्य का जीवन ऊँचा बन जाएं।

संसार की दुर्दशा

मुनिवरों आज हमारे जीवन को देख रहे होगे। न प्रति लाखों वर्षों का पाप !आज भोगना पड़ रहा है। यह सब कुछ क्या है? यह सब मानव के कर्मों का भोग है। आज जितनी आपत्तियां हैं, जितने संकट हैं यह सब मनुष्य के सस्कारों के अनुकूल आते हैं। मुझे प्यारे महानन्द जी ने आज से पूर्व काल में कहा था कि वर्तमान समय में वृष्टि का बहुत प्रकोप हो रहा है, आज प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या, राजा और प्रजा सभी चिंतित हैं। संसार चिंतित है, परन्तु यह नहीं विचारा जाता, कि क्यों चिंतित है? मुनिवरों ! यह अपने कर्त्तव्य को त्यागकर के चिंतित बन गया है। यदि वह आज अपने कर्तव्य के

आधार पर चलता, तो इस प्रकार की अधोगति को प्राप्त न होता। यह वृष्टि क्यों होती है? इन्द्र का इस प्रकार प्रकोप प्रजा पर क्यों हो जाता है? प्रजा इस प्रकार दुखित क्यों है? राजा चिंतित क्यों है। इसका सब कुछ कारण यह है, कि हम सब अपने कर्तव्य को त्यागते चले जा रहे हैं, हम अपने कर्त्तव्य पर दृष्टि नहीं पहुंचाते, परन्तु अपने उदर पूर्ति में और अपने ऐश्वर्य में मानव अपने जीवन को शान्त करता चला जा रहा है, जब यह दशा है, तो संसार कैसे ऊँचा बनेगा।

कर्तव्य में सतयुग

मनुष्य की दूसरों के अपमान में बहुत रूचि चलती है, और जहाँ गुणों के ग्रहण का प्रश्न आता है, वहाँ मनुष्य शान्त हो जाता है। यह क्या है? यह सब अपने कर्तव्यों को त्यागने का ही परिणाम है। आज यदि मानव अपने कर्त्तव्य का पालन करता है, तो ऊँचा बन जाता है। मुनिवरों! सतोयुग में क्या था? उसको सतोयुग क्यों कहा जाता है? त्रेता को, त्रेता युग क्यों कहा जाता है? द्वापर को द्वापर क्यों कहा जाता है? इस कलियुग को कलियुग क्यों कहा जाता है?

सतोयुग

महानन्द जी तुमने सतोयुग के समय को देखा होगा। परम पिता परमात्मा की अनुपम कृपा से हमें सतोयुग के मनुष्यों को देखने का सौभाग्य मिला, जहाँ ऋषि मुनियों की ऊँची प्रणाली थी। वहीं कुछ उच्चारण करने का कुछ सौभाग्य भी मिला, परन्तु आज भी हम लाखों वर्षों का किया हुआ पाप भोगा जा रहा है। आज तो उच्चारण करने का कोई वाक्य नहीं, मुनिवरों! सतोयुग क्या था? सतोयुग में कैसे आर्य थे, कैसे श्रेष्टता थी, मेरी प्यारी माताएं, मेरे प्यारेभद्र पुरुष !, कैसी अपनी वर्ण व्यवस्था को ऊँचा बनाने वाले थे? इस पर हमें पुनः से विचार करना चाहिए। हमारी संस्कृति क्या कह रही है, जिस संस्कृति ने ऋषि मुनियों को ऊँचा बनाया। जिस संस्कृति से सतोयुग कहलाया। आज भी यदि उस संस्कृति को हम अपने जीवन में ले लेते हैं, तो आज भी हमारा जीवन

स्वर्गमय बन जाता है।

उस समय क्या संस्कृति थी? इस सम्बन्ध में देव ऋषि नारद मुनि और सभी आचार्यों का एक मन्तव्य था, देखा भी गया है, कि सतोयुग में जहाँ चार व्यक्ति एक स्थान में विराजमान होते, मेरी प्यारी माताएं एकत्रित होती, उसी काल में भगवान की चर्चाएं, देवता बनने की चर्चाएं देवता बनने की हृदय में आकांक्षाएं। तो जब हर समय यह विचार रहते हों, तो मनुष्य क्यों नहीं ऊँचा बनेगा। जहाँ विराजमान होते, वहीं सत् की वार्ताएं, अपने आत्मिक बल की चर्चाएं, राष्ट्र को ऊँचा बनाने की चर्चाएं? किसी की निन्दा नहीं, परन्तु ऊँचे भाव अपने अंतःकरण में, अपने हृदय में और उन्हीं भावों से अपना जीवन ऊँचा बनाया जाता था। उस समय को सतोयुग कहा जाता था।

सतोयुग के राजा भी कैसे थे? राजा यह सोचा करते थे, कि मेरी प्रजा किसी प्रकार दुःखित न हो। मेरी प्रजा यदि दुःखित रह गई, तो कर्त्तव्यों से विहीन हो जाएगी। जब प्रजा कर्त्तव्यों से विहीन हो जाएगी, तो कोई न कोई पाप करेगी, अपने उदर पूर्ति के लिए कोई न कोई प्रयत्न ऐसा करेगी, जिससे जहाँ तहाँ जा करके के पाप करेगी और उदर की पूर्ति के लिए यह सब कार्य न कर सकेगी। जहाँ उदर पूर्ति नहीं होती वहाँ क्या धर्म की चर्चाएं नहीं होती, धर्म की चर्चाएं उस काल में कर सकते हैं, जब अपनी आवश्यकताएं जब अपने उदर की पूर्ति अन्न से, औषधियों से परिपक्व हों आत्मिक बल से परिपक्व हो। बेटाजब धर्म की चर्चा !एं किया करते हों, भिन्न भिन्न स्थानों में मनुष्य एकत्रित होकर राजा अपनी पत्नी सहित विराजमान होकर भी धर्म की चचाएं, ब्रह्मचर्य की चर्चाएं राष्ट्र को ऊँचा बनाने की चर्चाएं, निःस्वार्थ की चर्चाएं करते हों, तो वहाँ एक समय क्यों न स्वर्ग बनेगा। उस काल को सतोयुग कहा जाता है जहाँ सत् की चर्चाएं होती हों और जहाँ दैत्य न रहते हों, जहाँ देवताओं का वास रहता हो, देवताओं की जहाँ पूजा होती हो, वह स्वर्ग है, वहाँ सतोयगु हैं।

देवताओं की पूजा

आज विचारना है कि हम देवताओं की पूजा कैसे करें? देवताओं की पूजा क्या है?

आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने यह कहा था कि बहुत से पण्डित आधुनिक काल में ! गृह बनाकर, देवताओं का पूजन करते है। नौ गृह एक स्थानों में आ रहे हैं। आज नौ गृह नहीं, अनन्त गृह है। प्रत्येक मानव यह कह रहा है, मेरे प्यारे महानन्द जी भी ! कहाकरते हैं, कि जो इतने बड़े ऊँचे गृह हैं वह हमारे जीवन में क्या आपत्ति ला सकते हैं? वह हमें क्या कर सकते हैं? यह कैसे क्रूर हो सकते हैं? परन्तु हो सकते हैं। आज इसको सुनो। जो हम यहाँ पाप करते हैं, उन पापों को हमारे मनों की भावनाएं, अन्तरिक्ष में रमण करती हैं, देवताओं तक, सूर्य तक उनका प्रभाव पहुँचता है। जब हम यहाँ दुर्गन्धि ही करते रहते हैं, वह दुर्गन्धि वाणी की करें, पदार्थों की करें और सुगन्धि का लेश भी न करें, तो दुर्गन्धि सूर्य तक जाती है। अरे, जब सूर्य तक दुर्गन्धि जाती है तो सूर्य से तो दुर्गन्धि की वृष्टि होगी। वहाँ से सुगन्धि की वृष्टि कैसे हो सकती है हमारे लिए। अरे, वहाँ से तो तुम्हारे लिए दुगन्धि आएगी और उस दुर्गन्धि को जब तुम पान करोगे, तो तुम्हारा जीवन किलिष्ट बन जाएगा।

हे मानवआज तुझे विचारना है कि स्वर्ग किसको कहा करते हैं !, हम देवताओं की पूजा कैसे कर सकते हैं, इसकी व्याख्या मैंने पूर्व कई स्थानों में की है, आज भी मुझे सौभाग्य मिला। इस सम्बन्ध में ऋषियों का उल्लेख है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने भी यही कहा है कि हमें देवताओं की पूजा करनी है तो आज हमें दुर्गन्धि के स्थान में सुगन्धि को स्थापन करना है। जब इन सुगन्धित पदार्थों के द्वारा सुगन्धि सूर्य तक जाएगी, तो यह क्रूर क्यों होगा। वह तुम्हें सुगन्धि देगा। जब सूर्य तुम्हें सुगन्धि देगा, तो तुम्हारा जीवन एक अनुपम बन जाएगा। तुम्हारे जीवन की धाराएँ विचित्र बन जाएगी, देवताओं का हमें इस प्रकार पूजन करना है। इसका यह अभिप्राय नहीं, कि हम नौ गृह पूजन को एक महान स्थलीय बना करके, साकार प्रतिबिम्ब बना करके उसकी इस प्रकार पूजा करें। नहीं, निस्वार्थ होकर पूजा करो। देवताओं की निस्वार्थ पूजा कौन सी है? निस्वार्थ पूजा वह है, कि आज तुम्हारे द्वारा बुद्धिमान आ जाएं, साधु आ जाएं, उसकी पूजा करो और उनसे कुछ लो। क्या लो? वह हमारे देवता हैं, वह हमें ज्ञान देते हैं, वह हमें ऊँची चर्चाएं देते हैं, हमें ज्ञान की गंगा में स्नान करा देते हैं। आज हमें उन देवताओं की

पूजा करनी है। हमें उन देवताओं की पूजा भी करनी है जिनको हम स्थली बनाते हैं, जिनको हम नौ गृह कहा करते हैं, परन्तु नाना गृहों का पूजन अपने अन्तःकरण को जानने के पश्चात् कर सकते हैं। आज सृष्टि में आकर अन्तःकरण को पवित्र बनाने के लिए सुगन्धि को उत्पन्न करता है। जब हम सुगन्धि को उत्पन्न करेंगे, तो वही हमारी सुगन्धि सूर्य मण्डलों तक वायु में रमण होती हुई, अग्नि में जाती हुई, सूर्य मण्डल तक पहुंचती है। तो हमारे लिए सुख की वृष्टि होती है। जब हम इस कर्त्तव्य को त्यागते हैं, तो वह देवता हमें दुर्गंधि ही देंगे और क्या दें सकते हैं। आज हम वायु में ही सुगन्धि नहीं उत्पन्न करेंगे, दुर्गंधि देते ही रहेंगे, तो वायु दुर्गंधि हमें अवश्य देगी, और हमारे जीवन को किलिष्ट बना देगी। यह गृह इस प्रकार हमारे ऊपर क्रूर हो जाते हैं, यह पदार्थ और महान देवता क्रूर होकर हमारे कर्मों का इस प्रकार फल दे देते हैं।

तो आज हमें उस स्थली तक पहुंचना है, जहाँ हमारे ऋषि मुनि पहुंच चुके हैं। आज देखो, हम सतोयुग की व्याख्या कर रहे थे? उस युग में क्या होता था? मैंने कहा है, कि धर्म की चर्चाएं, राजा और मन्त्री विराजमान होते, वहाँ भी धर्म की चर्चाएं और जब दुरिता और दुराचार कोई भी नहीं होता था, तो मुनिवरों! उसको स्वर्ग कहा जाता था। मुझे यह देखने का अच्छी प्रकार सौभाग्य मिला है, कि वैश्य जन अपने गृह में द्रव्य को उसी प्रकार त्याग दिया करते थे, और कोई द्रव्य को छू भी नहीं सकता था। उनके अन्तःकरण इतने पवित्र थे। तो हमें उन स्थली पर जाना है, जिस स्थली पर हमारे ऋषि मुनि पहुंचे चुके थे, जिस स्थली को धारण करके, अपने को ऊँचा बनाया है। हमें भी उन देवताओं की पूजा करके ऊँचा बनना है। हमें भी उन देवताओं की पूजा करके देवता बनना है।

देखो, बुद्धिमान ब्राह्मण क्यों देवता कहा जाता है? क्योंकि उसने देवता की पूजा की है, माता का आदर किया है। जिसने माता का आदर किया है और जिसने देवताओं का आदर किया है, वह क्यों न संसार में देवता कहलाएगा। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जी कहा करते थे, कि मुझे ब्रह्मा क्यों कहते हैं, क्योंकि मैंने ब्रह्म विद्या को जाना है, मैंने उस परम देव परमात्मा का अपने जीवन में आदर किया है। इसलिए देवताओं की

गणाना में लिया जाता हूँ। बुद्धिमान को देवता इसलिए कहा जाता है, कि उसने माता का आदर किया है उसने देवताओं का आदर किया है। जो माता और देवताओं का आदर करता है, वह अवश्य देवता बनता है।

माता कौन है? माता जननी है, जिसके गर्भ में हमने जन्म लिया है। जननी माता के गर्भ से पृथ्वी माता पर आते हैं। वह माता भी हमें ऊँची स्थली पर पहुंचाने वाली है, वह माता हमारा पालन पोषण करने वाली है। हम उसे विज्ञान को जाने, उस माता के आदर को जाने, कि कैसे हमारा पालन करती है, कौन से पदार्थों से हमारा आदर करती है। बुद्धिमान इनको जानने लगता है। इसके पश्चात् आगे बढ़ता है। तृतीय माता संस्कृति है। जब बुद्धिमान संस्कृति का आदर करता है, तो संस्कृति उस मनुष्य की, उन देवताओं में गणाना कर देती है, जिन्होंने अपनी माता का आदर किया है, जो हमारा पालन पोषण करती है। जब हम संस्कृति का आदर करते हैं, तो संस्कृति हमें अपने में धारण कर लेती है और जब अपने में धारण कर लेती है, तो वह अपने अन्तःकरण को पवित्र बना देती है। माता हमारे अन्तःकरण में विराजमान हो करके, देवताओं की श्रेणी में विराजमान करा देती है।

आर्यों के भूषण

मैंने कल के वाक्यों में कहा था, कि यदि तुम्हें देवता बनना है, तो देवताओं की पूजा करो। आज हम सतोयुग का वर्णन कर रहे थे। सतोयुग क्या था। सतोयुग में आर्य कितने पवित्र थे, जिनकी एक महानता गाई गई है। उनको क्यों आर्य कहा जाता है? क्योंकि उन्होंने अपना जीवन ऊँचा बनाने में, पवित्र बनाने में शिखा का और यज्ञोपवीत का इतना आदर किया है, तीनों ऋणों का आदर किया। हमारे तीन प्रकार के ऋण हैं, हमें इनसे उऋण होना है, यही हमारे अन्तःकरण को पवित्र बना सकते हैं। इस शिखा का स्थान, इसलिए उच्च माना गया है, क्योंकि यह पवित्र है और हमारे वैज्ञानिकों ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है, कि शिखा के निचले विभाग में ब्रह्मरन्ध्र है और ब्रह्मरन्ध्र को ऊँचा बनाने के लिए, ब्रह्म अस्ति सुभ्या कृतज्ञः नरोती कश्मश्या। वह ब्रह्मरन्ध्र

ही है, जिसको हम पवित्र बना सकते हैं। शिखा हमारे आर्यों का एक विशेष भूषण है। आज हमारा वह भूषण नहीं है, जो हमें नीचा गिरा दे। भूषण वह है, जिस भूषण से हम देवता बन जाएं, जिस भूषण से हम देवता कहलाते हैं। आज उस भूषण को हमें धारण करना है।

आज से पूर्व मेरे प्यारेमहानन्द जी ने नाना प्रश्न किए !, परन्तु मैं गौरव के सहित कहा करता हूँ कि केवल आर्यों के द्वारा दो ऐसी विलक्षणता हैं, शिखा और यज्ञोपवीत, जिनसे यह महान बन सकता है, और यह आर्य कहलाता है। विज्ञान रूपों से तो यह कहा गया है, कि शिखा के निचले विभाग में ब्रह्मरन्ध्र है, ब्रह्मरन्ध्र में अस्वस्ति है, उसको कोई शत्रु आकर छू भी न सके, जिससे परमात्मा की यह अनुपम देन समाप्त न हो जाएं। यही ऋषि मुनियों का इसमें कथन है। यज्ञोपवीत में क्या विशेषता है? यज्ञोपवीत हमारे ऋणों का सूचक है। इसको ब्रह्मफांस भी कहा गया है। महानन्द जी तुम्हें ज्ञान होगा, कि जब महाराजा हनुमान जी लंका पहुंचे थे, अशोक वाटिका को नष्ट कर रहे थे, तो उस समय रावण के पुत्र मेधनाथ का जब कुछ ओर बस न चला, तो ब्रह्म फांस में, उनको फांस लिया। उस समय देखो, हनुमान ने कहा था, कि मैं ब्रह्मफांस को नष्ट नहीं करना चाहता, क्योंकि मर्यादा नष्ट हो जाएगी। हमारे ऋषि मुनियों ने कितना पवित्र माना है, हमारे आचार्यों ने कितना पवित्र माना है, हनुमान जैसा जो सेनापति कहलाए जाते थे, उन्होंने भी इस ब्रह्मफांस का आदर किया है। वैसे वैज्ञानिक रूप से, भौतिक विज्ञान में एक ब्रह्मफांस रूपी शस्त्र भी होता है, परन्तु यहाँ जो ब्रह्मफांस, जिसमें हनुमान को फांसा था, यज्ञोपवीत ही था। उन्होंने कहा था कि मैं इसको शान्त कर सकता हूँ, परन्तु मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की आज्ञा नहीं है, कि मैं ब्रह्मफांस को शान्त करूं। यह मर्यादा नहीं कहती, यह मेरा आर्य चिन्ह नहीं कहता। यदि मैंने आज इसे शान्त कर दिया, तो मेरा आर्यत्व समाप्त हो जाएगा।

आर्य

तो आर्य किसको कहा जाता है? जिसके द्वारा ऋण हों, और ऋणों से उऋण होने का

प्रयत्न करता हो, उसी को यहाँ आर्य कहा जाता है। आर्य उसको नहीं कहा जाता, जो दूसरों की त्रुटियों देखने वाला हो, जो दूसरों की निन्दा करने वाला हो, दूसरों के अवगुणों को देखने वाला हो। आर्य उसको कहा जाता है जो शुद्ध और पवित्र होता है, जिसका जीवन वास्तव में सुन्दर होता है, जो अपनी मर्यादा की रक्षा करता है। भगवान राम यथार्थ आर्य थे। जिनका आर्यत्व आज संसार में प्रत्यक्ष है। जब तक पृथ्वी, अन्तरिक्ष है जब तक परमात्मा की सृष्टि है तब संसार भगवान राम के नाम की गाथाएं गाता चला जाएगा। क्योंकि वह यथार्थ आर्य थे, महाराजा हनुमान यथार्थ आर्य थे, भगवान श्रीकृष्ण यथार्थ आर्य थे, जो अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले थे, आज हमें आर्यत्व पर दृष्टि पहुंचानी चाहिए। उन ऋषि मुनियों पर विचार करना चाहिए, जिन्होंने हमें आर्यत्व का उपदेश दिया है। आर्यत्व का यह उपदेश हमें सृष्टि के प्रारम्भ में परमपिता ने देव रूपी ज्ञान द्वारा दिया और कहा कि यथार्थ वह है, जो वेदों के अनुकूल अपना जीवन बनाने वाला हो। यहाँ ऋषि मुनियों से सृष्टि का निर्माण होता है, आर्यों से सृष्टि का निर्माण होता है। तो आज हमें विचारना चाहिए। आज हमें धीमे धीमे उस स्थिति पर पहुंच चुके हैं, कि हम ही ने दैत्य बन करके, इस संसार को क्लिष्ट बना दिया।

मैं आज सतोयुग की वार्त्ता प्रकट कर रहा था। सतोयुग में सभी अपने धर्म की चर्चाएं, अपने आत्मिक बल की चर्चाएं, अपने आर्यत्व की चर्चाएं, सब ही कुछ करते। वह चर्चाएं मनुष्य को इतना ऊँचा उठा देती हैं, कि वह काल सतोयुग कहलाता है। आज भी देख लो। जिस गृह में पवित्र मनुष्य होते हैं, पति पत्नी से प्रीति होती है, आत्मिक बल होता है, परमात्मा का चिन्तन होता है, देवताओं की पूजा होती है, वह गृह आज भी स्वर्ग है। आज हमें स्वर्गत्व पर विचार करना है, उस महानता पर पहुंचना है, जिस महानता पर हमारे महान पूर्वज ऋषि मुनि पहुंचे चुके हैं। उस संस्कृति पर पहुंचना है, जो हमें देवता बना देती है। जिस संस्कृति में देवपन छिपा हुआ है, वह संस्कृति हमें वास्तव में

ऊँचा बना देती है।

यज्ञोपवीत का विज्ञान

आज मैं तीनों ऋणों के सम्बन्ध में, यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में उच्चारण कर रहा था। जो आज इन ऋणों से उऋण होने का प्रयत्न नहीं करता, वह आर्य नहीं कहलाता। मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने जो सूचना दी आज इन धागों को कंठ !में धारण करने से कोई लाभ नहीं। लाभ उसी काल में है, जब तुम ऋणों से उऋण होने का प्रयत्न करोगे। एक एक धागे के विज्ञान को जाना जाएगा। उस समय तुम पात्र बनोगे। यज्ञोपवीत का पात्र कौन होता है? कहा जाता कि त्रेता काल में जब महर्षि लोमश, महर्षि नारद, कागभुषंड जी, गरूड़ जी महाराज इत्यादि सब विराजमान हो गएं, उस समय कागभुषंड जी से प्रश्न किया, कि इस यज्ञोपवीत में क्या विज्ञान है, क्यों इसे धारण किया जाता है? तो कागभुसड जी ने यह कहा था कि आज हमारे तीन ऋण हैं। एक ऋण ऐसा है, जिससे उऋण होना हमारे लिए अनिवार्य है। इसका पात्र आज कौन है? लोमश और नारद मुनि ने जब यह प्रश्न किया, तो कागभुषण्ड जी बोले कि संसार में यज्ञोपवीत का वही पात्र होता है जो महान देवताओं के ऋण से उऋण होने का प्रयत्न करता है, वह यज्ञोपवित का पात्र कहलाता है। वही मेरी प्यारी माता पात्र होती है, जो महान देवताओं की पूजा करने वाली हो। यहाँ उन्होंने नाना देवियों का प्रमाण देते हुए कहा था। एक एक धागे में कितना विज्ञान है, एक धागे में देव ऋण हैं जिसको ऋषि ऋण कहते हैं। इस सम्बन्ध में कागभुषण्ड जी ने कहा है कि ऋषि ऋण वह पदार्थ है, कि ऋषियों ने जो हमें आदेश दिया, जो ऋषि हमारे लिए मर्यादा बांधकर चले गएं हैं उस मर्यादा पर चलना, उस महान मर्यादा का आदर करना और उस पर अपना जीवन बनाना, यह हमारे ऊपर एक ऋण है। ऋषि ऋण से उऋण होने का प्रयत्न करें। कागभुषंड जी ने कहा कि हे लोमशऋषि ऋण वह ऋण है !, कि तुम्हारे गुरुदेव ने जो तुम्हें ऋषित्व का उपदेश दिया है, उसका पालन करके, तुम ऋषि बने हो, यह ऋषि ऋण है। आज यदि तुम अपने गुरु के आदेशों को स्वीकार न करते और उन पर न चलते, तो तुम आज

संसार में महर्षि लोमश न कहलाते। नारद मुनि से कहा कि नारद यदि तुम ऋषियों ! के ऋण का आदर नहीं करते, तो आज संसार में देव ऋषि नारद नहीं कहलाते। आज तुम देवताओं की पूजा करने से ऋषि कहलाए हो। मैं भी कागभुषंड कहलाता हूँ क्योंकि मैंने अपने गुरुओं का आदर किया है, माता संस्कृति का आदर किया है।

जब कागभुषण्ड जी ने यह वाक्य कहा, तो ऋषि बड़े प्रसन्न हुए। उस समय यह भी कहा गया था, कि ऋषियों का ऋण हमें स्वीकार्य है। हमारे आदि गुरु ब्रह्मा ने जो पाठ पढ़ाया है, उसका आदर करके हमारा जीवन ऊँचा बन जाएगा और हम ऋषि ऋण से उऋण हो जाएंगे।

द्वितीय सूचक हमारा देव ऋण है। देव ऋण कौन सा है? देवता हमारे कौन हैं? जो हमें देते हैं, लेते नहीं। देते क्या हैं? हमें जीवन देते हैं, हमें वायु देते हैं, हमें मानवता देते हैं, उन्हें हम देवता कहते हैं। हमें उन देवताओं का पूजन करना है। हमारे द्वारा कौन सा प्रतीक है, जिससे हम देवताओं का पूजन कर सकें? इस सम्बन्ध में कागभुषण्ड जी ने प्रश्न किया। सब ही ऋषियों ने कहा, यज्ञाः कि यज्ञ है, जिससे हम सूर्य जैसे गृहों को ऊँचा बना सकते हैं, उन तक सुगन्धि पहुंचा सकते हैं, जिससे हमें तेज, मनोकामना के अनुकूल प्राप्त हों। यज्ञ है, जो हमें ऊँचा बना सकता है। परन्तु यज्ञ के लिए हमें सब सामग्री जुटानी पड़ेगी, जब हमारे द्वारा यज्ञ की सामग्री न होगी, तो हमारा यज्ञ भी सम्पन्न न होगा। कागभुषण्ड ने कहा कि हे नारद दूसरा सूचक हमारा है !हे लोमश ! यज्ञ, हम देवताओं की पूजा करें। देवताओं की पूजा करने से हमारा जीवन ऊँचा बन जाएगा। सब कुछ विज्ञान आ जाता है। इस विज्ञान की चर्चा, तो हम कल करेंगे आज तो केवल संक्षेप से इनके वाक्यों की पुष्टि करनी है।

तृतीय सूचक हमारे द्वारा मातृ ऋण। मातृ ऋण क्या है? हम माता का आदर करें, जिस माता के गर्भ से हमने जीवन पाया है। उस माता की पूजा करें। कौन सी माता जीवन देती है? यों तो मेरे प्यारेमहानन्द जी के कथनानुसार मेरी प !्यारी माताएं अपने गर्भस्थलों से नाना कीड़े उत्पन्न करती रहती हैं, परन्तु वह कौन सी माता है, जिनका आन हम विश्गम् भवति जिस माता के गर्भस्थल में हमारा जीवन बना है, हम ऋषित्व

को प्राप्त हो जाते हैं, वह माता ऋषि माता कहलाती है। कौन सी माता ऋषि माता कहलाती है? आज तुम्हें बेटाकंठ होगा !, माता गार्गी जो ऋषि कहलाई गई। महर्षि व्यास मुनि महाराज की पत्नी मामातुर, उनके गर्भ से श्री सुखदेव का जन्म हुआ। वह ऋषि माता कहलाई। माता कौशल्या राम की माता कहलाई गई। वह महान आत्माओं की माता कहलाई। आज हमें उन माताओं के लिए आदर करना है। वह हमारे द्वारा एक ऋण है। हमें माताओं की पूजा करनी चाहिए। जब माताओं की पूजा करेंगे, तो माता ऊँची बनेगी, माताओं के हृदय में उत्सव होगा। हमें माताओं का आदर करना अनिवार्य है।

मुनिवरोंपृथ्वी भी माता है। संस्कृति भी माता है। हमें सभी माताओं का पूजन करके !, इनका आदर करके संसार सागर से पार होना है। यह है आज का आदेश, जो प्रारम्भ हो रहा है। आज का हमारा वेद पाठ क्या कह रहा था? यह यजूंष मुनि संहिता का पाठ क्या कह रहा था? मैंने आज से पूर्व काल में संहिताओं की चर्चा की, परन्तु आज मुझे संहिताओं की चर्चा नहीं करनी है, केवल यह उच्चारण करना है कि आज हमें उन ऋषियों का आदर करना है, जिन ऋषियों ने हमारे कल्याण के लिए योजना बनाई, जिन्होंने हमारे कल्याण के लिए सब कुछ किया। हमें उस संस्कृति का आदर करना है, उस महान सतोयुग का आदर करना है, जो सतोयुग कहलाता है। आज हमें मनुष्य बनाना है और पुनः से सतोयुग को लाना है संसार में। सतोयुग उसी काल में होगा, जब हम अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे जहाँ राजा भी अपने कर्तव्य का पालन करने वाला, राजा पत्नी भी अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाली निःस्वार्थ हो। प्रजा भी अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाली हो। वैश्य अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले हों। जब इस प्रकार की स्थिति बन जाती है तो यहाँ स्वर्ग आ जाता है, संसार में।

यह है आज का हमारा आदेश जो प्रारम्भ हो रहा था। आज इस सम्बन्ध में हमें अधिक व्याख्या नहीं देनी है। वाक्य तो बहुत ही कुछ उच्चारण करने को हैं, यह इतना अगाध ज्ञान का वन है, कि हमें व्याख्यान देने का मार्ग ही प्राप्त नहीं हो होता, ज्ञान एक ऐसा

मार्ग है, जिसको मानव पान करता हुआ, संसार सागर से पार हो जाता है।
मुनिवरोंसंसार में दैत्य कैसे बनते हैं !? यह भी आज तुम्हें निर्णय करा देते हैं, कल भी कहा था कि दैत्य कैसे बनते हैं। राक्षस दूसरों को कष्ट देने से बनते हैं। यहाँ दैत्यों और देवताओं का संग्राम परम्परा से होता आया हैं देवता वह है, जो दूसरों की उन्नति चाहते हैं, दूसरों को महान बनाना चाहते हैं और दैत्य वह हैं जो उनकी महानता को नष्ट करना चाहते हैं। आज यदि तुम महान आत्माओं का अपमान करने वाले बनोगें तो तुम दैत्य कहलाओगे संसार में, यदि तुम अपने ऋषि मुनियों का अपमान करने वाले बनोगे तो तुम दैत्य कहलाओगे। तुम्हारा अन्तःकरण उन ग्लानियों से परिपक्व हो जाएगा, जहाँ दुर्गन्धि ही दुर्गन्धि रहेगी। आज तुम्हें संसार में ऋषि मुनियों का आदर करके चलना है, और उनकी वार्त्ताओं तो लेकर चलना है, राष्ट्र को, अपने को ऊँचा बनाना है, तो ऋषियों के ऋण से उनके उपदेश, उनके सूचक हमें लेने हैं। उन ऋषियों से सूचक लेना है, जो ऋषि यहाँ आकर उपदेश देते हैं, परन्तु लेते कुछ नहीं। इस प्रकार राजा और प्रजा को अपने कर्त्तव्य का पालन करता है, परन्तु लेना नहीं। अब शेष बातें कल प्रकट की जाएगी।

पूज्य महानन्द जीः भगवन्अभी तो आपका समय भी नहीं हुआ है। हमारे ! भी प्रश्न रह रहे हैं।

पूज्यपाद गुरुदेवः बेटातुम्हारे प्रश्नों के उत्तर कल मिलेंगे। समय आज् !ञा नहीं दे रहा है।

पूज्य महानन्द जीः जैसी इच्छा हो भगवन् । !

पूज्यपाद गुरुदेवः तो यह है मुनिवरों हमारा आज का आदेश। आज के आदेशों का ! अभिप्राय था, कि शिखा और यज्ञोपवित आर्यों का भूषण है। हमें उस भूषण की रक्षा करनी है। आज यदि मेरे प्यारे महानन्द जी के !कथानुसार यही स्थिति संसार की बनी रही, तो यह भूषण एक समय समाप्त हो जाएगा। आज हमें इस भूषण की रक्षा करनी है। इस भूषण की रक्षा होगी, अपने कर्तव्य का पालन करने से, यह बेटा तुम्हें ज्ञात ! होगा, मैंने कई लाख पूर्व यह कर्म किया था, आज भोगा जा रहा है। यह सब कुछ

क्या है? यह सब कुछ अपने कर्मों के संस्कार और भोग हैं। संसार में इन्द्र का प्रकोप क्यों होता है इसका भी संक्षेप उत्तर यह है कि संसार में यह विनाशता सब प्रजा के भोग होते है, कर्म होते हैं, यह सबकी भावना होती होती है। जब मनुष्य एक पग आगे चलता है और पाप उसके पग में भरा हुआ है, तो क्यों न कर्म उसे भोगना पड़ेगा। जब निःस्वार्थ कार्य होगा, तो इन्द्र प्रसन्न होंगे और इच्छा के अनुकूल तुम्हें फल देगे और जब तुम्हारे एक एक पग में स्वार्थ है, ऋषि ऋण को नहीं जान रहे हो, परमात्मा को भुलाते जा रहे हो तो क्यों न तुम्हारी स्थिति ऐसी होगी ऐसी स्थिति अनिवार्य है स्वाभाविक है।

तो यह है आज का हमारा आदेश, कल समय मिलेगा, तो विस्तार से इन वार्त्ताओं को प्रकट कर देंगे। अब हमारा यह आदेश समाप्त हो चुका है। अब वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त हो जाएगी।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो भगवन् आज का आपका आदेश कुछ सुन्दर !भगवन् ! लगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य कुछ सुन्दर। .....

पूज्य महानन्द जीः हां भगवन् !

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्यअच्छा ....., धन्यवाद।

२ 27 07 1963 आर्यों का भूषण, सद्यवहार

जीते रहो, देखो, मुनिवरोंअभी ! अभी हमारा पर्ययण समय समाप्त हुआ। आज हम पुनः की भांति तुम्हारे समक्ष कुछ वेद मन्त्रों का पाठ कर रहे थे। प्रारम्भ के मन्त्र में इन्द्र की याचना करते हुए, उस परमपिता परमात्मा का गुणगान करते हुए, हृदय पवित्र करने जा रहे थे। यह अमूल्य वेदवाणी क्या कर रही है, जिसका गुण गाने से मानव का हृदय पवित्र हो जाता है। आज हमें अपने हृदय को पवित्र बनाना है, महान बनाना है। परन्तु कैसे महान बना सकते हैं? अन्तःकरण में उन निधियों को कैसे विराजमान कर सकते

हैं?

अन्तःकरण

अन्तःकरण वह पदार्थ, वह स्थान है, जिसमें हमारे पाप पुण्य कर्म विराजमान रहते हैं। इस अन्तःकरण में उन वस्तुओं को स्थापित कर लेना चाहिए जिससे पाप उस स्थान में न जा पाए । पवित्रता ही आए और उस अन्तःकरण से पवित्र होने से वह मानव परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को भी जान जाता हैं। हमें सबसे प्रथम उस अन्तःकरण में उन महान संस्कारों को विराजमान कर देना है, जिन संस्कारों के हमारे जन्म जन्मानतरों के संस्कार भी कंठ रहते हैं। आज हमें उन कर्मों को करना है, जिनसे पवित्रता आए और हमारा हृदय पवित्र हो जाएं।

आज हम सब उस परमात्मा के ज्ञान विज्ञान को जानने के लिए लालायित हो रहे हैं, जिससे सभी कुछ जाना जाता है। परन्तु कैसे जाना जाएगा? इस सम्बन्ध में मैने कल के आदेशों में कुछ प्रकाश दिया था, आज भी मैं देता चला जाऊं। उस परमात्मा को जानने के लिए सबसे पूर्व अन्तःकरण में उन पदार्थों को स्थापित कर देना है, जिनसे हम ऊँचे बनें। अन्तःकरण को पवित्र, निर्मल स्वच्छ बनाने से हमारा हृदय निर्मल बनेगा, हम मनुष्यत्व पर पहुंच जाएंगे, हमारे में मानवता आएगी।

सतोयुग का आहार

आज से पूर्व मेरे प्यारेमहानन्द जी ने कुछ वाक्य कहे थे !, और वह खान पान के सम्बन्ध में बहुत ऊँचे कहे थे। आज आहार के सम्बन्ध में विचारना है। हमारे सतोयुग का आहार कैसा था? जैसा मैंने कल भी कुछ सतोयुग का प्रकाश दिया। आज भी मैं कुछ संक्षिप्त सा प्रकाश देता चला जाऊं। सतोयुग में आहार और व्यवहारों की कैसी परिपाटी थी? ऋषित्वता कैसी थी? ज्ञान कैसा था? यह भी आज प्रकाश दे देना है। जब यहाँ सतोयुग की स्थापना हो रही थी, उस समय ऋषि मुनि यह उपदेश ही उपदेश देते थे, कि हमें अपने उस आहार को करना है, जिस आहार से हम दूसरों को हिंसक न बना सकें, दूसरों को कष्ट न दे सकें। वह आहार हमारे लिए सर्वोपरि है। मेरे प्यारे !

महानन्द जी के कथनानुसार आज का संसार कैसा विलक्षण है कि अपनेआनन्द में आकर के दूसरे प्राणियों को नष्ट कर करके अपने उदर और रसना पूर्ति करता चला आ रहा है, यह मानवता नहीं कहलाई जाएगी और न यह मानवता है, यह तो मानो मानव अपने पद से पतित होता चला जा रहा है। मुझे इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाश नहीं देना है, मुझे तो केवल यह उच्चारण कर देना है कि हमारे आर्यों का आहार और व्यवहार कितना पवित्र था। सतोयुग मे अपने आहार, व्यवहारों पर विचार होता था और यह भी विचार होता था, कि हम ब्रह्मचारी कैसे हो सकते हैं। जब हम गृहस्थ में हैं तो हम ब्रह्मचारी कैसे बन सकते हैं उन्होंने कहा है कि आज हम एक पत्नी के ब्रह्मचारी बने और पत्नियां यह विचार करें कि हम दो सन्तान करने वाली देवियां बने, सदाचारिणी और ब्रह्मचारिणी बन करके अपने मानवत्व को ऊँचा बना सके। यह हमारे यहाँ परिपाटी मानी गई है। ब्रह्मचारी कई प्रकार के होते हैं, जैसा मैं पूर्व कई स्थलों में उच्चारण कर चुका हूँ। एक आदित्य नाम के ब्रह्मचारी होते हैं, एक पर्जन्य नाम के ब्रह्मचारी होते हैं, जो पति और पत्नी एक गृह में रहते हुए, केवल दो पुत्रों को उत्पन्न करने के अधिकारी होते हैं। वह ब्रह्मचारी अपनी मानवता को ऊँचा बना करके, इस संसार से पार हो जाते हैं। एक समय वह आता है, कि वह मेरे प्यारे आर्य !इस संसार से ऊँचा बनकर के ऋषित्व को प्राप्त हो जाते हैं।

कर्तव्य

मुझे आज से कई पूर्व स्थलों में आर्यों की परम्परा के उच्चारण करने का सौभाग्य मिला। आज भी मुझे व्याख्या देने का सौभाग्य मिल रहा है। यहाँ हमारे आर्यों के आहार व्यवहारों की कैसी ऊँची परम्परा पर हमें विचार करना चाहिए। वह परम्परा हमें कहाँ तक महान बनाती है। मुझे मेरे प्यारेमहानन्द जी से संकेत मिला है !, कि आज हम कहते हैं, कि हमें उस परम्परा को त्याग देना चाहिए, जो पूर्व की परम्परा थी। कदापि नही, आज जब तक हम ऋषि मुनियों की वार्त्ता को नहीं अपनाएंगे, उनके आर्यत्व को नहीं अपनाएंगे तब तक हमारा जीवन किसी भी प्रकार ऊँचा नहीं बन

सकेगा। यहाँ बड़े बड़े महान व्यक्ति होकर के समाप्त हो चुके हैं यहाँ राजा महाराजा , समाप्त हो गए हैं, न यहां भूमि किसी की हुई है, न यह शरीर किसी का हुआ है? न यह गृह किसी का हुआ है, न यौवन किसी का हुआ है, सब समाप्त हो जाता है। केवल मानव के द्वार मानवता है, जो सर्वज्ञ है, नहीं तो इस संसार में सब कुछ व्यर्थ है। यदि मानव के द्वारा ब्रह्मचर्यता हैतो वास्तविकता है ,, यथार्थता है। यथार्थ को उच्चारण करने से मानव का कल्याण होता है यथार्थ उच्चारण करने से मानव की वाणी अमोघ हो , जाती है और जो मानव कहा करता है, वह यथार्थ होता है। उसे ज्ञान हो जाता है, कि तेरी वाणी से वही वाक्य का उच्चारण होगा, जो इसके कर्मों के भोग में है। आज हमें उस परम्परा पर पहुंचना चाहिए। आज हम अपने आहार और व्यवहार को इतना तुच्छ बना रहे हैं, जैसा महानन्द जी ने संकेत दिया है, कि आज का संसार अपनी रसना के आनन्द में मानवता को शान्त कर रहां। दूसरे जीवों को कष्ट देता है परन्तु अपनी रसना की पूर्ति अनिवार्य है। यदि तेरी रसना की पूर्ति न हुई, तो तेरा अपमान है। अरे, मानव ! इसमें तेरी मानवता नहीं है। इसमें तो तेरी वास्तविकता समाप्त होती चली जा रही हैं। मुझे आज से पूर्व महानन्द जी ने निर्णय कराया, कि दूसरे के गर्भों को आहार कर करके हम अपनी बुद्धियों को, उस मार्ग पर पहुंचा रहे हैं, जहाँ हमें अन्धकार प्राप्त होता चला जा रहा है।

हमें आर्यत्व पर पहुंचना चाहिए कि हम आर्य क्या हैं? हमारी वैदिकता क्या है? हमारी ऊँची संस्कृति क्या है? माता ने हमें क्या आदेश दिया है? हमारी माता संस्कृति ने वह आदेश दिया है, कि जिससे हम महान बन सकते हैं। जैसा कि प्यारे महानन्द जी के मन में कल भी विचारधारा आ रही थी, आज मुझे ऋषित्व के ऊपर अधिक प्रकाश नहीं देना है, केवल यह उच्चारण करना है, ऋषियों की वार्त्ताओं को मानना, हमारा कर्तव्य है, उनकी वार्त्ताओं को अपने अंतःकरण में स्थापित कर लेना, हमारा कर्तव्य है। तभी हमारी मानवता ऊँची बनती चली जाएगी।

आज हम ज्ञान विज्ञान का प्रसार करते, परन्तु आज समय इतनी आज्ञा नहीं दे रहा है। कल मैंने कहा था कि आर्य उस को नहीं कहते, जो अभिमानी बन जाएं, जो अपनी

बुद्धि से बढ़कर किसी बुद्धि को न माने, दूसरों की निन्दा करने वाले को आर्य नहीं कहते। आर्य उसे कहते हैं, जो यथार्थता को पान करने वाला हो। जो यथार्थ को लेकर चलता है, वह संसार में आर्य कहलाता है। वह महान कहलाता है। वह संसार ऊँचा बना सकता है। वह गम्भीर बन जाता है, अमोघ हो जाता है।

पूज्य महानन्द जीः गुरुदेवमैं आपसे यह जानना चाहता हूँ !, कि जैसा आप आज आर्यों के सम्बन्ध में उच्चारण कर रहे थे और कल भी कर रहे थे और शिखा के सम्बन्ध में कुछ कहा था, कि यह ब्रह्मरन्ध्र की रक्षा करनी है, तो भगवन् जिनके शिखा नहीं ! होती, उनके ब्रह्मरन्ध्र की रक्षा नहीं होती?

शिखा और ब्रह्मरन्ध्र

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य !महानन्द जी .....मैं तो पूर्व ही कहा करता हूँ, कि तुम्हारे जितने प्रश्न होते हैं, वह ऐसे विलक्षण हैं, कि उनका कोई उत्तर नहीं दे सकता। बेटा ! इसका अभिप्राय यह नहीं, कि जिनकी शिखा नहीं है, उनके ब्रह्मरन्ध्र की रक्षा नहीं होती। इसका उत्तर यह है, कि यह आर्यों का भूषण है और वैज्ञानिक रूपों से यह कहा कि इससे ब्रह्मरन्ध्र की रक्षा होती हैपरन्तु हमने साथ , साथ यह भी कहा था कि ब्रह्मरन्ध्र के साथ साथ यह आर्यों का भूषण है। अब रही बात, यह कि आर्यों का भूषण ही इस प्रकार का क्यों है? बेटा आर्यों का भूषण इसलिए है इससे कर्मकाण्ड की ! स्थिति होती है, इससे हम ब्रह्मरन्ध्र को छूते हैं, इस ब्रह्मरन्ध्र से हमें प्रकाश होता है, मानो यह कर्मकाण्ड में एक विशेषज्ञ रीति से अनभिज्ञ स्तुत माना गया है। इसके पश्चात् यह भी है कि तुम प्रश्न कर रहे हो कि जिनके शिखा नहीं होती और जिनके यज्ञोपवीत भी नहीं होता, तो यदि वह ऋण को उऋण होने लगे, तो क्या नहीं होगें? इसका उत्तर यह है, कि मानव जब कर्मकाण्ड की उस महत्वता पर पहुंचता है और विचार करता है कि मेरी शिखा किसलिए, क्यों है, और जब इस ज्ञान को खोजता है, तो उस मार्ग पर, पहुंच जाता है। जब तक वह इस विज्ञान को नहीं खोजता, तब तक वह उस महानता पर पहुंच ही नहीं सकेगा और न वह उऋण होने का प्रयत्न ही करेगा । जो

मानव इस आर्यत्व तक पहुंचने का प्रयत्न करेगा, विज्ञान को जानने का प्रयत्न करेगा वह विज्ञान की सभी सामग्रियों को जानने के पश्चात् आगे बढ़ सकता है। रही यह बात कि जिनकी शिखा नहीं होती, तो क्या ब्रह्मरन्ध्र की रक्षा नहीं होती, तो बेटा उन्हें ! ब्रह्मरन्ध्र का ज्ञान ही नहीं होता, कि ब्रह्मरन्ध्र कया होता है? हमारी शिखा क्या है? हमारा क्या धर्म है? बेटा उन्हें हमारे आचार्यों ने यवन रूपों से पुकारा है। !

यवन किसे कहते हैं? जो आर्यों से विपरीत चलने वाले होते हैं, उन्हें यवन कहते हैं, जिनको दैत्य भी कहते हैं। जैसा त्रेता के काल में महाराजा विश्वामित्र यज्ञ करते थे और दैत्य राक्षस उनको आकर विध्वंस करते थे। इसी प्रकार हमारे यहाँ आर्यों का और दैत्यों का भूषण भिन्न भिन्न माना गया है। यहाँ आर्यों को देवता कहा जाता है अनार्यों को यवन कहा जाता है।

रही तुम्हारी यह वार्त्ता, कि जब हम देवताओं की देव पूजा करते हैं, तो सभी सामग्री को जुटाते हैं और परमात्मा के हम योग मार्ग को खोजते हैं, योग के मार्ग पर हम सभी कुछ स्थितियों पर पहुंचने का प्रयत्न करते हैं, और देखते हैं, कि हमारा ब्रह्मरन्ध्र क्या है, हृदय चक्र क्या है, स्वाधिष्ट चक्र क्या है, सभी चक्रों को जानने के पश्चात, हम योग के मार्ग पर पहुंच सकते हैं। इसी प्रकार परमात्मा से योग करने के लिए और आर्यत्व को ऊँचा बनाने के लिए, हमारे द्वारा सब सामग्री होना अनिवार्य है।

पूज्य महानन्द जीः गुरुदेव एक वाक्य मैं और जानना चाहता हूँ कि इस मृत मण्डल ! में, मैं सूक्ष्म शरीर से भ्रमण किया करता हूँ तो देखा करता हूँ कि बहुत से व्यक्ति हैं। जो शिखा क्या वह अपने सर्वज्ञ सिर पर शिखा का एक महान् असुत होता है यह क्या है? मैं इसको भी आपके द्वारा जानना चाहता हूँ।

पूज्यपाद गुरुदेवः महानन्द जीइसका उत्तर यह है !, कि हमारे आर्यों के यहाँ दो प्रकार की मर्यादा होती है। एक को जटम् जूट कहते हैं, और एक वह होते हैं जिनके द्वारा केवल एक शिखा का चिन्ह हो और यज्ञोपवीत हो। जैसा तुमने राजा दशरथ को देखा होगा वह जटम् जूट रहते थे। वह अपने चिन्ह की अस्तुति नहीं करते थे, और न मुख पर स्तुति करते थे। बेटापरमात्मा ने देवियों का !, देव कन्याओं का और मनुष्यों का

भूषण और उनके क्रिया कर्म में भी भिन्नता स्थापित की है। जैसे परमात्मा ने मनुष्य के मुखारविन्द पर केश दिए हैं, इसी प्रकार माताओं के सिरो पर केश होते हैं। मनुष्य के और कई स्थानों में भिन्नता होती है। बहुत से आर्यों का, श्रेष्ठ पुरुष का यह मत है कि जब परमात्मा ने हमें ऐसा बनाया है, तो हमें इसी प्रकार रहना चाहिए। और कुछ का मत है कि हमें अपने विज्ञान की प्रगति करनी चाहिए। यह हमें आहार करने में नाना प्रकार की असुविधाएं देते हैं, इन्हें हमें समाप्त कर देना चाहिए। यह दो प्रकार की परिपाटी, हमारे यहाँ मानी गई है। सर्व सिर पर केश रखना यह भी कुछ बुद्धिमानों की परिपाटी है, कि जैसा परमात्मा ने हमें बनाया है, हमें उसी प्रकार रहना है।

बेटाएक समय इस क !लियुग की वार्त्ता प्रकट करते हुए, तुमने कहा था कि महात्मा नानक नाम के एक महात्मा इस संसार में हुए। उन्होंने यह परिपाटी चलाई, कि तुम्हें अपने इन केशों को स्थापित करना है और जो मुखारविन्द पर केश होते हैं, इन सबको स्थापित करना है। तुमने भी कहा था कि महात्मा नानक ने मर्यादा स्थापित करने के लिए, महान यवनों से संग्राम करने के लिए, अपने धर्म की मर्यादा को ऊँचा बनाने के लिए, ऐसा कहाँ क्षत्रिय रूप हो करके, उन्होंने अपने केशों को सबको स्थापित करते हुए, आर्यत्व का उत्थान किया। अपने धर्म की रक्षा की। परन्तु यह परम्परा महात्मा नानक ने नहीं, यह परम्परा क्षत्रिय रूप में रही थी, यह परम्परा हमारे आर्य रूप में थी, यह हमारे धर्म की रक्षा के लिए नहीं, परन्तु यह हमारे परमात्मा के ज्ञान विज्ञान के ऊपर निर्भर थी।

पूज्य महानन्द जीः गुरुदेवयह कहते हैं !, कि यह इस प्रकार का हमारा धर्म है, और पांच चिन्ह अनिवार्य हैं,

पूज्यपाद गुरुदेव महानन्द जी इसका उत्तर यह है की क्षत्रियों के द्वारा चिन्ह अनिवार्य है परन्तु केवल हम केशों के लिए पांच चिन्ह माने, तो यह केवल हमारा रूढ़िवाद है, हमें तो इसके विज्ञान को देखना चाहिए कि इसमें हमारा विज्ञान क्या कर रहा है, इसमें मानवता क्या कर रही है। इसमें मानवता तो यह कह रही है कि हमने राष्ट्र की रक्षा के लिए, धर्म की रक्षा के लिए, हमने कोई विधान बनाया और वह रक्षा हमारी पूरी हो

गई, उसे आज अपनाते रहे, तो उसका कोई महत्व नहीं, वह तो रूढ़िवाद है। परन्तु आज इस वाक्य पर पुनः पुनः विचार करने की आवश्यकता है। विज्ञानता से विचारने की आवश्यकता है। हमारा धर्म क्या है? अधर्म क्या है? इस सब पर विचार करना है। रही यह वार्त्ता कि आज हम अपनी रसना के आनन्द के लिए दूसरों के जीवनों को शान्त करते हैं और अपने जीवन की रक्षा करते हैं, तो यह कोई महानता नहीं। प्राणधारी वही है संसार में, जो अपने प्राणों की रक्षा करके, दूसरों की रक्षा करे। जिस प्राणाधारी ने इस संसार में आ करके, दूसरों के प्राणों की रक्षा नहीं की, केवल उनके भक्षण करने का कार्य किया है, तो उसमें कोई मानवता नहीं और न कोई आर्यता है और न उसमें कोई क्षत्रियता है, वह तो मनुष्यों ने अपनी रसना के आनन्द की पूर्ति का एक साधन बनाया है। आज हम इसके निर्णय पर नहीं है, न इस पर संभाषण दे सकते हैं। आज तो केवल यह कि हमें सब रूढ़िवाद को त्याग करके आर्यता को अपनाना चाहिए, हमें वास्तव में आर्य बनना चाहिए और वेद के मार्ग पर पहुंचना चाहिए, जैसा मैंने कल के आदेश में कहा था। प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या का कर्तव्य है कि आज आर्य बन करके, अपने देवताओं की पूजा करनी है, और देवताओं की पूजा करके देव ऋण से उऋण होना है। यज्ञोपवीत और शिखा दोनों को धारण करके हमें चलना है।

बेटारहा तुम्हारा यह प्रश्न !, कि जो मानव अपने सर्व शरीर पर केश धारण करता है, उसका शिखा का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता? नहीं नहीं, उसकी शिखा का भी प्रश्न होता है। उसके सारे केश ही शिखा के तुल्य हैं। हमारे इस मस्तिष्क में जो सूक्ष्म सूक्ष्म तत्त्व हैं, उनकी इन केशों से रक्षा होती है। परमात्मा ने हमें केश इसलिए दिए हैं, कि इनसे हमारे तन्तुओं की रक्षा होती है। रहा यह वाक्य, कि हमारी मानवता के लिए और देव कन्या के लिए, सभी के लिए, प्रभु ने भिन्न भिन्न प्रकार की आकृतियां दी हैं। मेरी प्यारी माता, देव कन्याओं में स्वाभाविकता, कोमलता होती है और पुरुष में स्वाभाविकता नहीं होती। हमारे आचार्यों का कुछ ऐसा भी मन्तव्य है, कि जो यह माता है, देव कन्या है, इसको यह प्रकृति का रूप दिया गया है। जैसे प्रकृति से इस संसार का जन्म हुआ होता है, इसी प्रकार माता से मनुष्य और देव कन्या की सृष्टि की उत्पति होती है। माता

रूक्मणि ने एक समय भगवान श्रीकृष्णा से यह कहा था कि मैं ब्रह्मचर्य की महानता को जानना चाहती हूँ। यह ब्रह्मचर्यता क्या है? क्या हम भी ब्रह्मचारी बन सकते हैं? भगवान श्रीकृष्णा ने यह कहा था कि देवीसंसार में सभी ब्रह्मचारी बन सकते हैं !, जो अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते, वह ब्रह्मचारी नहीं कहला सकते और न वह ब्रह्मचारी है और न उसमें ब्रह्मचर्यता है।

ब्रह्मचारी

ब्रह्मचारी दो प्रकार के होते हैं। एक तो महान आदित्य नाम के जिनका आदित्यत्व होता है, जो भोगों की विशेषणा में नहीं जाते, तृष्णा में नहीं जाते, विडम्बना में नहीं जाते, वेद के आदेश का पालन करते हैं, परमात्मा के ज्ञान ज्ञान विज्ञान को जानने वाले, ब्रह्मचर्य की रक्षा करने वाले महान तपस्वी कहलाते हैं। मानव गृहस्थलों में भी ब्रह्मचारी कहलाते हैं। वर्णव्यवस्थाके अनुकूल 25की ब्रह्मचर्यता रखी गई है उसके पश्चात् गृह आश्रम में प्रवेश हो करके एक दो संतान उत्पन्न करने के पश्चात यज्ञ वेदी पर विराजमान हो करके प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि आज जो सन्तानोत्पन्न करने की हमारी मनोकामना है वह पूर्ण हो चुकी है अब हमें परमात्मा के ज्ञान विज्ञान में लगना है। इसके पश्चात पति और पत्नी दोनों वानप्रस्थ में पहुँच जाते है। उसके पश्चात संन्यास धारण कर लेते है। यह हमारे ऋषियों ने चार विधान बनाएँ हुए है ।

बेटा! तुम्हें पारा मुनि का जीवन कंठ होगा महात्मा पारा मुनि के धुँधु ऋषि और व्यास मुनि जब दोनों पुत्र उत्पन्न हो गए थे तो उसके पश्चात उन्होने अपनी पत्नी से कहा था कि हे देवी! हमारे दो संतान उत्पन्न हो गई है अब हमें यज्ञ वेदी पर प्रतिज्ञा करनी चाहिए जिससे आगे चलकर हमारी परंपरा नष्ट न हो जाए हमे परंपरा को ऊँचा बना है । उनकी पत्नि ने कहा था कि भगवन्जैसी इच्छा हो !, वैसा कीजिए। सभी पूर्तियां पूर्ण होती चली जा रही हैं। उस समय महात्मा पारा मुनि ने परमात्मा और गायत्री माता का चिन्तन किया और भयंकर बन में जा पहुँचे, जहाँ सिंह चिंघाड़ते थे। अपने हृदय को पवित्र बनाने के लिए उस अप्रहेलना में जा पहुँचे, जहाँ परमात्मा का अनोखा चित्र

हमें प्रतीत होता है। महर्षि पारा मुनि जब तपस्या करके आए, ब्रह्मचर्यता को धारण करके आए, तो उसके पश्चात् अपने पुत्रों को आदेश दिया। संन्यासता को प्राप्त हुए। आज हमें उस परम्परा पर पहुँचना चाहिए। यह हमारे आर्यों की परम्परा है। इसमें ब्रह्मचर्यता आ जाती है। आज इसका अभिप्राय यह नहीं है, कि हम गृह आश्रम में पवित्र नहीं बन सकते, या गृह स्थान मेंब्रह्मचर्य नही बन सकते, अवश्य बन सकते है। एक समय मेरे प्यारे महानन्द जी ने कहा था कि आज का संसार भोग भोगने के ! लिए आया है, परन्तु भोगों ने ही इस मनुष्य को भोग लिया। जब मनुष्य को ही इस भोगों ने भोग लिया तो मनुष्यत्व कहाँ रहा? आज हमें भोगों पर नियन्त्रण करना है। जब भोगो पर नियन्त्रण करके चलेंगे, तो उस समय हमारे सब भोगों की पूर्ति हो जाएगी। भोगों की पूर्ति उस काल में होगी, जब हमारे द्वारा दृढ़ता होगी, संकल्प होगा और जब हमारे द्वारा यह न होंगे, तो हमारे भोगों की पूर्ति किसी भी काल में न हो सकेगी और ऐसा होगा, कि यह भोग ही हमें भोग करके नष्ट भ्रष्ट कर देंगे।

यथार्थ आर्य

आज हमें उस आर्यत्व पर विचारना है जो आर्य परम्परा हमारे यहाँ महान ऊँची मानी गई है। उस महानता पर पहुँचना है, उस आर्यता पर विचार करना है, जो आर्यता हमें उपदेश दे देकर समाप्त होती जा रही है। आज हम रूखे आर्य न बनें, अश्रद्धा वाले आर्य न बनें। यदि आज हम एक वेदमन्त्र को भी अपने जीवन में धारण कर लेते हैं, उसके अंग प्रत्यंग को जानने वाले बन जाते हैं, तो हम यथार्थ आर्य बन जाते हैं। यह नहीं कि आज हम वेद की पोथी को जान कर ही आर्य बनेगें, परन्तु वेद के एक मन्त्र को जानने वाला भी यथार्थ आर्य बन सकता है। जैसे मेरे आदि ऋषियों ने कहा कि जब तुम एक ही वेदमन्त्र के आधार से चलोगे, तो उस काल में यह चारों वेदों की पोथी तुम्हारे समझ आ जाएगी। जब मनुष्य पहली प्रणाली को जान जाता है किहमारी परंपरा क्या है तो उसे आगे सब कुछ ज्ञात हो जाता है जैसे एक मनुष्य मार्ग में जा रहा है और जब वह प्रारम्भ में ही मार्ग को विचार लेता है, तो आगे चलकर उसे मार्ग मिल

ही जाता है। इसी प्रकार आज हमें उस मार्ग की आकृतियों को, सभी को धारण कर लेना चाहिए उसके पश्चात् उस मार्ग में आगे बढ़ना चाहिए। जब उस मार्ग में आगे बढेंगे, तो यह समय आ जाएगा, कि हम उस मार्ग को अवश्य प्राप्त कर सकेंगे, जिस मार्ग के लिए हम संसार में आए हैं।

मिथ्या उच्चारण से दोष

पूज्य महानन्द जीः गुरुदेव मैं आपसे एक वाक्य और जानना चाहता हूँ कि आप ! प्रत्येक स्थान में यथार्थ को बड़ा महत्व देते हैं, परन्तु मैं यह भी जानना चाहता हूँ, कि यदि यथार्थ में यदि मिथ्या उच्चारण हो जाएं, तो उसका क्या करें? क्या यर्थाथ ही मानव का कल्याण कर देता है या यथार्थ और मिथ्या दोनों मिलकर मनुष्य का कल्याण कर देते हैं।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्यअरे ....., इस मूर्खानन्द के वाक्य स्वीकार करो, भाई महामूर्ख ! के यह आदेश।महानन्द जी तुम यह वाक्य तो न जाने कहाँ से ले आते हो, जिनका कोई उत्तर ही नहीं बन पाता।

पूज्य महानन्द जीः भगवन्हमें आता है !, कि आप इसका उत्तर अवश्य दे सकेंगे।

पूज्यपाद गुरुदेवः महानन्द जी हमारी आर्यों की परम्परा तो इसमें यह कह रही है कि ! यथार्थ ही उच्चारण करना चाहिए। यथार्थ उच्चारण करने से मानव की वाणी अमोघ हो जाती है। रहा यह वाक्य कि मानव डूबता किस स्थान में है तो बेटा जैसे एक नौका ! जा रही है, तो किस स्थान में शान्त होती है, जब मध्यम में पहुंच जाती है। इसी प्रकार जब मनुष्य दूसरों को नष्ट करने के लिए, कष्ट देने के लिए, मिथ्यावादी बनता है तो यह अवश्य है कि यह मिथ्या उस मानव का विनाश अवश्य करा देगी। जब मनुष्य यथार्थ उच्चारण करता है तो प्रारम्भ में तो उसे कष्ट होता है, नाना प्रकार की आपत्तियां आती है, परन्तु एक समय वह आता है, कि वह संसार का सूर्य बन जाता है। उसकी वाणी में अमोघता आ जाती है, रही यह वार्त्ता कि जैसा अभी तुमने कहा है, कि उस मिथ्या उच्चारण करने से मानव को किसी प्रकार की हानि नहीं, जिससे दूसरों को कष्ट

न हो। बेटाहमारा अन्तःकरण कह देता है !, जैसा आज हम मिथ्या उच्चारण कर रहे हैं, कि हम सूर्य लोक में पहुंचे और वहाँ हमने एक पार्थिव व्यक्ति देखा। इस मिथ्या से दूसरों को कष्ट नहीं है, परन्तु वह ऐसा मिथ्या है कि मनुष्य के आत्मा बल को शान्त करने वाला है। रही यह वार्त्ता कि मिथ्या उच्चारण करने से हम उदर की पूर्ति करते हैं तो इस सम्बन्ध में हमारे आचार्यों ने कहा है कि उदर की पूर्ति करने के लिए मनुष्य को यथार्थ का पालन करना है। यथार्थ उच्चारण करता है, तो यह अनिवार्य है कि प्रारम्भ में तो कष्ट होता है और मिथ्या से उदर की पूर्ति करने में प्रारम्भ में तो आनन्द है, परन्तु अन्तिम उसका बड़ा ही किलष्ट है, वह विनाश को प्राप्त कराने वाला है। जैसे आज हमें मिथ्यावादी पदार्थों में लग करके, अपने जीवन का सौभाग्य मनाते जा रहे हैं तो उस मिथ्या से प्रारम्भ में आनन्द है, जैसा मैने अभी कहा है कि मैंने सूर्य लोक को देखा है और वहाँ एक पार्थिव मनुष्य देखा, तो उससे बेटाप्रारम्भ में आनन !्द है, कि तेरी प्रशंसा हो और मनुष्य तुझे कहें कि तू सूर्य लोक में पहुंच चुका है। परन्तु यह प्रारम्भ का आनन्द है। अंत उसका क्या होता है, कि जब श्रवण करने वाला निर्णय पर पहुंचता है और यह वाक्य को मिथ्या उच्चारण करता है, तो वह मनुष्य उस मनुष्य की दृष्टि से गिर जाता है। वह विनाशता को पहुंच जाता है। इसलिए वह मिथ्या भी नहीं उच्चारण करना चाहिए, जिससे किसी को भी कष्ट न हो। उसका अपना अन्तःकरण कहता है कि यह मिथ्या है। कोई मनुष्य कहता है कि मैंने पृथ्वी को देखा है, पृथ्वी की नाना आकृतियां हैं। समुद्र को देखा है और उसके निचले भाग को देखा है परन्तु देखा तो है नहीं, तो उस मिथ्या से दूसरों को कष्ट तो नहीं, परन्तु उसका आत्मा कहता है, अन्तरात्मा कहता है कि अरे, क्यों मिथ्या उच्चारण कर रहा है, तो यह क्या है? वह दूसरों को कष्ट देने वाला मिथ्या नहीं है, परन्तु वह मानव के आत्मिक बल को शान्त करने वाला मिथ्या है। इसलिए मिथ्या नहीं उच्चारण करना चाहिए यथार्थता पर पहुंचना चाहिए।

आज जो मनुष्य कहता है कि मैं मिथ्या उच्चारण करके दूसरे प्राणियों की रक्षा करूं, तो वह मिथ्या क्या है? जैसे एक मानव राजा के दण्ड से समाप्त होने जा रहा है, और एक मनुष्य के मिथ्या उच्चारण से उसके प्राणों की रक्षा होती है, तो वह मिथ्या क्या है?

उसका उत्तर यह है कि उसे राज्य से दण्ड मिला है, तेरे मिथ्या उच्चारण करने से उसके प्राण बचते हैं, तो राज्य दण्ड कौन भोगेगा? उसे भोगना अवश्य है। आज नहीं भोगेगा, तो इसके पश्चात् भोगेगा। परन्तु तुम मिथ्या उच्चारण करके, अपने आत्मिक बल को क्यों शान्त बना रहे हो। इस सम्बन्ध में हम नाना युक्तियां दे सकते हैं, मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से भी प्रश्न किए थे, कि क्या मिथ्या उच्चारण करके हमें दूसरे प्राणी की रक्षा करनी चाहिए, तो उन्होंने कहा था कि यथार्थ को पान करने वाला, यदि यथार्थ उच्चारण करता है, तो वह प्राणी को बचा सकता है। परन्तु मिथ्या उच्चारण करके मनुष्य मनुष्य को किसी प्रकार से नहीं बचा सकता, किसी प्रकार उसके प्राणों की रक्षा नहीं कर सकता क्योंकि जब हम मिथ्या मनुष्य हैं, और राज्य दण्ड से उसे भोग मिला है और मिथ्या उच्चारणा करने से वह दण्ड से बच गया है, परन्तु जब वह उसके सम्पर्क में आएगा तो दोनों को अभिमान हो जाएगा। उसको तो यह अभिमान हो जाएगा, कि इसने मुझे बचाया है, और उसको यह अभिमान होगा, कि मेरी वाणी में इतना बल है, कि मैंने इसके प्राणों की रक्षा की है। अभिमान मनुष्य को नष्ट भ्रष्ट करा देता है। हमारे आर्यों ने कहा है, देव ऋषि नारद जैसे ऋषियों ने कहा है, कि जो मिथ्या हमें अभिमान के आँगन में पहुंचा दे वह मिथ्या भी अकल्याणदायक है।

पूज्य महानन्द जीः भगवन्यह भ !ी जैसा आपने अभी अभी कहा है, कि मिथ्या नहीं उच्चारण करना चाहिए, तो यह मिथ्या परमात्मा ने बनाया ही क्यों है?

पूज्यपाद गुरुदेव महानन्द जीपरमात्मा ने यह नहीं बनाया !, इसमें मनुष्य की भी तो रचना है। परमात्मा ने तो सब कुछ यथार्थ रचाया है, परन्तु यह मनुष्य नवीन सृष्टि रचाता है। नवीन सृष्टि की, यह मिथ्या भी एक धारणा है। जैसा मैंने आज से पूर्व काल में कहा था कि मनुष्य नवीन सृष्टि रचता है, कि यह मेरी माता है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरी पुत्री है, यह मेरा पुत्र है। यह इस प्रकार नाना प्रकार की रचना रचता रहता है, इस प्रकार का संकल्प करता रहता है, कि जिसका न आदि है, न अन्त है। आज मैं उस मनुष्य से प्रश्न करने जा रहा हूँ, कि अरे, इनमे जो आत्मा बैठा हुआ है, वह आत्मा किसका पुत्र है, पुत्री है या पौत्र है, वह क्या है? आत्मा तो एक रस है, वह न

तो किसी की पुत्री है, और न किसी का पुत्र है, वह तो केवल अपने परमपिता परमात्मा का ही पुत्र है, वह किसी मनुष्य का पुत्र नहीं है। परन्तु यह नवीन कल्पना है, यह नवीन सृष्टि है। बेटाजब मनुष्य नवीन सृष्टि रचता है !, तो मिथ्या भी उसमें एक नवीन सृष्टि है।

पूज्य महानन्द जीः तो भगवन्परमात्मा ने मन !ुष्य को ऐसी बुद्धि क्यों दी, जो नवीन सृष्टि रचाई?

पूज्यपाद गुरुदेवः महानन्द जीइसका उत्तर यह है !, कि परमात्मा ने जो यह सृष्टि रचाई है, वह कर्म क्षेत्र हैं। कर्म क्षेत्र में जो मनुष्य आया है, वह कर्म करने के लिए आया है, परन्तु यह कर्म को त्याग करके अकर्म में लग जाता है। परमात्मा को त्याग देता है। परमात्मा के अधीन हो करके, जो कर्म करता है, वह यथार्थ कर्म करता चला जाता है, और जब यह प्रकृति के आवेशों में चला जाता है, तो यह नवीन सृष्टि रचाने लगता है।

पूज्य महानन्द जीः भगवन्मैं यही तो प्रश्न कर रहा था !, कि परमात्मा इन्हें प्रकृति के आवेशों में आने ही न देता। बेटापरमात्मा ने ऐसा कहाँ ! ऐसा किया। यह तो महान अपने विचारों से आता है। इसके अंतःकरण में जो विचार हैं, उन विचारों से यह सब वार्त्ता आती है। भगवन् वह जो अन्तःकरण है उसमें परमात्मा ऐसी बुद्धि देता है कि ! यथार्थ ही यथार्थ को स्थापित करता और मिथ्या इसमें एक भी न होता। तब तो परमात्मा की महानता भी मानी जातीं, इसमें क्या महानता है कि मनुष्य एक नवीन सृष्टि रचता रहता है।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य परमात्मा की महानता तुम्हें प्रकट नहीं होती। जो नेत्रों !बेटा..... से ह ीन होते हैं, उन्हें प्रकट नहीं होती, जैसे तुम। परमात्मा की महानता तो उन्हीं को प्राप्त होती है, जो परमात्मा के विज्ञान को जानते हैं, और उस मार्ग को चलते हैं। उस मार्ग पर चलने मात्र से, मनुष्य को ज्ञात होता है, कि जिस मिथ्या पदार्थ में तू लगा हुआ था, वह वास्तव में व्यर्थ है। बेटाइसका उत्तर यह भी है !, कि जीव कर्म करने में स्वतंत्र है, परन्तु भोगने में परतन्त्र है इसलिए स्वतन्त्र होने के नाते, यह सब कुछ नवीन सृष्टि रचता है। यह परमात्मा के आँगन में जाने के लिए स्वतन्त्र है, बेटा तुम्हारे प्रश्न !

का उत्तर।

पूज्य महानन्द जीः चलो भगवन्आपके वाक्य को स्वीकार किए लेते हैं !, परन्तु हमारी वार्त्ता कुछ अधूरी ही रह रही है, कल हम आपसे कुछ और प्रश्न करेंगे।

पूज्यपाद गुरुदेवः अच्छा बेटा कल का कल देखा जाएगा। !

तो मुनिवरोंदेखो !,हम महानन्द जी के प्रश्नों के उत्तर देने ल !गे। आज हम इस विचारधारा पर पहुंचे कि हमारा आर्यत्व क्या है? हमारे आर्यों का व्यवहार कितना सुन्दर था, उस पर हमें विचार करना चाहिए। मैं गौरव के सहित कह सकता हूँ, कि आर्य बनना है, तो भगवान् राम जैसा आर्य बनों, आर्य बनना है तो भगवान श्रीकृष्ण जैसा, अर्जुन जैसे आर्य बनो, जिन्होंने संसार का उत्थान किया है। यदि आर्य बनना है, तो आज तुम यथार्थ आर्य बनो। आहार और व्यवहारों को ऊँचा बनाओ। आज आर्य उन्हीं को नहीं कहा जाता जो आर्य अपनी रसना के आनन्द में अपनी मानता को शान्त करते चले जा रहे हैं। उन्हें आर्य मत कहो और न वह आर्य हैं। वह अनार्य हैं। वह अपने मार्ग से बहुत दूरी चले गएं हैं, पतित हो चुके हैं जो अपनी रसना के आनन्द में दूसरों को कष्ट देते हैं, वह मनुष्य नहीं, वह अमनुष्य कहलाते हैं।

महात्मा नानक

आज मैं इतना गौरव के साथ कह सकता हूँ, जैसा मुझे महानन्द जी ने एक समय निर्णय कराया था, महात्मा नानक वह महान् आत्मा थी, जिन्होंने संसार का उत्थान किया, धर्म की रक्षा की। परन्तु आज उनके अनुयायी उनके मार्ग से बहुत दूर चले गएं हैं। आज उनके अनुयायी तो दूसरों का अपमान करना जानते हैं परन्तु अपने को ऊँचा बनाना नहीं जानते। परन्तु आज उन्हें ऊँचा बनना है अपने क्षत्रियपन को अपनाना है और ऊँचा बनकर के चलना है। अपनी रसना के आनन्द में नहीं जाना है, परन्तु अपने बल की रक्षा करनी है।

यह आज का हमारा आदेश। अब समय मिलेगा, तो वाक्य कल प्रकट किए जाएंगे। हमारा वाक्य प्रारम्भ हो रहा था, कि हमें आर्यों पर विचार करना चाहिए। आर्यों का

आहार और व्यवहार कितना पवित्र होता है जिनमें दूसरों की निंदा न हो, जो दूसरों का अपमान नहीं करने वाले हों, गम्भीरता पूर्वक यथार्था का पालन करने वाले और यथार्थ का उपदेश देने वाले हों, उनको हम आर्य कहते हैं। एक समय वह आता है कि वह पवित्र होकर करके, इस संसार सागर से पार हो जाते हैं। अब हमारा यह वाक्य समाप्त होने वाला है, कि कल समय मिलेगा, तो शेष वार्त्ताए कल होंगी। अब वेदों का कुछ पाठ होगा, इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त।

३ 03 10 1964 पुष्प 12 अहिंसा परमोधर्म

जीते रहो, देखो, मुनिवरों अभी अभी हमारा कुछ वेद मन्त्रों का पाठ प्रारम्भ हो रहा ! था। आज तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, जिस वेद ध्वनि से हमने वेद पाठ किया। बेटा ! आज तो कुछ वाक्य उच्चारण करने का समय नहीं, आज तो अपने कर्मों में उन फलों को जो किसी समय में किया गया था, भोगा जा रहा है। कोई समय था, जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत प्रोत होता था और जिस समय यह वेद ध्वनि अन्तरिक्ष में रमण करती थी, तो मार्ग में विचरण करने वाले मृगराज भी इन वेद मन्त्रों को पान करते थे। एक समय मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि भगवन् यह ! मृगराज आपके चरणों में क्यों है, तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक ही उत्तर दिया था कि मेरे हृदय में अहिंसा परमोधर्म है। जब मेरे द्वारा किसी को नष्ट करने की भावना नहीं आती, तो किसी में मुझे आहार कर ने की भावना क्यों आ जाएं। तो आज का हमारा यह वेद पाठ निर्भयता का पाठ देता चला जा रहा था।

अहिंसा परमोधर्मी विचार

आज मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव की कुछ चर्चाएं प्रकट की कि मार्ग में विचरण करने वाले मृगराज और पक्षिगण मौन रहते थे । इसका मूल कारण था, कि जो मानव वेद का प्रसारण करता है, प्रत्येक प्राणी के लिए कल्याण की भावना उसके अन्तःकरण में होती है। जब अन्तःकरण में संसार के प्राणी मात्र के लिए कल्याण की भावना होती है, तो उस समय उस महान आत्मा के वेद गान को मृगराज क्या, पक्षिगण क्या, सब ही उस वाणी के लिए लालायित रहते थे। मूल कारण क्या कि उनका हृदय इतना उदार

और पवित्र था और उनके हृदय में इतना ओज और तेज था कि मृगराज को भी अपने अधीन बना लिया करते थे।

तो मेरे भोले आचार्यजनोंआज का हमारा वेद पाठ क्या क्या कह रहा था !। मैं संक्षेप से वार्त्ता प्रकट करता चला जाऊंगा। इतना समय नहीं कि विस्तार से इन वेद मन्त्रों को प्रकट कराए। आज के वेदमन्त्र का मूल क्या था कि संसार में अहिंसा परमोधर्म का पालन करना चाहिए। जब संसार में मानव अहिंसा परमोधर्म का पालन करता है तो पवित्र होता चला जाता है जो मानव दूसरे जीवों को भक्षण करने वाला होता है उसका अन्तःकरण कदापि भी पवित्र नहीं बन सकता। मानव में अहिंसा परमोधर्म की भावना होनी चाहिए।

अहिंसा परमोधर्म किसे कहते हैं इसको जान लेना चाहिए। अहिंसा परमोधर्म आत्मिक बल को कहते हैं। शुद्ध आहार और व्यवहार को कहतें हैं कटुता को नष्ट करने को इन सभी को विचारने को हमारे यहाँ अहिंसा परमोधर्म कहते हैं। आगे राष्ट्र का भी इसी से निर्माण होता है। अहिंसा परमोधर्म का केवल यही अभिप्राय नहीं, कि कोई द्वितीय राष्ट्र का द्रोही है, राष्ट्र पर आक्रमण हो रहा है और अहिंसा परमोधर्म को धारण किए विराजमान है। इसे अहिंसा परमोधर्म नहीं कहते। वेद ने कहा है, अहिंसा वरतेति कच्चि विश्वम् भवेनीति यजताः। रुढ़िते घृणाः वाचन्योति दूरश्चते नष्टो भ्रष्टति गच्छता क्षत्रे द्रोहणाः। यदि राष्ट्र पर किसी प्रकार का आक्रमण हो रहा हो तो राजा के लिए अहिंसा परमोधर्म और है और ब्राह्मण के लिए अहिंसा परमोधर्म और है, भिन् भिन्न प्रकार की संज्ञा वेद ने कही है। राजा को अहिंसा परमोधर्म का पालन करना चाहिए, शुद्ध पवित्र उसका आहार होना चाहिए, राष्ट्र में सदाचार और शुद्ध आहार व्यवहार का नियम बना देना चाहिए जिससे किसी भी जीव का भक्षण नहीं होना चाहिए, यदि उसकी सीमा पर या राष्ट्र द्रोही हो, तो उसे गदा सहित नष्ट कर देना चाहिए, यही उसका सदाचार, यही उसकी संस्कृति और यही उसके लिए अहिंसा परमोधर्म है।

आज हम अहिंसा परमोधर्म इसे नहीं कहते कि आज अपने आहार व्यवहारों में, चरित्रता में सूक्ष्मता है उन पर नाना प्रकार का आक्रमण हो रहा है, इसको शान्ति नहीं कहते।

शान्ति उसे कहते हैं, जब मानव की आत्मा में और राजा के राष्ट्र में रहने वाली प्रजा में शान्ति हो। जब राष्ट्र की प्रजा के हृदय में शान्ति होती है तो यथार्थ है कि उसके राष्ट्र में शान्ति है और स्वयं उसमें शान्ति होती है। यह है राजा का अहिंसा परमोधर्म। प्रजा को चिन्ता किन कारणों से रहती है? प्रजा को चिन्ताएं उस काल में होती है जब मानव अपने जीवन को स्वार्थी बना लेता है। जहाँ भी मार्ग में जाता है वहीं स्वार्थ को आगे लेकर चलता है तो निश्चित है कि तीन जन्मों में भी उसको शान्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी क्योंकि उनके हृदयों में स्वार्थ है, ग्लानियाँ भरी हुई हैं, उनके अन्तःकरण में दूसरों को नष्ट करने की भावनाएं रहती हैं, वह प्रजा कदापि भी नहीं पनपा करती है। जब प्रजा में ऐसी भावनाएं रहती हैं, तो वह भावनाएं राजा तक जाती हैं, राजा का अन्तःकरण भी इसी प्रकार का बन जाता है क्योंकि राजा के द्वारा जैसी वासना होती है, भिन्न भिन्न चर्चाएं जाती हैं तो राज्य का भी विचार उसी प्रकार का बनता हैं। यदि राजा के द्वारा ब्राह्मण की अनुमति जाएं, ब्राह्मण उस नीति को प्रसार करने वाला हो तो मुनिवरों ! यह निश्चित है कि वह राजा सदाचारी और ब्राह्मण की अनुमति के अनुकूल कार्य ही करता चला जाएगा। परन्तु यहाँ आवश्यकता है अमूल्य वेद के प्रकाश की और अमूल्य वेद के पंडितों की जो संसार के ज्ञान और विज्ञान का राजा को ज्ञान कराते चले जाएं।

त्याग के अभाव में अशान्ति

आज का हमारा आदेश राष्ट्र के लिए ही नहीं उच्चारण कर रहा है और भी कुछ उच्चारण कर रहा था। यह तो मैंने राष्ट्र की कुछ संक्षेप चर्चाएं प्रकट की हैं कि राष्ट्र का क्या कर्म हो जाता है, प्रजा का क्या कर्म हो जाता है। अशान्ति का क्या कारण है कि मानव के हृदयों में त्याग की भावना नहीं रहती। यहाँ त्याग भावनाओं का बड़ा मूल्य माना गया है। हमारे वेद के आचार्यों ने सबसे प्रथम त्याग भावनाओं को माना है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत प्रोत होकर के देखा कि उनके द्वारा कितनी त्याग की भावना थी। संसार के लिए कितना कार्य करते थे। नित्य प्रति कुछ न कुछ धार्मिकता और आत्मिकता संसार को प्रसार किया करते थे। यह उनका कर्त्तव्य था। वास्तव में जो भी मानव संसार में आता है वह अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाने के लिय आता

है और यदि उस का अन्तःकरण पवित्र हो करके द्वितीय उसके अन्तःकरण से कोई लाभ प्राप्त करना चाहता है तो करना चाहिए। उससे मानव के हृदय में एक उज्ज्वलता आती है।
देखो, मुनिवरों आज के वेद पाठ में केवल राष्ट्र की ही चर्चा नहीं थी माता का भी ! बड़ा सुन्दर वर्णन आ रहा था। आज के वेद पाठ में एक मन्त्र आया कि मातुस्तुती दुर्गो अव्रहेः आ प्राणी गृहस्थी विश्वम् भवनेति अश्वताः अन्तःभावनश्चति विश्वेन देवम् भवनेति अश्वताः वेदज्ञ ज्योति ज्ञानम् मम्तेनी अन्तः कृश्वताः वेद ने एक वाक्य कहा था कि हे माता तेरा जीवन संसार में बड़ा पवित्र है। तेरे जीवन में एक उज्ज्वलता है। !तू आज अपने जीवन को महान से महान बना सकती है। आज तुझे पुनः से उस महानता को लाना है।
आज से पूर्व काल में मैंने एक वाक्य कहा था। अब भी पुनः से उस वाक्य को उच्चारण करना चाहता हूँ। मुनिवरों महाराजा वशिष्ठ जी ने कहा था कि वेद के अनुकूल माताओं ! को संसार में अपने पुत्रों को पवित्र बनाना है। उनके गर्भस्थल से जो उत्पन्न होने वाली सम्पत्ति है मानो पुत्र है, पुत्रियां हैं उन्हें सबसे प्रथम पवित्र बनाना है। उनके अन्तःकरण में उन भावनाओं को प्रविष्ट कर देना है जिनके द्वारा उनका जीवन सूर्य तुल्य, प्रकाशमान हो। मुनिवरों !हे मेरे भद्र मण्डल !मैंने एक वाक्य कहा था कि हे मेरी भोली माताओं ! संसार में कीड़े उत्पन्न !ऋषि मण्डल !मेरे प्यारेन करो, परन्तु वीर उत्पन्न करो। संसार में यदि जीवन चाहते हो, राष्ट्र चाहते हो, धर्म चाहते हो तो वीर उत्पन्न करो और कैसे वीर? भगवान् राम जैसे वीर, धर्मज्ञ, भगवान् कृष्णा जैसे धर्मज्ञ। यहाँ शिव जैसों को उत्पन्न कर दो, यदि आज पुनः से संसार में स्वर्ग लाना हो तो । आज तुम्हारा यह राष्ट्र, संसार स्वर्गमय होता चला जाएगा। पुनः से विचार लेना चाहिए। मेरे यह वाक्य कुछ कटुता में प्रयोग होते चले जा रहे हैं परन्तु मैं कटुता में नहीं मधुरता में वेद के अमूल्य आदेश का कुछ प्रदर्शन करता जा रहा हूँ।
हे मेरे आचर्यजनोंसंसार मे !ं अपने जीवन को पवित्र बनाना है, तो अपने जीवन की जितनी सम्पत्ति है, जितनी उज्ज्वल भावनाएं हैं किसी को अर्पित कर दो, तुम्हारा जीवन

भी पवित्र बनता चला जाएगा।

महर्षि अत्रि

मुनिवरों आज हम क्या उच्चारण करने लगे। मैं माताओं के सम्बन्ध में चर्चा करने लगा। ! देखो, यहाँ बहुत पुनःकाल में सुरधति नाम के ब्राह्मण हुए। उनकी देवी का नाम सुर्धगनि था, उसको गायत्री भी कहते थे। वह नित्य प्रति गायत्री मन्त्रों का पठन पाठन किया करती थी। पठन पाठन करते हुए ब्राह्मण बुद्धिमान हुआ, तो बुद्धिमानों ने उनके नामों का परिवर्तन कर उनका नाम रेवध अभ्भूत ऋषि रखा। रेवध ब्राह्मण उनको उच्चारण करने लगे। रेवेभवो वचतम्रेवेभवो ब्राह्मणाः अश्चति। जो रेवध अमृता !, जो अनुसंधान करने वाला हो, अपने जीवन को वेदज्ञ स्वरूप में रमण करने वाला हो, उसको मुनिवरों ! वेदज्ञ गृहाः वाचनोति ब्रह्मणे उसको सोमधीर और रेधनी आसीन नामों से पुकारा जाता है। मैं इस विषय में अधिक प्रकरण नहीं लेना चाहता।

मुनिवरोंउनकी जो धर्म देवी पत्नी थी !, उसको गायत्री भी कहते थे। कुछ समय के पश्चात् उनके गर्भ से एक बालक उत्पन्न हुआ। उस बालक के हृदय में बड़ा सौन्दर्य था। माता पिता ने उस बालक का नाम अत्रि नियुक्त कर दिया। वह बालक सुन्दर था, कोमल था, पूर्व जन्म के उज्ज्वल संसार लेकर के माता के गर्भ से उन्होंने जन्म लिया। उसका क्या कर्म रहता था, कि वह न तो कोई वाक्य उच्चारण करता था और मग्न रहता था। ऋषि ने कहा कि देवीमुझे ऐसा प्रतीत होता है !, जैसे यह बालक मूर्ख है। किसी किसी काम में इसे कम्पन भी होती है। इसे मैं रूग्ण दृष्टिपात करता हूँ। इसलिए तू बड़ी पापनी है, जो तेरे गर्भ से यह महापापी बालक उत्पन्न हुआ है। माता क्या कह सकती थी, वह तो अपने पुत्र को जन्म ही प्राप्त करा सकती थी और जिस समय वह बालक गर्भस्थल में था, माता ने उस समय गायत्री छन्दों का पाठ करते हुए इस महान बालक को जन्म दिया। जिस समय उस बालक की सात वर्ष की अवस्था हुई, वह बालक अपने गृह को त्यागकर एक सुंदर सा आसन लेकर के गंगा के किनारे जा करके तपस्वी जा बने। उनका जीवन तपस्या में लीन हो गया और ब्राह्मण ने क्या किया, उसने अपनी पत्नी गायत्री को जीवन भर के लिए दुहाग की स्थिति में परणित

कर दिया और यह कहा कि हे देवीतू कलंकनी है !, तूने मेरे गृह को कलंकित कर दिया है, तेरे गर्भ से यह महान मूर्ख बालक उत्पन्न हुआ और गृह को त्याग गया। ब्राह्मण ने बालक के पवित्र जीवन को दृष्टिपात नहीं किया।

मुनिवरोंवह बालक गंगा के उच्च किनारे पर परमात्मा का चिन्तन !, गायत्री छन्दों का चिन्तन करता था। पूर्व जन्म के महान योगी थे। कुछ समय के पश्चात् उनके हृदय की जो ग्रन्थि थी, वह स्पष्ट हो गई, उन्हें ब्रह्म ज्ञान जो पुनः था, वही प्राप्त हो गया। जिस समय उनकी सोलह वर्ष की अवस्था हुई, उसने सोचा कि मैं माता के दर्शनपान करूंगा। वह वहाँ से बहते हुए, उस स्थान पर पहुंचे जहाँ माता भागनी कलंकनी थी। उस माता के द्वार आएं। माता ने अपने बालक को जान लिया, कि यही मेरा बालक है। माता ने कहा कि अरे, बालकअरे !, अत्रेतू बड़ा ही पापी है। माता क्यों !? मातश्चति विश्वम् भवने कलंकता, तेरे पिता ने मुझे जीवन भर के लिए दुहाग दे दिया और यह कहा कि तेरे गर्भ से यह मूर्ख बालक हुआ है, इसलिए तू कलंकनी है, तू महापापनी है, ब्राह्मणी नहीं है, तू किसी जन्म की महान राक्षसनी है। इन शब्दों का प्रयोग तेरे पिता ने किया है।

तो बालक अत्रि ने उत्तर दिया कि माता हे मातश्चति सुपुत्रा मना अश्चचेः देवम् ! तू मेरे पिता का पूजन नहीं करती। यदि तू मेरे पिता का !हिरणयोति गच्चताः हे माता पूजन करने वाली बन जाएं और यदि वह तुझे अपना ले, तो हे माता तू सदा के लिए सुहागनी बन जाएं। परन्तु तूने कल्पित पिता को अपनाया है। माता यदि तूझे अपनाना है, तो मेरे वास्तविक पिता को अपना ले, जिसने यह संसार रचाया है। आज तू उस पिता को अपना, जिससे तेरा आत्मिक और मानसिक कल्याण हो करके तू सदा उसकी गोद में सुहागिनी बनी रहे।

माताओं द्वारा यजन

तो मेरे भोले आचार्य जनोंआज मैं क्या उच्चारण कर रहा था। यह उस बालक अ !त्रि का कथन है। माता को सुन्दर आदेश दिया, कि जिसका सर्वस्व जीवन यज्ञों में रमण करता था, आत्मा का यजन करता था, नाना प्रकार के विचारों का यजन करता था।

बालक अत्रि ने एक वाक्य और कहा था कि मातासंसार में प्रत्येक व्यक्ति कहता है !, मैं यजन करता हूँ, यज्ञशाला में नाना प्रकार की सामग्री की आहुति देता हूँ, परन्तु हे मेरी प्यारी मातामैंने अब तक यह अनुभव किया है !, कि वास्तव में यज्ञशाला में सामग्री को कोई स्थापित करता ही नही । यदि माता यज्ञशाला में कोई सुगन्धिदायक सामग्री की आहुति देता है, तो हे मेरी भोली माता वह कदापि भी सांसारिक प्राणी नहीं ! बनता। वह पारलौकिक प्राणी बन जाता है और एक समय वह उस यज्ञ में रमण करता है, जहाँ देवताओं का और महान आत्माओं का यजन होता रहता है।

मुनिवरोंयह कैसे माना जाएं। बालक अ !त्रि ने कहा कि माता मैं आत्मा में यजन करता हूँ। मेरी आत्मा की जो अग्नि है, उसमें माता, मैं नित्य प्रति आहुति देता हूँ और किन की आहुति देता हूँ? नाना प्रकार के जो विकार होते हैं, उन सबकी आत्मा के मुखारबिन्द में आहुति अर्पित कर देता हूँ। आत्मा उसे ग्रहण करती है और वह ज्ञान रूपी अग्नि, मेरे जो नाना विकारों की आहुति बनी हुई है, उसे भस्म कर देती है और भस्म करके मेरा हृदय निर्मल और पवित्र बन जाता है।

तो मेरे भोले आचार्यजनोंआज हमें विचार लेना चाहिए !, कि हमें संसार में यजन भी करना है। परन्तु यज्ञ किसे कहते हैं? आज यदि मेरी भोली माता यज्ञ करना चाहती है, तो अपने गर्भस्थलों से उन बालकों को उत्पन्न करे, जैसे बालक अत्रि था, बालक नचिकेता था, उद्दालक थे, महर्षि सोमपान थे, महर्षि गरूड़ थे, महर्षि कागा थे, मारकन्डेय, ऋषि वशिष्ठ और विश्वामित्र, अगस्त्य और विभान्डक आदि नाना प्रकार के ऋषि थे। उनका जीवन संसार में शिरोमणि माना जाता है। इतनी जब चर्चाएं स्मरण आती हैं, तो हृदय गद् गद् हो जाता हैं।

बालक नचिकेता की चर्चा जब स्मरण आती है तो हृदय और भी पवित्र होता चला जाता है। बालक नचिकेता का हृदय कितना उज्ज्वल था। आज मेरी भोली माताओं को उन भावनाओं को देना है, अपने प्यारे पुत्रों को जिन भावनाओं से माता का गर्भस्थल पवित्र होता चला जाएं। माता का गर्भाशय उसी काल में सफल होता है, जब गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक संसार में सूर्य की भांति प्रकाशमान हो। यदि किसी बालक ने

माता के गर्भ से जन्म लिया और कीड़े की भांति ही क्रीड़ा करने लगा, तो माता का गर्भ सफलता को प्राप्त नहीं होता। वह तो ऐसा ही जन्म लिया, न लिया, उससे कोई लाभ नहीं। आज यहाँ जन्म देना है, तो ऐसे महान व्यक्तियों को जन्म देना है, जिससे उन माताओं का हृदय, माताओं की जो उज्ज्वलता है वह सूर्य और चन्द्र की क्रान्ति के तुल्य संसार और अन्तरिक्ष में रमण करती रहे।

मुनिवरों एक नहीं मुझे नाना प्रकार के प्रमाण स्मरण आते हैं। कल का भी मुझे कुछ ! प्रकरण लेना है केवल यह लौकिक वार्त्ताएं ही प्रकट नहीं करनी हैं, आज वेद के सम्बन्ध में भी कुछ, जो कल का वाक्य था, उसको भी कुछ देना है। वाक्य यह चल रहा था, बालक अत्रि का प्रमाण देने का। वाक्यों का अभिप्राय यह था कि बालक अत्रि का जीवन कितना पवित्र था। जब पिता ने यह श्रवण किया, कि मेरा बालक तो इतना उज्ज्वल है, कि संसार उसका पूजन करता है, तो पिता ने उसे अपनाना चाहा और कहा, पुत्रवते ब्रह्मणे अश्चति गृहणी अश्चति आज तू मेरे गृह में आ जा, तुम ब्रह्म बालक हो। उस समय उसने कहा प्रभु हे पित्तरो भवतेनि मैं आपकी आज्ञा को स्वीकार कर सकता ! हूँ, परन्तु तुमने मेरी माता को मेरे ही कारण कलंकनी बनाया, आज मैं ऐसा कारण नहीं बनाना चाहता, कि कल को तुम मुझे ब्रह्मपुत्र कह करके ठुकरा दो, क्योंकि पितये भवेत्तो निश्चती स्वार्थम भवते जब मानव के हृदय में स्वार्थ आ जाता है, तो वह न तो पुत्र को ही स्वीकार करता है न पत्नी को। वह जीवन के प्रत्येक साथी को ठुकरा सकता है। हे पिता तुम्हारे हृदय में स्वार्थ भावना आ गई है। यदि स्वार्थ भावना न आती तो ! अपने जीवन साथी को कलंकनी न उच्चारण करते। यह तो दोनों ही गृह अश्वपति प्रवश्चम भवेतती कायाः भाग्यम भवतेनी यह दोनों का भाग्य होता है, कि पुत्र या पुत्री सौभाग्यनी और विचित्र हो, अन्यथा मूर्ख हो। दोनों का भाग्य निर्णीत होता है। पिता ने बहुत कुछ कहा और बालक ने गृह में प्रवेश किया। वह बालक अत्रि मुनि के नाम से पुकारा जाता था, जिसका जीवन संसार में अग्रगएय माना जाता है। ऋषि मुनियों की प्रणाली में उनकी गणना की जाती है। तो आज हमें विचार लेना है।

मुनिवरोंएक समय महर्षि लोमश मुनि गरु !ड़ मुनि महाराज से बोले यह गरुड़ भाव

तुम में कहाँ से आया। गरुड़ तुम्हें क्यों कहते हैं? उस समय उन्होंने उत्तर दिया, गरूड़ भवतति अश्चताः मुझे गरुड़ ही कहते हैं। मैं वह गरुड़ कहलाता हूँ तो गरुड़ सांपों को निगल जाता है। वैसों को ही गरुड़ नहीं कहते। मैंने सर्प रूपी जो यह मन है, इसको निगल लिया है। इसलिए मुझे सब गरुड़ नाम से पुकारते हैं। तो मेरे भोले आचार्यजनों ! आज हमें प्रत्येक वाक्य को विचार लेना चाहिए। उज्वल से उज्वल जो पद्धति है, उसे भी हमें विचार लेना चाहिए कि हम कहाँ हैं और किस प्रणाली में चले जा रहे हैं और क्या हमारी रूप रेखा है, किस वाक्य को प्रकट करना है।

हमारे वाक्यों को उच्चारण करने का क्या अभिप्राय था, कि हमारे यहाँ पुरातन काल में भिन्न भिन्न प्रकार की उपाधि होती थी। नारद वह कहलाता है जो मन मन्नति। हमारे यहाँ वेदाचार्यों ने इस नारद की कई प्रकार की व्याख्या की है। नारद मन को भी कहते हैं, नारद परमात्मा को भी कहते हैं, नारद नाम के ऋषि भी हुए। प्राणवाची शब्दों में इनको चुनौती दी जाती है। आज यहाँ नारद किसे कहते हैं? हमारे यहाँ परम्परा से नारद एक उपाधि मानी जाती है जो आत्मिक तत्त्ववेत्ता बन करके, अपनी स्थिति इस प्रकार बना लेता है जैसे मन बहुत चंचल होता है, इसी प्रकार अपनी प्रवृत्तियों को बना लेता है, कि उसका आत्मा अब यहाँ विचारण कर रहा है, कि कुछ समय हुआ, वहाँ जब इस प्रकार की आकृति जिस योगी की हो जाती है उसको नारद नाम से पुकारा जाता है। कहते हैं, नारद तो विष्णु लोक में भी रमण करता है और नारद मृत्यु लोक में रमण करते हैं, और स्वर्ग में भी जाते हैं और नारद नारकिक भी बन रहे हैं। यहाँ इस प्रकार की वार्त्ताएं आती हैं। अब हमें इसका क्या प्रकरण ले लेना चाहिए? देखो, मानव शान्त विराजमान है, किसी बुद्धिमान की वार्त्ताएं स्वीकार कर रहा है, उस समय मन कहाँ रहता है? बेटाउसके विचारों में और यदि देखो !, वह स्वर्ग की कल्पना आती हैं, तो मन वहाँ पहुंच जाता है। कहीं भगवान विष्णु के राष्ट्र में रमण करता है। कहीं यह मन नाना पापाचारों में रमण करता है, तो इसी का नाम हमारे यहाँ नारकिक माना जाता है। मुनि नारद उसे कहते हैं, जिसका आत्मा पवित्र हो, संसार में विचरण करने वाला और दूसरों का कल्याण के लिए हो। नारद अपने जीवन में ज्ञान और

विचार में इतना प्रगतिशील होता है कि वह अपनी आत्मा को आज सूर्य लोक में रमण करा रहा है तो द्वितीय काल में चन्द्र लोक में, एक क्षण समय हुआ तो ध्रुव लोक में रमण कर रहा हैं तो जिसका आत्मा लोक लोकान्तर में रमण करने वाला हो, उसको नारद नाम की उपाधि प्रदान की जाती है।

मुनिवरोंआज नारद का तो कोई प्रकरण ही नहीं था। परन्तु क्या कर !ें, बेटा जब ! ज्ञान के उस भयंकर वन में चले जाते हैं, तो भिन्न भिन्न प्रकार की वार्त्ता उत्पन्न होती रहती है, परन्तु समय इतना रहता नहीं, कि इतनी वार्त्ता प्रकट करते चले जाएं। कल हमारा संक्षेप वाक्य ब्रह्म के सम्बन्ध में उच्चारण किया जा रहा था।

पूज्य महानन्द जीः गुरुदेव सृष्टि प्रारम्भ होने के सम्बन्ध में हमारे यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार के विचार हैं। कुछ सिद्धान्तवादी यह मानते हैं, कि प्रकृति में अंकुर रहते हैं और वह आत्मा जब प्रकृति और परमात्मा के मध्य में महत् में रमण होती है, तो उस समय वह स्वयं इस प्रकृति से उत्पन्न हो जाते हैं और युवा होते है, वह पुरूष होते हैं, देवकन्याएं भी होती हैं और उनसे यह संसार चलता है। तो दो प्रकार के विचार माने जाते हैं। कुछ ऐसा कहते हैं कि आदि ब्रह्म हुए और ब्रह्म के कुछ पुत्र हुए। कुछ पुत्रियां हुई और उनसे इसी प्रकार संस्कार होते हुए, संसार का विस्तार होता चला गया। इसमें आपके क्या मत है?

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य इसका उत्तर तो किसी काल में आ भी चुका है। यह !बेटा ..... वाक्य तो विस्तार का है, कोई काल आएगा जब प्रकट करेंगे। यह वाक्य तो नहीं, कि आज ही इसका उत्तर दे दिया जाएं बेटा इसके लिए समय चाहिए। !

पूज्य महानन्द जीः भगवन्आज हमको कहीं जाना नहीं तो समय को क्या !? इतनी उत्तम रात्रि है आप उच्चारण करते चले जाओ।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्यमैं तो पूर्व ही तुम्हें मूर्ख कहता हूँ !बेटा ....., क्योंकि जितने भी वाक्य सब मूर्खो वाले। बेटा प्रत्येक वाक्य का समय होता है और समय के अनुकूल !

वाक्य प्रारम्भ किया जाता है।

पूज्य महानन्द जीः अच्छा तो कल का विषय !

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारेमहानन्द जी आज कुछ प्रश्न करते चले जा रहे थे !, इनका प्रश्न यह कि हमारे यहाँ दो प्रकार की चर्चाएं मानी जाती हैं, दो नहीं, परन्तु कई प्रकार की मानी जाती हैं। कुछ कहते हैं कि सृष्टि के प्रारम्भ में, जब सृष्टि का प्रारम्भ हुआ, तो उस समय शिव ने ब्रह्मा विष्णु दोनों को सृष्टि रचना के लिए उद्यत किया और ऐसा माना जाता है कि भगवती ने ब्रह्मा इत्यादियों को उत्पन्न किया, उससे यह संसार चलने लगा। कुछ ऐसा मानते हैं कि आदि सृष्टि में ब्रह्मा हुए और ब्रह्मा के कुछ पुत्र हुए, मरीचि नाम के अनन्य पुत्र हुए और उनसे संसार चलने लगा। आगे कुछ ऐसा मनाते हैं, कि जैसे एक विलंग होती है और बेल पर जैसे फल आता है और वह परिपक्व हो करके स्वयं उससे पृथक हो जाता है और जैसे माता के गर्भस्थल में बालक है, जिसका माता की जो स्वांग नाम की पश्चम नाड़ी है, उसका सम्बन्ध बालक की नाभि से रहता है और गर्भाशय परिपक्व होने पर वह सम्बन्ध छूट जाता है, इसी प्रकार कुछ ऐसा मानते हैं कि सृष्टि के प्रारम्भ में प्रत्येक देव कन्या और प्रत्येक मानव का सम्बन्ध प्रकृति रूपी नाभि से, इनका सम्बन्ध रहा और युवा अवस्था में सब उत्पन्न हो गएं जैसे वृष्टि होती है और वृष्टि से नाना प्रकार के जीव प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं। वृष्टि हुई और वृष्टि से मानो नाना परमाणुओं की रूप रेखा परिवर्तन हुई, उनका कुछ सूक्ष्म रूप बना और प्रकृति से उसका मिलान हुआ, अग्नि उसमें विद्युत के नाम से रमण करती है, इन सबका मिलान हो करके नाना प्रकार के प्राणी जैसे क्रीड़ा करने वाले पृथ्वी पर उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार नाना प्रकार का मत माना जाता है, इसका उत्तर समय मिलेगा, तो किसी काल में दिया जाएगा। आज इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा।

पूज्य महानन्द जीः भगवन इस वाक्य को कुछ संक्षेप में ले लेना। !

पूज्यपाद गुरुदेवः नहीं बेटायह विस्तार का वाक्य है !, संक्षेप में लेने से कोई लाभ नहीं।

पूज्य महानन्द जीः तो भगवन्यहाँ लाभ के लिए कोई वाक्य उच्चारण किया जा !ए,

तो संक्षेप से वही लाभ प्राप्त हो जाता है।

पूज्यपाद गुरुदेवः बेटायह किसी काल का विषय है प्रकट करेंगे !, वेद का पाठ आएगा तो कुछ चर्चाएं आएंगी और इसका उत्तर दे सकेंगे।

तो मुनिवरोंअभी ! अभी महानन्द जी इसमें कुछ उच्चारण करते चले जा रहे थे, कि इसका संक्षेप में उत्तर दिया जाएं परन्तु अब इतना समय नहीं, परन्तु हम इस प्रकरण को अवश्य लगे, किसी न किसी काल में। समय आता रहेगा, इसका उत्तर देते रहेंगे। ज्ञान और विज्ञान से भरा हुआ बेटा वेदमन्त्र है !और नाना अनुभव ऋषि मुनियों से होते रहते हैं, वेदवाणी से प्राप्त होते रहते हैं। जो जो प्रकरण आएगा, लेते रहेंगे। आज इसका उत्तर नहीं दे सकेंगे।

महर्षि पणिनी

वाक्य यह चल रहा था कि कल हम पाणिनी ऋषि महाराज के सम्बन्ध में कुछ वाक्य उच्चारण कर रहे थे। महर्षि पणिनी जी के विषय में ऐसा कुछ कहा जाता है, कि महाराज शिव ने डमरू बजाया और उस डमरू में से जो ध्वनि निकली उसे उन्होंने ! एकत्रित किया और उससे व्याकरण की उत्पत्ति हुई, हमने इसे और रूपों में प्रकट किया, जो वास्तविकता थी। महर्षि पाणिनि जी महाराज ने व्याकरण का सुन्दर रूपों में जो प्रतिपादन किया। उन्होंने यह वाक्य कहाँ से लिए, ध्वनि कहाँ से ली, तो सब यौगिक विषय माने जाते हैं, इस यौगिक विषय में आज हम अधिक नहीं जाना चाहते। कल मैंने संक्षेप से यह वर्णन किया था कि सृष्टि के आदि में ब्रह्मा हुए, जो महान प्रजापति कहे जाते थे, क्योंकि उन्होंने अपने को जाना और जान करके उस प्रणाली को जाना, जिस यौगिक प्रणाली से स्वरों को जाना जाता है, हमारे शरीर में परमात्मा ने जब माता के गर्भ में इसे रचा तो 72, 7210, नाड़ियां से हमारे शरीर को 202 परणित किया है। इन सब नाड़ियों का समूह होते हुए, इन सब नाड़ियों का सम्बन्ध मस्तिष्क से रहता है, मानो देखो, उदर से, घ्राण से सम्बन्ध होता हुआ, वह ब्रह्मरन्ध्र से माना जाता है, जिसको हम मस्तिष्क कहते हैं, लघु मस्तिष्क कहते हैं, उसमें यह सभी वाक्य परणित होते हैं। जब मानव योगाभ्यास करता है, तो अपने मानसिकता के ऊँचे

शिखर पर जाता है, तो उसका मानसिकत्व कितना पवित्र बन जाता है। मैं तो यह भी कहा करता हूँ, कि पाणिनि महाराज ने जिन रूपों से व्याकरण का प्रतिपादन किया है, वह बहुत ही सुन्दर माना जाता है। परन्तु महर्षि पाणिनि, जो बहुत सूक्ष्म समय हुआ, तब हुए। परन्तु मैं आदि की चर्चा करता चला जा रहा हूँ। आदि में इस विद्या का विकास, इन अक्षरों का विकास कैसे हुआ, किसने किया?

ओ३म् की ध्वनि

मुनिवरोंआदि ब्रह्मा ने जैसा कल भी मैंने कुछ प्रकाश दिया !सुनो !, कि इन सबका जो विकास होता है, वह ओ३म् से होता है, जो परमात्मा का मुख्य नाम उच्चारण किया करते हैं। प्रत्येक वेदमन्त्र ओ३म् रूपी धागे से पिरोए हैं, जैसे मुनिवरों एक मनकों की ! माला होती है, वह धागे से पिरोई गई होती है और इसके पश्चात् वह माला कहलाती है। हमारे यहाँ एक विशेषज्ञ वाक्य और माना जाता है कि प्रत्येक वेद के प्रारम्भ में ओ३म् की ध्वनि होती है, प्रत्येक वेद के मन्त्र में ओ३म् को उच्चारण किया जाता है, इसका क्या कारण है? मैंने अपने ऋषियों से इस वाक्य को लिया। आदि आचार्यों का इसमें यह मत है, कि जितने अक्षर उस वेद मन्त्रों में होते हैं, उन सब का निकास ओ३म् से होता है और वह कैसे होता है? देखो, प्रत्येक अक्षर को ले लो, अ को ले लो, ओ३म् से बनता है उसको इस प्रकार न ले करके, उसकी मात्रा ली जाएं, तो वह और रूपों से अक्षर बन जाता है। परन्तु वह ओ३म् ही की शाखा मानी जाती है। जितने अक्षर होते हैं, वह सब अक्षर ओ३म् रूपी धागे से पिरोए हुए होते हैं, उन्हीं में उनका सम्बन्ध होता है। जैसा मैंने कल के वाक्यों में भी कहा था, कि यह जो संस्कृत है, वेदवाणी है, इसका सम्बन्ध प्रत्येक भाषाओं से रहता है, क्योंकि जैसा मैंने अभी कहा है, कि प्रत्येक वेदमन्त्र का जो मिलान है, वह ओ३म् से रहता है, क्योंकि ओ३म् से अक्षरों का निकास होता है और जिन अक्षरों का निकास होता है, वह वेदमन्त्रों में विराजमान है। उन अक्षरों की श्रंखला का नाम वेदमन्त्र माना जाता है उन्ही अक्षरों का संकलन जब मात्राओं में कटिबद्ध कर देते हैं, तो वह एक वेद ऋचा बन जाती है। परन्तु उस वेद ऋचा का जो सम्बन्ध है, वह मूल से अवश्य रहता है, जैसे एक वृक्ष है परन्तु

उसका मूल है जड़ और यदि जड़ का सम्बन्ध अलग हो जाता है, तो उस वृक्ष का संसार में कुछ नहीं बनता, इसी प्रकार यह जो ओ३म् है, यह एक प्रकार का जड़ माना गया है और यह जितना वेदमन्त्र है, ऋचाएं हैं यह सब उसकी शाखा मानी जाती है।

तो आज हम उच्चारण कर रहे थे कि इसको कैसे जाना जाता है। मुनिवरोंदेखो !, हमारे मस्तिष्क में एक त्रिकट नाम की नाड़ी होती है, और एक जटत नाम की नाड़ी होती है और एक सुभांग नाम की नाड़ी होती है। इन तीनों नाड़ियों का जो मिलान है, वह ओ३म् जैसा आकार होता है, परन्तु जो योगी होते हैं, वह जानते हैं कि योगाभ्यास में जब हम जाते हैं, तो वह जो तीन प्रकार की नाड़ी हैं, वह एक प्रकार का चक्र सा होता है और जब प्रकृति और प्राण का इन नाड़ियों से मिलान होता है, , तो नाड़ी एक प्रकार से अपनी परिधि को त्याग करके, दूसरी परिधि में परणित हो जाती है और परणित होने से उसका ओ३म् जैसा आकार होता है और ओ३म् रूपी जैसा आकार हो करके, उन तीनों नाड़ियों का सम्बन्ध देखो, एक करोड़ नाड़ियों से होता है और उन एक करोड़ नाड़ियों से सम्बन्ध हो करके, वह नाड़ियां आपस में मिलान करती हैं और वह जो मिलान करती हैं, वह प्राण और आत्मा की सहायता से करती हैं और जब उनका मिलान होता है, तो उनमें से एक ध्वनि उत्पन्न होती है, उस ध्वनि को जो जानता है, वह व्याकरण में पारंगत कहलाता है। उन ध्वनियों को जानना, हमारे यहाँ व्याकरण का, एक विशेषज्ञ ज्ञाता कहलाता है। हमारे ऋषि मुनियों ने वेद मन्त्रों की ध्वनि को जाना और वेद मन्त्रों को एकत्रित किया, परन्तु एकत्रित तो उच्चारण वहीं करना चाहिए, यह परमात्मा का वेदज्ञ ज्ञान माना जाता है।

परमात्मा का ज्ञान वेद

हमारे यहाँ वेद को परमात्मा का ज्ञान क्यों कहते हैं? मुनिवरोंइसलिए कहते ह !ैं क्योंकि यह प्रत्येक संसार की भाषाएं परिवर्तनशील हो जाती हैं, परन्तु वेद का वाक्य परिवर्तन नहीं होता, यह अखण्ड रहता है संसार में क्योंकि इसका मिलान ओ३म् से रहता है और जितनी भाषाएं होती हैं उनका मिलान जड़ से न रह करके परिवर्तनशील कहलाते हैं। उनका मिलान ओ३म् से सूक्ष्म हो जाता है, इसी प्रकार आज मानव को

विचार लेना चाहिए, कि जिस मानव का मिलान, उस परमपिता परमात्मा से रहता है, उसका जीवन अग्रगण्य होता है और जिसका सम्बन्ध उससे छूट जाता है, दूर हो जाता है उतना ही परिवर्तनशील बनता रहता है।
तो मेरे भोले आचार्य जनो !आज मैंने कुछ आध्यात्मिक विज्ञान की चर्चाएं की, परन्तु यह हमारा वैज्ञानिक संबंधित वाक्य है। प्रश्न यहाँ यह उत्पन्न होता है, कि जब ओ३म् परमात्मा का मुख्य नाम माना जाता है, तो नाड़ियों का ओ३म् रूपी जैसा सम्बन्ध क्यों? मुनिवरोंजब मानव योग ! ध्यान में जाता है, ध्यान योग में रमण किया जाता है, तो वह ज्योति को ध्यान करता है, वह ज्योति में रमण करता है और वह जो ज्योति है, उस ज्योति में जैसा भी तुम आकार देखो, वही आकार तुम्हें प्रत्यक्ष होने लगते है उसका कारण यह है कि वह ज्योति है, उस ज्योति में प्राण और आत्मा दोनों का सम्बन्ध होने से जो भी दृश्य तुम अनुभव करोगे, वही ज्योति अनुभव में आएगा। क्यों आएगा? उसका कारण यह है, कि उस ज्योति का सम्बन्ध प्रकृति से भी है, उस ज्योति का सम्बन्ध प्राणों से है, परन्तु दोनों से होने से आज तुम उसमें ओ३म् का आकार देखना चाहते हो, तो तुम्हें ओ३म् का आकार प्रतीत होने लगता है, वह जो नाड़ियों का सम्बन्ध है, वह तुम्हें प्रत्यक्ष होने लगता है, और यदि तुम प्रकृति के आवेशों में और प्रकृति की ज्योति को जानना चाहते हो, तो जो किसी काल में हमने वस्तु देखी है, दृष्टिपात की है, उच्च स्थान दिया, वह ज्योति में अनुभव होने लगेगा। उसका मुख्य कारण यह है कि यदि हम प्राणों को ऊर्ध्व गति में ले जाना चाहते हैं और ऊर्ध्वा गति हो जाती है, तो उस समय हमें ओ३म् का आकार प्रत्यक्ष हो जाता है और यदि हमें प्रकृति के आवेशों में और कोई ऐसा ठग मिल जाता है, कि वह कहता है, कि मैं योगी हूँ, समाधि तुम्हें परणित कराता हूँ, वह प्रकृति के नाना प्रकार के प्रकाश को उच्चारण करता है, वही आकार हमें प्रत्यक्ष होने लगते हैं, क्योंकि उस ज्योति का सम्बन्ध प्रकृति से है और महत् प्राण से और प्राण का सम्बन्ध परमपिता परमात्मा से है। परमात्मा से होते हुए वह ओ३म् के आकार वाली नाड़ी है, वह ज्योति में प्रत्यक्ष होती है, उन नाड़ियों का सम्बन्ध प्रत्येक नाड़ी से होता है, जितनी शरीर में नाड़ी होती है, मस्तिष्क में, लघु

मस्तिष्क में होती है, सब नाड़ियों से उसका मिलान रहता है और मिलान रहने से बेटाउस समय संसार ! का ज्ञान और विज्ञान सब इस मस्तिष्क में ओत प्रोत हो जाता है।

पूज्य महानन्द जीः ‘धन्य हो भगवन् !

पूज्यपाद गुरुदेवः तो मुनिवरोंआज हमें अधिक वाक्य नहीं उच्चारण करना है !, यह वाक्य मुझे समाप्त भी करना है, यह उच्चारण कर रहे थे, कि आज हमें प्रत्येक वाक्य को विचार कर लेना चाहिए। मैंने कल यह भी प्रकाश दिया था, कि यहाँ महत् नाम शिव का है और पार्वती नाम प्रकृति का है। जब यह महत् आता है संसार में, तो इसका प्रकृति से मिलान होता है तो यह प्रकृति नाचने लगती है अपनी परिधि में। प्रगतिशील हो करके संसार लोक लोकान्तर, मानव का जीवन सब ही इससे उत्पन्न हो जाता है। यह वह मेरी भोली माता है, जिस भोली माता का पूजन आज हमें करना है। यह वह भोली माता है, जिसे हमें पार्वती कहते हैं, जिसे हम प्रकृति कहते हैं। हमें प्रकृति का भी पूजन करना चाहिए, परन्तु हमें प्रकृति के पूजन में लिप्त नहीं हो जाना चाहिए। हमें वह जो प्रकृति का स्वामी शिव है, उसकी पूजा करके, उसके राष्ट्र में रमण करना चाहिए।

तो बेटा यह आज का हमारा आदेश समाप्त होने जा रहा है। विषय तो बहुत विशाल ! है, परन्तु समय आज्ञा नहीं दे रहा है। आज के हमारे आदेशों का अभिप्राय यह था, कि हमें अपने मानसिक भावनाओं को और अपने विचारों को अहिंसा परमो धर्मः में परणित कर देना है, हमें अपनी विचार धारा को ऊँचे से ऊँचे शिखर पर पहुंचा देना है। अब समय मिलेगा, तो महानन्द जी के प्रश्नों पर, इसके पश्चात् कुछ विचार किया जाएगा। अब हमारा यह आदेश समाप्त होने जा रहा है, कल समय मिलेगा, तो शेष चर्चाएं कल होंगी। अब वेद का पाठ होगा, इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त। गीताभवन जम्मू में दिया गया(

४ 24 04 1965 पुष्प 10 जीवन में ओ३म्

जीते रहो, देखो, मुनिवरोंअभी ! अभी हमारा कुछ वेद मन्त्रों का पाठ चल रहा था। ये

भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज पुनः से जिन वेदों का पाठ किया। हमने आज से पूर्व कई स्थलों में वर्णन कराया है कि इस समय हमारी श्रृंगकेतु मुनि संहिता का पाठ प्रारम्भ हो रहा है, जिस संहिता में परमात्मा का विज्ञान है, जिसमें मानव जीवन का सुन्दर रूपों में वर्णन किया गया है। एक वेद की ऋचा में संसार के ज्ञान और विज्ञान की महिमा ओत प्रोत है।

ऋचा

वह ऋचायें क्या हैं? वह ऋचा हमें कहाँ मिलती हैं और वह क्या वस्तु है? हमारे ऋषि मुनियों का तो परम्परागतों से यह कथन चला आया है, कि वेद में नाना प्रकार के मन्त्र हैं। उन्हीं वेंद मन्त्रों को हम ऋचा रूपों से प्रकट कर देते हैं। जैसे गायत्री है, हम माँ गायत्री को भी ऋचा रूप से पान किया करते हैं। माँ गायत्री हमें उदारता और उज्ज्वलता प्रकट कराने वाला है। यदि हम माँ गायत्री को ऋचा कह दे, तो यह हमारे लिए असम्भव न होगा, क्योंकि वेद की प्रत्येक ऋचा को हम गायत्री कह सकते हैं। प्रत्येक वेदमन्त्र में वही परमात्मा का विज्ञान आ जाता है, इसलिए हम वेदमन्त्र को गायत्री और छन्द रूप से पुकारा करते हैं। जो गाया जाता है, उसे गायत्री कहते हैं।

एक समय मेरे प्यारेमहानन्द जी ने मुझे संकेत कराया !, कि आधुनिक समाज तो यह कहता है कि पूर्व संसार में सब असभ्य व्यक्ति रहते थे। आज हम विकासदायक बन गएं हैं, वैज्ञानिक बन गईं है नाना प्रकार के मन्त्रों को जाना जाता है, परन्तु मैं आज इस बात का विशेष प्रमाण देना चाहता हूँ, परमात्मा को साक्षी करते हुए, कि यदि हम इस निर्णय पर जाते हैं, कि संसार में सूर्य के उत्पन्न होने से पूर्व प्रकाश आया है संसार में। इससे तुम्हें जानकारी हो जाएगी, कि जब परमात्मा संसार का विधान बनाता है, तो संसार के विधान में सबसे पूर्व प्रकाश आता है, कम्पन्नता आती है और उस कम्पन्नता और प्रकाश के पश्चात् अंधकार आता है। यदि प्रकाश न होता, तो अन्धकार कोई वस्तु नहीं। इससे हमें प्रतीत होता है, कि यदि सृष्टि के प्रारम्भ में जो व्यक्ति या महर्षि उत्पन्न हुआ, वह सभ्य और विशेषज्ञ होगा, औरों को अग्रित करने वाला होगा। आज हमें उन

वस्तुओं को विचार लेना चाहिए, जिन वस्तुओं से वास्तव में हमें ज्ञान प्राप्त होता है, और जिस एक ही वाक्य में हमें प्रतीत होता है कि यह जो वेद रूपी ज्योति है, यह अमूल्य वस्तु है, उसी के जीवन में प्रकाश रहा है, जिसने इस ज्योति को अपने में धारण किया है, उसी अमूल्य ज्योति को हमारे यहाँ ऋचा रूप में पुकारा जाता है। ऋचेति ऋचंचता वह जो ऋचा है, वह ऋचेति है वह मानव के जीवन को मथन करने वाली है। हमें पूर्व आधारित विचार विनिमय करना चाहिए कि हम अपने जीवन को कितना मन्थन वाला बना सकते हैं।

ब्रह्मा

सबसे पूर्व अंगिरा ऋषि महाराज के शिष्य अथर्व हुए। उन्होंने यहाँ एक महानता को लाने का प्रयत्न किया और महर्षि अंगिरा ऋषि के कुकरेतु ऋषि महाराज थे जिनसे देखो, कुकरेता संहिता भी विराजमान है। आगे चल करके वायु मुनि महाराज और आदित्य मुनि महाराज के जो शिष्य थे, वह महर्षि पिप्पलाद थे। महर्षि पिप्पलाद के जो बाबा थे उनकी भी विश्वांतित संहिता विराजमान है। आगे समय आता रहा, आदि आचार्य उनमें संशोधन करते चले आए । मुझे यह गम्भीर वाक्य तो नहीं करना, मैं तो केवल तुम्हें वाक्य निर्णय दे रहा हूँ, जो किसी काल में मेरे प्यारे महानन्द जी ने ! प्रश्न किए थे, यहाँ अग्नि, आदित्य, वायु और अंगिरा इन चारों ऋषियों के चार शिष्य माने जाते थे। सृष्टि के आदि में ही यदि कोई गुरु हुआ तो ब्रह्मा हुए। ब्रह्मा को गुरु क्यों कहते हैं, इन्हीं चारों ऋषियों को गुरु क्यों नहीं मान लिया जाता? इसका कारण यह है कि सबसे पूर्व चारों वेदों का यदि कोई मन्थन करने वाला हुआ, तो वह एक ब्रह्मा हुआ। इसलिए सभी ने ब्रह्मा को अपने गुरु की चुनौती दी है। हमारे यहाँ वही गुरु परम्परा अब तक चली आ रही है। अब से लेकर के लगभग एक अरब से अधिक समय हो चुका है, अब आदि ब्रह्मा हुए और वह ब्रह्मा उपाधि अब तक चली आ रही है। आधुनिक काल का मुझे विशेष ज्ञान नहीं, परन्तु मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे ! वर्णन कराया है कि आज भी यज्ञशाला में ब्रह्मा को चुनौती दी जाती है। यह क्या है?

यह उसी परम्परागत के आधार से आज भी यज्ञ में ब्रह्मा बनाएं जाते हैं।

चित्त पटल

मेरे प्यारेमहानन्द जी ने मुझे एक समय वर्णन कराया !, कि कुछ काल के पश्चात् आज ऐसा कुछ काल आया, जब ब्रह्मा, उद्गाता, वेद पाठी तो बनाएं जाते थे, ब्रह्मा केवल एक कुशा का बनाया जाता था और वह कुशा का ब्रह्मा यज्ञशाला के दक्षिण भाग में विराजमान किया जाता था। उसमें यह था, कि आचार्यों ने सोचा, कि हम ब्रह्मा के योग्य नहीं। यहाँ अधिकारी को चुनौती देनी चाहिए। अधिकार क्या होता है? ब्रह्मा हम किसे कहते हैं? ब्रह्मा उसे कहते हैं, जो चारों वेदों का महान प्रकाण्ड पंडित हो। चारों वेदों के पंडित को भी हम अधिक महानता नहीं देते। हमारे आचार्यों ने कहा है कि हम चारों वेदों के पंडित को भी ब्रह्मा की उपाधि नहीं दिया करते है। चारों वेदों पर ऋग है? साम है, यजुर है? अथर्व है इनको मन्थन करके जो सूक्ष्म रूप बनता है, उससे अपने अन्तःकरण में, अपने चित्त पटल को जिसमें सब विश्व का ब्रह्माण्ड समाहित हो जाता है, उसमें जो मल विक्षेप आवरण होते हैं, उनको शुद्ध और पवित्र करने के नाते, उसे हमारे यहाँ यज्ञशाला में क्या, वह संसार में बह्मा कहलाने का अधिकारी होता है। मैं महानन्द जी के वाक्यों में एक शब्दार्थ और उच्चारण करता चला जाऊं। जैसा इन्होंने मुझे संकेत दिया, कि यज्ञों पर ब्रह्मा चुने जाते हैं। वास्तव में आज मेरा यज्ञ का प्रकरण नहीं है, केवल संक्षेप में चर्चा प्रकट करा रहा हूँ, अब यदि यह आदि ब्रह्मा की उपाधि अब तक चली आ रही है, आज ब्रह्मा चारों वेदों का भी न हो, तो अपने हृदय में जो ऋग है, साम है, यजुर है अथर्व है इनके सूक्ष्म से आश्रम को मनन करने वाला हो। मनन कैसे किया जाता है? कि चारों में, ऋग में, साम में अथर्व में और यजुर में ओ३म् रूपी धागा ओत प्रोत है। उसी ओ३म् रूपी धागे में प्रत्येक वेद की ऋचा के अंतर्गत आ जाती है। कैसे आ जाती है सुनो। हमारा यह हृदय है, इसमें मैंने चित्त पटल का वर्णन किया था । मानो हमारे शरीर में एक चित्त मण्डल होता है, वह प्रकृति के सूक्ष्म तन्मात्राओं का मण्डल होता है, उस सूक्ष्म मण्डल में हम जो भी सूक्ष्म से सूक्ष्म कोई

पाप करते हैं, अपशब्द उच्चारण करते हैं, वही हमारे उस चित्त पटल में अंकित हो जाता है। पुण्य भी वहाँ एकत्रित होते हैं, पाप भी वहाँ अंकित होते हैं और यदि उसी चित्त पटल को शुद्ध और पवित्र बना लेते हैं, मन विक्षेप आवरणों को शान्त कर देते हैं, उन्हें अपनी प्रकाश ज्योति से दमन कर देते हैं, तो यह निश्चित है कि हम जितना यह सूर्य मण्डल है, जितना वह बृहस्पति मण्डल है, जितना ब्रह्माण्ड तुम्हें प्रतीत होता है, यह सब उस चित्त के मण्डल में विराजमान हो जाता है। उसे हम अपने चित्त में अनुभव करने लगते हैं। जिस पृथ्वी पर हम विराजमान हैं, जिस पृथ्वी से हम अन्न भी लेते हैं, खनिज पदार्थ भी लेते हैं, यह पृथ्वी ऐसे चला करती है, जैसे मानो स्वप्न की अवस्था में कोई स्वप्नयत कार्य कर रहा है, स्वप्न को अनुभव कर रहा है। स्वप्न ऐसे अदरूत करता है जैसे प्राणमय प्रकृति में कंपन होता है। जैसे परमात्मा सृष्टि के प्रारम्भ में महत् का प्रकृति से मिलान कराता है। एक दूसरे के जो परमाणु हैं, वह एक दूसरे से सुगठित होते हैं और उनका एक पिण्ड बनता है और महत् का महान आक्रमण होता है, जिससे वह गति करने लगती है और उनमें एक ऐसी कम्पन होती है, कि उनके विभाजन होने अनिवार्य हो जाते हैं, जिनमें चन्द्रलोक, सूर्य मण्डल, बृहस्पति मण्डल और जैसा मैंने कल वर्णन किया था, इसमें नाना मण्डल और नाना लोक लोकान्तर रच जाते हैं, इस सम्बन्ध में मैं आज अधिक चर्चा नहीं करना चाहता, यह सृष्टि का प्रकरण नहीं है। आज तो मैं केवल यह वर्णन कराने जा रहा था, कि हमारे शरीर में इसी प्रकार चित्त पटल हैं। वह जो पिंड है वह जो सूक्ष्म परमाणु सृष्टि के प्रारम्भ में एकत्रित होते हैं, उनके जो सूक्ष्म से सूक्ष्म तन्तव हैं, उनका जो सूक्ष्म रूप है उन्हीं सूक्ष्म रूपों से बना हुआ यह चित्त मण्डल कहलाता है, जिसमें तन्मात्राएँ भी समाहित होती हैं, उनसे यह बसा होता है। उसी में ओ३म् रूपी धागे से वह सब कुछ शुद्ध किया जाता है। मल विक्षेप आवरण को दूर करने के लिए, उनको शान्त करने के लिए क्या करना होगा? हमें ओ३म् रूपी

सत को लेना होगा।

ओ३म् जप से लाभ

जैसा हमने कल कहा था, प्रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्या को ओ३म् का पाठ करना चाहिए, अपने मुखारविन्दों से ओ३म् की ध्वनि होनी चाहिए। मेरे प्यारे महानन्द जी ! संकेत दे रहे हैं, कि आज संसार ने ऐसा माना है, कि हमें ओ३म् का पाठ नहीं करना चाहिए। इसके लिए हमें अधिकारी और अनाधिकारी को विचार लेना चाहिए। ओ३म् का पाठ करने का किसको अधिकार है यह मैं तुम्हें वर्णन कराए देता हूँ। ओ३म् का पाठ वास्तव में प्रत्येक माता को, प्रत्येक भौजाई को, प्रत्येक मानव को करना चाहिए। एक समय भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को एक वाक्य कहा कि हे अर्जुन आज तुम ! किस भ्रम में हो। अरे, कोई कोई तो इस संसार में ज्ञानी होता है और उन ज्ञानियों में भी कोई व्यक्ति ऐसा होता है, जो मेरे परमधाम को जानता है। यहाँ मेरे से अभिप्राय गुरु शिष्य से है। जैसा मैने कई काल में वर्णन कराया है कि गुरु शिष्य के सम्वाद में मैं का प्रयोग किया जाता है। इसलिए हे अर्जुन आज तुम्हें इनका मोह नहीं होना ! चाहिए।यह संसार तो इसी प्रकार प्रगतिशील है इसी प्रकार चलता रहता है । मैं बेटा ! भगवान श्रीकृष्ण के आदेशों पर नहीं जाना चाहता, केवल यह चर्चा चल रही थी, कि ओ३म् का अधिकारी और अनाधिकारी। ओ३म् का अधिकारी वह होता है जो अपने जीवन में अच्छाईओं को लाने का प्रयत्न करता है। वह ओ३म् रूपी शस्त्र को लेता है। जैसे मुझे महानन्द जी ने वर्णन कराया, आज जो व्यक्ति दूसरों को भक्षण करने वाला हो, दूसरों को कष्ट देने वाला हो, जो प्रिय जीवन का भक्त न हो, जिसमें अवगुण हों, उसको ओ३म् का पाठ कदापि लाभदायक नहीं होगा। ओ३म् के शास्त्र को ले करके अच्छाईयों को लाना बहुत अनिवार्य है। उसमें ओर अच्छाईयां आती चली जाएगी, विवेकता आती चली जाएगी। वह अपने गृह को शुद्ध और पवित्र बना सकेगा उसके पुत्र भी उसके जीवन का अनुसरण करते हुए आगे चलकर वह गृह स्वर्ग बन जाता है। इसलिए अधिकारी और अनाधिकारी की जो मैंने विशेष चर्चा की, वह यह है कि ओ३म्

के पाठ के लिए हम एक स्थान में विराजमान होते हैं।

प्रत्येक श्वांस में ओ३म्

आज मुझे महर्षि विश्वामित्र, महर्षि पतंजलि और गुरु वशिष्ठ मुनि महाराज जी की चर्चाएं स्मरण आती हैं और भी नाना ऋषियों की चर्चाएं आती हैं कि ओ३म् का पाठ किस प्रकार करते थे। ओ३म् के पाठ में हमारा एक भी श्वास ओ३म् से दूर नहीं होना चाहिए। जैसे वेद की प्रत्येक ऋचा ओ३म् रूपी धागे से पिरोई होती है, इसी प्रकार जो मानव ओ३म् के जिज्ञासु बनना चाहते हैं, ओ३म् के मार्ग को अपनाना चाहते हैं उसको जानना चाहते हैं कि हमें एक भी श्वास ओ३म् से दूर नहीं जाने देना है, मुझे यहाँ महर्षि अटूटी मुनि महाराज की चर्चा भी स्मरण आती है। महर्षि अटूटी मुनि महाराज की माता ने जब वह बाल्यावस्था में था, एक आदेश दिया, कि पुत्र! यदि तू मेरे गर्भ को ऊँचा बनाना चाहता है, तो तेरा एक श्वास भी ओ३म् से दूर नहीं होना चाहिए। उस बालक ने वही किया, वह गति, प्रत्येक श्वास पर ओ३म् का पाठ करता।

वेद की नाना व्याहृतियों में कहा जाता, वेद के भिन्न भिन्न क्षेत्र में आता है, वेद की भिन्न ऋचाओं में विवरण आता है और वह कितना सुन्दर है, कितना लाभदायक है, उसमें कितनी यौगिकता है, हमें इसी को विचार लेने की आवश्यकता है, और वह क्या है? ओ३म् या ब्रह्मणो ओ 3म्ब्रति विशर आचति विश्यम् मम देवाः चित्तम भवे नेति श्वासम् प्राणाः द्वितीय अश्वतेः प्रजाः।

जैसा देखा यहाँ श्वास पर श्वास चलता है, ऋग् और साम का यह आदेश है, कि ओ३म् से हमें प्रत्येक श्वांस को पिरो देना है। जब हमारा श्वास ओ३म् से बिंधा हुआ होगा और जब वह अन्तरिक्ष में जाएगा, वायु मण्डल में जाएगा, वहीं वह शुद्धता को लेता चला जाएगा। जिस प्राण में दुर्गन्धता होती है, जिस प्राण में मिथलता होती है, जिस प्राण में कोई महानता नहीं होती है, वह वायु में मिश्रत हो करके हमारे वह प्राण न प्रति किस महान् आत्मा को दूषित कर देते हैं।

मुझे महर्षि लोमश के शब्दार्थ स्मरण आ गए, यह तो मैं नहीं कह सकता, कि यह

उनका आत्मिक निर्णय हुआ था, या नहीं, परन्तु उन्होंने ऋषियों की सभा में यह कहा था, कि जो भी मानव, जो भी आत्मिक वेत्ता, ब्रह्मा वेत्ता हो, कोई भी संसार में विचरण करने वाला हो, जो भी संसार में क्रोध करता है, उस क्रोध से मानव की आत्मिक सत्ता इतनी बिखर जाती है, कि उन परमाणुओं को कोई वैज्ञानिक यन्त्रों में एकत्रित कर लेता है, और गृतित नाम के यन्त्र से मानव को छुआ देता है, तो उस एक ब्राह्मण के क्रोध से सहस्रों प्राणियों का हनन हो सकता है। यदि हमें योगी बनना है, ओ३म् के मार्ग को अपनाना है, तो वास्तव में हमें अपने जीवन में इन्द्रियों पर शासन करना होगा। देखो, जब भी तुम्हारा सांसारिक कार्यों से समय मिले, उस काल में तुम्हारा श्वास व्यर्थ नहीं जाना चाहिए। कैसे उच्चारण होना चाहिए, उसकी क्या विधि है, इस सम्बन्ध में मुझे महर्षि वशिष्ठ मुनि का वचन स्मरण आ गया।

मुझे महानन्द ऋषि ने वर्णन कराया कि आधुनिक काल में यह कहते हैं कि सोहंगम् ब्रह्मणे अश्विनाः कि सोहंग का पाठ देना चाहिए। सोहंग जो गुरु मन्त्र है, यह महर्षि वशिष्ठ का था। यह वाक्य तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे यह कोई रूढ़िवादियों का शब्दार्थ हो, क्योंकि इसमें सोहंग शब्द आता है। सोहंगम् ब्रह्मणे वस्तुताः हे परमात्मा ! जो तू है, वही मैं हूँ। मानो देखो, मैं का प्रयोग आता है। यदि इसी रचना को ले करके चलते हैं, तो वास्तव में उत्थान तो हमारा तब भी हो सकता है, परन्तु हमें आगे चलकर नाना प्रकार की विवेहलनाएं, नाना प्रकार की विचार धाराएं अग्रेति और प्रकृति के आँगन में अवश्य आ सकती है और ओ३म् रूपी एक ऐसा धागा है, कि जब श्वास की गति ऊपर को जाती है, तो उस समय ओ३म् का उच्चारण करो ओ३म् अपने मन में रहना चाहिए और जिस समय वायु गति नीचे को नासिका और घ्राण के स्थान में आए, उसी काल में शान्ति का पाठ होना चाहिए। ओ३म् की व्याहृति ऊपर है और नीचे आने वाला श्वांस शान्ति है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि मेरा जो ब्रह्माण्ड है उसमें ओ३म् का

वास है और यह जो मेरे नीचे वाला भाग है, यह हर प्रकार शान्तिदायक है।

ओ३म् रूपी पतिका

आज का संसार शान्ति चाहता है, राजा हो या प्रजा हो, सब शान्ति चाहते हैं। यदि शान्ति को अपनाना है और राजा अपने राज्य में शान्ति चाहता है, तो उसके अपने राष्ट्र में ओ३म् रूपी पताका होनी चाहिए और ओ३म् के पिछले विभागों में शान्ति होती है, क्योंकि शान्ति पीछे चलने वाली होती है और वह पीछे क्यों रहती है? वह इसलिए रहती है, क्योंकि शान्ति होने से पूर्व उस मानव के जो आचरण हैं, उसके जो विचार हैं, वह किसी वस्तु पर केन्द्रित हो जाते हैं। जब विचार एकत्रित हो जाते हैं, एक गोले के तुल्य आ जाते हैं, एक स्थान में केन्द्रित हो करके, उसके पिछले विभाग में शान्ति का पथ आता है। आज का संसार यदि शान्ति को चाहता है, तुझे आज भी महानन्द जी की प्रेरणा है, कि आज का संसार चाहता है कि संग्राम न हो, नाना यन्त्रों का आविष्कार न हो। मैं तो इन वाक्यों का समर्थन करने वाला नहीं, कि शान्ति तभी हो सकती है, आज के संसार में, शान्ति उस काल में आएगी जब सबसे पूर्व समस्त राष्ट्र को एक समाज बनाना होगा और उस समाज में यह अपनाना होगा, कि हम शान्ति कैसे ला सकते हैं। प्रत्येक राष्ट्र में एक महान् पण्डित प्रतिनिधि होना चाहिए और वह महापंडित के भुजों में एक ओ३म् पतिका होनी चाहिए और वह पंडित ब्राह्मण उस सभा में यह प्रसार करने वाला हो, यह उच्चारण करने वाला हो, कि अरे, तुम्हारे सबके राष्ट्र में ओ३म् रूपी पतिका हो और शान्ति तुम्हारे राष्ट्र में स्वतः आती चली जाएगी। यह ओ३म् रूपी पतिका है क्या? ओ३म् रूपी पतिका केवल अक्षरों में नहीं है, यह केवल एक वस्तु पर बद्ध नहीं है, ओ३म् रूपी पतिका वह है, जो देखो, मानव के चित्त पटल पर अंकित हो जाती है। जब मानव आन्तरिक भावनाओं से पतिका बनकर प्रत्यक्षवादी होता है, तो संसार स्वर्ग बन जाता है। आज हम इसको क्यों नहीं अपनाते। यह निश्चित है, कि आज का संसार जब तक इसे नहीं अपनाएगा, तो संसार में शान्ति असम्भव

है।

मुझे ऋषियों से आदेश मिला है, गुरुओं ने मुझे वर्णन कराया है कि जहाँ वह समय था, जब महाराजा दिलीप क्या, महाराजा हरिश्चन्द्र जिनके आगे वह पतिका थी और उसके पश्चात् शांन्ति का प्रतीक था। वह आज कहाँ है? उसे लाने की आवश्यकता हैं, मैं यह भी नहीं कहता, कि संसार में यहाँ ये होना चाहिए, मैं तो यह कहता हूँ, कि यदि एक राष्ट्र भी इसको अपना ले और आगे चलकर के जब उसका समाज, संसार में जहाँ जाता है, वहीं उसका आदर होता है, जहाँ जाता हैं, वही उसके विचारों को अपनाने के लिए उद्यत होते हैं। अच्छे विचारों को कौन नहीं अपनाएगा। परन्तु जब अच्छे विचार आएंगे तो कौन अपनाएगा। परन्तु अच्छे विचार केवल वाणी मात्र से नहीं। अरे, वह तो तुम्हारे द्वारा चित्त मण्डल है, उसके ऊपर जब तक ओ३म् रूपी अक्षर अंकित हो जाते हैं, तो उस समय पवित्रता आती है, शान्ति आती है वास्तविकता आती है, उसी से यहाँ जीवन बनता है।

देवर्षि नारद जी की घोषणा

मुनिवरोंमुझे ऋषि महानन्द जी का संकेत मिलता रहता है। इनका प्रत्येक ! वाक्य बड़ा महत्वपूर्ण होता है, इन्होंने मुझे आधुनिक काल की चर्चाएं कई काल में प्रकट की है। इनके विचारों से यही प्रतीत होता है, कि आज केवल वाणी से ही शान्ति चाहते हैं, नेत्रों से नहीं, शान्ति प्राण चाहते, घ्राण से शान्ति नहीं चाहते, हस्त से शान्ति नहीं चाहते, ग्रीवा से शान्ति नहीं चाहते, उपस्थ इन्द्रियों से शान्ति नहीं चाहते। केवल एक वाणी मात्र के उच्चारण से शान्ति आएगी, तो यह कदापि नहीं आएगी। यह भी आ सकती है, परन्तु जब तुम्हारी वाणी शुद्ध हो। अरे, वाणी से जिसकी तुम कल्पना करते हो, वह कल्पना शान्त हुई, तो उसी वाणी से कुछ और उच्चारण किया जाता है। क्या यह शान्ति जावेगी? अरे, यह एक वाणी भी तो तुम्हारे द्वारा नहीं।

देखो, देवऋषि नारद, महर्षि कुर्कुटी, ऋषि महाराज जब कलियुग का वर्णन कराने लगे, तो देव ऋषि नारद ने एक वाक्य कहा था कि एक काल वह आएगा संसार में, जिसे

कलियुग कहेंगे, जिसमें मानव में न तो नेत्रों की शुद्धता रहेगी, कोई इन्द्रिय सजी हुई न होगी, केवल क्या सजी हुई होगी?वाणी सजी हुई होगी उपस्थ इंद्रियाँ सजी हुई होंगी, केवल दो इन्द्रियों का प्रभाव रहेगा। वाणी में तो नाना भक्षण करने के स्वादिष्ट पदार्थ होंगे, और उपस्थ इंद्रियों से नाना भोग विलासों के साधन होंगे। जैसा ऋषि महानन्द ने आधुनिक काल का वर्णन कराया है, उससे यह प्रत्यक्ष हो चुका है। आज के लाखों वर्ष पूर्व, जो महर्षि नारद अपने शब्दार्थों में अंकित कर चुके थे वह शब्दार्थ आज अशान्तिवादी प्राणियों के समक्ष है।

शान्ति के प्रतीक

मेरे आचार्य जनों आज हम शान्ति के प्रतीक की चर्चा करते चले रहे थे। आज का ! विश्व शान्ति चाहता है। शान्ति भोग विलासों से प्राप्त नहीं होती। अरे, शान्ति तो शुद्ध पवित्र सन्तान को उत्पन्न करने से मिलती है। जीवों को भक्षण करने से नहीं, अरे, यहाँ तो उस काल में शान्ति मिलती हैं। जब मार्ग की जो सुगन्धिदायक औषधियां हैं, सुगन्धिदायक वनस्पतियाँ हैं, उन्हें पान कर करके शान्ति को संगठित किया जाता है। वह समय था, जब महाराजा विश्वामित्र थे, वशिष्ठ थे, अरे, शान्ति का पाठ दिया करते थे। मुझे प्रभु की कृपा से वह समय देखने का सौभाग्य मिला। अरे, वह समय कितना उज्ज्वल होता है, जहाँ गुरु होते हैं। गुरु वशिष्ठ क्या दिया करते थे? ऋषि वशिष्ठ मुनि महाराज एक वर्ष में छह माह तो वनस्पतियों का आहार करते थे। पत्तों का आहार करते थे। अरे, कहाँ वह प्रतीक, जिन्होंने भगवान् श्रीराम को अपने चरणों में विराजमान कराकर विश्व का अश्वपति बनाया और उसने संसार में शान्ति को स्थापित किया। आज उसे क्यों नहीं अपनाया जा रहा है? इसलिए नहीं अपनाया जा रहा है, कि वाणी में कुछ है, कार्य में कुछ है। बाह्य भावना कुछ है और आन्तरिक भावना कुछ और है। संसार में शान्ति लाने का यदि कोई कार्य मार्ग है, तो वह केवल ओ३म् की पतिका है। जैसे मन्त्रालय के भवन के ऊपर ओ३म् पतिका स्थापित की जाती है, तो वह वायु की तरंगों में जैसे समुद्र की तरंगे अपना प्रदर्शन करती है, इसी प्रकार वायु में, वह जो

ओ३म् की पतिका है, वह लहराती है और वह तरंगे रूपी बन करके शान्ति का प्रदर्शन करती है, इसी प्रकार हमारे इस मानव शरीर में शान्ति को यदि लाना, है तो ओ३म् को अपनाना है। हमारे मानव शरीर में कोई तरंगे आए वह सदाचारिता से, ओ३म् रूपी धागे से पिरोई हुई तरंगे आए, वह सदाचारता से, ओ३म् रूपी धागे से पिरोई हुई तरंगे होनी चाहिए। मेरे प्यारे ऋषि मण्डल आज !हम कहाँ जा रहे हैं? इस ओ३म् रूपी धागे को विचार लो। अरे, परमात्मा ने तो ऐसा ज्ञान दिया है, परन्तु वह मानव कितना अभागा है, कि इतने शुद्ध और पवित्र ज्ञान को नहीं विचारता। अरे, मनुष्य उस काल में भी अभागा होता है, जब वह परमात्मा की देन को नहीं विचारता। आज बेटा हम भी ! अभागे बनते चले जा रहे हैं और मेरे महानन्द जी भी अभागे बनते चले जा रहे हैं। परन्तु मैं महानन्द जी पर आक्रमण नहीं कर रहा, कि वह अभागे बन जाएं और न यह अभागे हैं, परन्तु अभागे तो वह बन आते हैं, जो ओ३म् का पाठ नहीं करते। जो ओ३म् रूपी धागे को अपने में धारण नहीं करते, श्वास में नहीं पिरोते।

ओ३म् उच्चारण का विधि विधान

मैंने ओ३म् उच्चारण का विधि विधान अभी उच्चारण किया है और वह यह है, कि यदि ऊपर तुम्हारी व्याहृति रहे, तो ओ३म् रहे और नीचे रहे तो शान्ति। नीचे शान्ति का अभिप्राय क्या है, और ऊपर क्या अभिप्राय है? मुनिवरोंदेखो !, इस संसार मे शान्ति ! होओर ओ३म् उस के ऊपर आगे चलने वाला हो। जिससे मानव को वास्तविक शान्ति प्राप्त होती है। आज यदि कोई राष्ट्र में शान्ति चाहता है, अपनी प्रजा को ऊँचा बनाना चाहता है, उसका राष्ट्रीयकरण करना चाहता है तो राजा को चाहिए कि राजा अपने राष्ट्र में ओ३म् रूपी पतिका को लहराने का कर्त्तव्य करें। सबसे पूर्व उसे राष्ट्र में बुद्धिमानों का एक ऐसा समाज होना चाहिए, जिन बुद्धिमानों में किसी प्रकार का मत न हो। उनके केवल मत यह हो, कि ओ३म् रूपी पतिका हो उनके भुजों में और उनके अंतःकरणों में शान्ति हो और वह संसार को शान्ति का पाठ पढ़ाते चले जाएं। यह समाज राष्ट्र को सुगठित करेंगे। आगे चलकर इसी समाज में नाना राष्ट्रों के पण्डित भी आ सकते हैं।

संसार में इस पतिका का, इस प्रकार प्रसार हो सकता है आज हमें इस पतिका को ले करके चलना है। आगे चलकर हमें अपने जीवन को विकसित बनाना है और इन वाक्यों को त्याग देना है, कि यह वेद कब उत्पन्न हुआ, किस काल में इसका प्रादुर्भाव हुआ और यह वेद ऋषि का काव्य है या यह जो वेद रूपी ऋचाएं हैं यह क्या हैं? इन विचारों पर जाना है, कि जो ऋषि मुनियों ने किया है, वह कितना महत्वदायक है, कितना विचारवान है, हमें तो उसके ऊपर चलना है।

मेरे प्यारेमहानन्द जी का एक संकेत मिला है !, कि क्या ऐसा किसी काल में हुआ भी या अभी करना चाहते हो। परन्तु यह आज का नहीं, यह परमात्मा ऋषि मुनियों का एक सुगठित विचार है और उन विचारों को मैं प्रकट करता चला जा रहा हूँ। जब महाराजा दिलीप थे, उस काल में यह था। राजा दशरथ कुछ भोग विलास में परणित होकर सब कुछ शान्त कर आए थे। भगवान् श्रीराम ने अपनी महान पिताओं की परम्पराओं को ले करके, उसी ओ३म् की पतिका को ले करके, संस्कृति की पतिका को ले करके, सब कुछ किया। कौन से राज्य में शान्ति नहीं थी, जब भगवान राम आतातताईयों को नष्ट करके, सबको विजय करके अयोध्या में आ गए थे, इसी से भगवान राम के जीवन में कोई वास्तविकता मिलती है, उस एक ओ३म् की भक्ति मिलती और धर्म की भक्ति मिलती है। अब इनको अपनाने से हमारा जीवन बनेगा। अच्छाईयों को संसार मानेगा और उन अच्छाईयों का विश्व में प्रसार होगा। परन्तु जब अपनी अच्छाईयों को समझोगे ही नहीं, विचारोगे ही नहीं और अपनी अच्छाईयों को अपने आँगन में नहीं ला सकोगे, तो तुम्हें कौन जानेगा। अरे, कोई नहीं जान सकेगा।

आज हम इन सब आदेशों को, मनु जी की प्रणाली पर प्रकट कराते चले जा रहे थे। आज हमारा ओ३म् के ऊपर शब्दार्थ चल रहा था। ओ३म् का उच्चारण करने का सबको अधिकार है या नही, ओ३म् का उच्चारण करने का अधिकार प्रत्येक मानव और प्रत्येक देव कन्या को है, प्राणी मात्र के लिए है। कल कुछ मेरे प्यारे महानन्द जी उच्चारण ! करेंगे, कि ओ३म् कैसे उच्चारण किया जाता है और कुछ आधुनिक काल की चर्चा प्रकट करेंगे। संक्षेप में चर्चा यह है कि आज के संसार को शान्ति लानी है, मानव में शान्ति

लानी है। मानव हृदय में शान्ति हो, और जितनी भी इंन्द्रियां है, उनके बिखरे हुए विचार प्रगतिशील हों। वह दुर्गुणों में बिखरे हुए नही होने चाहिएं, वह सब विचार अच्छाईयों से परणित होने चाहिए। जैसे परमात्मा इतना उज्ज्वलवल है वह प्रकृति के एक एक कण में, एक एक परमाणु में बसा है, ओत प्रोत है। इसी प्रकार मुनिवरों मानव के शरीर ! में परमात्मा अग्रित है। आज हम उस परमात्मा की प्रार्थना करते हुए, परमात्मा का प्रिय पुजारी बनते हुए, अंत में हमें परमात्मा को सहायक बनाना है और यह विचार करके कि जो कुछ यह परमात्मा ने हमें दिया है, यह मेरा नहीं है, यह किसी काल में परमात्मा ने दिया है और यह काल भी आएगा कि परमात्मा इन सबको हमसे ले लेगा, अपने में धारण कर लेगा। मानव को तो इन विचारों को लेना है। इन विचारों को लेकर के जो व्यक्ति चलता है, जो राष्ट्र चलता है, वही बेटासंसार मे !ं विचित्र होता है। महाराजा हरिश्चंद्र ने क्या किया? बेटातुम्हें स्मरण होगा !, जब महाराजा हरिश्चंद्र को स्वप्न में प्रतीत हो गया, कि यह राष्ट्र मुझे दान में देना है, परन्तु वही स्वप्न उनका पूर्ण हो गया। विश्वामित्र साधु के रूप आ गए और कहा कि यह राष्ट्र मेरा है, मुझे दो। राजा हरिश्चंद्र को जो स्वप्न प्रतीत हुआ था, वह स्वप्न यथार्थ में लेकर सब कुछ दान में दे दिया। उनकी पत्नी ने कहा भगवन्यह आपने क्या किया !? हम तीन ही प्राणी है आप हम और एक पुत्र है, आपने यह क्या किया? उस समय महाराजा हरिश्चंद्र ने कहा कि देवीय !ह शरीर ही हमारा नहीं है, यह राष्ट्र तो इन साधुओं का है, राष्ट्र तो महान आत्माओं का है। राष्ट्र में जितनी अधिक महान आत्माएं होंगी, उतना ही राष्ट्र प्रगतिशील और शान्ति वाला होगा। और देवीहमारे आंतरिक भावनाओं में त्याग भावना होगी !, तो देवीयह राष्ट्र तो हमें ! पुनः प्राप्त हो सकता है, इसकी तुम्हें क्या चिंता है। अपने जीवन में अन्न का अंकुर न मिले, परन्तु वाणी का जो संकल्प है, उसको पूर्ण करने का संकल्प करना है। आज यदि तुम्हें स्वप्न में प्रतीत हो जाए, यथार्थता में उच्चारण कर जाओ, परन्तु वह संकल्प, वह जो तुम्हारे द्वारा वाणी का विचार है, वह पूर्ण होना चाहिए, मन का जो विचार है वह पूर्ण होना चाहिए, परन्तु उस विचार में त्याग और तपस्या का बल होना चाहिए। देवीआज हमें अन्न का अंकुर न मिलें !, आज हम अपने शरीर को

शान्त, परन्तु त्याग में हमारी भावना होनी चाहिए। देवीराजा व !ही होता है, जो राष्ट्र के ऐश्वर्य को त्यागकर भिन्तुक बन जाता है। एक काल राजा का वह आता है, कि वह भिन्तुक बन जाता है देवीआज परमात्मा हमारी प !रीन्ना कर रहा है, जिस परमात्मा ने हमें यह देन दी है। जिस परमात्मा ने यह राष्ट्र दिया है वह परमात्मा आज अपने राष्ट्र को ले रहा है इसका हमें शोक नहीं होना चाहिए। यह राष्ट्र हम मग्न होकर देते चले जा रहे हैं। हे देवी यह जो हमारा शरीर है यह भी परमात्मा की देन है और परमात्मा ! ने त्याग और तपस्या के लिए दिया है। शान्ति के लिए परमात्मा ने दिया है कि इससे तुम आत्मा का उत्थान करो। आत्मा में शान्ति लाने का प्रयत्न करो। देवी एक ! समय वह आएगा कि परमात्मा ने जो यह गृह रूपी शरीर दिया है वह भी परमात्मा हमसे ले लेगा। इसलिए देवी! हमें शोक नहीं होना चाहिए। जो राजा प्रजा के ऐश्वर्य को भोगता है, प्रजा के ऐश्वर्य को लेकर अपने ऐश्वर्य की पूर्ति करता है, नाना प्रकार की राष्ट्र की सुविधाएं होती हैं। हे देवी यदि वह परमात्मा के प्रकोप से या प्रकृति के ! प्रकोप से यदि हमेंभिन्तुक बनाना चाहता है यह संसार ऋषि समाज बनाने के लिए तो मैं उसके लिए उद्यत हूँ। जब हमें यह भावना होगी, तो हमारा राष्ट्र, हमारी मानवता, हमारी आंतरिक भावना क्यों न ऊँची बनेगी, देवी आज हमारे द्वारा यह भावना होनी ! चाहिए। उन्हीं भावनाओं से हमारे जीवन में क्रान्ति आती है और हमारे जीवन में संपन्नता आती है। हमारे जीवन में मानवता आती है, यौगिकता आती है, ऋषिता आती है। एक काल वह आता है कि हमारा आत्मा परमात्मा की गोद में विश्राम करता है।

तो बेटा वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि आज हमें सबसे पूर्व अपनी ! आंतरिक भावनाओं में ओ३म् रूपी धागे से हमारा जो चित्त का मण्डल है वह पिरोया हुआ होना चाहिए। वह नाना प्रकार के पापों से नहीं, नाना प्रकार के विकारों से नहीं, उसमें तो ओ३म् रूपी धागे को समाहित करना है। मुनिवरों ओ३म् को समाहित करते ! चले जाओ, ओ३म् को उच्चारण करते चले जाओ, हमारा जीवन ऊँचा बनता चला जाएगा। उसमें त्याग और तपस्या की भावना होनी चाहिए, यह है आज का हमारा

संक्षेप आदेश।

पूज्य महानन्द जी –धन्य हो, गुरु जी आदेश तो बहुत ही सुंदर।

५ 04 05 1968 पुष्प 10 षोड्ढकला

देखो, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, कि आज हमने पूर्व जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ नित्य प्रति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का पठन पाठन होता है। आज प्रत्येक वाक्य मानवीयता के सम्बन्ध में उच्चारण करते चले जाते हैं क्योंकि मानव का जीवन संसार में इस प्रकार रहता है जैसे रात्रि और दिवस आता रहता है। किसी काल में अंधकार है तो किसी काल उसी प्राणी को प्रकाश होता है। अंधकार और प्रकाश वाला जो संघर्ष का जीवन है वह वास्तव में महानता पर ले जाता है यदि मानव अंधकार और प्रकाश दोनों की संधि कर लेता है। यदि वह मानव संधि नहीं कर पाता तो संसार में मानवता उसके समीप नहीं आती। मेरे आदि ऋषियों ने बहुत सुंदर अपने भिन्न भिन्न विचार दिए है। आज मुझे भी उन ऋषियों के सम्बन्ध में अपने कुछ संक्षिप्त विचार प्रकट करने हैं कि कैसे मानवता ऋषित्व में परिणित होती है जिसके ऊपर मानव विचार विनिमय करता रहता है। प्रायः यह कहा जाता है हम कहीं षोड्ढ कलाओं के सम्बन्ध में, कहीं गो के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार के विचार देते रहते है। देखो, हमारे ही विचार नहीं परन्तु ऋषि मुनियों के महान् और सुदंर विचार हैं जिन विचारों को मानव धारण करता चला जाता है, उनकी महानता उनके समीप आती रहती है, जीवन में एक नवीन वाद छाता चला जाता है।

मेरे प्यारे आज मुझे षोड्ढ कलाओं के सम्बन्ध में एक गाथा स्मरण आती !भद्र पुरुषो ! चली जा रही है जिसे मैं पुनः से प्रकट करना चाहता हूँ।

मुनिवरों तुमने श्रवण किया होगा कि हमारे यहाँ जावाला नामकी माता थी। जावाला ! बड़ी तपस्वनी और त्यागनी उत्तम ब्राह्मणी थी। उसका हृदय सदा उदारता में परणित रहता था। महान आत्माओं का उसे बड़ा ध्यान रहता था। उसके हृदय में सदैव महानता पवित्रता और ब्रह्म ज्ञान की ज्योति प्रदीप्त रहती थी। जावाला के एक ही पुत्र था जिसका

नाम सत्काम माना जाता है। सत्काम जब वर्ष का हुआ तो ए समय उसने अपनी 12 माता के चरणों को छूकर कहा कि हू मातेश्वरी मेरी ऐसी इच्छा है कि मैं पवित्र शिक्षा ! को पान करने के लिए गुरु के द्वार पर जाना चाहता हूँ। उस समय माता ने कहा कि हे पुत्र मैं बड़ी सौभाग्यशालिनी हूँ कि आज मेरा पुत्र ब्रह्मज्ञान के लिए जा रहा है। सत्काम ने माता के चरणों क ो छूकर अपने स्थान से प्रस्थान किया। भ्रमण करता हुआ वह महर्षि गौतम के आश्रम में जा पहुंचे। महर्षि गौतम जी ने उनका बड़ा स्वागत किया। मध्यम काल का समय था महर्षि गौतम सत्काम से बोले कि ब्रह्मचारी तुम मेरे द्वार क्यों आए हो। उन्होंने कहा कि प्रभुमैं शिक्षा अध् !ययन करने के लिए, ब्रह्म ज्ञान को पाने के लिए आया हूँ। आचार्य ने कहा हे ब्रह्मचारीतुम्हारा गौत्र क्या है !? सत्काम ने कहा कि प्रभु मुझे तो मेरे गांव का ान नहीं है। महर्षि गौतम ने कहा कि भाई मैं ! तुम्हारा वर्ण कैसे कर सकता हूँ। जाओ अपनी माता से यह प्रश्न करो कि मेरा गौत्र क्या है। इसके पश्चात् तुम शिक्षा के अधिकारी हो सकते हो।

सत्काम ने आचार्य के चरणों को छूकर जावाला के स्थान को प्रस्थान किया। जाबाला के समीप पहुँचकर बोले हे माता। आचार्य ने कहा है कि हे पुत्र तुम्हारा गौत्र क्या है। ! मैं अपना गौत्र जानने के लिए आया हूँ। उस समय माता ने कहा हे बालक मैंने ! बहुत महापुरुषों की सेवाएं की है। नाना महापुरुषों की सेवाओं से मैंने एक महान पुत्र को जन्म दिया है। इसलिए पुत्र मुझे तुम्हारे गौत्र का ज्ञान नहीं है।

सत्काम माता को नतमस्तक हो करके उन्होंने प्रस्थान किया और महर्षि गौतम के आश्रम में जा पहुंचे। महर्षि गौतम ने कहा, बोले ब्रह्मचारी तुम्हारी गौत्र क्या है? उस समय सत्काम ने कहा हे प्रभु मेरी माता ने कहा है कि मैंने नाना महापुरुषों की सेवाएं ! की हैं मुझे तुम्हारे गौत्र का ज्ञान नहीं है। महर्षि प्रसन्न हो करके बोले अरे, ब्रह्मचारी ! कितना सत्यवादी है। उसकी माता कितनी सत्यवादी है, सत् उच्चारण करने में न मान है न अपमान है। अरे, ब्रह्मचारी तुम तो ब्राह्मण हो। ब्राह्मण का तुम्हारा वर्ण हो चुका ! है। अब तुम मेरे आश्रम में प्रविष्ट हो जाओ। रात्री का समय वह विश्राम के लिए चले गए। अब महर्षि गौतम ने विचारा कि इस ब्रह्मचारी को तूने ब्राह्मण तो उच्चारण कर

दिया परन्तु ब्राह्मण के गुण कर्म इसमें हैं अथवा नहीं इस पर विचार विनियम होना चाहिए।

ऐसा कहा जाता है कि रात्रि का समय समाप्त हो गया। प्रातःकाल हुआ। महर्षि गौतम जी के द्वारा सत्काम जी आए ब्राह्मचारी ने नतमस्तक होकर कहा, प्रभु मेरे लिए कोई ! कार्य दीजिए। उस समय महर्षि गौतम ने कहा, हे ब्राह्मचारी मेरे आश्रम से चार सौ ! गऊओं को ले जाओ। जब तक यह एक सहस्त्र न हो जाएं तब तक तुम मेरे आश्रम में प्रविष्ट नहीं होना। सत्काम ने इस बात को स्मरण कर लिया और नतमस्तक होकर कहा, बहुत सुन्दर।

चार सौ गऊओं को लेकर भयंकर वन को प्रस्थान किया। नित्य प्रति संध्या उपासना मार्जन तर्पण यज्ञ कर्म करते हुए ब्रह्मचारी उन गऊओं की रक्षा करता रहा। जब गऊएं एक सहस्त्र हो गई तो एक प्रातः जक वह मार्जन तर्पण करने के पश्चात् जब यज्ञशाला में शाकल्य की प्रथम आहुति देना चाहते थे तो कहते हैं कि उन गऊओं को में एक विरख आए और कहा हे ब्रह्मचारी अब हम एक सहस्त्र हो गए हैं अब गुरु के आश्रम ! !में प्रस्थान किया जाएं। सत्काम बड़े प्रसन्न हो गए और कहा कि अच्छा भगवन् चलिए।

जब प्रस्थान करने लगे तो सत्काम उस विरख ने कहा, हे बालक मैं तुम्हें चार ! कलाओं का ज्ञान कराए देता हूँ। प्राचीदिग्, दक्षिणीदिग्, प्रतचीदिग्, उदीचीदिग् यह चार कलाएं हैं। इन चारों कलाओं का ज्ञान तुम्हारे द्वारा होना चाहिए। प्राचीदिग् कहते हैं पूर्व दिशा को दक्षिणीदिग् कहते हैं दक्षिणी दिशा को दक्षिणीदिग् कहते हैं, पश्चिमी को और उदीचीदिग् कहते हैं उत्तरायण को। यह चारों दिशायें हैं। चारों कलाएं हैं। इन चारों दिशाओं का ज्ञान होना बहुत अनिवार्य कहा जाता है। ब्रह्मचारी ने उन वाक्यों को श्रवण कर लिया। रात्रि छा चुकी थी। आसन पर विराजमान हो गया, चिन्तन होने लगा कि जो पूर्व दिशा है यह क्या है, दक्षिण कया है, पश्चिम और उत्तरायण क्या है? जब यह विचार विनियम होने लगा तो विचारा की पूर्व दिशा से हमारे लिए प्रकाश का उदय होता है। सूर्य का उदय होता है प्रकाश आता है नवीन जीवन का प्रसारण हो जाता है,

आनन्द बिखरता है और आनन्द को हम पान किया करते हैं उसी आनन्द को पान करने के लिए हमारा जीवन एक महानता में परणित हो जाता है।

दक्षिण दिशा में क्या होता है? दक्षिण में भी वह प्रभु रहता है। संसार की सुन्दरताएं विराजमान रहती हैं। आज जब हम यह विचारते हैं कि मानव का जीवन भी दक्षिण दिशा के तुल्य रहता है, अन्धकार भी आता है तो पूर्व दिशा से प्रकाश भी आता रहता है। दक्षिण दिशा से मानव को उत्सव प्राप्त होता है जीवन प्राप्त होता है आज वास्तव ! में हमें दक्षिण दिशा पर मन्थन करना चाहिए।

उसके पश्चात् उन्होंने विचारा प्रतीचीदिग्। वह जो पश्चिम दिशा है इससे हमारे लिए अन्न की वृष्टि होती है पृथ्वी में ओज आता है, वनस्पति के योग्य हो जाती है। पश्चिम दिशा से और पूर्व दिशा से दोनों गठित होने पर सुन्दर वृष्टि होने लगती है उस वृष्टि से महान सुन्दर से सुन्दर वनस्पतियों का जन्म होने लगता है। आज हम उन्हीं वनस्पतियों को जानने वाले बनें। जो अन्न उत्पन्न होता है उस अन्न को हम पान करते हैं उस अन्न से ओज और तेज की उत्पत्ति होती है, उसी से मिनजा आता है नाना गृहणि आती है। इसी प्रकार मानव के जीवन का कितना सम्मिलान है, कितना वह पश्चिम दिशा से सुगठित रहता है यह आज विचारा जा सकता है। अनुसन्धान किया जा सकता है।

ब्रह्मचारी सत्काम ने जब इसके ऊपर विचार विनियमय किया तो उनका जीवन और भी महानता में परणित होने लगा। सत्काम ने उसी काल में विचारा कि अब उत्तरायण आता है। उत्तरायण दिशा में दिशा अग्रणि मानो वह शनि का प्रादुर्भाव होता है। शनि हमारे यहाँ कहते हैं ज्ञान को। ज्ञान की ज्योति को शनिश्चराय नमः अब रूत कहते हैं जिससे महान् एक ज्ञान उत्पन्न होता है। अलंकार कृति होती है उसी को हम शनिरी स्वाह कहते हैं। मानो वह उत्तरायण में उसका वास रहता है आज हमें उत्तरायण कला को जान लेना चाहिए उत्तरायण दिशा से जब महापुरुष उदय होते हैं तो उसी में वह अपना जीवन त्याग देते हैं। महाभारत काल में आता है कि महाराजा भीष्म जब मृत्यु ! शैय्या पर विराजमान थे, वाणी की शय्या पर विराजमान थे तो उस समय यह संकल्प किया जब उत्तरायण में सूर्य हो जाएगा उस समय मुझे अपने शरीर को त्यागना है।

इसकी एक रूप रेखा वह भी मानी जाती है। द्वितीय इसकी रूप रेखा यह भी मानी जाती है कि उत्तरायण कहते हैं प्रकाश को दक्षिणायन कहते हैं अन्धकार को। अन्धकार और प्रकाश दोनों आते रहते हैं। दोनों में संघर्ष होता रहता है उसी काल में ऐसा श्रवण किया जाता है कि सत्काम को चारों कलाओं के ऊपर चिन्तन करते करते जब प्रातःकाल हुआ तो उन्होंने गऊओं को लेकर के अपने आसन से प्रस्थान किया। जब प्रस्थान करने लगा तो विरख हे ब्रह्मचारी चार कलाओं का मैंने ज्ञान कराया है चार कलाओं का ! ज्ञान तुम्हें वायु देवता करायेंगे। सत्काम बड़ा हर्षित हुआ, अन्धकार छा गया और गऊए स्थिर हो गई। सत्काम ने स्नान किया, मार्जन और तर्पण किया। इसके पश्चात् जब वह अग्नि में आहुति देने लगे तो कहते हैं कि उसी यज्ञशाला में वायुदेवता का जन्म हो गया।

वायु देवता को सत्काम ने नतमस्तक होकर नमस्कार किया। वायु ने कहा कि अरे, सत्कामआज मैं तुम्हें चार कलाओं का ज्ञान कराए देता हूँ। देखो !, पृथ्वी कला अन्तरिक्ष कला समुद्र कला और वायु कला। तुम इन चारों कलाओं को जानने वाले बनो। सबसे प्रथम यह पृथ्वी कला है। पृथ्वी पर हम जन्म लेते हैं। अपने नाना संस्कार लेकर इस पृथ्वी पर नाना प्रकार के खाद्य और खनिज पदार्थों को जानने के लिए आते हैं खाद्य और खनिज पदार्थों को जानना हमारे लिए उत्तम लक्ष्य होता है। इसी को जानने के लिए जीवनभर प्रयत्न करत है। अब सत्काम ने चिन्तन करना प्रारम्भ किया कि यह पृथ्वी माता हमें खनिज पदार्थों को देती है। कैसे कैसे सुन्दर खनिज हैं कैसे कैसे सुन्दर अन्य हैं जिन को प्रत्येक प्राणी मात्रा पा करके अपने जीवन को पुलकित बनाता है, अन्नवेष्णी बनाता है इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करता है। सत्काम ने निर्णित किया कि इससे नाना प्रकार की वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं अन्न उत्पन्न होता है खनिज उत्पन्न होता है उसको जो प्राणी पान करता है उसके ऊपर अनुसन्धान करता है वह मानव इस पृथ्वी पर गो का स्वामीतव बन जाता है, उसके ऊपर उसका अधिपथ्य हो जाता है।

उसके पश्चात् आगे द्वितीय कला का नाम अन्तरिक्ष कला है। वह अन्तरिक्ष है उससे

नाना प्रकार के वाक्य आते हैं आज जो हम उच्चारण कर रहे हैं यह वाक्य अन्तरिक्ष में समाहित हो जाते हैं है अन्तरिक्ष के विज्ञान को जानने वाले आज संसार में तुम इस ! अन्तरिक्ष को जानने वाले बनो जिस में मानव का शब्द नित्य रहता है किसी काल में भी नष्ट नहीं होता। नाना परमाणु इसी में समाहित हो जाते हैं इस शरीर को त्यागने के पश्चात् यह परमाणु भी अन्तरिक्ष में ही रमण करते हैं। यदि संसार में यह अन्तःरिक्ष नहीं होता तो मानव एक भी शब्द उच्चारण नहीं कर सकता था। मानव नाना प्रकार के अन्नभक्षण करता है नाना अदार्थों को पान करता है परन्तु वह कहाँ जाता है? अन्तःरिक्ष में जाता है। अन्तरिक्ष ही उसको आहार करता है। अन्तःरिक्ष ही उसको निगल जाता है। इस अन्तःरिक्ष पर मानव को बारम्बार अनुसन्धान करने की आवश्यकता है। हमारे शरीर में यदि अन्तःरिक्ष नहीं होगा, इस ीूमण्डल में अन्तःरिक्ष नहीं होगा तो मानव का जीवन किसी भी काल में ऊँचा नहीं बनेगा। प्राणी मात्र का कर्त्तव्य है कि आज, आ ब्रह्मे व्यायाम् रिद्राणा गतिनाश्चति सुप्रजाः आज हम वास्तव में इनके ऊपर विनियम कर सकते हैं है। हमारे यहाँ इन्द्रिय वेत्ताओं ने ऐसा कहा है कि वाक् की रचना अन्तःरिक्ष से होती है। अन्तःरिक्ष का वास कहाँ रहता है? अन्तःरिक्ष सम्बन्धी यन्त्र मानव के शरीर में कहाँ रहते हैं? बेटा मानव के शरीर में जो नाभि केन्द्र है उसमें एक सुष्मणा नाम ! का यन्त्र है वही यन्त्र अन्तःरिक्ष में से शब्दों को लेता है मानो उसी शब्द रचना मन के द्वारा उस उदर में नाभि केन्द्र में हो जाती है। नाभि केन्द्र से जब वह प्राण के साथ साथ शब्द चलता है तो वही शब्द मानव की वाणी के द्वारा आ जाता है। मानव प्राणी से उसी शब्द का प्रसार कर देता है। अन्तरिक्ष का विज्ञान आगे अनुसन्धान किया जा सकेगा। आज तो मैं केवल कलाओं का एक सुन्दर परिचय दे रहा हूँ। इसकी विशेष चर्चा नहीं करना चाहता।

इसके पश्चात् समुद्र कला है। यह एक महान् कला है। उस महान् प्रभु ने जब यह संसार रचा, पृथ्वी मण्डल की रचना की तो उस समय समुद्र एक मेखला के रूप में रचा। पृथ्वी से जो विष का जन्म होता रहता है उसे यह जल अपने में निगलता रहता है, अमृत देता रहता है जिस अमृत से मानव का जीवन इस पृथ्वी मण्डज पर संचारित

होता रहता है। हे सत्काम आज तुम इस महान् समुद्र को जानने वाले बनो। हमारे यहाँ कल्पना की जाती है जब यज्ञशाला में ब्रह्मा प्रविष्ट होता है तो उस समय सबसे प्रथम ब्रह्मा इसका निरक्षण करता है कि यज्ञशाला में मेखला है अथवा नहीं। सुन्दर जल का पात्र है अथवा नहीं। क्यों करता है? क्योंकि यही यज्ञशाला में, यज्ञवेदी से अशुद्ध परमाणुओं का जन्म होता है और सुन्दर परमाणुओं का भी जन्म होता है अशुद्ध परमाणुओं को वही जल जो मेखला रूप में है अपने में शोषण कर लेती है और सुन्दर परमाणु द्रव्य पदार्थों को वह देवताओं को अर्पित कर देते हैं आज हम मेखला के रूप में समुद्र को दृष्टिपात किया करते हैं। आचार्यजनों ने कहा कि आज हम वास्तव में समुद्र को जानने वाले बने। समुद्र में नाना सृष्टि हैं नाना प्राणी इसमें वास करते हैं। क्यों वास करते हैं? क्योंकि वह अशुद्धता को निगलते रहते हैं। मानव को क्रोध आता है उसका भी समुद्र में जाकर मिलान होता है। कामवासना में मानव जब अधिक तल्लीन होता है तो वह तरंगे भी अन्तःरिक्ष में रमण करती हुई समुद्र से उनका मिलान होता है। उनमें जितना विष है उसकों समुद्र अपने में शोषण कर लेता है। वाक्य को अधिक गम्भीर नहीं चाहता हूँ। इन चारों कलाओं में तृतीय कला का नाम समुद्र कला है।

चतुर्थ कला का नाम वायु हैं वायु कया कार्य करता है? वायु का स्वयं अपना कोई गुण नहीं होता। यदि उसमें जल के परमाणु आ जाते हैं तो वायु शीतल हो जाती है यदि उसमें अग्नि के परमाणु आ जाते हैं तो वही वायु उग्र रूप धारण कर लेती हैं नाना प्रकार की वायु बन करके मानव के अंतरात्मा को भी घृति बना देती है। आत्मा जब शरीर को त्याग देती है तो सबसे प्रथम वह आत्मा अपने संस्कारों को लेकर वायुमण्डल में जाती है। वायु मण्डल में वायु नाना प्रकार के क्षेत्र होते हैं, उन क्षेत्रों में भ्रमण करती हुई आत्मा संसकारों के साथ साथ आवागमन के आवेशों में आती रहती है। आज भी इसके ऊपर अनुसन्धान किया जा सकेगा। यह सब वायु मण्डल कहलाया जाता है। वायु का क्षेत्र बड़ा विशाल है। वायु के क्षेत्रों में रमण करने के लिए योगी क्या क्या प्रयत्न करता है, क्या क्या अनुसन्धान करता है। वायु की तरंगों में भ्रमण करता रहता

है, वही प्राण संसार को गति देता है।

इसी प्रकार प्रातःकाल हो गया। सत्काम ने गऊओं का लेकर के प्रस्थान किया तो वायु देवता ने कहाहे सत्काम चार कलाओं का ज्ञान अग्नि देवता करायेंगे। भ्रमण करते ! करते सत्काम उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ सांयकाल को गऊओं को स्थिर होना था। गऊएं स्थिर हो गई और सत्काम ने अपना वही नित्य कार्य किया।स्थान किया, मार्जन किया, तर्पण किया और उसके पश्चात् यज्ञशाला में जब आहुति देने लगे तो कहा जाता है कि अग्नि देवता का जन्म हो गया और अग्नि देवता ने कहा अरे, सत्काम ! !तुम्हारे लिए मैं चार कलाओं का ज्ञान कराने आया हूँ। सत्काम ने कहा कि भगवन मैं तो बड़ा ही उत्सुक रहता हूँ। उस समय उन्होंने कहा कि चंद्र कला सूर्य कला, विद्युत कला, और अग्नि कला, यह चार प्रकार की कला हैं। तुम इनको जानने वाले बनो यही चार कलाएं संसार में महान बना देती हैं। मानव को संसार सागर से पार करा देती हैं। इन चारों कलाओं का ज्ञान तुम्हारे लिए बहुत अनिवार्य है।

देवता तो शान्त हो गए और सत्काम ने रात्री के समय में चिन्तन प्रारम्भ किया। उन्होंने सबसे प्रथम चन्द्रमा पर चितंन किया। यह जो चन्द्रमा है यह क्या क्या कार्य करता है। चंद्र कला में नाना प्रकार की कांति आती है। कृषक की भूमि में अमृत प्रदान करता है, माता के गर्भ में जो जरायुज होता है, जो प्यारा पुत्र होता है, उस बालक को भी अमृत प्रदान करता है। वह अपनी किरणों द्वारा अमृत को बिखेरता रहता है। चंद्र कला को जानना बहुत अनिवार्य है। कहीं चन्द्रमा की कांति इस प्रकार की शीतल होकर जाती है जहाँ रत्नों जैसी सुंदर धातुओं का जन्म हो जाता है। पात बनती है और सूर्य की इंदु नाम की जो किरणों आती हैं उस पान को शुष्क बनाती हैं, और उससे नाना धातुओं का जन्म होता है। में इस वाक्य को अधिक गम्भीर नहीं बनाना चाहता हूँ केवल यह वाक्य प्रकट करने जा रहा हूँ कि आज हम वास्तव में इस चंद्र और सूर्य कला को जानने वाले बनें। सूर्य से नाना प्रकार की किरणों उत्नप्प होती हैं उन किरणों की कांति जब संसार में आती है तो मानव के लिए नेत्रों का देवता बनकर मानव का स्वामित्व करने लगता है। नेत्र अपना कार्य करना प्रारम्भ कर देते हैं। उनका क्षेत्र ऐ महानवों में

परणित हो जाता है इसी प्रकार उन्होंने चिन्तन प्रारम्भ किया। वास्तव में सूर्य से सहस्त्रों किरणे उत्पन्न होती हैं। सहस्त्रों भगों वाला यह इन्द्र कहलाता है परन्तु भग नाम किरणों का है। हे सूर्य कलाहे चंद्र कला। तुम्हारा मानव के जीवन से कितना सलग !्नया है। मानव जीवन से जब तुम्हारी कांति उसको छूती है तो वह मानव धन्य कृतज्ञ हो जाता है।

इस प्रकार आगे उन्होंने मन्थन करना प्रारम्भ किया कि विद्युत कला। विद्युत कला के कौशल करने वाले वैज्ञानिक इस विद्युत को जान लेते हैं। विद्युत कहाँ बिखरी रही है, अन्तरिक्ष में क्या, जलों में क्या, अग्नि में क्या यह पृथ्वी पर बिखरी रहती है। विद्युत एकत्रित करने के लिए नाना यन्त्रों को विराजमान किया जाता है। मेरे प्यारे महानन्द ! जी ने एक समय मुझे वर्णन करते हुए कहा है कि वास्तव में संसार की जा यह एक महान कृति है यह सब विद्युत में ही रमण करती रहती है। यदि संसार में विद्युत नहीं होगी तो मानव कोई वाक्य उच्चारण नहीं कर सकेगा, राष्ट्र का पालन नहीं होगा, एक मानव को दूसरे मानव से मिलान नहीं होगा एक लोक का दूसरे लोक से मिलान होकर संसार की प्रलय हो सकती है। इसलिए विद्युत कला को जानना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है। हे महान् वैज्ञानिकों आज तुम विद्युत को जानने वाले बनो जिससे मानव ! की संपदा की और मानव प्रकाश में रमण करता हुआ इस संसार से पार होता चला जाए।

इसी प्रकार आगे अग्नि कला है। अग्नि कला पर जब मानव अनुमान करता है कि यह अग्नि इस संसार में कितने प्रकार की बन करके प्रदीप्त रहती है। एक अग्नि वह होती है जो गारपथ्य अग्नि कहलती है, द्वितीय अग्नि गृहपथ्य नाम की अग्नि है, तृतीय अग्नि आवनिय नाम की है, और चतुर्थ अग्नि नचिकेता नाम से प्रसारित की गई है और पञ्चम अग्नि वाग्रणि छटम् अग्नि का नाम वैश्वानर है। यह नाना प्रकार के अग्नि के स्वरूप माने जाते हैं। एक अग्नि वह होती है जो ब्रह्मचारी के हृदय में प्रदीप्त रहती है जिसे वह निगलता हुआ धन्य धन्य हो जाता है कृतज्ञ हो जाता है। ब्रह्मचारी अग्निहोत्र करता है, ब्रह्मचार्य की रक्षा करता हुआ ब्रह्म में विचरण करता है, ब्रह्म में समावेश हो जाता है।

उसकी महानता उसे तरंगित कर देती है।
आगे जितना व्यवहार है पति पत्नी के, मिता पुत्र में, पुत्री पिता में, माता पिता में, राजा और प्रजा में, एक दूसरे लो लोकांतरों में यह सब अग्नि कला के कारण ही होता है। यदि तेज नहीं होगा तो संसार में पाप भी नहीं होगा आर पाप नहीं होगा तो अन्न और किसी प्रकार की उत्पत्ति नहीं होगी। सबसे प्रथम यज्ञशाला में प्रविष्ट होने वाला ब्राह्मण यदि अग्नि को प्रदीप्त करता उसके पश्चात् शाकल्प को देता है। यदि अग्नि न होगा तो शांकल्प भी नहीं होगा। इसलिए आज हमें विचार विनिमय करना है और अग्निकला को जानना है। इस अग्नि कला को जानते हुए हमे संसार सागर से पार होना है।
चिन्तन करते हुए सत्काम को पा्रतःकाल हो गया। गऊओं को लेकर गुरु के आश्रम को प्रस्थान करने लगे तो अग्नि देवता ने कहा कि हे सत्कामतुम्हें अब चार कलाओ !ं का ज्ञान आदित्य देवता कराएंगे जिससे तुम कला कौशल में परिपक्व होते चले जाओगे। उस ब्रह्मचारी ने गऊओं को रोक कर भ्रमण किया। आन्नदपूर्वक चिन्तन चल रहा था। भ्रमण करते हुए सांयकाल हो गया। गऊएं स्थिर हो गई। सत्काम ने नित्य कार्य प्रारम्भ किया। जब यज्ञशाला में प्रथम आहुति प्रविष्ट की तो कहते हैं आदित्य देवता का जन्म हो गया और आदित्य ने कहा कि अरे, ब्रह्मचारी मैं तुम्हें चार कलाओं का ज्ञान कराने ! उन्होंने कहा कि मन कला !आया हूँ। उन्होंने कहा कि कराइये भगवन्, चक्षु कला, श्रोत कला, घ्राण कला इन चार कलाओं को तुम जानने वाले बनो।
सबसे प्रथम मन कला है। आज हमें मन को जानना है मन की परिक्रियाएं हैं, मन का जो समावेश है, मन की जो धाराएं हैं उनको जानने के लिए मानव को वास्तव में संकलन और संकल्प वादी बनना होगा। संसार में यह मन ही मानव को विभाजन पर ले जाता है। नाना प्रकार की मेरी माताएं विराजमान हैं, उनमें माता भी हैं, भोजाई भी हैं, पुत्री भी हैं और पत्नि भी हैं और नाना प्रकार की माताएं हैं जब मानव गृह आश्रम में प्रविष्ट होता है तो परिचय देता है कि यह मेरी पत्नी है, यह मेरी भोजाई है, यह मेरी माता है, यह महा माता है, यह नाना सम्बन्धी मेरा परिवार है। यह ज्ञान कैसे होता है? यह उस मन कला के आश्रित हो करके होता है। जितनी भी मानव के शरीर में विभाजन

क्रिया होती है। सबसे प्रथम यह मन कला है जो मानव को बहुत ऊँचा बना देती है। यह मानव को परमात्मा तक ले जाती है। परमात्मा के आँगन में दसका समावेश हो जाता है। इसकी परिक्रियाएं परिकौशलताएं इसमें रमण करने लगती हैं।
मन ही के कारण मानव एक दूसरे का अपमान करता है, मन ही के कारण मानव लज्जित हो जाता है, इस मन को न जानकर नाना प्रकार के उस क्षेत्र में चला जाता है जहाँ मानव कीर अपकीर्ति होती है पने मानवत्व को नष्ट भ्रष्ट कर देता है। इसी प्रकार आज हम प्रभु का चिन्तन करते हुए मानवता को मननशील बनाना चाहते हैं। यदि प्रत्येक मानव मननशील नहीं बनेगा तो यह धर्म का क्षेत्र भी नष्ट हो जाएगा। धर्म किसको कहते है? मानवता को ही धर्म कहते है। मानवता किसको कहते है? जिसका जीवन धर्म से पिरोया हुआ होता है।
द्वितीय कला का नाम चक्षु कला है। चक्षुओं से ही मानव अृष्टिपात करता है। इन्हीं चक्षुओं से माता को भोजाई को नाना सम्बन्धी कुटुम्ब को दृष्टिपात करता है और राज्य प्रजा नाना प्रकार से इन चक्षुओं से दृष्टिपात करता है। जब हमारे यहाँ धर्म और अधर्म के ऊपर टिप्पणियां चला करती हैं तो ऋषि मुनि कहा करते हैं कि धर्म क्या है अधर्म क्या है? ऋषि कहते है धर्मज्ञम् ब्रह्मा, धर्मवान् घृणी, धर्मज्ञम् सर्वाणिकृति दृष्टताः कि धर्म वह पदार्थ है जैसे नेत्रों की ज्योति किसी सौंदर्य पदार्थ को दृष्टिपात करके दूषित हो गई है तो वह अधर्म माना जाता है। यह दो चक्षुओं की ज्योति है इसे हमें नियन्त्रण में करना है। इसको वास्तव में ज्ञान के क्षेत्र में बाध्य कर देना है इससे मासनव यह विचार विनिमय कर सकता है कि वास्तव में हमारे नेत्रों की ज्योति हमें पाप के क्षेत्र में भी ले जाती है। इसलिए हमें नेत्रों की ज्योति को भी जानना है।
इसके पश्चात् घ्राण कला है। घ्राण कला उसे कहते है जो गंध सुगंध दोनों को ग्रहण करती है। उसी से मानव इस पृथ्वी कला को जान लेता है। आज जितने भी वायु के परमाणु हैं, जल के परमाणु हैं, पृथ्वी के परमाणु हैं वास्तव में यह घ्राण कला इनका प्रतिनिधित्व किया करती है।
इसी प्रकार आगे उन्होंने कहा है श्रोत्र कला। हम श्रोत्र कला को जानने वाले बने क्योंकि

हम यथार्थ और भद्र शब्दों को श्रवण करते हैं। अशुद्ध वाक्यों को भी ग्रहण करते हैं। जब अशुद्ध वाक्यों को ग्रहण करते हैं तो हमारे श्रोत्र अशुद्धता को प्राप्त हो जाते हैं और जब इन्हीं से शुद्ध पवित्र वाक्यों को ग्रहण करते हैं तो यह हमारी कला बन करके रहती है। इन्हीं श्रोत्रों से हम मान अपमान के क्षेत्र में चले जाते हैं। हम किसी पर आक्रमण करने से पूर्व अपने जीवन पर अनुसन्धान कर लें कि हमारी मानवीयता कितना सुगठित है, सुदृढ़ है। हमे विचार करके इस संसार से चलना है। इस संसार सागर से पार होने के लिए हमें इन षोड्ष कलाओं को जानने के लिए सर्वत्र प्रयत्न करना है।

तो आज मैंने इन षोड्ष कलाओं का वर्णन करते हुए कहा है कि सबसे प्रथम प्राची दिग्उदीची दिग् और उदीची दिग् और पृथ्वी कला ,दक्षिणी दिग् ,, समुद्र कला। अतंरिक्ष कला, वायु कला, अग्नि कला, चंद्र कला, सूर्य कला, पूर्व कला, विद्युत कला, मन कला, घ्राण कला, चक्षु कला और श्रोत कला यह षोडश कलाएं मानी जाती हैं संसार में। जो मानव इन्हें जान लेता है उसके समीप अज्ञान नहीं आता। वह विज्ञान के क्षेत्र में अग्रगण्य बन जाता है। महान् बन जाता है। इनको जानने के लिए वास्तव में मानव को परिश्रम की आवश्यकता है। भगवान कृष्ण का जीवन मुझे स्मरण है, वह सदैव इन षोड्ष कलाओं में रमण करते रहते थे। भगवान राम बारह कलाओं को जानते थे। इन कलाओं के ऊपर अपने जीवन का समावेश कर लेना ही इन षोड्ष कलाओं को जानना है। इनके बिना मानव का जीवन किसी भी काल में पवित्र नहीं होता। मानव जब अपने को इन षोड्ष कलाओं में रमण कर देता है, अनुसन्धान करता है तो उसी काल में उसका जीवन सुदंरता में परणित होता चला जाता है।

सत्काम को देवताओं ने जब ज्ञान करा दिया तो उसे चिन्तन करते हुए वहीं प्रातःकाल हो गया। गऊओं को लेकर उन्होंने गुरु के आश्रम को प्रस्थान किया। गुरु के आश्रम में जा पहुँचे। महर्षि गौतम ने हर्ष ध्वनि के साथ ब्रह्मचारी का स्वागत कि या और कहा कि हे ब्रह्मचारी तुम वास्तव में महान् ब्राह्मण हो आओं में तुम्हें ज्ञान करा दूं। उस ! आप जो ज्ञान मुझे देना चाहेत हैं परन्तु देवताओं !समय सत्काम ने कहा कि हू प्रभु ने इतनी ज्ञान वृष्टि की है कि उसको आज मैं अपने हृदय में समाहित नहीं कर

सकता। इसलिए प्रभु मैं आपके चरणों में आया हूँ कि मेरा कल्याण हो। परन्तु मेरा तो कल्याण हो ही गया क्योंकि जिस शिष्य को देवताओं ने ज्ञान करा दिया हो वह शिष्य कितना सौभाग्याली है। सत्काम बुरू के चरणों को छू छूकर उनके आदेशों को पान करने लगा। आज वही ब्रह्मचार संसार मे ज्ञानी हो सकता है, पवित्र बन सकता है जो गुरु के आदेश का आचरण करता है। जो उनकी आज्ञाओं का पालन करते हुए आगे चलता है तो वह ब्रह्मचारी वास्तव में ब्रह्मनिष्ठ हो जाता है। ब्रह्म का मनन करने वाला हो जाता है। वह ब्रह्मचार महान बन करके इस संसार सागर को पार हो जाता है। वही ब्रह्मचारी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है पवित्र बन जाता है। इसलिएण् उस प्रभु का चिंतप करते हुए उस प्रभु की महानता का वर्णन करते हुए इन षोड्ष कलाओं को जिन्हें प्रभु ने सृष्टि के प्रारम्भ में रचा है देवताओं ने जाना है, देवपुरुषों ने अपने जीवन में इनको धारण किया है जिसके कारण उनका जीवन महान कहलाया गया है। यह है आज का हमारा वाक्य। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम षोड्ष कलाओं को जानने वाले बनें, इन सोलह कलाओं को जानने के बाद मानव संसार में अवतारी कहलाता है। वास्तव में वह कलाओं पर मन्थन करने वाला, अन्वेषण करने वाला, चिन्तन करने वाला संसार में एक महानपुरुष बन जाता है। हे मेरी प्यारी माता, जब तू जावाला माता बन करके सत्काम को जन्म देती है तो तेरा जीवन कितना अग्रगण्य बन जाता है तेरा नामोच्चारण महानता वेदी पर विराजमान हो जाता है। अब समय मिलेगा ते शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज का यह वौक्य समाप्त होता गया। आज मैंने इन षोड्ष कलाओं का सूक्ष्म सूक्ष्म परिचय दिया है कुछ मुझे समय मिलेगा इनको विस्तार से प्रकट करूंगा, कुछ सूर्य की किरणों के ऊपर कुछ चन्द्रमा की कांति के ऊपर प्राणों के सम्बन्ध में मन के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश दे सकेंगें। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

६ 10 05 1968 पुष्प 10 देव दानव संघर्ष और मानव की महत्ता

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व

से, जिन मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्पराओं से माना गया है कि आज हम वेद रूपी अनुपम प्रकाश को अपनाते चले जाएं क्योंकि जिस प्रकार को अपनाने से हमारा जीवन क्या, राष्ट्रवाद क्या सर्वस्व पवित्र हो जाता है। इसी को अपनाने से मानव देवता बन जाता है। दैत्य और देवताओं का संघर्ष परम्परा से चला आया है। जहाँ देव रहते हैं वहाँ दैर्त्य भी होते हैं। मेरे प्यारेमहानन्द जी यह कहा करते हैं !, कि आधुनिक काल में जो दैत्यों की प्रवृत्तियां बहुत प्रदीप्त होती चली जा रही है। महानन्द जी को कोई वाक्य उच्चारण करने के लिए समय प्रदान नहीं किया जा रहा है। इनकी सदैव इच्छा रहती है कि मैं अपने विचार प्रकट करूं परन्तु मुझे इनका हृदय सुन्दर प्रतीत नहीं होता।

तो मेरे प्यारेजिस वाक् में मानव के हृदय से उद्ग !भद्र पुरुषों !ार जब उत्पन्न होते हैं यथार्ध तो होते हैं परन्तु यदि यथार्थ वाक्यों से वायु मण्डल में या हृदय में एक वेदना उत्पन्न होती हो तो वह कोई सुन्दर नहीं होता। इसलिए बेटा श्रवंगति निश्चय शान्तः ! आज मुझे इस सम्बन्ध में उच्चारण क्या करना !भद्र पुरुषों !तो मेरे प्यारे है। संसार में दैत्यों और देवताओं का संघर्ष परम्परा से चला आता है। देवता कौन हैं और दैत्य कौन हैं? हमारे यहाँ कुछ ऐसा माना गया है कि एक समय दैत्य और देवताओं का संघर्ष हुआ। जिस समय सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ, तो उस समय दैत्य और देवताओं ने इस संसार रूपी समुद्र का मन्थन किया और समुद्र को मन्थन करने के पश्चात् उसमें से रत्नों की उत्पत्ति हुई मानो उसमें से अमृत की भी उत्पत्ति हुई। ऐसा कहा जाता है कि कुदचि और उदिची दो माताएं कहलाती हैं।

कुदिची दैत्यों की माता और उदिची देवताओं की माता कहलाती हैं परन्तु जब दैत्यों और देवताओं का संघर्ष हो गया कहते हैं कि उसी काल में देवताओं ने उस अमृत के कलश को, अमृत के कुम्भ को अपने में अपना लिया। अपना लेने के पश्चात् कहते हैं विष्णु भगवान ने मोहनी का रूप धारण करके वह अमृत का कुम्भ मानों देवताओं को अर्पित करके राहु के दो विभाग बनाए और दैत्यों को शान्त करके और देवताओं को कुम्भ अर्पित करा करके उन्होंने अपने आसन से प्रस्थान किया। आज के वेद पाठ में

कुम्भान् वृणि अस्ती सुज्यागृणामि ऐसा कुछ मन्त्र आता है उसी आधार पर हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने कल्पना की और कल्पना करते हुए कुछ ऐसा कहा है कि वह दोनों माताएं देखो, दैत्य और देवताओं की कुदचि और उदिची दोनों ने अपना अद्भुत रूप धारण किया और जब वह कुम्भ गरूड को अर्पित किया गया तो अग्रणी देवता उसे ले करके चले गएं और उस इन्द्र को अर्पित कर दिया। इन्द्र जब उस कुम्भाकार को लेकर चले तो और दैत्यों को जब यह प्रतीत हुआ कि वह तो कुम्भाकार अमृत यहाँ से चला गया तो दैत्यों ने उनके पीछे आक्रमण किया। मानो देवता कुम्भ को अर्पित करते चले गएं वहाँ दैत्य पहुंचे और अमृत कुम्भ को शान्त करना चाहा परन्तु वह शान्त न हो सका और देवताओं के समीप इन्द्र लोक में चला गया और दैत्य कोई आक्रमण न कर सके। तो मेरे भद्र पुरुषों आज हमें विचार विनियम यह करना है कि जब समुद्र मन्थन ! आचार्यों !किया जाता है तो वह अमृत क्या है जिसको देवता पान किया करते हैं। बेटा ने ऐसा वर्णन किया है कि वह जो वेद की परम्परा है, वेद रूपी जो अमृत है उस सबको बेटाद !ेवताओं ने अपना लिया। वेद से विपरीत चले वाले दैत्य थे उन्होंने देवताओं पर आक्रमण किया। विचारों को नष्ट करना चाहा परन्तु यह जो ईश्वरीय ज्ञान है बेटा वह किसी काल में नष्ट नहीं होता। !

मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे एक समय ऐसा वर्णन कराया कि देवताओं ने उस ! कुम्‌भ को चार स्थानों में नियुक्त किया तो कहा जाता है कि यहाँ पृथ्वी पर चारों ही स्थानों पर कुम्भ का पर्व मनाया जाने लगा। मुझे तो इसका विशेष ज्ञान नहीं है परन्तु इसके मुखारविन्दों से एक समय मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ। आज भी मुझे इसका शब्द स्मरण आता चला जा रहा है कि यह जो चारों स्थान इस महान् ऋषियों की भूमि पर माने जाते हैं तो जहाँ जहाँ कुम्भ को स्थित किया वहीं वहीं देखो, यह पर्वों का एक महाचक्राणी रूपों में इसे प्रदीप्त किया जाता है। यह क्यों किया जाता है? यह क्या है? इसकी लोकोक्तियां ऐसी महान् ऋषियों ने क्यों नियुक्त की? तो ऋषि मुनियों ने कहा है कि ऐसे ऐसे अवसरों पर जो तपस्वी महान् पुरुष होते हैं वह आते हैं और वह जो अपना महान् अमृत को पान किया हुआ वेद ज्ञान है उसका प्रसारण करते चले जाते

हैं। उन सुन्दर नदियों के जल में स्नान करते हुए प्राणी उन महान् पुरुषों की वार्त्ताओं को स्मरण करके हृदयों में ऊँचे संस्कारों की उपलब्धि हो जाती है और वह इस संसार सागर से आगे चलने के लिए तत्पर होते हैं त्याग और तपस्या की जो महत्वता है वह हृदय में प्रदीप्त होती चली जाती है।

तो मेरे प्यारेहमारे यहाँ कुछ ऐसा कहा जाता है !भद्र पुरुषों ! कि उन्हीं देवताओं ने मानो यह चार स्थान नियुक्त किए। देवता कौन होते हैं? देवता वह होते हैं जो अच्छाइयों को धारण करते हुए उन अच्छाइयों को मानने के लिए प्रसारण करके चले जाते हैं। आज वह किन रूपों में हैं मुझे तो यह ज्ञान नहीं है परन्तु द्वापर काल में जब महाराजा वेदव्यास, कणाद, गौतम, कपिल इत्यादियों का यहाँ प्रवाह हो रहा था, उनकी ध्वनियां हो रही थी उस काल में इसको निर्धारित किया गया था। हमारे यहाँ उन ऋषि मुनियों को देवता ही कहा जाता है।

आज जहाँ मैं यह वर्णन करूं कि सृष्टि के प्रारम्भ में दैत्य और देवताओं ने समुद्र का मन्थन किया तो मेरा हृदय गद् गद् होने लगता है क्योंकि दैत्य और देवता कौन हैं जो इस संसार रूपी समुद्र को मन्थन किया करते हैं? बेटा यौगिक परिक्रियाओं में चले ! जाओ। जब योगी साधक बनता है वह संसार रूपी समुद्र को अपने हृदय में मन्थन करता है। हृदय रूपी समुद जब मन्थन करता है तो इसमें दैत्य और देवताओं की जो प्रवृत्तियां हैं, संस्कार हैं उन दोनों का जब मन्थन होता है तो कहीं देवता ऊँचे बन जाते हैं तो कहीं दैत्यों का बहुमत हो जाता है। जब इस प्रकार की परिक्रियाएं योगी के हृदय में चलती हैं तो योगी उस अमृत को लेने का प्रयास करता है। वह अमृत क्या है? बेटावह जो महान् त्याग और तपस्या है !, वह जो विवेक है, ज्ञान रूपी जो अमृत है उसे योगी पान कर लेता है तो बेटा उसका हृदय अमृतमय हो जाता है और वह ! इनद्रपुरी को चला जाता है।

मैंने कल के वाक्यों में बेटात्याग और तपस्या के स !म्बन्ध में नहीं केवल तप के सम्बन्ध में कुछ अपने विचार प्रकट किये। यह कहा गया था कि मानव को तपस्वी बनना चाहिएं बिना तप के मानव अमृत को प्राप्त नहीं कर सकता जब मानव अपने को ऊँचा बनाता

है तो वह प्रत्येक स्थान में कुम्भ को दृष्टिपात करता है। वह कुम्भ क्या है? जैसे कुम्भाकार होता है उसी प्रकार यह जो सर्वस्व ब्राह्मण है जिसमें लोक लोकान्तर समाहित हो रहे हैं यह एक कुम्भाकार जैसा होता है। इसी प्रकार जब माता के गर्भ स्थल में बालक होता है तो कुम्भाकार की भाँति होता है। कमल जैसी पखड़ियां होती है। इसी प्रकार जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है तो परमात्मा की इच्छा शक्ति द्वारा होता है। यह जो प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु हैं वह सब एक स्थान में सुगठित हो जाते हैं और जब परमात्मा की प्राणमयी शक्ति महत्व चलता है तो उस समय मन और प्राण द्वारा उसके विभाजन होते हैं और नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में विभाजित हो जाते हैं। कुम्भाकार की बहुत सी व्याख्यायें हैं मानव का जो मस्तिष्क है यह भी कुम्भाकार के तुल्य माना गया है क्योंकि इसमें ब्रह्मरन्द है, इसमें त्रिकुटी है। जब इन दोनों का समन्वय हो जाता है तो उस समय हृदय की महानता में लेता चला जाता है और वास्तव में मानव संसार से पार हो लाता है।

बेटामैं कुछ पर्वों के सम्बन्ध में भी प्रकट कर रहा था और वह यह कि राजा !, महाराजा ऋषि मुनि और तपस्वी आ करके अपने निगले हुए अमृत को प्रजा को प्रसारण करके चले जाते हैं। हमें इन वाक्यों को श्रवण करते हुए अपने जीवन को अमृतमय बना लेना चाहिए और तपस्वी बन जाना चाहिए। आज हमें अपने मानवत्व को वहाँ ले जाना चाहिए यह एक महान प्रश्न मानव के समीप रह जाता है। यहाँ दैत्य और देवता दोनों का संघर्ष होता है परन्तु दोनों का गुरु एक ही माना जाता है। वही प्रजापति विरोचन का गुरु तो वही प्रजापति इन्द्र का गुरु होता है, जो संसार में तप जाता है तपस्या में परणित हो जाता है वही महानता को प्राप्त हो जाता है।

मुनिवरों मुझे आज एक वार्त्ता स्मरण आती चली जा रही है। एक समय प्रजापति ने ! एक घोष करया कि मैं आत्मा का ज्ञान करा देता हूँ वह घोष दैत्य और देवता दोनों ने ही श्रवण किया। दैत्यों ने अपने सवामी विरोचन से कहा कि आज प्रजापति के यहाँ से घोष हुआ है कि मैं आत्मा का ज्ञान करा देता हूँ अब आत्मा का ज्ञान को प्राप्त करने के लिए हमें अग्रणी बनाइये। विरोचन ने कहा बहुत सुन्दर उधर देवताओं ने इन्द्र से

कहा कि आप आत्मा का ज्ञान प्रजापति से प्राप्त कर हमें प्राप्त कराइये। उस समय इन्द्र ने कहा कि बहुत सुन्दर।
तो मुनिवरों एक सथान से इन्द्र और एक स्थान से विरोचन दोनों ने प्रजापति के ! आसन को प्रस्थान किया। भ्रमण करते हुए एक भयंकर वन में से तीन तीन समिधायें ले करके यह प्रजापति के आश्रम में जा पहुंचे। प्रजापति ने दोनों का बड़ा आदर किया। दोनों ने उनके चरणों को स्पर्शकरके कहा कि भगवन् लीजिए यह तीन ! समिधायें। उनके चरणों में तीन समिधायें अर्पित करके विराजमान हो गए। विरोचन ने कहा, हे भगवन् आपने घोष कराया है कि मैं आत्मा का ज्ञान कराता हूँ आप हमें ! आत्मा का ान कराइये। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर, परन्तु विरोचन जी हमारे यहाँ एक नियम है कि मेरे यहाँ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करो 32, तपस्वी बनो। उन्होंने कहा बहुत सुन्दर।
बेटा विरोचन और इन्द्र दोनों ने बड़े आनन्द पूर्वक आसन में विराजमान हो करके ! 32 तपस्वी बनने का संकल्प किया कि वास्तव में हम तपस्वी बनेंगे। तो उन्होंने 32 वर्षतक का संकल्प लिया और ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए वह तत्पर हो गए। ब्रह्मचर्य के आश्रम में विराजमान हो करके प्रभु का चिन्तन निद्यासन इत्यादि करते रहे। जब वह वर्ष समाप्त हो गए तो प्रजापति के द्वार पर आ पहुंचे और प्रजापति से 32 अब हमें आत्म !कहा कि हे भगवन्ा का ज्ञान कराइये। उन्होंने कहा कि आत्मा का ज्ञान चाहते हो तो यह जो शरीर है इसी को आत्मा कहते हैं, इसी का तुम पालन करो, इसी के ऊपर निद्यासन, इसी का पान करना आत्मा को जानना है। अब विरोचन बड़ा मग्न हो गया। इन्द्र भी मग्न हो गए। दोनों ने आदित्य की वार्त्ता को स्वीकार करके प्रजापति के यहाँ से प्रस्थान किया। विरोचन तो दैत्यों की सभा में जा पहुंचे और दैत्यों से कहा कि प्रजापति ने कहा कि यह जो मानव शरीर है इसी को हमारे यहाँ आत्मा कहते हैं इसी को तुम आत्मा स्वीकार करो। दैत्यों ने वह वाक्य स्वीकार कर लिया और मग्न हो गए कि आत्मा का ज्ञान यही है कि शरीर का पालन करो। परन्तु इन्द्र ने मार्ग में भयंकर वन में यह विचारा कि प्रजापति ने ऐसा कहा है कि इसी को आत्मा कहते

हैं यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है। क्योंकि जब देवता यह प्रन करेंगे कि यह जो शरीर है वह तो अपंग होने पर भी जीवित रहता है। एक नेत्र चला जाता है मानव जीवित रहता है दोनों नेत्र चले जाते हैं तब भी जीवित रहता है हस्त चले जाते हैं तो उसके पश्चात भी जीवित रहता है। यह शरीर आत्मा किस प्रकार हो सकता है क्योंकि आत्मा का विभाजन नहीं होता, आत्मा एक रस रहता है। आत्मा यदि शरीर होगा तो आत्मा के विाग भी हमें स्वीकार करने होंगे। इसलिए मुझे प्रतीत होता है कि यह जो शरीर है यह आत्मा नहीं हो सकता और मैं प्रजापति के द्वार चलूं।

तो मुनिवरों उन्होंने प्रजापति के यहाँ प्रस्थान किया और तीन समिधा अर्पण करे ! आपने इस !प्रजापति से कहा कि भगवन् शरीर को आत्मा कहा है परन्तु यह विश्वास नहीं होता क्योंकि मेरे विचार में यह शरीर आत्मा प्रतीत नहीं होता मुझे निर्णय कराइये कि आत्मा क्या है? उस समय प्रजापति ने कहा है इन्द्र तुम यथार्थ उच्चारण कर रहे ! हो परन्तु यदि आज तुम आत्मा को जानना चाहते हो तो तुम मेर े यहाँ वर्ष तक 32 वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया 32 ब्रह्मचर्य का पालन करो। इन्द्र ने वहीं, तपस्वी बने। इन्द्रियों पर सयंम करते हुए तपस्या के पश्चात् जब वर्ष समाप्त हो गए तो 32 वर्ष समाप्त 32 आपके कथानानुसार !प्रजापति के समक्ष नतमस्तक होकर कहा भगवन् हो गएः हैं अब मुझे आत्मा का ज्ञान कराइये। उन्होंने कहा कि हे इन्द्र आज तुम ! आत्मा को जानना चाहते हो तो यह जो स्वप्न अवस्था था स्वप्न का जो क्षेत्र है इसको ही आत्मा कहते हैं। इसी को तुम जानने का प्रयास करो। इन्द्र ने प्रजापति के आसन से प्रस्थान किया और भयंकर वनमें पहुंचे। विचार विनियम करने लगे कि हम इस स्वप्न को आत्मा कैसे स्वीकार करें। जब भयंकर वन में मनन करने लगे तो उन्होंने यह निर्णय किया कि यदि वास्तव में हम यह सवीकार कर लेते हैं कि स्वप्न का जो क्षेत्र है यही आत्मा है तो इसमें मानव में कितनी घृणा होती है, कितना ब्रह्मण होता है, इस पर विचार विनियम करना चाहिए। उन्होंने मनन किया कि जब मानव स्वप्न के क्षेत्र में जाता है वहाँ रोग होता है, शोक भी प्रतीत देता है, वहाँ कहीं व्याकुल होते हैं, कहीं द्रव्यपति बन जाते हैं, कहीं द्रव्यपति से निर्धन बन जाते हैं। जिसमें इतना कष्ट हो,

जिसमें संकल्प विकल्प का इतना क्षेत्र हो वह आत्मा नहीं हो सकता। बेटा जब यह ! जब यह विचार इन्द्र के द्वारा आए !विचार क्षेत्र हो वह आत्मा नहीं हो सकता। बेटा तो वह तीन समिधा ले करके फिर प्रजापति के आसन को प्रस्थान किया। प्रजापति के द्वारा नतमस्तक होकर के वे बोले कि प्रभु मुझे तो यह प्रतीत हो रहा है कि यह ! जो स्वप्न अवस्था है यह आत्मा नहीं हो सकता। मुझे आत्मा का ज्ञान कराइये। आत्मा क्या है? मैं आत्मा को जानना चाहता हूँ। जिस समय इन्द्र ने कहा तो प्रजापति ने कहा कि तुम यथार्थ उच्चारण कर रहे हो परन्तु तुम मेरे यहाँ वर्ष तक का ब्रह्मचर्य का 32 और पालन करो।

तो बेटा वर्ष तक 32 जब प्रजापति ने ऐसा कहा तो इन्द्र ने स्वीकार कर लिया और ! वर्ष समाप्त हो गए तो उन्होंने 32 पुनः ब्रह्मचर्य रहने का संकल्प किया। जब वह मुझे अब आत्म का ज्ञा !जाकर प्रजापति से कहा कि प्रभुन कराइये। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर। यह जो सुषुप्ति अवस्था है इसे आत्मा कहते हैं तुम इसके ऊपर निध्यासन करो, विचार करो। तो इन्द्र ने वहाँ से प्रस्थान किया। उसी भयंकर वन में पहुंचे और निर्णय करने लगे कि यह जो सुषुप्ति अवस्था है यह कैसे आत्मा हो सकता है। क्योंकि मुझे यह प्रतीत नहीं हो पा रहा है कि यह जो सुषुप्ति अवस्था है यह क्या है? देखो, पांच ज्ञान इन्द्रि पांच कर्म इन्द्रिय का जो क्षेत्र है वह मन में लय हो जाता है, मन बुद्धि में लय हो जाता है और बुद्धि का क्षेत्र है और वह चित्त के क्षेत्र में रमण कर जाते हैं। चित्त उस अवस्था को कहते हैं जहाँ मानव के जन्म जन्मान्तरों के संस्कार निहित होते हैं। अब जब वह मन इन्द्रियों का विषय शान्त होने के कारण चित्त में लय हो जाता है तो उसी को सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। वह तो केवल उस महान कारण में लय हो करके, महान चित्त में लय हो करके जीवन को पान किया जाता हो एक तो जीवन देने वाला और एक जीवन को पान करने वाला। क्योंकि जीवन शरीर को प्राप्त होता है, शरीर को शक्ति प्राप्त होती है, वह शक्ति चित्त द्वारा आती है। अब तो चित्त के द्वारा शक्ति देता है वह एक और वस्तु है। यह जो सुषप्ति अवस्था है इसको हम आत्मा कदापि भी उच्चारण नहीं कर सकते। जब उन्होंने ऐसा निर्णय किया तो पुनः तीन समिधा ले करके प्रजापति

के आसन पर पहुंचे और प्रजापति से कहा कि प्रभु यह जो सुषुप्ति अवस्ि ा है ! इसको हम आत्मा नहीं कह सकते, न यह आत्मा हो सकता है आपने वह मुझे क्या निर्णय कराया है। उन्होंने कहा कि हे इन्द्र तुम यथार्थ उच्चारण करते हो परन्तु मेरे ! वह पांच वर्ष तक तपस्या करने के लिए तत्पर !यहाँ पुनः पांच तपस्वी बनो। तो बेटा !हो गए। तपस्या करने लगे। पांच वर्ष के पश्चात् वह नतमस्तक हो करके बोले प्रभु मुझे आत्मा का ज्ञान कर ाइये। उस समय प्रजापति ने कहा, इन्द्र आत्मा वह पदार्थ ! है जो किसी भी काल में नष्ट नहीं होता। वह सदैव एक रस रहता है मानो वह तपस्या में संलग्न रहता हैं आत्मा वह पदार्थ है जिसमें न मानव को रोग होता है न शोक होता है न आलोचना करता है एक रस में विराजमान हो जाता ह ै। आज हम अपने को ऊँचा बनाना चाहते हैं आत्मा को जानना चाहते हैं आत्मा को जानने के लिए हमें विचारना होगा कि यह संसार क्या है, संसार में अमृत क्या है और तप क्या है। इसको जाने बिना हम आत्मा को नहीं जान सकेंगे परन्तु मेरे विचार में तो इन्द्र आत्मा वही ! है जो इस शरीर को क्रियाशील बनाता है शरीर को घृति देता है ज्ञान और प्रयत्न दोनों उसी के द्वार से उत्पन्न होते हैं, उसी को हमारे यहाँ आत्मा कहा जाता है।

तो मुनिवरों जब आत्मा का उन्होंने निर्णय कराया तो इन्द्र को शान्ति हो गई और ! यह निर्णय हो गया कि वास्तव में आत्मा और शरीर दोनों भिन्न भिन्न हैं। शरीर तो कणों से उत्पन्न होता है और वह प्रकृति के कण हैं मानो जो क्रिया उत्पन्न होती है वह ज्ञान और प्रयत्न आत्मा के माध्यम से उत्पन्न होती है। जब यह निर्णय उनके हृदय में आ पहुंचा तो आगे चल करके उन्होंने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा कि हे भगवन् 101 मैंने ! वर्ष की तपस्या की है।

तो बेटावाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है !? मानव को तपस्वी बनाने की आवश्यकता है। इन्द्र जव तपस्वी बना उसके पश्चात् आत्मा ज्ञान प्राप्त हुआ। बिना तपस्या के मानव न होने के तुल्य माना जाता है। जैसे मानव बीजहीन भूमि ूमें बीज को स्थापित कर देते हैं वह मानव की अति हो जाती है। आज हमें उस गति को नही लाना है। केवल यह विचार विनिमय करना है, चिन्तन करना है, मनन करना है, किक हम

आत्मा को जानने का प्रयास करें। आत्मा के उस क्षेत्र में पहुँचे जहाँ आत्मा को जानने के पश्चात् मानव सब कुछ जान जाता है और संसार में ऊँचा बन जाता है। महर्षि कपिल के शब्दों में यह उच्चारण करना बहुत अनिवार्य होता है कि वेद का जो अमृत है वह आत्मा ज्ञान के साथ पान के पश्चात् बेटा यदि वह चाहता है कि मैं सम्पन्न विद्याओ ! का ज्ञाता बन गया हूँ तो यह उसके लिए असम्भव है। वह मिथ्या उच्चारण करने वाला प्राणी कहलाता है क्योंकि संसार के जो परमात्मा है ऐसे ही परमात्मा का क्षेत्र है जैसे परमात्मा अनन्त है, उसकी रचना भी उतनी अनन्त मानी गई है। आज मानव बिना तपस्या के केवल अक्षरों का बोधी हो करके यह उच्चारण करने लगे कि मैं सम्पन्न विद्याओं को जानता हूँ, सम्पन्न यौगिक क्रियाओ को जानता हूँ तो उसका यह कथन मिथ्या हो जाता है एक काल में। इसलिए प्रत्येक मानव को विचार विनिमय करना है कि आत्मा को जानने के लिए सदैव तत्पर रहना है, आत्मा के क्षेत्र में हमें पहुँचने के लिए तपस्या के क्षेत्र में जाना है। तो यह है आज का हमारा वाक्य। मैं कोई आज अधिक चर्चा तो प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल यह वाक्य प्रकट कर रहा था आरम्भ के शब्दों में कि हमारे यहाँ कुम्भकार का जो अमृत है उसे पान करना हमारे लिए बहुत अनिवार्य होता है उसे जब आचमन के रूप में हम पान करते है तो हमारा हृदय में महानता आ जाती है, मानवता के विशेष अंकुर उत्पन्न हो जाते है वह मानव संसार में, राष्ट्र में भी मानवता को ऊँचा बनाने में अग्रणयि बन जाता है। मुझे बेटा नाना ! वार्त्तायें स्मरण आने लगती हैं जब तपस्वियों की चर्चायें स्मरण आती है तो हृदय गद गद होने लगता है।

मुनिवरों महर्षि यज्ञवल्कय तपस्या करने में अग्रणीय रहे। देवता वह होता है जो ! तपस्वी होता है। वह देवता नहीं होता जिसके द्वारा पक्षपात के अंकुर होते हैं, जिसके द्वारा निन्दा स्तुति के अंकुर होते हैं, जो अपने स्वार्थ के वशीभूत हो करके एक महान प्राणी को भी कलंकित कर सकता है। वह देवता नहीं होता। उस मानव के हृदय में दैत्य प्रकृति के विचार विनिमय करना है। आज हमें विचार विनिमय करना है। आज परमात्मा की सृष्टि में आकर के हमारे लिए अनुसन्धान करना बहुत अनिवार्य है। यदि

मानव के जीवन में अनुसन्धान नहीं होगा तो उसका जीवन न होने के तुल्य ही माना जाता है। आज हम अनुसन्धान वेत्ता बनने के लिए तत्पर बनें। कुम्भाकार को भी हम अनुसन्धान की दृष्टि से दृष्टिपात करते चले जाएं। वह कुम्भ क्या है जो प्राणीमात्र के लिए अमृत का कार्य करता है। आज मेरे प्यारेमह !ानन्द जी इस वाक्य को विस्तार से प्रकट करते परन्तु समय इतनी आज्ञा नहीं दे रहा हैं। केवल मैं। एक वाक्य प्रकट करने जा रहा हूँ, इन्होंने मुझे संकेत दिया, मैंने उसके अनुसार कुछ अपने विचार प्रकट किए हैं। वास्तव में पूर्णता से तो इन वाक्यों को नहीं दे सकता हूँ परन्तु मेरे पूज्य गुरुदेव कहा करते थे कि न देने से कुछ विचार संसार को देना बहुत ही सुन्दर कहलाया जाता है। तो मेरे प्यारेआज हम प्रभु की याचना करते हुए !भद्र पुरुषों !, आत्मा में संलग्न होते हुए आत्मा को जानने का प्रयास करें यही संसार में हमारा सबसे बडा कर्म होता है। आत्मबल को उत्पन्न करें, आत्मा का बल यदि मानव के समीप होगा तो दुराचारी प्राणी भी नतमस्तक हो जाता है। राष्ट्र भी नतमस्तक हो जाता है। राष्ट्र और मानव उस काल में नतमस्तक नहीं होता जब तक उसके द्वारा तपस्या का, आत्मा का बल नहीं होता क्योंकि तपस्या से ही यह संसार ऊँचा वन जाता है।

मुनिवरोंदेखो !, भगवान राम और रावण में क्या विशेषता थी। राम के द्वारा तपस्या ! थी, और रावण के द्वारा तपस्या नहीं थी। इतने बड़ेसामा्रज्य को उन्होंने नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इसी प्रकार भगवान कृष्ण में और दुर्योधन में क्या विशेषता थी मुझे स्मरण है बेटा जब महाभारत का संग्राम होने लगा संग्राम के लिए दोनों पक्ष भगवान कृष्ण ! से सहायता लेने के लिए चले। एक स्थान से महाराजा अर्जुन चले है और एक स्थान से महाराजा कृष्ण के सिर के आँगन में विराजमान हो गए और अर्जुन पश्चात् पहुँचा और वह उनके चरणों मे ं नतमस्तक हो गया। भगवान कृष्ण निद्रा में तल्लीन थे। निद्रा से जब जागरूक हुए तो प्रथम अर्जुन को दृष्टिपात किया और पूछा कहो अर्जुन किस प्रकार आए हो। आज क्या कार्य हो गया। दुर्योधन ने कहा कि भगवन मैं भी आया ! हूँ आपके द्वारा। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर। बोलोक्या चाहते हो? उन्होंने कहा कि भगवन हम संग्राम के लिए सहायता चाहते हैं हमें सहायता दो। उन्होंने कहा कि भाई !

तुम्हें सहायता प्राप्त होगी परन्तु प्रथम जो मांग है वह अर्जुन की होगी उन्होंने कहा प्रथम आया तो मैं हूँ। भगवान कृष्णा ने कहा कि यह तो मैं नहीं जानतापरन्तु सबसे प्रथम मुझे अर्जुन के दर्शन हुए हैं। देखो, एक स्थान में तो केवल मैं हूँ और एक स्थान में मेरी सर्वस्व सैना है अब जो चाहते हो ले जाओ। महाराजा अर्जुन ने यह विचारा कि मैं सेना का क्या करूंगा जब मेरे द्वारा जनार्धन आ जाएं। तो उन्होंने कहा कि भगवानम !ैं तो आपको चाहता हूँ। दुर्योधन बड़ा मग्न हो गया कि सर्वस्व सेना मुझे युद्ध करने के लिए प्राप्त हो गई आज इनका मैं क्या करूंगा। क्योंकि इन्होंने तो शस्त्र भी नहीं उठाना। तो बेटा जो प्राणी इतना त्यागी और तपस्वी होता है वह ! महाभारत जैसे संग्राम को बिना अस्त्र शस्त्रों के करा सकता है। जब वह यह विचार कर चले कि पांडवों को कुठ न कुठ उनकी जीविका क लिए दिलवा दूं तो उस समय हस्तिनापुर के क्षेत्र में दुर्योधन ने कहा था कि हे ग्वाले कैसे आए। उन्होंने कहा कि ! में इसलिए आया हूँ कि तुम पांडवों को कुछ अर्पित कर दो। उन्होंने कहाँ कि मैं कुछ अर्पित नहीं करूंगा। पृथ्वी का एक अंकुर भी उन्हें प्राप्त नहीं कराया जा सकेगा। मुनिवरों उन्होंने बहुत कुछ वाक्य प्रकट किया परन्तु वह एक रस रहे। तपस्या का ! बल कितना महान होता है। राष्ट्र के ऊँचे ऊँचे भोजनालयों को त्याग करके महात्मा विदुर के यहाँ जा करके सुदंर से पदार्थों को पान कर लिया। यह है तपस्या जब मानव तपस्वी बनता है तो तपस्या का बल होता है। वह एक महान से महान सम्राट को नीचे गिरा देता है और तपस्वी का जीवन संसार में महानता को प्राप्त हो जाता है। तो बेटास !यह है आज का हमारा वाक्य। हे मानव !ंसार में तू अपने जीवन को महान बनाने के लिए आत्मा को जानने को प्रयास कर। आत्मा के बल से राष्ट्र, समाज सभी कुछ तेरे द्वारा नतमष्तिस्क होता चला जाएगा। आज के वाक्यों का अभिप्राय है कि हम प्रभु का चिन्तन करते हुए मानवता के उस क्षेत्र में चलें जाएं जहाँ मानव का वास्तव में कलयाण होता है और मानव अपने ऊँचे पद को प्राप्त कर सकता है। इस संसार सागर से पार होते चले जाएं। यह है आज का हमारा वाक्य। अब वेदों को पाठ होगा इसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त। बेटादेखो !, जो विरोचन प्रकृति के होते है दैत्य प्रकृति के,

वह शरीर के पालन पोषण में ही लगे रहते हैं, इसी को आत्मा स्वीकार करते है और जो देवता होते हैं वह इस शरीर को आत्मा स्वीकार नहीं करते वह केवल आत्मा कासे जानते हुए देवता पद को प्राप्त होते चले जाते हैं। देवता कौन है? जो आत्मा को जानते है। दैत्य कौन है? जो अपने ही पालन पोषण में लगे रहते है और जिन्हें ज्ञान और विवेक नहीं होता। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट की जाएगीं। धन्य हो भगवन आज का आपका वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। !। तो मुनिवरों !

७ 30 07 1968 पुष्प 11 साम्यवाद और प्रजातंत्र

जीते रहोदेखो !, मुनिवरों आज !हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गान गाते चले जा रह थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। आज हम सबसे पूर्व अपने देव की याचना करते चलें जाए। हे परमात्मन्आपने इस वेदमयी वाणी को ! रचा है, पवित्र प्रकाश को हमें दिया, जिसे पान करते हुए हम वास्तव में इस संसार सागर से पार हो जाते हैं। जब हम आपकी रचना पर विचार विनिमय करते हैं हमारा हृदय विभोर हो जाता है। मानव का शरीर बना दिया परन्तु कैसा सुंदर लेपन है। लेपन के निचले विभाग में रक्त विराजमान है, अस्थियां हैं और हमें कुछ प्रतीत नहीं होता कैसा सुंदर लेपन है। आनंद की जो उत्पत्ति है उसका कारण भी वह लेपन ही बना करता है। मेरे उस देव की कितनी सुन्दर रचना है। मेरी माता नहीं जानती कि तेरे गर्भ स्थल में नस नाड़ियों के समूह के ऊपर कौन लेपन कर गया। उस ब्रह्म वेत्ता ने कितनी सुदंर रचना कर दी और कैसे स्थान में जिसमें मानव की दृष्टि में अंधकार ही अंधकार रहता है। माता से यह प्रश्न किया जाए कि तेरा जो गर्भाशय है वह अंधकार में है या प्रकाश में है उत्तर अंधकार में ही प्राप्त होगा। परन्तु वह प्रभु कितना कलाकार है, कितना प्रकाशमय है कि जो मानव की दृष्टि में अंधकार है वह उस प्रभु का रचनाकार गृह है, जहाँ मानव जैसे शरीर की रचना कर दी। जहाँ कितना सुदंर लेपन कर देते हैं और नेत्रों को कितना सुंदर बनाया। प्रत्येक इन्द्रियों का रचयिता कौन है? वह ब्रह्म है। आज हमें उस विश्वकर्मा बन करके इस मानव जीवन का निर्माण किया है। कहीं मेरी प्यारी माता के शरीर का

निर्माण, कहीं मानव के शरीर का निर्माण स्थान एक ही स्थान है और नाना पुत्र पुत्रियां माता पिता से उत्पन्न से होती हैं। वही रक्त है, वही अस्थियां है, वही करण है परन्तु उनकी रचना में कितनी भिन्नता प्रतीत होती है। वह प्रभु कितना महान् वैज्ञानिक है।

आज प्रायः मानव यह कहा करता है कि वह प्रभु है ही नहीं। मैं भी यह उच्चारण कर सकता हूँ कि प्रभु नहीं है परन्तु हृदय तो नहीं उच्चारण करता कि वह प्रभु है ही नहीं। प्रभु के न होने पर नाना प्रकार की टिप्पणियाँ चलती रहती हैं। अंत में यह कहा जाता है कि वह प्रभु इतना महान है, इतना सूक्ष्म है कि उसका वर्णन बुद्धि और वाणी अच्छी प्रकार करने में सामर्थ्य नहीं हैं कि वह प्रभु का निर्णय अच्छी प्रकार दे सके। युक्तियाँ होती हैं। एक दूसरे की युक्ति को नष्ट कर देता है। वह अकाट्य भी हो जाती हैं परन्तु उसका जो वास्तविक स्वरूप है मानव उसका वर्णन इस वाणी से नहीं कर सकता। वह प्रभु वाणी से भी परे है आज हम उस प्रभु की महिमा का गुणगान गाते चले जाएं।

हे देवतू कितना महान है। तेरी एक एक रचना कितनी महानता में परणित रह !ती है। एक एक जो नाड़ी चलती है, उसका किस प्रकार सम्बन्ध है। हमारे इस भुज में एक अणिमा है उसमें एक नाड़ी होती है जिसको ऊगंलाकृति कहते हैं उससे द्वितीय जो सूक्ष्म अणिमा है उसमें एक नाड़ी होती है जिसका सम्बन्ध हृदय से होता है। कोई मानव हृदय को प्रबल बनाना चाहता है तो वह जिसे ऊंगलाकृति कहते हैं उसके द्वारा चंदन और नाना प्रकार की जो शक्तिशाली धातुएं हैं उसको अणिमा को अर्पण कर दे तो जिसका हृदय सूक्ष्म होता है उसका हृदय शक्तिशाली बन जाता है क्योंकि उस नाड़ी में यह विशेषता होती है कि प्रबल बना देती है। नाना प्रकार की जो शीतल वस्तुएं हैं जैसे चंदन है अगृति है, कायरुणी है, धीष्ट है, जायफल है और जावित्रि ग्रतियों में जब इन नाना प्रकार की औषधियों का मिश्रण हो जाता है तो नित्य प्रति जो हृदय विशेषकर सूक्ष्म होता है उस अणिमा में लगभग एक प्रहर तक जल का भोग लगा करके अग्रित करते रहे तो उसके हृदय की गति वास्तव में प्रबल हो जाती है। मैं उस प्रभु की महिमा का कहाँ तक वर्णन करूंगा, मेरे में तो इतना सामर्थ्य ही नहीं, मैं तो आज एक सूक्ष्म सी चर्चा करने चला कि आज हम हृदय को ऊँचा बनाना चाहते हैं, विशालता में ले

जाना चाहते हैं, मानवता की उस महानता पर ले जाना चाहते हैं जहाँ मानव अपनी मानवता को ऊँचा बनाता रहे। अब मैं अपने प्यारे महानन्द ती से उच्चारण करूंगा कि अब वह अपने कुछ उद्गार प्रकट करें।

पूज्य महानन्द जीः ओं मया सर्वत्र प्रजा वसु इदम् माम् धेनू रहिणाम्। मेरे पूज्यपाद गरूदेव मुझे आज मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने कुछ समय के !भद्र समाज !ऋषि मण्डल ! पश्चात् यह अमूल्य समय प्रदान किया। इस सूक्ष्म से समय में उच्चारण तो क्या का सकते हैं परन्तु कुछ सूक्ष्म सा परिचय देनेआया हूँ। मुझे अपना परिचय नहीं देना है, हमें तो केवल यह परिचय देना है कि यह जो मानव समाज है, राष्ट्रवाद है यह किस आँगन को चला जा रहा है। आज का जो प्रवाह है उनका न प्रति कहाँ अंत होगा। जैसे गंगा जल में जल अपनी गति कर रहा है। आज का मानव कहीं साम्यवाद की घोषणा करता है तो कहीं वह विचार विनिमय करता है कि हमें कौन से पथ को अपनाना है वास्तव में साम्यवाद और प्रजातंत्र क्या है?

आज भिन्न भिन्न प्रकार की विचार धाराएं दृष्टिगोचर आती हैं। कोई अपने को रूढ़िवाद में ले जाता है कोई मानव राष्ट्र को हिन्दुत्व के नाम से वर्णन करता है। मैं यह उच्चारण करने आया हूँ कि राष्ट्र रूढ़िवाद नहीं होता, इसमें साम्य विचार होते हैं इसमें सभी मानवों के उच्चारण करने का अधिकार होता है परन्तु जो इसका द्रोही होता है उसे एक भी वाक्य उच्चारण न करने दो। जब वह द्रोही वाक्य उच्चारण करता हे एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र के आँगन में देना चाहता हैं तो वह राष्ट्र का यथार्थ द्रोही होता है।

आज साम्यवाद प्राणी कहते हैं कि हम सब समाज को एक सा दृष्टिपात करना चाहते हैं प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्याएं, हमें एक सी प्रतीत हो जाएं। आज इसकी घोषणा ही घोषणा है अथवा उनके क्रियात्मक में भी है या नहीं। जब प्रत्येक प्राणी इस प्रकार की विचारधारा में आ जाता है तो उस प्रजा को कोई भी राजा नहीं होता साम्यवाद कहते ही उसे हैं जहाँ न कोई धिराज होता है, सब प्रजा साम्यता में परणित हो जाती है। वहाँ मानव के द्वारा अपने कर्त्तव्य का एक लक्ष्य होता है और जहाँ निर्धन प्राणियों को लेकर जो प्राणी चलता है अपनी मानवता को एश्वर्य में ले जाना चाहता है उसको

आज साम्यवाद कहना यह मानवता के लिए बड़ा आघात होता। मैंने अपने पूज्यपाद गुरूदेव से इस विषय में बहुत विचार विनिमय भी किया कि यह साम्यवाद क्या है। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने यह कहा था कि साम्यवाद मानव को साम्यता देता है सबको एक सा बनाता है आज इसको हम एक सा कैसे दृष्टिपात कर सकते हैं जब प्रजा के नेतृतव करने वाला राजा बना हुआ है परन्तु साम्यवाद में कोई किसी का राजा नहीं होता है। साम्यवाद में सेवक होता है और यह निश्चय है कि जो सेवक होता है वही संसार में प्रबल होता है और साम्यवाद में सभी प्राणी सेवक होते हैं।

हमारे यहाँ जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है तो उस समय यह समाज सब साम्यवाद की छत्र छाया में रहता है, उनके प्रारब्ध, उनकी क्रियता उनके साथ साथ रमण करती रहती है। उनका न कोई राजा होता है न धिराज होता है केवल कर्त्तव्य का पालन करते वाले जाते है। जब प्रजा का प्रत्येक प्राणी अपने कर्त्तव्यवाद में सलंग्न हो जाता है और वह यह जानता है कि यह मेरा राष्ट्र है और जो मानव उसका नेतृत्व करने वाला है वह अपने को प्रजा का सेवक स्वीकार कर लेता है और वह जानता है कि मैं सेवक हो गया हूँ, मुझे आज इस प्रजा का ऐश्वर्य को अपने में संग्रह करने का अधिकार नहीं है, जब इस प्रकार की भावना इन दोनों में आएगी तो वही प्रजातंत्र है और वही साम्यवाद है। दोनों के अंत में सामान्य विचार हो जाते हैं।

आज के राष्ट्र में मुझे यह प्रतीत हो रहा है कि जो द्रव्यपति है वह द्रव्य एकत्रित करने में लगा हुआ है और जो निर्धन है वह अन्न से पीड़ित हो चला जा रहा तो क्या यह प्रजातंत्र है या इस राष्ट्र को रक्त का पिपासी उच्चारण कर सकते हैं? आज वह मानव अपने ऊपर दया करता है और न दूसरों के ऊपर दया करता है वह केवल अपनी रसना और उपस्थ इन्द्रियों के आँगन में यह समाज लगा हुआ है। आज मैं आलोचना करने नहीं आया हूँ मुझे जो दृष्टिपात आ रहा है उच्चारण कर रहा हूँ। आज मेरी प्यारी माताएं अपने श्रृङ्गार की लोलुपता में इतनी संलग्न हो चुकी है कि उनके द्वारा उनका चरित्र रहे या न रहे। मैं किसी किसी काल में आश्चर्य हो जाता हूँ कि क्या इनको माता

कहना चाहिए। मैं इन वाक्यों को स्पष्टता से वर्णन नहीं करना चाहता।

मानव का जीवन जब प्रारब्ध से बना है तो प्रारब्ध पर मानव की आस्था होनी चाहिए। आज हम प्रजातंत्र में पहुंचना चाहते हैं, साम्यवाद की भी घोषणा करते हैं तो यह विचार विनिमय कर लेना चाहिए कि मानव के साथ में तीन प्रकार के कर्म होते हैं क्रियात्मक, संचित्त और प्रारब्ध। जब प्रारब्ध इस प्रकार साथ साथ चलता है और वहाँ प्रारब्ध मानव को ऊँचा बनाता है, तुच्छ बनाता है और उसी प्रारब्ध के साथ साथ यह समाज चलता रहता है, परन्तु उस प्रारब्ध पर आस्था न होने के कारण जितने यह सब वाद हैं, जिसमें हमारा एक दूसरे राष्ट्र से संघर्ष है यह उसी काल में होता है जब हमें अपने ऊपर आस्था नहीं होती। आस्था होना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है।

आज हम यह विचारने लगते हैं कि आज हमारी सीमाओं पर आक्रमण होने जा रहा है, आज हम अपनी सीमाओं की रक्षा करने चलें परन्तु क्या सीमाओं की रक्षा इस प्रकार हो सकेगी? सीमाओं की रक्षा तो कर्त्तव्यवाद से होती है, और गम्भीरता से होती है। गम्भीर व्यक्ति कौन होता हैं? जो अपनी मानवता की परिस्थितियों को जानता है। जानता कौन है? वही जानता है जिसके द्वारा कर्त्तव्यवाद है और जो यह जानता है कि तू आज है कल नहीं रहेगा, तू भी अपने जैसा बना करके यहाँ से चला जा। प्रत्येक मानव प्रत्येक मेरी माताओं और ऋषि मण्डल को जानना है कि आज हम किस क्षेत्र में जाना चाहते हैं। आज जब मैं धर्म के ऊपर जाता हूँ तो वहाँ मुझे कुछ और ही प्रतीत होता है। वहाँ न साम्यवाद है और न प्रजातंत्र है। वह क्या है? एक बुद्धिमान हो गया तो वह जानता है कि तू बुद्धिमान् है तू भी अपनी त्वचा के आनंद में सलंग्न हो जा। वह भी एक सोटे को ले करके चल देता है न उसे अपनी प्रजा का, न राष्ट्र का ध्यान है यह केवल उसका जो आनंद है उसी में आनंद ही आनंद मनाता रहता है। यह है धर्मों की व्यवस्था। मैं उन धर्मों के क्षेत्रों में नहीं जाना चाहता हूँ। मैं केवल यह उच्चारण करना चाहता हूँ कि आज हमें साम्यवादी बनना है, प्रजातंत्रवादी बनना है तो दोनां में कर्त्तव्यवाद की आवश्यकता है। प्रजा इतनी महान होनी चाहिए, कि उसके चरित्र का प्रभाव प्रत्येक मानव और प्रत्येक देवकन्या पर हो तो यह प्रजातंत्रद ऊँचा बन

सकेगा। साम्यवाद वहीं ऊँचा बन सकेगा जिस साम्यवादी का चरित्र ऊँचा होगा, मानवता ऊँची होगी, सांत्वना होगी और जो मन में एक ऊँची धारा को लेकर चलता है। उसकी छत्रछाया में यह संसार सलंग्न हो जाता है, प्रत्येक राष्ट्र उसकी छत्रछाया में आ जाते हैं। राजा के राष्ट्र में संग्रह करने वाले प्राणी नहीं होने चाहिए। जितना संग्रह किया जाएगा और संग्रहवादी प्राणी होंगे उतना ही राष्ट्र की उदर भ्रष्ट होता है। उदर में कृषि होती है, समाज होता है तो उस राष्ट्र के राजा को सफलता प्राप्त नहीं होती। इसलिए हे संसारवादियोतुम्हें विचारना है कि आज राष्ट्र को ऊँचा बनाने में !, प्रजा को ऊँचा बनाने में तुम्हें संग्रह नहीं करना है। मैं इसका विरोधी नहीं हूँ कि संग्रह नहीं होना चाहिए जिससे तुम्हारा उदर सुंदर रहे, राष्ट्र के उदर में किसी प्रकार की हानि न आए। जब वैश्य संग्रह करने वाला बन जाता है, अति संग्रह कर लेता है तो वह राष्ट्र का उदर भ्रष्ट हो जाता है। जब उदर भ्रष्ट हो गया तो राष्ट्र कैसे सम्पन्न होगा। आज के इस मानव को, अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाने में, अपनी सीमा की रक्षा करने में, क्षत्रिय बल और चरित्रवान बल ऊँचा होना चाहिए। राजा स्वयं चरित्रवान होना चाहिए। आज हमारी आकाशवाणी जिस भूमि पर जा रही हैं, जिस इन्द्रप्रस्थ में महाराजा दलीप जी ने राज्य किया था रघु प्रणाली में, इसी इन्द्रप्रस्थ में महाराजा युधिष्ठिर को पाताका फहराई, इस इन्द्रप्रस्थ में न जाने क्या क्या हुआ, यवनो का राष्ट्र भी रहा परन्तु आज पुनः से इसमें चेतनता आती चली गई परन्तु आज के राष्ट्रवादियों का मैं कहाँ तक वर्णन कर सकता हूँ। आज के राष्ट्रवाद में प्रजातंत्र की घोषणा करते रहते हैं। क्या प्रजातंत्र ऐसे ही बनेगा? अरे, राष्ट्रवादियों जैसे तुम संग्रह कर रहे हो तो क्या यह राष्ट्र ऐसे ही ऊँचा बन जाएगा? यह ऊँचा नहीं बनेगा। समय निकट आ रहा है जब इस संसार में अग्नि प्रदीप्त होने वाली है, एक समय वह आएगा कि तुम अग्नि के मुख में चले ही आओगे।

हे मानव आज विचार विनिमय करते चले जाओ। अपनी मृत्यु को क्यों नहीं विचारते। ! आज के मानववाद में भ्रष्टवाद का एक ही कारण है कि वह अपनी मृत्यु को अपने से पूरी कर रहे हैं। जब मानव स्मरण कर लेता है कि एक समय मुत्यु आनी ही है और तुझे कर्त्तव्यवाद करना है, कर्त्तव्य करते हुए इस शरीर को त्यागना है तो वह इस

राष्ट्र को ऊँचा बना सकता है अन्यथा यहाँ कितने होकर चले गए। अरे, इसी इन्द्रप्रस्थ में जब महाराज युधिष्ठर ने राजसूय यज्ञ किया यहाँ दुर्योधन आ गए और विचारा कि यह पांडवों का यज्ञ भ्रष्ट हो जाएं, परन्तु जब नष्ट होता है तो अपने कर्मों से ही नष्ट होता है, किसी के नष्ट करने से कोई मानव नष्ट नहीं हुआ करता, यह विचार लो। महाराजा दुर्योधन ने तो हस्तिनापुर के आँगन में विराजमान होकर यहाँ कहा था कि मैं पांडवों को इतनी भी भूमि नहीं देना चाहता जितना श्वास का एक परमाणु पृथ्वी पर गिर जाता है परन्तु वह कहाँ चले गए? उनका संसार में हमें चिन्ह भी प्राप्त नहीं होता। इसमें जो भी आता है। ऊँचे कर्म कर लो, क्लिष्ट कर्म कर लो, ऊँचा प्रारब्ध कर लो, क्लिष्ट प्रारब्ध बना लो, साम्य को विचार लो, प्रजातंत्र को विचार लो, उसके अनुकूल कर्म कर लो परन्तु मानव का यह शरीर सदैव इस प्रकार का नहीं रह पाता। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने कहा है कि तुम कटु उच्चारण करते हो परन्तु मैं कटु उच्चारण नहीं करता केवल पदार्थ को ज्यों का त्यों उच्चारण कर देता हूँ। आज के समाज में उच्चारण करने से लाभ भी नहीं है परन्तु मैं यह जानता हूँ कि हमारे जो उद्गार है, उन्हें प्रजता माने न माने, क्रिया में लाए न जाएं परन्तु वायुमण्डल में यह सब विचार परणित हो जाएंगे और जो मृत विचार हैं उन्हें कुछ न कुछ नष्ट करते ही चले जाएंगे, इसीलिए हम इन वाक्यों को उच्चारण किया करते हैं।

आज में यह उच्चारण करता चला जा रहा था कि आज हम मृत्यु को नहीं विचारे और जो मृत्यु को नहीं विचारेगा तो इस संसार में, इस प्रभु के मण्डल में, इस प्रकृति के गर्भ में एक समय वह आता है कि प्रकृति उसे ठुकरा देती है, प्रकृति उसी प्राणी की साथी बनती है जो मानव अपनी मृत्यु को स्मरण कर लेता है। जो यथार्थ चिन्तन करता है प्रकृति उसे अपनी गोद में ले लेती है। जो यहाँ संसार में आकर के यथार्थ चिन्तन नहीं करता, क्लिष्ट चिन्तन करता रहता है, मानव से दूर चला जाता है तो एक समय वह आता है कि प्रकृति उसे अपने से ठुकरा देती है। उसके जो प्रारब्ध हैं वह उसे धिक्कारते हैं इसीलिए मैं तो यह कहने आया हूँ कि हे मानव तू अपनी मृत्यु को भी ! स्मरण कर। जब तेरी मृत्यु आएगी तो इस संसार में तेरा कोई साथी नहीं बनेगा केवल

प्रारब्ध ही तुम्हारे साथ जाएगा। इसीलिए आज मैं उच्चारण करने आया हूँ कि राष्ट्र को, समज को ऊँचा बनाने में सदैव तत्पर रहो क्योंकि यही तुम्हारा प्राण है, इसी में मानव का जीवन है, इस जीवन में ही जीवनता प्राप्त होती रहती है।

मेरे प्यारेगुरूदेव तो कहीं ब्रह्मा ! की चर्चा प्रकट करते रहते हैं, कहीं शिव की करते हैं परन्तु मैं तो यह उच्चारण करने आया हूँ कि आज का जो यह मानववाद है इसको स्वयं ही विचारना होगा और नहीं विचारा जाएगा तो वह समय निकट आ रहा है जब मानव मानव हृदय में अग्नि प्रदीप्त होती होती चली जाएगी।

जब मैं इस संसार को स्वप्नवत् ही दृष्टिपात करता हूँ तो मुझे तो प्रतीत होने लगता है कि जैसे पृथ्वी के इन आँगन में इस समय अग्नि प्रदीप्त होने जा रही है और शनैः शनैः वह अग्नि मानव के निकट को आती चली जा रही है। समय आ रहा है जब यह मानव, यह जितने सब राष्ट्र हैं एकत्रित हो करके अग्नि की वेदी में भस्म हो जाएंगे परन्तु बचेगा कौन? जो यथार्थवादी है, जो महान है। महान पुरूषों को काल नहीं ले जाता। महापुरूष को यह मिथ्यावाद मिथ्यावादी नहीं बना सकता।

आज जग मैं राष्ट्रवाद की कल्पना त्याग कर केवल धर्म के क्षेत्र में जाता हूँ तो कोई ईसा के मानने वाला बना हुआ है, कोई शंकर को मना रहा है तो कोई दयानंद का पुजारी बना हुआ है, यहाँ नाना प्रकार के महापुरूषों में पुजारी बने हुए है, कोई कृष्ण का पुजारी है तो कोई राम का। परन्तु जब इन इनके अंतिम विचार लेते हैं तो एक ही विचार है कि मानवता होनी चाहिए। ईसा के मानने वाले भी कहते हैं कि शिष्टाचार और मानवता होनी चाहिए और मुहम्मद के मानने वाले भी यही कहते है कि मानवता होनी चाहिए। दयानंद के विचारवादी भी और महात्माओं के अनुगामियों के नाना विचारवादी भी यही कहते हैं कि मानवता होनी चाहिए परन्तु जहाँ में ऋषि मुनियों के विचार लेता हूँ तो ऋषि मुनि भी यही कहते हैं कि आज मानवता के क्षेत्र में धर्म होना चाहिए और धर्म क्या है? धर्म नाम विचार का है। आज प्रायः मानव यह कहता है कि अन्न की बड़ी सूक्ष्मता है इसीलिए दूसरों के गर्भाओं को निगल जाना चाहिए। मांस इत्यादि को पान करना चाहिए, उससें हमारे उदर की पूर्ति हो जाएगी और वह यह कहता है कि मांस

भक्षण करना कोई पाप नहीं है और गर्भ में कोई जीव नहीं होता है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि यदि तुम्हारे मस्तिष्क में से कुछ रक्त लेकर दूसरा प्राणी उसको पान कर लेता है तो कितना कष्ट होता है। अरे, जिनमें जीव हैं, जिन प्राणियों में जीवात्मा है जिनका तुम रक्त लोगे, रक्त के पिपासी बनोगे उसको उतना ही कष्ट होगा जितना तुम्हें स्वयं कष्ट होता है। धर्म उसी को कहते हैं कि जो वस्तु हमें स्वयं को कष्टमय प्रतीत होती है वह दूसरों के लिए भी इसी प्रकार की है। आज उसे भी हम उसी दृष्टि से दृष्टिपात करेंगे तो हमारा धर्म हो जाएगा। धर्म किसी की सभ्यता नहीं होती, धर्म तो सभी का एक सा होता है। धर्म केवल मानवता तक ही सीमित नहीं रहता वह ईश्वर तक रहता है, वह वायु मण्डल तक रहता है। इसी प्रकारआज हम यह विचार विनिमय करते चले जाएं कि धर्म क्या है? जिसको हम दूसरों को कष्ट देना चाहते हैं अपनी रसना के आंनद के लिए वह स्वयं हमारे लिए पाप बन जाता है। जब धर्म की इस प्रकार की धाराएं बन जाएगी तो वह जो नाना रूढ़िवाद है यह सब नष्ट हो जाएंगे और जहाँ रूढ़िवाद नष्ट हुआ, मानवता आ जाती है वैदिकता आ जाती है, प्रकाशमय समाज बन जाता है।

ऋषि दयानंद ने, देखो, ऋषि मैं उसे कहा करता हूँ जिसमें ऋषियों वाले लक्षण होते हैं, उस ऋषि ने घोषणा करते हुए राजा को भी यही कहा कि हे राजन् तू कहाँ जा ! रहा है, तू अपने मानवत्व को ऊँचा क्यों नहीं बनाता, सभी को उन्होंने मानवता को ऊँचा बनाने के लिए कहा था, वैदिकता को अपनाने के लए, प्रकाश को अपनाने के लिए कहाँ आज उस महापुरूष की वार्त्ता सर्वोपरि है। उन्हें स्वीकार करना हमारा कर्त्तव्य है। वास्तव में तो हम उनके विचारों को विचार ही नहीं सकते। तो उनके जो उद्गार हैं वह इतने महान हैं जो ऋषि परंपरा के आधार के उद्गार हैं। आगे शंकराचार्य की वार्त्ता, कणाद और गौतम के विचार आदि ब्रह्मा के विचार, इन सब महापुरूषों की वार्त्ताओं में कोई न कोई तथ्य होता है और उस महानता को अपनाना मानव का कर्त्तव्य होता है, उसको अपना करके रूढ़िवाद को त्यागना और यथार्थवाद को लाना मानव का कर्त्तव्य होता है। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने कल के वाक्यों में बहुत सुदंर विचारधारा प्रकट की

कि दो प्रकार के महापुरूष होते हैं। उन दो प्रकार के महापुरूषों की हमें ऊँची कल्पना करनी चाहिए।

आज हम किसी मानव को अपने आँगन में लाना चाहते हैं वह इस प्रकार आधीन नहीं बनेगा आधीन तब बनता है जब मानव की मानवीयता में सूक्ष्मता होती है परन्तु जब मानवीयता महान होती है, विचित्र होता है उस मानव को कोई पराधीन नहीं कर सकता है जो राष्ट्र के नियम के अनुकूल नहीं चलेगा। जिसका राष्ट्र के नियमों से भी ऊपर उपराम हो गया है उसको राजा अपने अधीन नहीं बना सकता। इसी प्रकार आज जो प्रभुकृत धर्म है उसको अपनाना इस समाज और राष्ट्र को ऊँचा बनाना है। उस मानव का संसार में कोई तिरस्कार नहीं कर सकता। उन प्राणियों का तिरस्कार होता है जो अपनी मानवता के नीचे चले जाते हैं। संग्रह करने लगते है, संग्रह करके वह इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे स्वाति नक्षत्र, अवरेत में नष्ट हो जाता है। मैं आज अधिक चर्चा तो प्रकट करने नहीं आया हूँ मैं तो केवल वह उच्चारण करने आया हूँ कि आज मानव भिन्न भिन्न प्रकार का नाद देता है, कोई प्रजातंत्र का घोष करता है तो कोई साम्यवाद का परन्तु साम्यवाद और प्रजातंत्र दोनों एक ही हैं परन्तु उस काल में जब अपने अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते और घोष करते है। आज जब उनके यहाँ नाना प्रकार के ऐश्वर्य है और कैसे एश्वर्य हैं कि जिनको साधारण समाज श्रवण करता हुआ मानो वह भ्रष्ट हो जाता है, आज जिनके द्वारा इस प्रकार सामग्री हो वह प्रजातंत्र की घोषणा करें तो यह प्रजातंत्र तो अग्नि के मुख में ही है। इसमें कोई संदेह नहीं है। इसीलिए मैं कहा करता हूँ कि हे बुद्धिमान ब्रह्मणाजन तू चल और घोष करने वाले को घोष कर कि तू ! कहाँ जा रहा है, आज तूम भ्रष्टाचार की वेदी पर न जा, यह द्रव्य तेरे साथ नहीं जाएगा, तेरी मानवता तेरे साथ जाएगी यह त्वचा का आनंद तेरे साथ नहीं जाएगा। यहाँ महापुरूष वही होते हैं और राजा वही होते हैं जिनकी विचारधारा व्यापक होती है और विचारधारा में भ्रष्टाचार नहीं होता, वह इस समाज और राष्ट्र को ऊँचा बना देते हैं, उनकी यह महानता प्रजा को ऊँचा बना देती हैं। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव यदि मुझे कल आज्ञा देंगे तो मैं कल धर्म के सबंध में कुछ विवेचना कर सकूंगा। आज में केवल

यह उच्चारण करने आया हूँ कि आज के राष्ट्रवाद में कोर्द प्रजातंत्र लाना चाहता है, साम्यवाद लाना चाहता है तो वहाँ भी वह महान क्रान्ति नहीं है। कल मैं महाक्रान्ति के सम्बन्ध में प्रकाश दे सकूंगा कि महाक्रान्ति कौन सी होती है और क्या करती है। यह जो व्यापक कर्म करने वाला प्राणी होता है वह सदैव अपने हृदय से, अपनी मानवीयता ये उन वाक्यों का उच्चारण करता है जिनमें राष्ट्रवाद गुंथा होता है। मैं आज दोनां की समालोचना नहीं उनकी तंत्रता, उनकी विचार धाराओं का संक्षिप्त परिचय दिया। यदि कल मुझे समय मिलेगा तो मैं महान क्रान्ति कैसे आती है और महान क्रान्ति मानव को कैसे अपने वशीभूत कर लेती है प्रकट करूंगा यदि मेरे पूज्यपाद गुरूदेव मुझे समय देंगे तो आज का यह वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से आज्ञा चाहूँगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने बहुत !आज मेरे प्यारे !ऋषि मण्डल ! ही सुदंर विचार दिए परन्तु कही ं न कहीं कुछ सूक्ष्मता तो रह ही जाती है। कल मेरे प्यारे महानन्द जी यह भी प्रकट करेंगे कि महान क्रान्ति कैसे आती है। आज के ! उद्गार तो इनके सुंदर रहे कहीं कटुता में तो चले ही जाते हैं उसमें तो कोई संदेह ही नहीं है। आज इन्होंने दो प्रकार के राष्ट्रवाद की विवेचना की है, एक वह विवेचना है जो साम्यवाद जिसका मानव के शरीर से निकास हुआ है और एक वह जिसे प्रजातंत्र कहते हैं जिसका मानव के मन, वचन और कर्म से विकास हुआ है। मानव के जो साम्य विचार हैं वह तो मानव के मानवीय विज्ञान से उत्पन्न हुए क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इसका इससे विकास है और इसी को साम्यवाद कहते हैं। जहाँ बुद्धिमान ब्राह्मण होते हैं, क्षत्रिय बलवान होते हैं, वैश्य जहाँ संग्रह करने वाले नहीं होते है और शूद्र जो बुद्धिमान नहीं होते अपने कर्त्तव्य का पालन करते चले जाते हैं तां इसको कहते हैं साम्यवाद और जो प्रजातंत्र है वह मानव के मन, वचन कर्म से उत्पन्न हुआ है। वही प्रजा तंत्र को ऊँचा बना सकता है जिस राजा की प्रजा मन, वचन, कर्म से राष्ट्र के हित में होती है। यदि प्रजा मन, वचन और कर्म से राष्ट्र के हित में नहीं होती और वह स्वार्थ में रहती है तो उसे प्रजातंत्र नहीं कहना चाहिए। यह बहुत सुंदर विचार है। इन

सुंदर विचारों को लाने के लिए महान क्रान्ति की आवश्यकता है। कल मेरे प्यारे ! महानन्द जी प्रकट करेंगे आज का मुझे यह वाक्य बहुत सुंदर प्रतीत हुआ, इससे मानववाद को बड़ा बल प्राप्त होता है। इन्होंने एक वाक्य और कहा है कि यह समाज हमारे वाक्य को स्वीकार करें या न करे परन्तु जो हमारे यथार्थ उद्गार हैं वह वायुमण्डल को तो पवित्र करेंगे ही। यदि मानव के हृदय में जितनी ग्लानि आ गई है, इतनी दुर्गन्ध हो गई है कि वह अच्छाइयों को अपने में समाहित नहीं कर सकते तो वायुमण्डल तो पवित्र अवश्य ही बनेगा। यह बहुत सुंदर विचार है। आज का यह वाक्य अब समाप्त होता है। अब वेद का पाठ होगा इसके पश्चात वाक्य समाप्त है।

८ 31 07 1968 पुष्प 11 यथार्थ क्रान्ति

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ वेद मन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। आज का वेद पाठ मुझे बहुत प्रिय लग रहा था और हमें ऐसा प्रतीत होता चला जा रहा था जैसे परमपिता परमात्मा इस वेदवाणी के द्वारा मानव के अंतरआत्मा को पवित्र बनाने जा रहा है और संसार का जितना ज्ञान और विज्ञान है उसकी प्रतिभा प्रदान करता चला जा रहा है।

आज के हमारे प्रांरभ के वेद मन्त्रों में उस मनोहर प्रभु की याचना की जा रही थी जो प्रभु लोक लोकांतरों का स्वामित्व किया करता है और वह जो लोक लोकांतर अपने अपने आँगन में भ्रमण कर रहे हैं, उनमें जो क्रिया प्रदान करने वाला वे परमपिता परमात्मा है। उस प्रभु का जो गर्भाशय है वह कितना विचित्र और महान है कि उसमें यह सर्वशः ब्रह्माण्ड समाहित हो रहा है। जिस प्रकार माता के गर्भ स्थल में जब जरायुज होता है तो उसकी पांच ज्ञान इन्द्रियाँ, पांच कर्म इन्द्रियाँ, मन बुद्धि यह सब उस माता के गर्भस्थल में निहित होती हैं, इसी प्रकार यह जो ब्रह्माण्ड है यह उस परम पिता परमात्मा का गर्भाशय माना जाता है। यह जितने लोक लोकातंर हैं प्राणीमात्र हैं सब उसके गर्भ में भ्रमण कर रहे हैं। अपने अपने आँगन में वह क्रिया करते चले जा रहे हैं। एक महानता को लाने में सदैव तत्पर रहते हैं। यह संसार हमें विचित्र प्रतीत हो

रहा है, वह जो विश्वकर्मा है वह कितना महान है, उसके हृदय की जो विशालता है वह कितनी महान है, जिस विशालता के लिए मानव सदैव अपने जीवन में प्रत्यनशील रहता है परन्तु जब हम प्रभु और मानवता के सम्बन्ध में विचार विनिमय करते हैं उसके ज्ञान विज्ञान के सम्बन्ध में तो मानव चित्राः अस्ति ग्रीहः मानव मौन हो जाता है, शान्त हो जाता है परन्तु जब हम यह विचारने लगते हैं कि प्रभु का गर्भाशय कितना विचित्र है, नाना प्रकार की वनस्पतियाँ उत्पन्न हो करके मानव के जीवन का सञ्चार करती रहती हैं। मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया केवल यह कि प्रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्या को उस अपने प्यारे प्रभु की महिमा में सदैव संलग्न रहना चाहिए जो चैतन्य देव है उसकी चैतन्यता इस प्रकृति के कण कण में व्याप्त हो रही है हम इस देव की याचना करते चले जाएं। प्रथम वेदमन्त्र हमें यही नाद दे रहा है। हे मानव तू वास्तव ! में ऊँचा बन। अब मैं अपने प्यारे महानन्द जी से उच्चारण करूंगा कि वह अपने कुछ उदार वाक्य प्रकट करें कटुता को त्याग करके।

पूज्य महानन्द जीः ओं सर्वांग मम हृदयश्चत प्रणी मम वेत्ताः हृदयं श्वाकृतम् देवम् मयाः। मेरे पूज्य गुरूदेव मुझे उस परम पिता परमात्मा की !भद्र समाज !ऋकष मण्डल ! अनुपम महिमामय, पूज्य गुरूदेव की अनुपम दया ने यह अमूल्य समय पुनः प्रदान किया। यह आज मैं कोई विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। कल के वाक्यों में हमने प्रकट कराया था कि आज का जो मानव है, आज का जो राष्ट्रवाद है वह दो विचारधाराओं में विभाजित हो रहा है, मानव की यह दो विचारधारा परंपरा से चली आ रही है परन्तु आज विचार विनिमय यह करना है कि मानव अपने गृह में, अपने राष्ट्र में वास्तविकता को लाना चाहता है। प्रत्येक मानव के हृदय में यह चिन्तन लगा रहता है कि यथार्थ क्रान्ति को लाना है परन्तु विचार नहीं आ रहा है कि यथार्थ क्रान्ति क्या होती है।

आज मानव प्रायः नाना प्रकार के यन्त्रों द्वारा अपने मस्तिष्क को क्रान्ति में ले जाता है, वह चन्द्रमा के ऊपर विचार विनिमय करने लगता है, उसी में वह यथार्थ क्रान्ति को लाना चाहते हैं। आज का कोई मानव यह उच्चारण करे कि मैं चन्द्रमा पर जाने वाले यन्त्रों का निर्धारण करके यथार्थ शान्ति को प्राप्त हो जाऊंगा या परमाणुवाद के साथ

यथार्थ क्रान्ति कर सकूंगा। यह वास्तव में असंभव है। कहीं कहीं हमारे यहाँ संस्कृताचार्यों ने कहा है अनुभवत्राय अग्रति मानव चक्रति सुद्राः आज मानव उसी चक्र के द्वारा रमण करता रहता है, तो मन में एक महानता की ज्योति को लाने का प्रयास करता रहता है। इसी ज्योति के साथ साथ जब यह विचार आ जाता है कि यथार्थ क्रान्ति को लाना है तो मानव को सबसे प्रथम मानव को आत्मविश्वासी बनाना है। आत्व विश्वासी व्यक्ति वह होता है जो प्रभु का प्यारा होता है। आत्म विश्वास उसके द्वारा होता है जो त्याग और तपस्या में परिण्ति रहता है। यथार्थ क्रान्ति को विचार विनिमय करने वाला अपने जीवन में यह विचार लेता है कि एक समय वह आएगा कि तू नहीं रहेगा परन्तु तेरी जो महान क्रान्ति है यह सदैव संसार में ज्योति बन करके रहेगी।

यथार्थ क्रान्ति क्या होती है? मुझे स्मरण आने लगता है मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने तो वर्णन कराया ही है परन्तु मुझे भी स्मरण है कि एक समय मुझे देव ऋषि नारद की सभा में जाने का सौभाग्य मिला जिसमें महर्षि शोनक, महर्षि पिप्लाद, महर्षि दालभ्य इत्यादि ऋषिवर विराजमान थे। उनका विचार विनिमय चल रहा था, यथार्थ क्रान्ति को श्रवण करने के लिए मृगराज आ गए, नाना प्राणी आ गए। विचारा गया कि यथार्थ क्रान्ति वह होती है जहाँ हिंसक प्राणियों को भी अहिंसा परमोधर्म का पालन करने के लिए बाध्य कर देती है। परन्तु जो संसार में यथार्थ क्रान्ति की घोषणा करता है, नाद देता है परन्तु वह हिंसक प्राणियों को अहिंसा में परिवर्तन नहीं कर सकता तो संसार में यथार्थ क्रान्ति नहीं ला सकता। आधुनिक काल के राष्ट्रवाद के प्राणियों को दृष्टिपात करता हूँ वह क्रान्ति लाना चाहते हैं। आज उस क्रान्ति से ही राष्ट्र और समाज ऊँचा नहीं बना करता है, जिस क्रान्ति को आज मानव लाना चाहता है। आज की क्रान्ति किस प्रकार की है? जब अपनी लोलुपता का समय आता है उस समय प्राणी क्रान्ति लाने का प्रयास करता है परन्तु वह क्रान्ति स्वार्थ में लदी होती है, वह क्रान्ति नहीं होती वह हिंसक क्रान्ति होती है जो मानव का भक्षण कर जाती है। इसलिए हे मानव तेरे ! लिए यह क्रान्ति सुदंर नहीं है, क्रान्ति वह होती है जहाँ आत्म विश्वास होता, आत्मा की चुनौती देता रहता है, उन्हीं कार्यों में संग्लन रहता है, उस क्रान्ति को लाने वाला जो

प्राणी होता है वह सबसे प्रथम अपने मन की तंरगों को, अपनी ज्ञान इन्द्रियों कर्म इन्द्रियों को अपने स्वयं में लाने का नाम यथार्थ क्रान्ति है।
हे मानव आज संसार में वही यथार्थ क्रान्तिवेत्ता बन सकता है जो मानव अपनी ज्ञान ! इन्द्रियों, कर्म इन्द्रियों को वश में करने वाला होता है। मन को अपने अधीन बना लेता है। वह प्राणी मन, वचन और कर्म से क्रान्ति में ही रहना चाहता है वह कहता है कि आज किसी को कष्ट होता है तो वह मेरा ही कष्ट है। जब वह व्यापक विचारधारा मानव के द्वार से चली जाती है तो यदि वह संसार, यह समाज यथार्थ क्रान्ति को लाने की घोषणा करता है तो यह केवल एक प्रकार का दंभ छल और पाखण्ड कहलाया जाता है। मुझे महाराजा शंकराचार्य का जीवन स्मरण है। उनके हृदय में क्या विचारधारा आई कि आज मैं वैदिकता को ऊँचा बनाना चाहता हूँ, वेदांत को ले करके चलना चाहता हूँ, प्रभु की छत्र छाया में रहना चाहता हूँ, संसार के नाना प्रकार के प्रलोभन उस व्यक्ति के द्वारा आए परन्तु उस व्यक्ति ने उन प्रलोभनों को नष्ट कर दिया। नाना ग्रहियों ने नाना जैन समाज ने उन्हें नाना प्रलोभन दिए परन्तु उस महान क्रान्तिकारी ने यह कहा कि मैं प्रभु के राष्ट्र में हूँ, मैं अपने उस महान कार्य के लिए आया हूँ जिस कार्य को करने के पश्चात् मुझे एक महान राष्ट्र की प्राप्ति हो जाए, मैं द्रव्य नहीं चाहता, मैं संसार का प्रलोभन नहीं चाहता, लोलुपता नहीं चाहता परन्तु मैं यथार्थवाद को लाना चाहता हूँ।
उसके पश्चात् यहाँ महात्मा ईसा का जीवन मुझे स्मरण आता रहात है। महात्मा ईसा को यहूदी नष्ट करने लगे परन्तु उन्होंने मृत्यु के मुख में जाते हुए कहा कि मुझे नष्ट कर सकते हो परन्तु मेरी यथार्थ क्रान्ति आत्म विश्वास है इसे छेदन नहीं कर सकते। इस प्रकार जो मानव महान होते हैं उनके हृदयों में जो उद्गार होते हैं उनको कोई मानव छेदन नहीं कर सकता है।
महात्मा दयानंद का जीवन मुझे स्मरण है। उनके अंतरात्मा को जो विश्वास था वह जब मुझे स्मरण आने लगता है तो हृदय में व्याकुलता होने लगती है और कहा करता हूँ कि उनकी महानता कितनी विचित्र थी। नाना प्रलोभनों के पश्चात् भी यह कहा कि मैं

ऐसे राष्ट्र पिता के राष्ट्र में हूँ जहाँ मुझे प्रलोभन व्यय नहीं कर सकता क्योंकि प्रलोभन उनको व्यापता है जो प्रभु को अपने से दूर कर देता है। आज वही व्यक्ति महान बना करता है जो प्रभु का विश्वासी होता है, प्रभु की जिसमें वेदना होती है। आज जब मुझे उस महापुरूष का जीवन स्मरण आने लगता है, उनकी विचारधारा, उनका ब्रह्मचर्य, उनका तप स्मरण आने लगता है तो हृदय में गद् गद् होने लगती है और मुझे यह प्रतीत होने लगता है कि वह महापुरूष कैसा महान था कि उसने उस यथार्थ क्रान्ति को लाने का प्रयास किया और उस यथार्थ क्रान्ति का यह परिणाम हुआ कि यह राष्ट्र जो दूसरे राष्ट्रों से दबायमान था वह यहाँ से प्रस्थान कर गए।

आज कोई यथार्थ क्रान्ति को लाना चाहता है तो उसे सबसे प्रथम अपने मानसिक विचार को विचार विनिमय करना होगा, मन को वशीभूत करना होगा, आत्म विश्वास में लाना होगा। जब तक हमें आत्म विश्वास नहीं होगा हम यथार्थ क्रान्ति की घोषणा करते रहे तो यह हमारे लिए शोभा की चर्चा नहीं। परन्तु मुझे स्मरण आता है और भी महान क्रान्तिवादी हुए जिनका हृदय उदार महानता में परणित होता रहा। आज का प्राणी ऐसी क्रान्ति लाना चाहता है कि राम राम मुखारविंद में है परन्तु वह जो द्रव्य है वह मुझे दे दो। ओ३म् की क्रान्ति लाना चाहता है और द्रव्य मेरे आँगन में दे दो तो यह कोई क्रान्ति नहीं होती। यह तो एक प्रकार से दंभ, छल कपट और आडम्बर कहा जाता है। इसी को हमारे ऋषि मुनियों ने, महापुरूषों ने पाखण्ड कहा है। आज पाखण्ड की चर्चा होती रहती है। आज मानव कोई किसी को पाखण्ड उच्चारण करता है कोई किसी को परन्तु पाखण्डी कौन होता है? मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने तो कई काल में वर्णन कराया है परन्तु में भी उच्चारण करता चला जाऊं। सबसे प्रथम तो घोषणा यह है कि मैं दयानंद को मानने वाला हूँ, ऋषि के पद चिन्हों पर चलने वाला हूँ। कोई कहता है कि राम को स्वीकार करता हूँ कोई कृष्ण को परन्तु यह घोषणा ही घोषणा है। जब उनके हृदयों में पहुँ जाता है तो ऐसा प्रतीत है कि द्रव्य की लोलुपता में न दयानंद को मानने वाला है, न शंकर का, न राम का और न कृष्ण का। सब दूर चले जाते हैं। वह केवल वहीं तक है जहाँ तक उनकी व्याख्यान की पद लोलुपता है। मुझे मेरे पूज्यपाद

गुरूदेव ने इतना समय नहीं दिया है कि मैं इनकी व्याख्या विशालता में प्रकट करता रहूँ। केवल मैं यह उच्चारण करना चाहता हूँ कि भगवान कृष्ण का मुझे जीवन स्मरण आता रहता है उनके जीवन में कितनी महान कठिनाइयाँ आईं। आज का मानव उनके विषय में क्या क्या उच्चारण करता है परन्तु उन्होंने जीवन में कोई पाप कर्म नहीं किया। वह इतने महान थे। वहीं तो महापुरूष होते हैं यथार्थ क्रान्तिवादी होते हैं और यथार्थ क्रान्ति ला करके समाज को ऊँचा बना देते हैं।

यह तो मेरे पूज्यपाद गुरूदेव उच्चारण करेंगे कि यह क्या उच्चारण करने लगे परन्तु मुझे तो बड़ा आश्चर्य होता है कि आज प्रायः हम अपने को आर्य उच्चारण कर देते हैं। आर्य यह संसार है, प्रभु का जितना यह मण्डल है यह समस्त आर्य कहलाता है क्योंकि जो अच्छाईयों को ला देता है वह आर्य होता है। परन्तु यहाँ आर्यों की घोषणा करते हैं, आर्य कौन हैं? आर्य वही होता है जो प्रभु का अटूट विश्वासी होता है, जो प्रभु के आँगन में रमण करता रहता है, यथार्थ क्रान्ति को लाने का प्रयास करता रहता है। यथार्थ क्रान्तिवाला व्यक्ति वही होता है जो अपनी विचारधारा को उस प्रभु को अर्पित कर देता है और आत्मविश्वासी हो करके चलता है, अग्नि की भांति अग्रगण्य बन जाता है। जैसे अग्नि प्रकाश देती है इस प्रकार वह प्राणी आगे आगे रमण करता रहता है और यह समाज उसके पद चिन्हों पर चलने वाला बन जाता है।

मुझे आज यह उच्चारण करना है कि ब्राह्मण ब्रह्म अस्ति, जो आज अपने को आर्य कहते हैं उनका यह कार्य था कि राष्ट्र में ऐसे महान क्रान्ति लाने का इनका प्रयत्न करना चाहिए था, इनका एक समाज होता, समाज बन करके वह इतने महान आत्मविश्वास और तपे व्यक्ति होने चाहिए कि जो आज उच्चारण करें, जो योजना बनायें वह राष्ट्र के लिए, राजा के लिए, प्रजा के लिए महान हो और राजा उसको मानने के लिए कटिबद्ध हो जाएं। जब इस प्रकार का समाज होता है महान क्रान्ति के लिए तो वह राष्ट्र और समाज दोनों ऊँचे होते हैं। मुझे स्मरण आता रहता है कि यहाँ प्रायः प्राणी उच्चारण करता है कि गऊ पशु की रक्षा हो। अरे, मानव आज तू इस क्रान्ति को लाने के ! लिए अपनी गऊ रूपी इन्द्रियों की रक्षा तो कर ले। जब तक गऊ रूपी इन्द्रियों की

रक्षा नहीं होगी इस गऊ रूपी पशु की रक्षा नहीं हो सकती क्योंकि हम गऊ रूपी इन्द्रियों में इतने संलग्न हो गएं हैं कि इस राष्ट्रवाद में क्या, इस समाजवाद में क्या, इतना महान घृष्टता वाला समाज बन गया है कि आज संसार में मेरी प्यारी भोजाई, मेरी प्यारी माता, राष्ट्र के इस आँगन से लेकर उस आँगन तक नहीं जा सकती। एक पुत्री अपने गृह से दूसरे आँगन में नहीं जा सकती तो यह क्या है? यह राष्ट्रवाद है, मानववाद है, क्रान्तिवाद है, ? इसको हम क्या उच्चारण कर सकते हैं? इसको केवल यही उच्चारण करेंगे कि यह धीमी धीमी अग्नि संसार में प्रदीप्त हो रही है। धीमी धीमी अग्नि है जो मेरी प्यारी माता और पुत्रियों के गर्भ में प्रदीप्त होने जा रही है, वह समाज में आने वाली है और वह अग्नि इस संसार को भस्मी भूत बनाती चली जाएगी। यही तो समाज है यही तो विचारों का विश्व है। मैं अपने पूज्य गुरूदेव से उच्चारण करूंगा कि विचारों के ब्रह्माण्ड की चर्चा करें। वास्तव में वह कल उच्चारण करेंगे। आज के राष्ट्रवादियों से, आज के मानववाद से, आज के क्रान्तिवादियों से मैं जानना चाहता हूँ कि तुम क्रान्ति वहीं कर सकते हो जहाँ तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध होता है, वहीं तक तुम्हारे आन्दोलन चला करते हैं। इन आन्दोलनों का क्या बनेगा? यह आन्दोलन वह आन्दोलन हैं जिन्होंने इस राष्ट्र को पराधीन बना दिया था। आज ऐसा तो नहीं होगा परन्तु हो या न हो परन्तु एक महान क्रान्ति आने वाली है कि जब एक मानव दूसरे मानव के रक्त का पिपासु बन जाएं। क्या इसको आज हम क्रान्ति उच्चारण कर सकेंगे? आज कोई मानव अपने को यवन उच्चारण कर रहा है तो कोई हिन्दुत्व की घोषणा करता है, कोई आर्य की घोषणा करता है। अरे, मानव जब तक तुम अपनी इन्द्रियों और अपने गौरव ! के पशु को ऊँचा नहींबनाओगे तब तक तुम्हारा राष्ट्र और तुम्हारी मानवता ऊँची नहीं बनेगी। मानवता ऊँचा बनाना प्रथम है, दूसरों की रक्षा तो स्वतः होती चली जाएगी। आज चिन्ता क्यों करते हो। चिन्ता यह करो कि संसार में हमें कुछ बनना है। हम नहीं बनेंगे तो आज हम दूसरों को बना ही नहीं सकेंगे।

मुझे स्मरण आता रहता है कि जिन राष्ट्रों के लिए आज का यह राष्ट्रवाद चिन्तित हो रहा है, आज का यह पद लालुपता वाला व्यक्ति चिन्तित हो रहा है। मुझे वह समय

भी स्मरण है जब महाभारत के काल में यह आज्ञा के अनुसार आने के लिए तत्पर हो जाते थे। आज्ञा पाई और आज्ञा से किसी भी काल में घृत कार्य किया परन्तु आज वही इतनी घृष्टता में चले गये।

जब महाराजा युधिष्ठिर ने इसी इन्द्रप्रस्थ में सर्वश यज्ञ किया था तो यहाँ सर्वज्ञ राजा आ पहुंचे थे और उन राजाओं ने अर्जुन और भीम और भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा से देखो, सर्वश कार्य किया था आज वही राष्ट्र तुम्हें एक नौका जैसा बना रहे हैं कभी तुम्हारी नौका को डुबाने के तुल्य कर देते हैं और किसी काल में ऊँचा बना देते हैं। क्योंकि यह न स्वयं आत्मविश्वासी हो सकते हैं, किसी काल में हुए हैं और न तुम्हें ही किसी काल में संतुष्ट कर सकते हैं, आज प्रत्येक प्राणी को विचारना है और अपनी महानता को स्वयं ऊँचा बनाना है। यथार्थ क्रान्ति को लाने के लिए तत्पर होना है।

आज के राष्ट्रवाद को द्रव्य चाहिए मानवता नहीं। जब मानवता नहीं रहेगी तो द्रव्य का बनेगा क्या। इस द्रव्य का कुछ नहीं बन सकता। आज मेरी प्यारी माता के द्वारा सुन्दर आभूषण हैं परन्तु उसके द्वारा चरित्र नहीं है तो उसके भूषणों का क्या बनेगा। राष्ट्र मेंयदि पद है और द्रव्य है परन्तु उसका चरित्र नहीं है तो राष्ट्र का क्या बनेगा। राष्ट्र किसलिए होता है? राष्ट्र महानता लाने के लिए होता है? यदि राष्ट्र में महानता को नष्ट किया गया तो वह राष्ट्र नहीं एक श्मशान भूमि बन करके रहेगी। जब मानव अपनेपन को नष्ट करता चला जाता है, आत्मविश्वास नहीं रहता तो वह उस महान क्रान्ति को भी नहीं ला सकता। इसलिए हे मानव आज यदि तुम्हें यथार्थ क्रान्ति को लाना है तो सबसे प्रथम ! आत्मविश्वास बनो। आत्मविश्वासी जो प्राणी होता है उसके उच्चारण करते ही समाज में एक महान क्रान्ति आ जाती है। साधारण व्यक्ति भी उसके प्रभाव में आ जाता है। मुझे स्मरण है कि जब ऋषि दयानन्द अपने एक आँगन में विराजमान हो करके किसी वाक्य की घोषणा करते थे, वह कहा करते थे यह मूर्ति पूजा नहीं होनी चाहिए यह इस राष्ट्र को इस समाज को नीचे ले जाएगी तो उसका वाक्य ऐसा कार्य करता जैसा त्रेता काल में राम का बाण रावण की सेना में कार्य करता था। इसी प्रकार वह कार्य करता चला जाता था। आज कहाँ है वह क्रान्ति? आज के मानव को उच्चारण कुछ करना है

परन्तु उच्चारण कुछ करने लगता है तो उनका प्रभाव उनकी यौगिकता सब नष्ट भ्रष्ट हो जाती है, विचारधारा नहीं रह पाती। विचारता में मानव को परणित होना है। आज जिसको यहाँ राष्ट्रपिता कहा जाता है उन्होंने कुछ कुछ अहिंसा को ले जाना, वह जो घोषणा करते थे तो राष्ट्र में एक क्रान्ति अहिंसा को जाना, वह जो घोषणा करते थे तो राष्ट्र में एक क्रान्ति आ जाती थी उस क्रान्ति का परिणाम कि जो द्वितीय राष्ट्र के पराधीन थे उन्हें स्वतंत्र बना दिया। यही होता है यथार्थ क्रान्ति। यह कैसे आती है? यह जब आती है जब आत्मविश्वास होता है। आज राष्ट्र की कुछ ऐसा क्रान्तियां होती रहती हैं कहीं गऊ के सम्बन्ध में है तो कहीं किसी वाक्य को मनाने के लिए क्रान्ति की जा रही है। अरे, मानव तुम स्वयं तो उस वाक्य को विचार लो जो तुम क्रान्ति करने जा रहे ! हो जो तुम आन्दोलन करने जा रहे हो उसका परिणाम क्या होगातुम्हारा हृदय इतना विशाल भी है कि यदि कोई राष्ट्र वेत्ता तुम्हारे प्राण भी लेने लगे तो प्राणों को दे सकते हो अथवा नहीं दे सकते या पद की लोलुपता तो नहीं है। यदि इस प्रकार की विचारधारा नहीं रहेगी तो वह मानव इस राष्ट्र में यथार्थ क्रान्ति नहीं ला सकता है, उस क्रान्ति के लिए आत्मबल को आवश्यकता है, प्रभु विश्वास की आवश्यकता है। जब तक उसे प्रभु का विश्वास नहीं होता, अपने आत्मा का विश्वास नहीं होता तब तक वह यथार्थ क्रान्ति ला ही नहीं सकती।

मैं अधिक चर्चा तो प्रकट करने नहीं आया हूँ केवल यह वाक्य उच्चारण करने अवश्य आया हूँ कि आज के मानववाद को, आज के राष्ट्रवाद को यथार्थ क्रान्ति लाने के लिए आत्मविश्वास बनना होगा, आत्मविश्वास इतनी बलिष्ट होनी चाहिए जिससे उनके हृदय के जो उद्गार हैं, वाक्य हैं, वह ऐसा कार्य करते चले जाएं जैसे महाभारत के संग्राम में अर्जुन के बाण कार्य किया करते थे। इसी प्रकार आज हम अपने जीवन को, अपनी मानवीयता को विचार करके अपने को ऊँचा बनावें। तभी हम दूसरों की रक्षा कर सकते हैं।

आज जब गऊ मांस को भक्षण कर मानव अपनी रसना के आनन्द को मानने लगता है तो यदि उस मानव के मांस को कोई भक्षण करने लगे तो कितना कष्ट होता है।

अरे, प्राणियों जब तुम्हें कष्ट होता है तो जिसके मांस को स्वयं भक्षण करते हो उसे ! कष्ट नहीं हुआ होगा? क्या उसमें उसकी वेदना विराजमान नहीं है जो तुम्हारी बुद्धि को नष्ट करती चली जाती है? क्या कभी तुम यह विचारते हो? नहीं विचारा जाता। धर्म के आँगन में जाने का एक मार्ग है जिसको ऊँचा बनना है। वह इन वाक्यों को विचार लेता है। आज का मानव यह कहता है कि अरे, यह क्या वाक्य उच्चारण कर रहे हो, यह पाखण्ड के वाक्य हैं, इन वाक्यों को कौन स्वीकार करता है। अरे, यदि मांस पान नहीं किया जाएं तो अन्न की पूर्ति कैसे हो सकेगी। परन्तु मैं कह कहा करता हूँ कि जब यहाँ मांस भक्षण नहीं किया जाता था तो क्या यह सब समाज अन्न से पीड़ित था। द्वितीय वाक्य यह है कि यह जो प्रकृति है यह ऐसी माँ है कि इसके गर्भ में तुम आते हो और जो कि इस माता से, कल्पना करते हो वही देती है। आज तुम मांस मांगने लगे, मांस की तुम्हें चिन्ता रहने लगी तो वही देने लगी। इस प्रकृति माँ से तुम कहो कि अन्न दो, दुग्ध दो तो वही देती चली जाएगी। यह ऐसी भोली माँ है कि इसकी लोरियों में जो कहकर पुकारोगे वही देती चली जाएगी। यदि आज तुम अन्न को स्वीकार नहीं करोगे तो यह तुम्हें अन्न दे ही नहीं सकती। जब अन्न नहीं देगी तो तुम जो इच्छा करोगे वह पान करते चले जाओगे। मांस को अन्न नहीं उच्चारण करना क्योंकि जो मांस भक्षण करने वाले प्राणी होते हैं, मानव का भोजन नहीं है, यह मानव का अन्न नहीं है। मानव का अन्न वनस्पतियाँ होती हैं। यह उनका भोजन है जो हिंसक होते हैं। मैं तो अब तक यह जाना हूँ कि आज का जो समाज है वह यथार्थ क्रान्ति को इसलिए नहीं ला पा रहा है क्योंकि इसके आहार और व्यवहार दोनों नष्ट हो गएं हैं, इसमें यथार्थवाद नहीं रहा। यह जैसे आहार को करता है वैसी मन की प्रकृतियाँ बन गई, जैसी मन की प्रकृतियां वैसी ही वाक्य के शब्द की रचना हो गई और जैसी इस शब्द की रचना है वैसा ही वायुमण्डल हो गया और जैसा वायुमण्डल हो गया वेसा ही यह समाज बनता चला जा रहा है। कल मैं अपने पूज्यपाद गुरूदेव से प्रार्थना करूंगा कि यह अन्तरिक्ष के सम्बन्ध में व्याख्या करें। आज तो मैं केवल यह उच्चारण करने चला कि यथार्थ क्रान्ति कैसे आ सकती है। आहार और व्यवहार दोनों को ऊँचा बनाया जाएं, इस पर चिन्तन

किया जाएं और जब विचार धाराएं पवित्र होती हैं महानता में लाने के लिए सदैव तत्पर रहता है और आत्मविश्वास होता है, प्रभु उसके आँगन में होता है और छल कपट से दूर होता है, वह प्राणी संसार में राष्ट्र में यथार्थ क्रान्ति को लाने वाला बनता है।
मुझे तो बड़ा आश्चर्य आता है जब मैं दयानन्द शंकर के पुजारियों के द्वारा जाता हूँ। घोषणा कुछ है और उच्चारण कुछ है कार्य कुछ हो रहा है। यह सब कुछ क्या है? यह समय का और उनके आहार और व्यवहारों की महिमा है। जब मैं और भी महापुरूषों की चर्चा करता हूँ तो हृदय गद् गद् होने लगता है परन्तु यहाँ सब कुछ क्या हो रहा है कुछ नहीं कहा जा सकता। इसका परिणाम तो यह समय आगे तुम्हें निर्णय देगा। जो तुम कर रहे हो उसका समय निर्णय देगा। मानव निर्णय नहीं देता, हम भी निर्णय नहीं देते, न पूज्यपाद गुरूदेव ही निर्णय कर सकेंगे। समय स्वयं कहेगा कि यह हो रहा है। धीमी धीमी अग्नि चल रही है और समय निकट आ रहा है जब मानव की अग्नि ही मानव को निगल जाएगी। मानव का पाप मानव को निगल जाएगा। यह उच्चारण करने का समय नहीं है। आज कोई मानव उच्चारण करे कि यह क्या है? क्योंकि उनका हृदय ही ऐसा नहीं जो इन वाक्यों को अपने हृदय में धारण कर सकें। उनका हृदय ऐसे आहार व्यवहारों से परिपक्व हो गया है यह केवल उनके मनों तक ही रहता है, सूक्ष्म वाणी तक और क्रियात्मक में नहीं आती। मैं यह नहीं उच्चारण करता कि यह संसार हमारे वाक्यों को क्रियात्मक करें परन्तु अंत में लाना तो पड़ेगा। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को एक वाक्य कहा था कि हे अर्जुन यह संसार एक समय मेरे शरण में आ ही जाएगा। एक समय वह भी आता है जब प्राणी मात्र प्रभु के द्वार पर चला ही जाता है और जाना होगा। परन्तु यह सूक्ष्म समय का आनन्द है भोग रहे हैं अन्त में उसमें कष्ट होगा। इसलिए मानव को चैतन्य हो जाना चाहिए। यहाँ द्रव्य एकत्रित करो, उसको प्रसारण करो, उसको महान कार्यो में लगाते चले जाओ, उसका दुरूपयोग न करो। समाज में, राष्ट्र में कोई कार्य ऐसा नहीं होना चाहिए जिससे मानव का चरित्र भष्ट हो जाएं। अब राष्ट्र में ऐसे कार्य होते चले जा रहे हैं। ब्राह्मण नहीं रहा, तपस्वी त्यागी नहीं रहे, यहाँ शंकर नहीं रहा मूल नहीं रहा जो राजा को उच्चारण करता कि तू इस प्रकार

की योजना बना। याज्ञवल्क्य भी नहीं जिनकी आज्ञाओं के अनुसार राष्ट्र के चुनाव होते परन्तु आज क्या है? आज तो मन माना कार्य हो रहा है जहाँ मनमाना कार्य हुआ वहाँ मानव को भ्रष्टाचार आ जाता है। इसलिए यहाँ त्यागी और तपस्वी की आवश्यकता है। यहाँ व्याख्याताओं की आवश्यकता नहीं, क्रियात्मकवादियों की आवश्यकता है। यहाँ केवल दयानन्द के नाम को उच्चारण करने की आवश्यकता नहीं, उसके कार्य करने की आवश्यकता है। यहाँ श्रीकृष्ण और शंकराचार्य के नाम को उच्चारण करने की आवश्यकता नहीं परन्तु उनके जो कार्य हैं उनके अनुसार हमें कार्य करना है। क्रान्ति को लाना है, महानता को लाना है तो आत्मविश्वासी बन जाओ, महानता में आ जाओ जिससे तुम्हारा जीवन ऊँचा बन जाएं और तुम यथार्थ क्रान्ति को ला सको, लाना चाहिए और आयेगी। ऐसा नहीं कि नहीं आयेगी। आयेगी अवश्य। अब मैं अपने वाक्यों को समाप्त कर रहा हूँ। मुझसे बहुत सी कटुता हो जाती है क्योंकि यथार्थवाद में कटुता हो जाना स्वाभाविक हो जाता है। जब मैं अपने पूज्य गुरूदेव से आज्ञा चाहूँगा।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने कुछ शब्द उच्चारण किये। !आज मेरे प्यारे !ऋषि मण्डल ! महान क्रान्ति को लाने के जो शब्द हैं उसमें कुछ अधूरापन रह गया। यह विचारना है कि आत्मविश्वासी मानव को होना चाहिए परन्तु उससे पूर्व यहाँ सभी कुछ ऊँचा होना चाहिए। महान क्रान्ति को लान के लिए सबसे प्रथम प्रभु के विश्वास की आवश्यकता है। प्रभु विश्वास से द्वितीय आत्मविश्वास है। आत्मा का जब बल प्रथम हो जाता है, शक्ति प्रदान की जाती है तो यथार्थ क्रान्ति स्वतः आने लगती है। उस यथार्थ क्रान्ति से राष्ट्र ऊँचा बन जाता है और जब राष्ट्र में महानता आ जाती है तो समाज शनैः शनैः ऊँचा बन जाता है। रहा यह वाक्य कि आधुनिक काल इस प्रकार का है कि इसमें हमें कोई प्रयोजन नहीं, यह तो महानन्द जी के उद्गार हैं, उच्चारण करते रहते हैं। हमने प्रारम्भ के शब्दों में कहा है कि प्रभु के आँगन में जाने के लिए तत्पर हों। रही यह चर्चाऐं कि मानव प्रदर्शन करता रहता है उन प्रदर्शनों में नाना प्रकार के अपने पद को लोलुपता इत्यादियों का कार्य होता रहता है तो इसको यथार्थ क्रान्ति तो नहीं कहा जाता इसको तो एक स्वार्थ की सिद्धि ही कहा जाता है जिससे पद की लोलपुता पूर्ण

हो जाएं। इसमें भी भिन्न भिन्न प्रकार के विचार हैं वह कि पद की लोलुपता पाने के पश्चात् क्रान्ति कर सकता है। परन्तु ऐसा नहीं होता क्योंकि उसकी चुनौती तब ही दी जाती है जब आत्मबल होता है और यदि आत्मबल नहीं है तो पद की लोलुपता को भी वह भ्रष्ट कर देता है, वैदिक परम्परा का कुछ ऐसा नियम है। तो इसलिए प्रत्येक मानव को, प्रत्येक प्राणी को इन विचार विनियम में करने की आवश्यकता रहती है। रहा यह वाक्य कि आज हम महापुरूषों के आँगन को चलें, महापुरूषों के विचारों से मानव को बल प्राप्त होता है और महापुरूषों के विचार जब आते हैं तो उनसे बल और आत्मविश्वास उपजने लगता है और एक समय वह आता है कि वह महापुरूष के द्वार चला जाता है और उसके द्वार जाता हुआ उसके कार्यों को स्वतः करने लगता है। मेरे प्यारे ऋषि ने जो कुछ कहा वह सुन्दर तो था परन्तु कटुता इतनी थी कि जो एक ! ऊँचा और महान व्यक्ति उसे सहन नहीं करसकता उनको अपने में बोझा ही स्वीकार कर सकता है।

गुरूदेव आज मेरे इन वाक्यों को बोझा ही स्वीकार कर लीजिए। वास्तव में बोझा तो ! नहीं। आपको प्रतीत ही ऐसा देता है।

पूज्यपाद गुरुदेवः तो मुनिवरों अब आज का यह वाक्य अब समाप्त कल समय मिला ! तो जैसा मेरे महानन्द जी ने कहा है कि वायुमण्डल में कैसे विचार किस किस प्रकार के होते हैं इस पर विचारधारा प्रकट की जा सकेगी। अब वेदों का पाठ होगा।

९ 01 08 1968 पुष्प 11 अन्तरिक्ष की चर्चा

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही वेद मन्त्रों का पठन पाठन और महानता में परणित रहता है। जब हम प्रत्येक वेदमन्त्र पर विचार विनियम करने लगते हैं तो हमें कुछ ऐसा प्रतीत होने लगता है कि प्रकृति का एक एक परमाणु उस परमपिता परमात्मा से सुगठित हो रहा है क्योंकि परमात्मा सर्वत्र होने के नाते वह प्रत्येक स्थान में दृष्टिपात आने लगता है। जब हम परमपिता परमात्मा को प्रकृति के

कण कण में दृष्टिपात करने लगते हैं तो हमारे जीवन में एक उल्लास, महानता के विशेष अंकुर उत्पन्न होने लगते हैं।

प्रायः मानव संसार में योगी बनना चाहता है। सम्पन्नता चाहता है। मानव के हृदय में है कि मैं धार्मिकता में रमण कर जाऊं। किसी किसी काल में मानव को नास्तिकवाद भी आ जाता है। इन सभी वाक्यों को जब विचारा जाता है और जब इन पर अनुसन्धान करता है तो यही प्रतीत होता है कि मानव की विचारधाराएं, जिस प्रकार का वायुमण्डल, जिस प्रकार का उसका सत्संग होता है उसी प्रकार की भिन्न भिन्न प्रकार की विचारधाराएं मस्तिष्क में आ जाती है। आज हम परमात्मा की याचना करते रहते हैं। जो भी व्यक्ति आते है वह भी परमात्मा के उपासक आते है तो एक सुन्दर समय बन जाता है और मस्तिष्क में वही वाक्य प्रारम्भ होने लगते हैं और उसी के अनुसार मानवता के मस्तिष्क की रचना होने लगती है। जब हम इन वाक्यों को और गम्भीरता में ले जाते है, वैदिक साहित्य में ले जाते हैं तो उस परम पिता परमात्मा की प्रतीति होने लगती है।

कल के वाक्यों में मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक शब्द बहुत ही सुन्दर कहा था कि ! मानव को आत्मविश्वास क्या होता है? प्रायः मानव के हृदय में यह वेदना रहती है कि मैं आत्मविश्वासी तो बनने जा रहा हूँ परन्तु उसमें जो नाना प्रकार की घटनाएं होती है तो हम आत्मविश्वासी किस प्रकार बन सकते हैं। बहुत पूर्व काल में मैने इसके ऊपर टिपप्णी करते हुए कुछ ऐसा कहा था कि आत्मविश्वासी जो प्राणी होता है उसके जीवन में सदैव प्रकाश रहता है। जो प्राणी आत्मविश्वासी होता है वह परमात्मा के क्षेत्र में प्रभु का चिन्तन करता है। आज कोई मानव यह उच्चारण करने लगे कि मैं आत्मविश्वासी हूँ परन्तु आत्मविश्वासी के जीवन में अन्धकार नहीं होता यह एक विशेष वाक्य है। यह परंगगृत ऋषि ने कहा था, पनपेतु ने भी कहा था, शौनक इत्यादियों ने वर्णन किया कि उस मानव के हृदय में अन्धकार नहीं होता और वह अहिंसा परमो धर्मः की वेदी पर चला जाता है।

अहिंसा परमोधर्मः को मैने कई काल में चर्चा की। आज मैं अधिक चर्चा नहीं करना चाहता केवल यह उच्चारण करना चाहता हूँ कि आत्मविश्वासी ही अहिंसा परमोधर्म का

पालन कर सकता है। हिंसक प्राणी ऊँचा नहीं वनता। आत्मविश्वासी अहिंसक परमोधर्म को जान जाता है। वह राष्ट्रवेत्ता हो, राष्ट्रीय आत्मविश्वासी हो, ब्रह्म के विषय में आत्मविश्वास हो परन्तु दोनों की तुलना एक ही मानी जाती राष्ट्रीयता में वह आत्मविश्वासी व्यक्ति जो वाक्य उच्चारण करता है उसमें इतना बल आ जाता है। यह नहीं कि राष्ट्र उसके वाक्य को नष्ट कर दे। राष्ट्र को बाध्य कर देता है, राजाओ का बाध्य कर देता है कि या तो उसके वाक्य को स्वीकार करो अन्यथा उसके प्राणों का हनन किया जाएगा। ऐसा वह आत्मविश्वासी होता है वह राष्ट्र को उस वाक्य को स्वीकार करने के लिए बाध्य कर देता है। इसी प्रकार जो आत्मविश्वासी प्राणी है हिंसक प्राणियों से कि या तो मेरे कई काल में विवेचना भी की। मुझे स्मरण है महर्षि भृगु जी के आश्रम में जब सब ऋषिजन विराजमान होते वेद मन्त्रों का गान गाते, आत्म चिन्तन करते, आत्मा के प्रति कोई गान गाते, उनकी वाणी जो अहिंसा परमोधर्मः से गुन्थी हुई होती है वह हिंसक प्राणी को बाध्य कर देती और वह उनके चरणों में ओत प्रोत हो जाते। इसका नाम आत्मविश्वासी होता है। उस आत्मविश्वासी के हृदय में हिंसक भावना आती ही नहीं। वह अहिंसा परमोधर्म की वेदी पर इस प्रकार मग्न हो जाता है जैसे भक्त और भगवान की मग्नता हो जाती है। इसी प्रकार जो आत्मविश्वासी प्राणी होता हे उसका तारतम्य प्रभु से होता है, वह प्रभु के चरणों में सदैव रहता है उसके मन की जो प्रकृतियां हैं वह ब्रह्म में होती है वह प्रकृतियां मानव को इस प्रकार बाध्य कर देती हैं कि वह प्राणी पाप करना चाहता है तो वह पाप से भी वंचित्त हो जाता है। आत्मविश्वासियों का जो विचार है, उसके जो उद्गार हैं वह ऐसे क्यों हैं कि हिंसक प्राणियों को बाध्य कर देता है? उनके हृदय की जो वेदना है, उनके हृदय के उद्गार हैं जिस आसन पर वह विराजमान होते है वहाँ का वातावरण पवित्र होता है। भयंकर वन में चले जाएं अन्यथा जब ऐसे महान् आत्मा को गृहस्थी बड़े मग्न होते हैं और उनका हृदय प्रफुल्लित हो जाता है और कहा करते है कि आत्मविश्वासी व्यक्ति आज अहिंसा परमोधर्म को मानने वाला महापुरूष हमारे गृह में आ गया है, इनकी हृदय की वेदना से गृह में एक आनन्द आ गया, स्वर्ग आ गया। ऐसी एक वेदना से होती है। इसीलिए हमारे यहाँ कहा गया है

कि महापुरूषों का पूजन होना चाहिए। तन मन धन से पूजन करो। ऐसे महापुरूषों का पूजन होना चाहिए। तन मन धन से पूजन होना चाहिए। आज मैं पूजन के सम्बन्ध में नहीं जा रहा हूँ केवल यह कि जब उसकी ऐसी विचारधारा बन जाती है तो उसका वायुमण्डल भी उसी प्रकार का बन जाता है। अब जो वायुमण्डल है, यह इस प्रकार का बना हुआ है कि मानव के जैसे विचार होते हैं आज का एक मानव है आत्मविश्वासी है, अहिंसा परमोधर्म की विचारधारा है और वही अहिंसा परमोधर्म के परमाणु जो वायुमण्डल में भ्रमण कर रहे हैं वह खीचें चलें आते हैं। उनमें इतना ओज और तेज हो जाता है कि वह स्वतः ही आकर्षण शक्ति के द्वारा वह ओज आकृति में विराजमान हो जाते है। जैसे माता के गर्भ स्थल में जो माता महान ब्रह्मचारिणी होती है, रोगों से विहीन होती है। उस माता के गर्भ स्थल में आकर्षण शक्ति अधिक होती है वह वीर्य के बिन्दु को बहुत शीघ्रता से गर्भस्थल में धारण कर लेती है और जब वह धारण हो जाता है तो रचना बहुत सुन्दर होती है जिसे जरायुज कहते हैं। इसी प्रकार वह जो महापुरूष होते हैं उनकी आकर्षण शक्ति से विचार से उसके विचारों से, जहाँ जहाँ उसके विचारों की ज्योति जाती है वहाँ वहाँ का वातावरण महान और पवित्र बनता चला जाता है। इसी प्रकार आज कोई मानव अशुद्ध वाक्य उच्चारण करता है जैसे किसी गृहस्थी के यहाँ कलह रहने लगता है वहाँ वायुमण्डल में कलह के परमाणु आने लगते हैं और वह गृह कलह का एक क्षेत्र बन जाता है। हमारे ऋषि मुनियों ने उस गृह को नरक की कल्पना की है। जिस गृह में कलह रहता है, पति और पत्नी संतुष्ट नहीं रहते बालक प्रिय संतुष्ट नहीं रहते वह अनाचार कार्य होते हैं तो वहाँ एक नारकीय क्षेत्र बन जाता है। इसीलिए आज किसी गृह को सुन्दर बनाना है तो गृह में ऐसे विचार होने चाहिए जहाँ पति पत्नी रहते हों, पुत्र पुत्रियां रहती हों, ऋषि मुनि रहते हों तो उनमें सात्विक विचार होनी चाहिए जिससे उस गृह का वायुमण्डल सात्विकता से ओत प्रोत हो जाएं। अपना उद्देश्य और कर्त्तव्य उसके साथ होना चाहिए इसी प्रकार हमारे यहाँ आज कोई मानव लालच में अधिक वशीभूत हो जाता है तो लालच प्रधआस्वानी कृपण हो जाता है वही कृपण वाले परमाणु अन्तरिक्ष में विराजमान हो जाते हैं। मानव के जीवन को

केन्द्रित बनाते हुए परमाणु अन्तरिक्ष में से आने प्रारम्भ हो जाते हैं तो मानव कामाः ब्रह्मी लग्रणी रुद्रो कामाः मुनिवरोंदेखो !, उसकी कामनाओं के अनुसार वही परमाणु ! उसके समीप आने लगते हैं।

ऋषि मुनियों ने कहा है कि जिस भी प्रकार का प्राणी होगा आज कोई मानव कामी बनना चाहता है तो कामी हो जाते हैं वही कामना ही कामना उसे प्रतीत होने लगती है। परम्परा से एक वाक्य चला आया है यदि किसी मानव को अपना उत्थान करना है परमात्मा को जानना है तो यह तो प्रभुका बनाया हुआ ब्रह्मण्ड है इसको जान लो !, यदि नहीं जाना जाएगा तो अन्धकार में रहेगा। आज कोई मानव अनाचारों से सुन्दर सुन्दर ऐश्वर्यों में आ जाता है परन्तु उसके जो अनाचार हैं वह उसके अन्तःकरण को छूते हैं, अन्तःकरण को दुखित कर देते हैं, व्याकुल हो जाता है, आत्मिक शान्ति नहीं हो पाती क्योंकि उसका जो अनाचार है, वह उसको बाध्य कर रहा है, वह उसी मार्ग पर ले जाता है, उसी आँगन में ले जाता है और मानवत्व का जो अन्तःकरण है वह भ्रष्ट हो जाता है। अन्तरिक्ष से जो आने वाले परमाणु हैं वह मानव जीवन से सुगठित होते हैं, इसलिए ऋषि मुनियों ने इस अन्तरिक्ष को एक प्रकार का कल्पवृक्ष कहा है। आज मानव जैसी कल्पना करता है, जैसे उसके विचार होते हैं उसी के अनुसार अन्तरिक्ष में से वही परमाणु आने प्रारम्भ हो जाते हैं।

आज जिन गृहों में हर समय मनमानी रहती है वह गृह स्वर्ग से तुल्य होता है। उस गृह में जब मानव क्लिष्ट हो जाता है, तुच्छ हो जाता है पापी बन जाता है, कामी बन जाता है तो गृह की जो सीमा है वह उसको उच्चारण करने लगती है कि यह काम से भरा हुआ है गृह है वह नरक तुल्य गृह बन जाता है जिन गृहों में यज्ञ इत्यादि होते रहते हैं, वेदमन्त्र उच्चारण होते रहते हैं, वेदों का पठन पाठन होता रहता है, उद्गार वाक्य रहते हैं, सुन्दरता में परणित रहता है तो वह जो गृह होता है वह स्वर्ग कहलाया जाता है आज मानव को स्वर्ग लाना है या नरक को लाना है यह विचार विनियम कर लेना चाहिए।

आज कोई मानव कहता है कि अमुक व्यक्ति को मैंने ऊँचा बना दिया परन्तु यह कदापि

नहीं, जो मानव क्लिष्ट होना चाहता है उसको तुम ऊँचा कैसे बना दोगे। ऊँचा संसार में वही व्यक्ति बनेगा जिसके हृदय में उदारता होगी जो अहिंसा परमोधर्म का पुजारी होगा, जो प्रभु का विश्वासी होगा, जिसे प्राणीमात्र से स्नेह होगा। यदि आज कोई मानव यह कहता है कि अमुक व्यक्ति को मैंने ऊँचा बना दिया यह उसकी एक प्रकार की धृष्टता है क्योंकि उसने उस व्यक्ति को जाना ही नहीं। कोई व्यक्ति संसार में किसी को ऊँचा नहीं बनाता। जो भी मानव ऊँचा प्रबल बनता है वह कर्मों के अनुसार और विचारों के अनुसार ऊँचा बना करता है। वह विचार उसके इस जन्म के हों या पूर्व जन्म के हों। किसी भी जन्म के संस्कार उसको ऊँचा और न्यून बना दिया करते हैं।

तो मेरे प्यारे आज हम प्रभु की याचना करते हुए यह उच्चारण करते !भद्र पुरूषों ! चले जाएं कि अन्तरिक्ष में क्या क्या है। आज एक मानव अशुद्ध उच्चारण करने लगता है क्योंकि उसे शब्दों की जो रचना है वह रचना अन्तरिक्ष में चली गई और वही रचना जब मानव के मस्तिष्क में आती है तो वही रचना आने लगती है क्योंकि मानव के शरीर में एक एक यन्त्र ऐसा है कि जिसका वर्णन नहीं किया जाता। मानव के शब्द कितनी दूरी चले जाओ एक क्षण में विचार आया और उस शब्द की रचना स्वतः क्षण समय में कर देते हैं, वह उसको उस वायुमण्डल से उसी तत्त्व से उसके उन वाक्यों को ला करके रचना करके एक क्षण समय में प्रारम्भ होने लगते हैं। अरे, यह है प्रभु का विज्ञान जिसके ऊपर मानव चकित हो जाता है। आज जब हम प्रभु के विज्ञान के ऊपर विचार विनिमय करने लगते है तो उस अन्तरिक्ष की कैसी सुन्दर रचना है कि इसमें मानव के विचार विराजमान हैं, प्राणी मात्र के विचार विराजमान हैं परन्तु जो जैसे विचारों का होता है वही विचार मानव के समीप आ जाते हैं।

हे मानव हमारे शरीर में बहत्तर करोड़ बत्तर लाख दस हजार दो सौ दो नाड़िया ! कहलाती हैं परन्तु मुझे कोई ऐसा स्थान प्रतीत नहीं होता जहाँ वेद की पोथी की पोथी विराजमान हो जहाँ मानव के व्याख्यानों की पोथी की पोथी विराजमान हो परन्तु यह सब कुछ कहाँ से आता है इसके ऊपर बहुत कुछ विचार विनिमय करना है। यदि इसके ऊपर पुनः पुनः विचार विनिमय किया जाएगा तो मानव का जीवन सुगठित होता

चला जाएगा, मानव जीवन में व्यापकतावाद आता चला जाएगा उसी से मानव की रचना सुन्दर होती चली जाएगी। किस प्रकार? ब्रह्मे अस्वो कृतिः सदोः जब हम यह विचार विनियम करने लगते हैं कि हमारी जो मानव रचना है वह इस नाड़ियों की रचना है जिसका सम्बन्ध अन्तरिक्ष से होता है। जो वाक् हैं वह अन्तरिक्ष में है, श्रोत्र ले लेते हैं, श्रवण करते रहते हैं, विचारधाराओं में आते रहते हैं परन्तु देखो, उनकी जीवन की जो एक अनुपम एक धारा होती है उसको ऊँचा बनाना, मानवता में लाना और यौगिकता में परणित कर देना यह सब मानवत्व का कार्य होता है।

आज प्रायः मानव कहता चला जाता है कि ब्रह्मचर्य क्या है? मैंने बहुत पूर्व में ब्रह्मचर्य की विवेचना प्रकट करते हुए कहा था कि प्रायः मानव को ब्रह्मचारी रहना चाहिए क्योंकि ब्रह्मचर्य से मानव का जीवन पवित्र होता है? हमारे यहाँ कुछ ऐसी यौगिक क्रियाएं इस प्रकार की होती हैं। प्रायः मानव कह देता है कि प्राणायाम करने से क्या लाभ है? मैंने बहुत पूर्व काल में कहा था कि मानव को प्राणायाम करना चाहिए। जब मानव रेचक और कुम्भक प्राणायाम करता है तो ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वा गति हो जाती है और जहाँ ब्रह्मचर्य ऊर्ध्वा हुआ वहाँ मानव की धुर्वा गति न रह करके ऊर्ध्वा गति हो जाती है, ऊर्ध्वागति में प्रभु का दास होता है, प्रभु ऊर्ध्वा में रहता है और जब मानव की प्रवृत्तियों का सम्बन्ध ब्रह्म से तल्लीन हो जाता है और वायुमण्डल को शुद्ध और पवित्र बनाता चला जाता है क्योंकि विचार पवित्र बन गये। ब्रह्मचर्य से मानव के विचार सुन्दर बनते हैं। ब्रह्मचर्य रहने से मानव में एक महान बल की प्राप्ति होने लगती हैं, मानव की धुर्वा गति नहीं रहती, ऊर्ध्वा बन करके वह ब्रह्म को प्राप्त होने लगता है, जो ब्रह्म का चिन्तन, ब्रह्म का मनन करता है उसी को ब्रह्मचारी कहते हैं। ब्रह्मचर्य की गति जहाँ ब्रह्म में हुई तो उसी को ब्रह्मचारी कह देते हैं।

यह सर्वश संसार ब्रह्मचारी बन जाएं तो इस संसार का क्या बनेगा? मेरे प्यारे ! महानन्द जी ने भी एक समय यह प्रश्न किया था कि यदि सर्व संसार ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी बन जाएगा तो यह संसार कैसे चलेगा तो मैंने कहा था कि बेटा तुम इस ! मानवत्व को अपने अधिकार में नहीं ला सकोगे। ब्रह्मचारी कई प्रकार के होते हैं उनमें

इस प्रकार के ब्रह्मचारी भी होते हैं जो सन्तान इत्यादि की उत्पत्ति भी हो सकती है परन्तु जब प्रत्येक प्राणी की ऊर्ध्वागति हो जाती है तो यह संसार स्वर्गमय हो जाता है वायुमण्डल पवित्र हो जाता है। सतोयुग के काल में प्रायः मानव प्राणायाम करने वाला होता, सन्तानोत्पत्ति भी नियमानुसार होती। मेरी प्यारी माता जो प्राणायाम करती, जो मानव प्राणायाम करता, उन्हें प्राणायाम करते करते इतना ज्ञान हो जाता है कि वह नक्षत्रों में और इस प्रकृति की गति की जो धाराएं हैं इनको जानने लगता है और उसके पश्चात् जो वह गर्भ की स्थापना होती है तो वह पुत्र अथवा पुत्री हो परन्तु माता पिता के समीप उसकी मृत्यु नहीं होगी। अब इसके ऊपर विचार विनिमय और चिन्तन किया जाएं तो तुम्हें प्रतीत होगा।

मुझे स्मरण है कि भगवान श्रीकृष्ण गृह आश्रम में प्रविष्ट होते थे परन्तु वह नित्य प्राणायाम करते थे। रात्रि होती प्राणायाम करते रहते, दिवस होता प्राणायाम करते रहते परन्तु प्रद्युम्न जैसा पुत्र। एक नहीं परन्तु यहाँ वेद व्यास प्राणायाम करते और महर्षि वेद व्यास के महर्षि सुख देव जैसा प्यारा पुत्र जो संसार का प्रिय बालक। एक नहीं मुझे नाना वाक्य स्मरण आते रहते हैं। माता मैत्रयै, महर्षि याज्ञवल्क्य प्राणायाम करते रहते, उनका जीवन कितना तपस्यामय था। इसी प्रकार राजा जनक ने सीता जैसी पुत्री को जन्म दिया। इसी प्रकार राजा दशरथ नित्य प्रति प्राणायाम करते और श्रीराम जैसे बालक उनके गृह में जन्मे। इसी प्रकार महाराज दिलीप जी, रघु प्रणाली तो इसी प्रकार की थी। भगवान मनु जी जब गृह आश्रम में प्रविष्ट हुए तो पति पत्नी प्राणायाम करते रहते और उनके अक्षय जैसे बालक का जन्म हुआ अक्षवा प्राणायाम करता रहता था परन्तु सूर्य जैसा पुत्र जन्मा। इसी प्रकार सूर्य नाम के राजा प्राणायाम करते रहते तो उनके सामभुक् नाम के राजा के जन्म हुआ जो निर्मोही कहलाया गया। मैं इस सम्बन्ध में संसार का साहित्य नहीं लेना चाहता हूँ, केवल यह उच्चारण करने के लिए आ पहुंचा हूँ कि आज हम संसार को सतोयुग में लाना, राष्ट्रीयता में लाना चाहते हैं, अपनी सीमा पर शत्रु को दृष्टिपात नहीं करना चाहते, संसार को सुख और शान्ति में चाहते हैं भ्रष्टाचार को नष्ट करना चाहते हैं तो प्रायः प्रत्येक मानव के हृदय में यौगिक

वाक्य होना चाहिए। प्रत्येक मेरी प्यारी माताओं के हृदय में यौगिक वाक्य होना चाहिए। ब्रह्मचारिणियों का कर्त्तव्य है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म प्राणायाम अवश्य करने चाहिए। 21 उनके मन की गति चंचल नहीं होती। जहाँ मन की गति चंचल हो वहीं प्राणायाम करो मनकी चंचलता समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार जो मन को शान्ति लाने वाला कार्य है उसी को प्राणायाम कहते हैं। आज मैं प्राणायाम के सम्बन्ध में विवेचना देने नहीं आया हूँ केवल यह कि आज हम इस गृह आश्रम को और वायु मण्डल को पवित्र बनाना चाहते हैं।

हे मेरे प्यारेऋषि म !ण्डल गृह आश्रम को पवित्र बनाना चाहते हो तो गृह में सदैव ! यज्ञ होते रहें, वेद पठन पाठन होता रहे पति पत्नी और प्यारे पुत्र सभी प्रसन्न हों। वह कार्य नहीं होना चाहिए जो मानवता से दूरी हो। मानव वाले कार्य हों, मनन होना चाहिए। जहाँ मनन होता है वहाँ धृष्टता नहीं आती। यहाँ किसी का भी चिन्तन कर लो वही तुम्हारे समीप आने प्रारम्भ हो जाएंगे क्योंकि यह जो अन्तरिक्ष है यह तो एक परमाणुओं का समूह है इसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु ही परमाणु हैं, महान से महान परमाणु हैं क्लिष्ट से क्लिष्ट परमाणु हैं। यदि एक मानव क्रोध अधिक करता है तो उसे क्रोध आने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि मानव क्रोध में भस्म हो जाता है एक समय। आज हम अपने जीवन को, अपनी यौगिकता को ऊँचा बनाना चाहते हैं।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने कल के वाक्यों में आत्मविश्वास के सम्बन्ध में बहुत ! सुन्दर विवेचन दिया। आत्मविश्वासी प्राणी कौन होता है? आत्मविश्वासी प्राणी राष्ट्र के राष्ट्र को कम्पायमान कर देता है। जब वह राष्ट्र के राष्ट्र को कम्पायमान कर देता है वह कितना महान वह कितना अहिंसा परमोधर्म और आत्मविश्वासी है। इसी प्रकार आज हम आत्मविश्वासी बनें। जब भगवान श्रीराम, लक्ष्मण और सीता वन को जाने लगे तो लक्ष्मण ने अपनी पत्नी उर्मिला से कहा था कि तुम भी वन का चलो। मैं श्रीराम की सेवा करूंगा तुम माता सीता की सेवा करना। उस समय आत्मविश्वासी उर्मिला ने क्या कहा था? उसने कहा था कि हे पतितब तक आप आओगे मैं निर्मल दूध की भां !ति संसार में रहूँगी। यदि मैं आपके साथ चली गई तो सेवा भाव नष्ट हो जाएगा, क्योंकि

जब मैं आपकी पत्नी बन करके चलूंगी तो सेवा नहीं हो सकती। इसलिए प्रभु आप ! जाइये। श्रीराम और माता सीता की सेवा करो। मुझे आत्मविश्वास है मैं आपको चौदह वर्ष पश्चात् ऐसी प्राप्त होऊंगी जैसे आप त्याग कर जा रहे हैं। इसका नाम आत्मविश्वास है। लक्ष्मण भयंकर वन को चले गये, रात्रि छा गई थी, राम, लक्ष्मण, सीता तीनों वन में पर्वतों की शैय्या बनाएं विराजमान थे। राम गाढ़ निद्रा में तल्लीन थे, लक्ष्मण भी। पूर्णिमा का चन्द्रमा अपना प्रकाश दे रहा था। उसी भयंकर वन में एक मृगराज आ गये। मृगराज के मन में यह विचार आया कि इनको मैं पान करूं परन्तु माता सीता जाग रही थीं। अब माता सीता ने यह विचारा कि यदि श्रीराम को जागरूक किया तो यह पाप है, लक्ष्मण को जागृत किया तो यह पाप है क्योंकि जब मानव निद्रा में होता है तो उसकी जो ज्ञानेन्द्रियां, कर्म इन्द्रियां और मन यह अन्तःकरण में होता है और अन्तःकरण का सम्बन्ध ब्रह्म से होता है इसलिए ब्रह्मा के द्वार से मानव को नहीं आना चाहिए। जब उसका आत्मविश्वास जागृत हुआ और उसने प्रभु से याचना की कि हे भगवन क्या यह मृगराज हमें !आहार कर जाएगा तो? उस समय मृगराज से अपने मन ही मन वेदना कर रही थी कि हे मृगराज मैं जानती हूँ कि हम तेरे राष्ट्र में हैं ! परन्तु मार्ग का जो अधिराज होता है उसका कर्त्तव्य है कि सबकी रक्षा करे। वह सबका रक्षक होता है। हम तेरे राष्ट्र में हैं हमारी रक्षा करो। हे मृगराज तू इस ! इस मार्ग को त्याग और उस मार्ग को अपना। यह वेदना माता सीता के मन की वेदना आत्मविश्वास की थी उस मृगराज के मन को उस वेदना ने जा छुआ और मृगराज ने वह मार्ग ही त्याग दिया। इसका नाम है आत्मविश्वास जो मानव इसको धारण कर लेता है उसके जीवन में किसी भी काल में अन्धकार नहीं आता। अन्धकार उन व्यक्तियों के जीवन में होता है जो अभिमानी होते हैं, जो माया की लोलुपता में सदैव संलग्न रहते हैं उन्हें आत्मविश्वास स्वप्न में भी नहीं हो सकता। इसलिए मानव को विचार विनिमय में करना है कि आज हम अपने उस प्यारे प्रभु का चिन्तन करें जिससे हमें यह बल प्राप्त होता है।

मैंने आज कुछ अन्तरिक्ष की चर्चायें प्रकट की हैं कुछ वायु मण्डल की चर्चायें प्रकट

की हैं परन्तु हम यह विचारते हैं कि मन की जो तरंगे हैं वह अन्तरिक्ष में रहती हैं, जो वाक्य उच्चारण करते हैं वह भी अन्तरिक्ष में रहते हैं। परन्तु यह सब उसके विचारों के साथ आते रहते हैं। आते जाते यह यहीं नहीं है यह अन्तरिक्ष में विराजमान रहते हैं, अन्तरक्षि में हम रहते हैं। सभी प्राणी उसी के क्षेत्र में रमण करते रहते हैं।

आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम प्रभु का चिन्तन करते हुए अपने देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, इस परमात्मा के रचाए हुए क्षेत्र में, इस वायु मण्डल में आए हैं तो इसको शुद्ध बनना है विचारों से शुद्ध बनाओ, मग्न हो करके शुद्ध बनाओ, ब्रह्मचारी रह करके शुद्ध बनाओ प्राणायाम करने से शुद्ध बनाओ परन्तु वायु मण्डल पवित्र होना चाहिए जिससे हम प्रभु की सृष्टि को दूषित न करते चलें।

तो यह आज का वाक् समाप्त होने जा रहा है। कल समय मिलेगा तो मैं मानव जीवन और वेद इन दोनों का जो आपस में परस्पर सम्बन्ध है उसकी चर्चा करूंगा। आज का यह वाक्य समाप्त हुआ।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो, गुरुदेव आज का यह आपका वाक्य बड़ा प्रिय लगा। !

आज का यह वाक्य समाप्त होता चला गया। अब वेद का पाठ। !तो मुनिवरों

१० 02 08 1968 पुष्प 11 त्रयीविद्या की चार धारायें

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गान गाते हुए चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हम उस पठन पाठन की अनुपम पद्धति को अपनाना चाहते हैं जिस पद्धति के द्वारा यह महान विश्व ऊँचा बनता चला जाता है। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने विश्व कल्याण की कल्पना की है। क्योंकि वेदवाणी किसी विशेष की सम्पत्ति नहीं है। कोई भी मानव हो उसी के लिए कल्याणकारी है। जब हम यह विचारने लगते हैं कि यह किसी की सम्पत्ति है तो उस मानव के कितने संकीर्ण विचार हो जाते हैं और संकीर्ण विचारों से जिस पद्धति को महापुरूष लाना चाहते हैं वह पद्धति नहीं आ पाती। उसी पद्धति को लाने के लिए भिन्न भिन्न प्रकार के विशेषांकुर विचार उत्पन्न होते होने लगते हैं, संकीर्णता आ जाती है। आज हम अपने विचारों को

संकीर्ण नहीं बनाना चाहते।

हमारे आज के प्रारम्भ के वेद मन्त्रों में उस परब्रह्म परमात्मा की याचना की जा रही थी हे परमात्मन किसी भी लोक लोकान्तर का प्राणी हो परन्तु जब उसे अशान्ति प्राप्त ! होती है तो वह तेरी ही शरण आते हैं और अपनी मानवता को शान्ति प्रियता बना करके प्रस्थान कर जाते हैं। इसी प्रकार आज हम उस प्रभु की याचना करते हुए अपने जीवन को ऊँचा बनाते चले जाएं। आज हम प्रभु से याचना कर रहे हैं कि हे प्रभु तू ! इनके द्वारा ओज और तेज हो। इन्हीं से !संसार के प्राणियों को ऊँचा बना। हे प्रभु यह समाज और राष्ट्र ऊँचा बना करता है। जब हम प्रभु की याचना करते हैं तो हमारा हृदय गद् गद् होने लगता है। मैं अपने प्रभु सेयह कहा करता हूँ कि हे परमात्मन ! तू कितना उज्ज्वल है, तेरी महानता कितनी महान है, तू उस महानता का दिग्दर्शन करता है जिसे मानव किसी काल में स्वप्नत् भी दृष्टिपात नहीं कर पाता। आज हम उस मनोहर देव के द्वारा जाना चाहते हैं। प्रायः कोई भी मानव हो परन्तु वह प्रभु के लिए उत्सुक रहता है क्योंकि आनन्द जो प्राप्त होता है आनन्द के लिए वह अपने जीवन को सदैव प्रगतिशील बनाता रहता है। यह उत्कृष्ट इच्छा जागृत रहती है कि मैं उस आनन्द को प्राप्त करने वाला बनूं जिस आनन्द में वास्तव में परम अग्रित आनन्द प्राप्त होता चला जाएं। हे प्रभुतू हमें अपनी गोद में धारण कर !, अपने आँगन में धारण कर जिससे हमारा जीवन आपसे सुगठित रहेगा तो भगवन् हमारे जीवन में अशान्ति न होगी। !

तो मेरे प्यारे मानव का जीवन तो वेद से सुगठित रहता है। वेद और !भद्र पुरूषों ! मानवता दोनों की सुगठितता कैसे रहती है? विचार आता है कि वेद किसी एक पोथी को नहीं कहा जाता। वेद नाम ज्ञान का है परन्तु उस ज्ञान को कहते हैं जो पराज्ञान है जिससे मानव का अन्तरात्मा पवित्र होता है। उसको हमारे यहाँ वेद रूपी प्रकाश कहते हैं क्योंकि मानव के जीवन से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है।

आज कोई भी मानव यह विचार विनियम करने लगे कि मैं वेद को स्वीकार नहीं करता तो वेद किसी विशेष व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं, वेद नाम तो प्रकाश का है। कौन मानव यह कहता है कि संसार में प्रकाश को नहीं चाहता? प्रत्येक मानव प्रत्येक मेरी प्यारी

माता, प्रत्येक ऋषि मण्डल सब प्रकाश को चाहते हैं। नास्तिक भी यह नहीं कहता कि मैं प्रकाश को नहीं चाहता परन्तु नास्तिक व्यक्ति यह भी नहीं कहता कि मैं सूर्य के प्रकाश के साथ साथ आत्मा का प्रकाश नहीं चाहता। हृदय में प्रकाश तो चाहता है। उसी प्रकाश का नाम हमारे यहाँ वेद कहा गया है।

वेद का जो विकास है वह देवताओं के द्वार से है और देवताओं का जो ज्ञान है वह सर्वत्र ज्ञान होता है वह किसी विशेष व्यक्ति की या समाज की सम्पदा नहीं होती, वह सर्वश विश्व की सम्पदा होती है। वह व्यक्ति इस पृथ्वी मण्डल पर विराजमान होने वाला हो, सूर्य मण्डल में हो, चन्द्र मण्डल में हो, शुक्र में हो, मंगल में हो, परन्तु सब प्राणियों के लिए एक सा प्रकाश होता है? नास्तिक व्यक्ति यह कहता है कि मेरा हृदय पवित्र हो, मेरे हृदय से वाक् सुन्दर हो, वह ईश्वर को स्वीकार नहीं करता परन्तु यह अवश्य उच्चारण करता है कि तेरे हृदय में, अंतरात्मा में शान्ति और महानता विराजमान होनी चाहिए। सभी प्राणी यही उच्चारण करते रहते हैं। इसी प्रकार आज हम उच्चारण कर रहे थे कि मानव का जीवन वेद रूपी प्रकाश से सुगठित रहता है। जहाँ वेद रूपी प्रकाश नहीं होता वहाँ मानवता भी नहीं होती वहाँ मानव का जीवन भी नहीं होता। इसलिए जब हम वेद रूपी प्रकाश को अपना लेते हैं तो वास्तव में हम उस संसार को ऊँचा बनाते हुए इस संसार से पार हो जाते हैं।

तो मेरे प्यारे अभी अभी हम उच्चारण करते चले जा रहे थे कि हम वेद !भद्र पुरूषों ! को अपनायें क्योंकि वेद कहते हैं त्रयी विद्या को, जिसमें तीन प्रकार की विद्यायें होती हैं, ज्ञान, कर्म और उपासना। इन तीनों को विचारना ही हमारा वेदज्ञ बन जाता है, प्रकाश में पहुंच जाना हैं सबसे प्रथम ज्ञानकाण्ड आता है। मानव किसी भी लोक लोकान्तरों में रहे परन्तु सबसे प्रथम उसे ज्ञान की आवश्यकता है, वह ज्ञान का उत्सुक रहता है, उसे यह इच्छा रहती है कि तू ज्ञान को प्राप्त कर ज्ञान तुझे कहाँ से प्राप्त होगा? वेद की सबसे प्रथम व्याहृति को ज्ञान माना गया है। वह ज्ञान जब मानव को प्राप्त हो जाता है तो मानव जीवन पुलकित हो जाता है। ज्ञान हमारी एक महान सम्पदा है, संसार की सम्पदा है, किसी विशेष की सम्पदा नहीं, विश्व की सम्पदा है। मानव

जब ज्ञान के क्षेत्र में जाता है, तो प्रत्येक वस्तु का उसे ज्ञान हो जाता है, यह यज्ञशाला है, यह सामग्री है, वह अग्नि है, यह जल है, यह नाना वनस्पतियां हैं, यह पृथ्वी है और यह देखो, वायु रमण कर रही है, इन दिशाओं का गुण हमारे शरीर में ओत प्रोत हो गया है। यह सब कुछ ज्ञान उसे प्राप्त हो जाता है कि यह पृथ्वी है, इस पृथ्वी में खाद्य और खनिज भी हैं और जल किस प्रकार रमण कर रहा है यह सब उसकी क्रियाओं में विचार विनियम होने लगता है, उन्हीं विचारों से एक विशाल विचार आना प्रारम्भ हो जाता है। यह विशाल विचार क्या है? वह ज्ञान है।

जब ज्ञान आने लगता है तो उसके पश्चात् उसे कर्मकाण्ड के लिए बाध्य किया जाता है। वही मानव कर्मकाण्ड के क्षेत्र में चला जाता है। कर्म काण्ड किसे कहते हैं? मानव अपने आसन पर विराजमान होता है, कैसे अपने आसन से प्रस्थान करता है कैसे दूसरों का आदर करता है, कैसी उसके हृदय की सहानुभूति है, वेद के अनुकूल वह कितना यज्ञवेत्ता है, यह सब कुछ विचार उसके कर्म काण्ड में आने लगता है। कर्म काण्ड ही मानव को ऊँचा बना देता है। आज जब मानव कर्मकाण्ड के क्षेत्र में जाता है तो वह कर्मकाण्डी व्यक्ति वैज्ञानिक बनते हैं, राष्ट्रपति बनते हैं, अधिराज बन जाते हैं। यदि राजा के राष्ट्र में, राजा के विधान में किसी प्रकार की सूक्ष्मता रह जाती है तो वही राष्ट्रवाद के लिए एक विडम्बना हो जाती है, दुःखद होने लगता है परन्तु जब राष्ट्र का कर्मकाण्ड सुन्दर होता है कैसा कर्म काण्ड? ब्राह्मण कैसा हो? ब्राह्मण का स्थान कहाँ होना चाहिए? राजा जब न्यायालय में विराजमान हो तो राजा का स्थान कैसा हो? कैसी उसकी गति होनी चाहिए उस काल में? कैसे मन्त्रीगण विराजमान होते हैं? क्या क्या न्याय होना चाहिए? जब यह सब चिन्तन किया जाता है और इसको कर्मकाण्ड में और क्रियात्मक में लाया जाता है तो मानव का जीवन एक महान् से एक महान् बन जाता है।

आज मेरी प्यारी माता जब अपने प्यारे पुत्र को लोरियां देती है उस समय विधिवत् उसका नामकरण संस्कार होता है यह सब कुछ कर्मकाण्ड की पद्धति मानी गई है। कर्मकाण्ड की पद्धति में यज्ञशाला में आ जाओ कहाँ ब्राह्मण होना चाहिए, कहाँ ब्राह्मण होना चाहिए, कहाँ ब्रह्मा का स्थान हो, कहाँ पुरोहित का हो, कहाँ अध्वर्यु का हो, कहाँ

उद्गाता का हो, कहाँ यज्ञमान विराजमान हो, यह सब कर्मकाण्ड या की पद्धति में माना गया है। देखो, शतपथ ब्राह्मण में महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बड़े विस्तार से इसका वर्णन किया है। आज मैं इसकी संक्षिप्त परिचय देने जा रहा हूँ कि आज हम कर्मकाण्ड की पद्धति को अपनायें। यज्ञ का जो कर्मकाण्ड है, आहुति किस प्रकार दी जाएं, आहुति के साथ में कौन सा शब्द हो, और उस शब्द की रचना किस प्रकार की हो यह जब सब कुछ होता है तो होता रहता है स्वाहा। स्वाहा कहते ही उसकी वाणी में कितनी महानता, कितनी प्रबलता होनी चाहिए यह सब कुछ देखो, कर्मकाण्ड की पद्धति मानी गई है। आज कर्मकाण्ड की पद्धतियों में यज्ञशाला की परिक्रमा होती है। परब्रह्म परमात्मा ने जब इस संसार रूपी यज्ञशाला को रचा तो कितना कर्मकाण्ड इसमें रचा, किस प्रकार की इसमें सुन्दर क्रिया दी है। कितना सुन्दर कर्म है, कितना सुन्दर प्रक्रिया है। आज वास्तव में हम उस कर्मकाण्ड की पद्धति को अपनाते चले जाएं जिस कर्मकाण्ड की पद्धति में जहाँ स्वाहा कहना चाहिए, उसके द्वारा कैसे विचार हो, सब कर्मकाण्ड में आता है। आज हम कर्मकाण्ड की पद्धति को अपनाते जाएं जिस पद्धति को अपनाने से हमारा जीवन महानता की प्रबल वेदी पर चला जाता है जिस वेदी को अपनाते हुए हम संसार में एक महान व्यक्तित्व को ले करके उस महानता की पवित्र वेदी पर चले जाते हैं। यह सब कर्मकाण्ड मानव के जीवन से कटिबद्ध होता है। यदि इसका मानव जीवन से सम्बन्ध नहीं तो हम इसको कर्मकाण्ड कह ही नहीं सकेंगे। राष्ट्र और समाज सभी इससे सुगठित रहता है। इसी प्रकार इसमें वैज्ञानिक जन होते हैं, उनका इनसे सम्बन्ध रहता है। वैज्ञानिक जन होते हैं, उनका इनसे सम्बन्ध रहता है। वैज्ञानिक यह जानते हैं कि अमुक धातु का किस प्रकार प्रयोग किया जाता है। उन्हीं धातुओं के मिला करने से शनौंग, अन्वात, त्रीहि नाना प्रकार की धातुओं को मिलान करने से नाना मत्रों का निर्माण होता है तो यह सब कर्मकाण्ड में निहित होता है।

आगे उपासना काण्ड आता है। उपासना किसे कहते हैं? उपासना कहते हैं कि जैसी कोई वस्तु हो उसे ज्यों का त्यों उच्चारण करने का नाम उपासना कहा गया है। सूर्य को हम सूर्य उच्चारण करेंगे, चन्द्रमा को चन्द्रमा उच्चारण करेंगे, इसी प्रकार ज्ञान को ज्ञान

उच्चारण करें, उससे विचलित नहीं होना। यदि मानव उससे विचलित हो जाता है, उससे परिकाष्ठा में चला जाता है तो मानव के द्वावारा वह पद्धति नहीं रह पाती जिसका उसे गौरव होता है। बेटाप्रभु की उपासना कर !ना, प्रभु की उपासना करना, प्रभु का चिन्तन करना और प्रभु से जो वस्तु हमें प्राप्त होती है उसको अपने में धारण करने का नाम उपासना कहा जाता है।

उपासना का अभिप्राय क्या है? आज हम अग्नि की पूजा करने चले हैं। परन्तु अग्नि की पूजा कैसे की जाएं? अग्नि का सदुपयोग किया जाएं, यह उसकी पूजा कही जाती है। वायु है, वेग में रमण कर रहा परन्तु वायु का सदुपयोग किया जाएं, वायु को याचना द्वार पर धारण करना चाहिए तो उसमें कोई अपराध नहीं हो पाता परन्तु वह उपासना की एक पद्धति मानी गई है। आज हम उस महान् पद्धति को अपनाना चाहते हैं जिसको अपनाने से मानव का हृदय सब प्रकार से प्रसन्न हो जाते है।

आज हम पुनः उच्चारण करने आ पहुँचे हैं कि हम आज उस महान कर्मकाण्ड की पद्धति को अपनाने चाहते है जिसको अपनाने से मानव का हृदय पुलकित हो जाता है, पवित्र बन जाता है। उस पवित्रवाद की पवित्र वेला में मानव अपने जीवन को वास्तव में अग्रणिय बनाता चला जाता है। आओ मेरे भद्र पुरूषो आज हम पृथ्वी की उपासना ! तुम इस पृथ्वी से सुन्दर अन्न को उत्पन्न !करना चाहते हैं। कृषको से कहो कि कृषको करो। इसकी चमड़ी को उधेड़ो इसका यथाशक्ति स्वागत करो उसके पश्चात् इसे दुहो जैसे धेनु को दुहा जाता है इस प्रकार जव पृथ्वी को दुहा जाता है तो नाना प्रकार के अन्न और खाद्य पदार्थो की उत्पत्ति हो जाती है। तो यह उस पृथ्वी की उपासना होती है। आज हम माता की उपासना होती हैं परन्तु माता का आदर करना, माता की सेवा करना, अन्न जल से तृप्त करना, उनके हृदय को सदैव प्रसन्न करना यह वास्तव में उपासना मानी जाती है। इससे मानव का हृदय सुन्दर बनेगा, मानव के हृदय में ऊँचे संस्कारों की उपलब्धि होती चली जाएगी।

आज हम प्रभु की उपासना करें। हम प्राणायाम करें और भी नाना कार्य करते चले जाएं, ब्रह्मचारी रहें। जब हम ब्रह्मचारी रहते हैं तो हमें ब्रह्मचर्य की रक्षा करने का नाम

उसकी उपासना कहलाई गई है। आज जब हम उसकी अच्छी प्रकार रक्षा करते है, प्राणायामों के द्वारा जैसे मैंने कल के वाक्यों में प्रकट रक्षा कराया था रेचक और कुम्भक के द्वारा और कृकल और देवदत्त के द्वारा इस ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हैं तो ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वा गति हो जाती है, यह उस ब्रह्मचर्य की उपासना है, यही उसका पूजन कहलाया गया है। मानो जब वह श्वासों की गति में सूक्ष्म परमाणु उसमें रमण करने लगते हैं तो इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाम की जो नाडी हैं उन नाड़ियों में एक ओज उत्पन्न हो जाता है, ओज उत्पन्न हो करके प्राणायाम करने से उनकी गति प्रबल हो जाती है, हृदय में मानवता के विशेष अंकुर उत्पन्न होने लगते हैं।

आज मैं अधिक चर्चा करने नहीं जा रहा हूँ केवल यह कि आज हम मित्र मित्र की उपासना करते हैं। पत्नी पति की उपासना करती है, परन्तु पति की उपासना क्या है कि उसका यथाशक्ति स्वागत करना और यथाशक्ति उसके वाक्यों और पदचिन्हों पर चलना यह उसकी उपासना है। हमारे ऋषि मुनियों ने कहीं कहीं ऐसा कहा है कि पतनम ब्रह्मे व्योप्रोति गृहः यदि गृह आश्रम में पति में किसी प्रकार की कुरीति आ जाएं अथवा पत्नि में आ जाएं तो उसे उसकी डंडे से उपासना करनी चाहिए। यदि किसी भी प्रकार की कुरीति आ जाती है तो उससे गृह भ्रष्ट हो जाता है। उससे समाज की पद्धतियों में कुरीति आ करके राष्ट्र तक उसका प्रभाव चला जाता है। इसीलिए आज उपासना का क्या अभिप्राय है कि उन व्यक्तियों की डण्डों से उपासना का करनी चाहिए।

तो मुनिवरों अभी अभी हम उच्चारण कर रहे थे कि आज हमें समाज की उस महानता ! को ऊँचा बनाने के लिए उनकी उपासना यथाशक्ति करनी चाहिए। राजा को उन व्यक्तियों को दण्डित करना चाहिए जो राष्ट्रद्रोही हों तो यह उसकी उपासना कहलाई गई है। जैसे परमपिता परमात्मा जब न्याय करता है तो पापियों को पाप ही देता है, अपने राष्ट्र में जो सुविधाएं देनी चाहिए वह तो देता है परन्तु भोग का जो क्षेत्र है वह उसके संस्कार के अनुकूल भिन्न होता है। उसको दण्डित किया जाता है उसके कर्मों और संस्कारों के अनुसार।

प्रभु संसार में सबसे महान और उदार है प्रभु जैसा उदार कोई नहीं हो सकता। प्रभु

को कोई अनिष्ट उच्चारण करता है कोई असभ्यता से आता है, कोई सभ्यता से उपासना करता है परन्तु प्रभु की जो देन है वह सबके लिए एक समान होती है। यदि कोई आज प्रभु के निकट जाना चाहता है तो मानव को भी उसी प्रकार उदार हो जाना चाहिए, जैसे परमात्मा मान और अपमान से दूर है। परमात्मा को को न मान व्यापता है न अपमान व्यापता है। इसी प्रकार जो प्राणी उदार बनना चाहता है वह इस प्रकार बन जाएं जैसे प्रभु है। प्रभु उदार है, महान है, पवित्र है। इसी प्रकार जब प्राणी बन जाता है तो उसका मिलन प्रभु से हो जाता है।

आज जैसे माता अपने प्यारे पुत्र को जब लोरियां देती हैं तो माता का हृदय बालक जैसा उदार हो जाता है। माता का हृदय इस प्रकार उदार हो जाता है जैसे बालक। तो माता उस बालक के साथ स्वयं प्यारे पुत्र की भांति बन जाती है। स्वंय उसमें इतनी उदारता आ जाती है कि बालक को पिता कहना है माता उसको स्वयं पिता उच्चारण करने लगती है। यह उस माता की उदारता माता के हृदय की छुआ करती है। इसी प्रकार मानव की उदारता प्रभु को छूने लगती है और प्रभु की उदारता मानव को छूने लगती है। तो बेटाक्या मृगराज !, क्या सर्प, जितने हिंसक प्राणी हैं वे सब ही उनके उत्सुक हो जाते हैं। मानव मात्र तो बहुत दूर हो जाता है। परन्तु हिंसक प्राणी भी उनको देवालय स्वीकार करके उनकी पूजा किया करते हैं। उनके उदार वाक्यों के उत्सुक रहते हैं। एक मानव ही नहीं रहता। परमात्मा के सृष्टि में प्राणीमात्र है सब ही उसकी उत्सुकता किया करते हैं। जैसे परमपिता परमात्मा का सभी गुणगान गाते हैं। उस प्राणी को न सर्प का विष व्यापता है वह तो प्रभु जैसा उदार हो गया है। !

तो आज हम क्या उच्चारण करते चले गएं कि हम प्रभु की उपासना करना चाहते हैं तो वह उपासना वेदों में पर्याप्त है। वेद का हमारे जीवन से कितना सम्बन्ध है, कितनी सुगठितता है। इसी प्रकार मानव का जीवन तो उसी वैदिकता से गुथा हुआ है। मानववाद उस वैदिकता से गुथा हुआ है। देखो, त्रयी विद्या है, ज्ञान कर्म और उपासना। बिना इस तीन प्रकार की विद्या के पान किए मानव इस संसार से पार नहीं होता। वह कहीं मान अपमान की छत्र छाया में रहता है, कहीं और नाना प्रकार के कार्यों में संलग्न रहता है

परन्तु उसके द्वारा उदारता के विशेष अंकुर जागृत नहीं हो पाते। परन्तु जब जागृत हो जाते हैं तो उसका जीवन सर्वश वेदज्ञ होता है। आज हम वेद की उस परम्परा को अपनाना चाहते हैं जिस परम्परा को अपनाने के पश्चात् मानव मानव बन जाता है, ऋषि ऋषि बन जाता है, पवित्रता की वेदी पर हम रमण हो जाते हैं, भ्रमण करने लगते हैं। तो आज हम प्रभु की याचना करते हुए, उस देवता की उपासना करते हुए, हम स्वयं देवता बनने की उत्सुकता में रहे। मेरे प्यारेमहानन्द जी ने बहुत प !ूर्व काल में यह कहा था कि आज कोई मानव संसार में मिथ्यावाद उच्चारण करके नाना प्रकार के द्रव्य को एकत्रित कर लेता है। अरे, मानव वह द्रव्य तेरे साथ नहीं जाएगा। तेरे साथ तो ! वही कर्म जाएगा जितना तुम अपने प्रभु से मिलान करते हो। आज तू अभिमान में विराजमान हो जात ा है कि मैं इतना द्रव्यपति बन गया हूँ, इतने गृह निर्माण किए हैं इनका मैं स्वामी हो गया हूँ परन्तु यह तेरे हृदय में अभिमान हैं यह अभिमान तुझे स्वयं निगल जाएगा। वह गृह यहीं के यहीं रह जाएंगे परन्तु एक समय वह आयेगा कि यह अभिमान ही तुझे निगल जाएगा। मुझे बहुत समय हुआ इस संसार को दृष्टिपात करते हुए। महाराजा रावण ने क्या कहा था कि मैं विजयी बनूंगा राम को नहीं आने दूंगा। रावण का चिन्ह भी नहीं रहा संसार में। कहाँ है रावण? कहाँ है वह स्वर्ण की लंका? वह इस पृथ्वी में रमण कर गई वह गृह दृष्टिपात भी नहीं आते, हमारे समक्ष भी नहीं हैं परन्तु हम कल्पना कर लेते हैं, विचारधारा बना लेते हैं कि रावण राजा था, साहित्य में कल्पना कर लेते हैं परन्तु उसका चिन्ह हमें प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार हे मानव ! तू अपने सूक्ष्म से जीवन के लिए प्रभु के पूजन को त्याग क्योंकि प्रभु की जो उदारता है वह तेरे हृदय को जितना छू जाएगी उतना तेरा जीवन ऊँचा बन जाएगा और जितना तू प्रभु दूरी से रहेगा, मानसिक चिन्ताओं में रहेगा, द्रव्य की लोलुपता में रहेगा, जितनी तेरे में धृष्टता आती चली जाएगा उतनी तेरी मानवीयता तेरी से दूरी होकर के एक समय वह आयेगा कि तुझे महाराजा दुर्योधन की भांति वह स्वयं तुझे निगलती चली जाएगी। इसी प्रकार हमें विचार विनिमय में कर लेना है कि हम स्वयं किस प्रकार के बने। हम अपने जीवन को सर्वश वैदिक बनायें क्योंकि ज्ञान, कर्म, उपासना से हमारा जीवन

सुगठित होना चाहिए। हमारे जीवन में यदि वैदिकता नहीं है, महानता नहीं है उदारता नहीं है तो हमारा जीवन कुछ नहीं कहलाएगा।
बेटा तुमने आधुनिक समाज के ऊपर विचार प्रकट करते हुए वर्णन किया था कि ! अग्नि प्रदीप्त होने वाली है परन्तु मुझे जब तुम्हारे वाक्य श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त होता है तो उससे कुछ भविष्य का ज्ञान होने लगता है और तुम्हारे कथनानुसार मुझे भविष्य यह प्रतीत होने लगता है कि वह समय दूर नहीं है जब इस मानव को यथार्थ शान्ति के लिए अपने मानवत्व को समाप्त कर देना होगा। आत्मिक शान्ति हो जाना प्रभु के निकट जाना मानवत्व को ही वैदिकता है। इस वैदिकवाद को हम अपना करके इस समाज, इस राष्ट्र को ऊँचा बना सकते हैं अन्यथा राष्ट्र और समाज कैसे ऊँचे बनेंगे। राष्ट्र और समाज जब भी ऊँचे बने आत्मिकता, महानता और वैदिकता से बने हैं। मैंने प्रारम्भ के शब्दों में कहा है कि वैदिकता किसी की सम्पदा नहीं है वह प्रत्येक प्राणी की सम्पत्ति है, वह मानव मात्र की सम्पत्ति है, वह मानव पृथ्वी मण्डल में रहो, सूर्य मण्डल में, चन्द्र मण्डल में रहो, शुक्र में रहो आदित्य में रहो, किसी भी लोक लोकान्तर में रहो, परन्तु वैदिकता मानव के लिए आवश्यक है, जिससे जीवन की पवित्र धारा बनती चली जाएं, राष्ट्र और समाज दोनों उन्नतिशील होते हुए इस संसार को ऊँचा बनाते चले जाएं।
मानव का जीवन वैदिकता से सुगठित होना चाहिए और वैदिकता ही जीवन है। मुझे स्मरण है भगवान श्रीराम का जीवन। भगवान श्रीराम के जीवन में कितनी उदारता और मानवता थी। उनकी महान उदारता और मानवता की दृष्टिपात करते हैं तो राष्ट्रवाद स्मरण आने लगता है, समाजवाद स्मरण आने लगता है। समाज में जो प्रीति थी वह स्मरण आने लगती है। पर्वतों में रहने वाले राजाओं ने जिन्हें अपने पगों से दूर कर दिया था और यह कहा था कि तुम तुच्छ हो, शुद्र हो, भगवान श्रीराम ने उनको अपनाया। बिना उन्हें अपनाये राष्ट्र और समाज ऊँचा नहीं बनता। राष्ट्र समाज जब ऊँचा बनता है जब यहाँ उन व्यक्तियों को अपनाया जाता है जिनके हम दरिद्र कह देते हैं और उन्हें त्याग देते हैं। उदार राजा जब तक उन्हें नहीं अपनाता तब तक उनका

कल्याण नहीं होता। राष्ट्र, समाज में महान सम्पदा नहीं आती। भगवान श्रीराम अयोध्या से कोई किसी प्रकार की प्रबलतायें और सहायता नहीं ले पाए परन्तु इतने बड़े साम्राज्य से संग्राम किया। पर्वतों में रहने वाले जिन्हें शूद्र कहा जाता था उन्हें अपनाया निषाद जैसों को अपनाया और भी शूद्र व्यक्तियों अपनाकर अपने कंठ लगा करके शबरी जैसी को अपना लिया। शबरी कैसी थी? मुझे स्मरण है वह महान दरिद्रता में रहती थी परन्तु प्रभु का चिन्तन करती थी, राम की भी भक्त थी, राम ने उसे माता कह करके चरणों को छूआ। महान व्यक्तियों के लिए उनके मुखारविन्द का एक कण भी अमृत के तुल्य हुआ करता है। भगवान राम को माता शबरी से कितनी प्रीति थी कि उसे यह ज्ञान था कि आज राम तेरे आश्रम में आयेंगे, तेरे आश्रम के निकट भ्रमण करेंगे, वह झूठे फलों को लेकर के राम के समीप लायी और कहा लीजिए प्रभु राम प्रेम से उसके चरणों को छू करके आनन्द से भोग लगाने लगे, नम्रता से उन्हें पान करने लगे। ऐसे ऐसे दरिद्रों को अपना करके राम का जीवन कितना आदर्शवादी माना जाता हैं तो राम हर प्रकार से ऊँचे प्रतीत होने लगते हैं। त्याग और तपस्या में उनकी उदारता कितनी प्रबलता में थी। राम और लक्ष्मण दोनों इस प्रकार के थे इसी प्रकार माता सीता जैसा वैदिकवाद किस में हो सकता है। रावण के द्वारा राष्ट्र अपना, प्रजा अपनी परन्तु एक सीता को वह अपना नहीं बना सका क्यों उसके द्वारा महान चरित्र की मात्रा थी। कैसा ऊँचा चरित्र, कैसी वैदिकता उसके हृदय में सुगठित थी, माता सीता का हृदय वैदिक कणों से गुथा हुआ था। कैसा सुन्दर गुथा हुआ कि रावण उसको छू भी नहीं सकता था। माता सीता ने यह कहा था कि हे रावणमैं सती हूँ !, मैं पतिव्रता हूँ, मेरा एक पति है आज जो तूने पाप से मेरे शरीर को छू भी लिया तो तेरा अनिष्ट होता चला जाएगा। रावण में इतनी प्रबलता नहीं हुई कि माता सीता को वह छू भी सके। कैसी महानता उसके हृदय में थी। इसी प्रकार हे मेरी प्यारी माता जब तेरा जीवन इस प्रकार चरित्र ! से, मानवता से सुगठित हो जाता है तो यह समाज क्यों वैदिकवाद में पहीं आ जाएगा। यह वैदिकवाद में आ जाना ज्ञान कर्म उपासना में आ जाना यह सब माताओं का कर्तव्य

है, मानव का कर्तव्य है, प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य है।

आज हम कहाँ चले गये। उच्चारण कर रहे थे ज्ञान, कर्म उपासना। यह नयी विद्या की हमारे यहाँ चार धाराएं हैं। चार प्रकार की धाराओं में तीन प्रकार की विद्यायें हैं ज्ञान, कर्म, उपासना। इनके मन्थन करने के पश्चात् मानव और ऊँचा जाता है तो उसका नाम विज्ञान कहलाया जाता है। अब विज्ञान दो प्रकार का होता है एक भौतिक विज्ञान होता है एक आध्यात्मिक विज्ञान होता है। आज देखो, हमें विद्युत को जानना, नाना मन्त्रालयों की बनाना, सुन्दर सुन्दर भवनों का निर्माण, उनमें सुन्दर सुन्दर यन्त्रों के निर्माण यह सब कुछ भौतिक विज्ञान से होता है। आध्यात्मिक विज्ञान से आत्मा में उस प्रभु की सृष्टि को जानना, प्रभुत्व को जानना यह आध्यात्मिक विज्ञान कहलाता है। इन दो प्रकार के विज्ञानों को जानना आगे चलकर के एक विज्ञान काण्ड कहलाया जाता है। इसी प्रकार यह नयी विद्या है हमारे जीवन की जितनी सुगठितता है वह सब उसी त्रयी विद्या से सुगठित रहती है, उसी से हमारा मिलान है। मानव जीवन और वैदिकवाद दो नहीं हैं वह मौलिक रूपों में एक ही माने जाते हैं। इसी प्रकार आज हमें वैदिक बनना चाहिए क्योंकि यदि हमारे हृदय में वेद का प्रकाश है, अन्तःकरण में प्रकाश तो वही है जो वेद का प्रकाश है, हमें उसको अपनाना चाहिए। वेद किसी की व्यक्तिगत सम्पदा नहीं है वह प्रत्येक प्राणीमात्र की सम्पदा है।

यह है आज का हमारा वाक्य। समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रकट करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो।

११ 20 10 1968 पुष्प 11 भौतिक तथा आध्यात्मिक यज्ञ की कल्पना

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पुनः से जिन वेद मन्त्रों को जाते हैं कि हमारी वाणी का ही सम्बन्ध वाणी से नहीं है परन्तु प्रत्येक इन्द्रिय का सम्बन्ध उस प्रकाश से है। उसी प्रकाश से उसका मिलान है क्योंकि यदि इन्द्रियों के समीप प्रकाश नहीं होता तो इन्द्रियों में गति किसी प्रकार आ ही नहीं सकती। इन्द्रियों में जो गति है, वह जो देन है, वह मेरे प्यारे उस देव की !

है जो देवताओं का भी महादेव कहलाया गया है। आज हम उस परमपिता परमात्मा का गुणगान गाते चले जाएं।
उस मेरे प्रभु ने इस मानव शरीर को रचा, इस ब्रह्माण्ड की रचना की। इसमें पृथ्वी जैसे मानग गृति को उत्पन्न कर दिया जिसमें नाना प्रकार के पदार्थो की उत्पत्ति होती रहती है। खाद्य और खनिज पदार्थो की इसी के द्वारा उत्पत्ति होती रहती है। आज हम उस देव का कहाँ तक धन्यवाद कर सकते हैं। कहाँ तक उसकी महिमा का गुणगान गा सकते हैं जो हमारे जीवन में एक महानता का दिग्दर्शन और प्रकाश देता रहता है। प्रत्येक इन्द्रिय में प्रकाश की प्रतिभा ओत प्रोत हो करके अपना कार्य करने में सफल हो जाती है। इन्द्रियों का क्षेत्र एक विशालता में परणित होता चला जाता है प्रभु ने इस सर्वस्व ब्रह्माण्ड को यज्ञ वेदी के रूप में रचा क्योंकि यज्ञ में जैसे होता जन आहुति देते रहते हैं, यज्ञमान भी आहुति देता रहता है इसी प्रकार इस संसार को क्रियाशील बनाने में नाना प्रकार के जो होता है, जल, अग्नि, वायु हैं यह प्रभु के चुने हुए होता है, यह नित्य प्रति आहुति देते रहते है। परमाणुओं की आहुति देते रहते हैं। प्राणीमात्र का जीवन उन आहुतियों से प्रदीप्त होता है, प्रकाशमान होता है। इसी प्रकार हमें विचार विनिमय करना है कि प्रभु का जो दिया उत्तम मार्ग है उसको अपनाने में अपने विचारों को संकीर्ण नहीं बनाना चाहिए। लक्ष्मी अपना वही स्थान ग्रहण करती हैं जहाँ उसके पति का पूजन होता है। यदि पति का पूजन नहीं होगा तो वहाँ लक्ष्मी का कुछ नहीं बनेगा क्योंकि लक्ष्मी का सदुपयोग करना यह मानव के लिए विशेष कर माना गया है।
मेरे प्यारेमहानन्द जी मुझे प्रेरणा देते चले जा रहे हैं !, वायुमण्डल से भी मुझे यह प्रतीत हो रहा है कि यह जो कल का आगे दिवस आ रहा है। समय आता रहता है, जीवन की सिद्धान्तों में विचारधारा बनती रहती हैं परन्तु जहाँ दीपावली दिया ब्रभे कृतिः दिया मानव का जीवन प्रकाशमय होता है, मानव के मन में एक महान क्रान्ति उत्पन्न होती है, एक नवीन क्रान्ति का मानव दिग्दर्शन करता है। आज जब हम यह विचार विनिमय करते हैं कि एक द्रव्यपति है परन्तु द्रव्य का दुरूपयोग करता है सदुपयोग नहीं करता यज्ञाः मह कृति वह यज्ञ नहीं करता, अनाथों की सेवा नहीं करता, केवल द्रव्य

को एकत्रित करके अपने मान में परणित होता चला जाता है तो उसका क्या बनेगा। वह समय बहुत निकट आने वाला है जब द्रव्य के दुरूपयोग करने वाले प्राणी के विनाश का समय निकट आ जाता है। द्रव्य दुरूपयोग करना मानो खान पान में और नाना कृतियों में, भोगों में परणित कर देना यह मानव के लिए कोई सुन्दरता नहीं हैं। मेरे ऋषि ने तो ऐसा कहा है, आचार्यजनों ने तो ऐसा कहा है कि द्रव्य को एकत्रित करना मानव के लिए कोई ऊँचा वाक्य नहीं है। वेद का ऋषि तो कहता है कि उसका सदुपयोग करना, वाणी का, चक्षुओं का, घ्राण का, श्रोत्रों का, ग्रीवा का, उपस्थ का त्वचा का जितना भी इन्द्रियों का सदुपयोग किया जाता है उतनी ही मानव में प्रतिभा जागृत होती चली जाती है। मेरे भद्र पुरूषों मैं यह उच्चारण करने नहीं आया कि द्रव्य ! नहीं होना चाहिए परन्तु द्रव्य के साथ मानव को अपनी मानवता समाप्त नहीं कर देनी चाहिए। यदि द्रव्य की लोलुपता में मानवता को नष्ट कर दिया तो उस द्रव्य का क्या बनेगा? एक समय वह आयेगा कि यदि उसकी मानवता उसके समीप नहीं है, विचारधारा ऊँची नहीं है तो वह द्रव्य पृथ्वी के तुल्य होता चला जाएगा। मैने अभी प्रकट किया था कि जहाँ पति का पूजन नहीं होगा वहाँ लक्ष्मी भी अपना अधिक समय तक स्थान ग्रहण नहीं कर सकती। उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि लक्ष्मी दोनों का पूजन होता है वहाँ नाना प्रकार की सम्पति और संसार की सम्पदा होती है। परन्तु सम्पदा वहीं होती है जहाँ धर्म और लक्ष्मी दोनों का पूजन किया जाता है। अब विचार आता है कि पूजन कैसे करें? मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे स्मरण कराते रहते थे कि ! द्रव्य का सदुपयोग क्या है कि देवताओं को सर्वप्रथम हवि देना लक्ष्मी अर्पित करें? कदापि भी नहीं। लक्ष्मी किसे कहते हैं? द्रव्य नाम लक्ष्मी है और जितने भी पदार्थ हैं, वनस्पतियों हैं इनमें सबमें हमें द्रव्य की प्रतिभा प्रतीत होती है। आज हम अन्न के रूप में भी सामग्री बना सकते है, जिस सामग्री को बनाना चाहते हो उस सामग्री को बना करके तुम देवताओं को हवि देते चले जाओ। उससे पृथक तुम्हारे लिए कोई सदुपयोग नहीं है। देखो, किसी मानव के द्वारा द्रव्य है, वह नाना प्रकार की वनस्पतियों को एकत्रित करता है और एकत्रित करके उन्हें अग्नि सभी को ले करके जल अग्नि वायु को

प्रसारण कर देता है और जब उन्हीं वनस्पतियों के साथ यदि सुन्दर विचार होंगे, अग्नि में प्रसारण शक्ति होती है वह सबको प्रसारण कर देती है और प्रसारण कर देती है और प्रसारण करके सब देवताओं को प्राप्त हो जाती है।

मेरे प्यारे जब तू अपने विचारां !मैं तो यह कहा करता हूँ कि हे यज्ञमान !भद्र पुरूषों ! की आहुति देता है जहाँ शाकल्य होता है वहाँ विचारों का भी शाकल्य होता है वहाँ त्रुटियों का भी शाकल्य होता है और उसे तू अग्नि के द्वारा अर्पित कर देता है और तू मुझे हवि दे। !यह कहा करता है कि हे अग्नि मैं तुझे हवि देता हूँ तू मुझे सत् मार्ग दे। इसी पर मुनिवरों जब वह अग्नि पर अपने यह विचार देता है जो देवताओं का ! दूत है, अग्नि सब देवताओं पर प्रसारण कर देती है तो वह जो देवता हैं वह हमारे मानव शरीर में कार्य करते हैं मानों कहीं अग्नि के रूप में हैं, कही जल के रूप में, कहीं वायु के रूपों में, कहीं अन्तरिक्ष के रूपों में, कहीं सूर्य के रूप में, कहीं चन्द्रमा के रूप में, नाना प्रकार के नक्षत्रों के रूपों में भी हमारे मानव शरीर में कार्यवाहक होता रहता है। तो यह जो देवता है, यह मानव शरीर सुचारू रूप से कार्य करते हैं और मानव की जो प्रवृत्ति है, मानव का जो विचार हैं वे देवता उसे बाह्य कर देते हैं कि तू इस कार्य को शुद्ध रूप से कर।

मेरे प्यारे आज जब हम विचार विनिमय करते हैं कि देवताओं का सम्बन्ध !भद्र पुरूषों ! मानव शरीर से माना गया है, आज हम मानव शरीर से ही नाना प्रकार की हबि देते हैं। वेद का आचार्य कहता है कि तू यज्ञशाला में यज्ञमान बनना चाहता है तो सबसे प्रथम अपने जीवन को तपा लेना चाहिए। उसे तपा कैसे लेना चाहिए? मानो विचारों को तपा लेना चाहिए। संकलन शक्ति से तपना चाहिए। उसके द्वारा संकल्प की ऐसी महान सत्ता होनी चाहिए कि उसके साथ साथ उसकी मानवीयता में इतनी दृढ़ता और साहस होना चाहिए कि वह हबि देने के योग्य बन जाए। मानो वह ब्रह्मचर्यश्यामी ब्रह्मा कृतिः ब्रह्मचर्य का भी पालन करता हुआ जग अग्नि की जिह्वा को धारण करता है कि यज्ञशाला में अग्नि की कितनी प्रकार की जिह्वा होती है, उन जिह्वाओं का क्या क्या स्वरूप होता है, यज्ञमान का जब भी मन चंचल हो उसी समय उसकी अग्नि की जिह्वा

के साथ प्रवृत्ति होनी चाहिए, नेत्रों की दृष्टि होनी चाहिए क्योंकि वास्तव में जब सब ही होतागण, अग्नि की जीभ्या को धारण करते हैं तो जो नेत्रों की तंरगें होती हैं, नेत्रों के जो संकलन होते हैं, नेत्रों के द्वारा जो धर्म और अधर्म की प्रवृत्तियां है मानो वह जिह्वा उनको निगल लेती है और निगल कर सभी देवताओं को अर्पित कर देती है। तो हे यज्ञमानतू ऊँचा धन और कैसा ऊँचा बन !हे होता जन !? तू परोहित के अधीन अपना कार्य कर। पुरोहित कौन होता है? जो तेरे हित का हो। पुरोहित उसे नहीं कहते जो पुराहित हो करके अपने यज्ञमान को नाना प्रकार की विडंबना में ले जाए। वास्तव में हमारे यहाँ सबसे प्रथम कोई पुरोहित है तो उसे परमात्मा कहते हैं क्योंकि वह जो मेरा प्यारा है वह सर्वश धर्मों का स्वामी है, जिसका धर्मज्ञ स्वरूप कहा गया है। वह जो मेरा प्यारा प्रभु है वह वास्तव में हित को चाहने वाला है, हित करने वाला है। मानव का यदि कोई हितकारी है तो वह जो यथार्थ में पुरोहित है उसका नाम प्रभु माना गया है। चैतन्य देव कन्या के हित के लिए केवल कल्याण की कल्पना किया करता है। आज पुरोहित को अपना महान देव चुने। वह जो मेरा प्यारा प्रभु है वह हमारे मानव के कल्याण के लिए सदैव प्रतिभा को देता रहता है। हमें अपने उस महान देव की याचना करते हुए और यहाँ भी यज्ञशाला में ऐसा बुद्धिमान पुरोहित चुनना चाहिए जिस पुरोहित के हृदय में पापाचार न हो केवल धर्मज्ञ और मानवीय दृष्टि से उस मानव का जीवन इस साधारण प्राणियों से उत्थानिक हुआ हो, ऐसे प्राणी को हम अपने पुरोहित चुनते है, ब्रह्मा को चुनता है। वह बह्म ब्रह्मेः अश्वान्ति ब्रह्मा वह जो ब्रह्मा है यज्ञशालः में प्रविष्ट होने वाला उसकी वाणी में माधुर्य, धार्मिकता और ओज की प्रतिभा होनी चाहिए उसकी वाणी में कटुता का व्यवहार नहीं होना चहिए क्योंकि उस ब्रह्म की जो कटुता है वह कटुता यज्ञाशाला में यज्ञमान के प्रति, होताओं के प्रति जो हिंसाजनक मानव की प्रवृत्तियां होती हैं, ब्रह्मा की होती हैं यह न जाना जाएं कि मैं मानो इनकी हिंसा कर रहा हूँ। अरे, मानववह हिंसा उनके हिंसा !, हिताओं की हिंसा, यज्ञमान की हिंसा वह उस ब्रह्मा को उस वेदपाठी को स्वयं वह हिंसा उस मानव को निगलती चली जाती है। मेरे प्यारेजब यज्ञशाला में ब्रह्मा होता !भद्र पुरूषों !, उद्गता यदि उसके द्वारा द्रव्य की

लोलुपता होती है, द्रव्य की प्रवृत्ति बन जाती है तो जानो कि उसका जो हृदय है अन्तःकरण है वह संकीर्णता से ओत प्रोत हो जाता है, उसकी जो विचारधारा है वह देवताओं के समीप जाती है। हे मानववह द्रव्य किसी को नहीं खाती परन्तु वह ज !ो तेरा आत्मिक बल है उसको निगलती चली जाती है और एक समय वह आता है कि द्रव्य की लोलुपता में हे ब्रह्म वह द्रव्य की लोलुपता स्वयं !हे उद्गाताओं !हे होताजनों ! तुम्हें यज्ञशाला में संकीर्ण बना देती है, आत्मा के बल को ऐसे शोषण कर लेती है जैसे ग्रीष्म की सुन्दर ऋतु में सूर्य की किरणें जल को अपने में शोषण कर लिया करती हैं। यहाँ महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बड़े सुन्दर शब्दार्थों में कहा है कि यज्ञाम् ध्रुवाः ब्रह्मे व्याप्रोति नाभ्याम् ऋषवन्ते रूद्राः वेद का आचार्य कहता है, महर्षि ने कहा है यदि आज हम संसार की नाभि को दृष्टिपात करना चाहते हैं तो यज्ञ वेदी है और वह यज्ञवेदी क्या है? जब ब्रह्म के विचारों का और नाना प्रकार के पदार्थों का, वेद मन्त्रों के विचारों का समावेश हो जाता है तो वह एक प्रकार से ब्रह्माण्ड की नाभि मानी गई है। आज हम उस नाभि को विचारने वाले बने जिससे हमारे मानसिक जीवन में महान प्रतिभा ओत प्रोत होती चली जाएं। इस जीवन को ऊँचा बनाने में सदैव तत्पर होते चले जाएं। मेरे प्यारे आज हम वाक्य उच्चारण करते करते बहुत दूर चले गये। !भद्र पुरूषों ! वाक्य यह प्रारम्भ करना था कि यज्ञशाला में प्रविष्ट होने वाले यज्ञमानः प्रभा कृति जो मानव अपने द्रव्य का सदुपयोग करता है, देवताओं को अर्पित करता है, यज्ञशाला में अर्पित कर देता है तो वह बड़ा सौभाग्शाली प्राणी है संसार में। उस मानव के लिए एक ऊँचा स्थान प्राप्त हो जाता है, द्रव्य की दृष्टि से लक्ष्मी से आँगन में परन्तु जो लक्ष्मी को नाना प्रकार की दुर्गन्धों में, मादक वस्तुओं में नष्ट करता चला जाता है और उसे कर्तव्यवाद में नहीं लाता तो वह मानव की प्रतिभा नष्ट भ्रष्ट हो जाया करती है। हम यज्ञमान की प्रतिभा के लिए सदैव याचना करते रहते हैं और यह कहा करते हैं कि हे यज्ञमानतू स !ंसार में प्रतिभाशाली बन। कैसी तेरी प्रतिभा होनी चाहिए? तेरे प्रकाश तेरे मन की शुद्धता तक रहना चाहिए। जब तेरे मनों में शुद्ध वातावरण होगा, मानवीय संकलन ऊँचा होगा तो मानो देखो, यह प्रसारण शक्ति, व्यज्ञप्ता और धर्म तेरे निकट

होगा और वह जो धर्म है लक्ष्मी के साथ उसका समावेश हो करके वही लक्ष्मी धर्म में प्रवृत हो करके मानव समिधा लेकर के आते हैं।

हमारे यहाँ परम्परा यह मानी जाती है कि जब गुरू आचार्य के समीप जाता है तो उस समय तीन समिधा ले जाती है। वह कहता है कि हे आचार्य मैं तीन समिधा लेकर ! के आपके द्वार आया करता हूँ। जब मैं यज्ञमान बनकर के यज्ञशाला समीप जाता हूँ, होता बन करके उस समय भी मैं तीन समिधा लेकर के अग्नि के समीप जाता हूँ, इसी प्रकार भगवन् मैं आपको भी अग्निस्वरूप ही धारण कर चुका हूँ। मेरे मन में ! संकल्प हो चुका है कि आप मेरे अग्नि देवता हैं, यज्ञस्वरूप हैं प्रभु मेरे जो तीन ! प्रकार के पाप मन, वचन और कर्म से मैं करता हूँ उन्हें तीन समधिओं के द्वारा दग्ध कर दीजिए। तो मुनिवरों जब महाराज इन्द्र इन तीन समिधाओं को लेकर पहुंचे तो ! प्रजापति से यही कहा कि मेरे जो नाना प्रकार के पापाचार हैं उनको दग्ध कर दीजिए। तो एक सौ वर्ष की तपस्या करने के पश्चात् उन्होंने एक उपदेश दिया था कि इस आत्मा को जानने का प्रयास करो। यह जो आत्मा है यह ज्ञान स्वरूप है और ज्ञान स्वरूप होने के नाते नाना प्रकार की जो प्रवृत्तियां हैं जो तुम्हें सुषुप्ति अवस्था में, स्वप्न अवस्था में, भी ऐसा ही कहा है। जिस समय प्रजापति के आश्रम में महाराजा विरोचन और महाराजा इन्द्र पहुंचे तो विरोचन तो प्रथम ही उपदेश लेकर चले आए परन्तु इन्द्र ने एक सौ एक वर्ष की तपस्या की। तपस्या क्या होती है? अपनी नाना प्रकार की जो प्रवृत्तियां हैं नाना प्रकार की जो दुर्गन्धियां हैं उन सबकी हवि बना करके ज्ञान रूपी यज्ञशाला में सबको दग्ध करके जब गुरू के समीप समीधा लेकर के आते हैं।

हमारे यहाँ परम्परा यह मानी गई है कि जब गुरू आचार्य के समीप शिष्य जाता है तो उस समय तीन समिधा ले जाता है। वह कहता है कि हे आचार्य मैं तीन समिधा ! लेकर केआपके द्वार आया हूँ। जब मैं यज्ञमान बनकर के यज्ञशाला के समीप जाता हूँ, होता बन करके उस समय भी मैं तीन समिधा लेकर के अग्नि के समीप जाता हूँ, इसी प्रकार भगवन् मैं आपको भी अग्निस्वरूप ही धारण कर चुका हूँ। मेरे मन में ! संकल्प हो चुका है कि आप मेरे अग्नि देवता हैं, यज्ञस्वरूप हैं प्रभु मेरे जो तीन !

प्रकार के पाप मन वचन और कर्म से मैं करता हूँ उन्हें तीन समिधाओं के द्वारा दग्ध जब महाराजा इन्द्र इन तीन समिधाओं को लेकर पहुंचे तो !कर दीजिए। तो मुनिवरों प्रजापति से यही कहा कि मेरे जो नाना प्रकार के पापाचार हैं उनको दग्ध कर दीजिए। तो एक सौ वर्ष की तपस्या करने के पश्चात् उन्होंने एक उपदेश दिया था कि इस आत्मा को जानने का प्रयास करो। यह जो आत्मा है यह जो ज्ञान स्वरूप है और ज्ञान स्वरूप होने के नाते नाना प्रकार की प्रवृत्तियां हैं जो तुम्हें सुषुप्ति अवस्था में स्वप्न अवस्था में जागृत अवस्था में बाह्म जगत् को दृष्टिपात करते हो। उनको समेट लो, इन्द्रियों को समेट करके मन में स्थिर कर दो और मन को बुद्धि में स्थित कर दो और मन को अन्तःकरण कहलाया गया है। जब सब प्रवृत्तियां चित्त में लय हो जाती हैं और चित्त में जो सामग्री एकत्रित हो गई है उसकी बेटा ज्ञान रूपी जो आत्मा का स्वरूप है उसमें ! आहुति देना है और आहुति देकर के प्रभु से मिलान करना है। वह मानव का आन्तरिक यज्ञ कहलाया गया है। आज हमें इस यज्ञ को करना है जिस यज्ञ के करने से हमारे मन की प्रवृत्तियां विशाल बनती हैं। हम संकीर्णता में नहीं जाते और उस स्थान पर चले जाते हैं जहाँ हमारे महान् ऋषिवर ब्रह्मा आदि पहुंच चुके हैं। उसके लिए हमें सुन्दर कल्पना करनी है।

आज हम यहाँ आंतरिक यज्ञ कर सकते हैं। एक विचारों का यज्ञ होता है। विचारों का यज्ञ केसे होता है? हम अपने विचारों को बनाते हैं, अपने विचारों का शोधन करते हैं मानो किसी समाज में जाकर के, किसी महापुरूष के सम्पर्क में जा करके, किसी स्थान में जा करके, विचारों में सुन्दरता लाते हैं विचारों में हिंसा नहीं रहने देते, अहिंसा परमोधर्म का पालन करने में तत्पर हो जाते हैं उन विचारों की सामग्री बनाते हैं वह जो विचार रूपी यज्ञ वेदी है वह क्या है? सत महापुरूषों का सत्संग। सत्महापुरूषों की प्रवृत्तियां, उनकी धाराएं, उनके मध्य में उन विचारों को व्यक्त कर दो, विचारों से ही वह महापुरूष तुम्हारे अपने विचारों को देकर के शोधन कर दिया करते हैं वह एक प्रकार की यज्ञ वेदी है जहाँ महापुरूषों का समूह हो, वह एक प्रकार की यज्ञवेदी है जहाँ महापुरूषों का समूह हो, अपने जो विचार हैं उनमें जहाँ संशोधन किया जाता है वह

एक प्रकार की विचारों की वेदी कहलाई गई है और जो विचारों की वेदी है, उस सुन्दर यज्ञशाला में जिस का सम्बन्ध भी ज्ञान रूपी अग्नि से है और ज्ञान रूपी अग्नि से जब मानव अपनी प्रवृत्तियों को स्वाहा कर देता है उस समय उस मानव के जीवन में एक महान प्रतिभा छा जाती है और प्रतिभा उस मानव को ध्रुवा गति नहीं होने देती ऊर्ध्वा गति बना करके विचारों में व्यापकता, प्रसारणता और आंकुचन यह सब प्रकृति के गुण आकर के प्रकृति के कण कण को जान करके वह महान बन जाता है। और अपना प्रदर्शन करके इस संसार सागर से वह मानव पार हो जाता है।

हमारे यहाँ कई प्रकार के यज्ञ होते हैं। विचारों का यज्ञ होता है, आन्तरिक यज्ञ होता है और नाना संकल्प वाले यज्ञ होते हैं और उनमें भी नाना प्रकार के भेद हैं उनमें गो नाम का यज्ञ है, अजामेध नाम का यज्ञ है, अश्वमेध नाम का यज्ञ है जिसका वर्णन हम कल प्रकट कर सकेंगे। आज इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है। आज के हमारे वाक्यों का अभिप्राय है कि हम मन, वचन और कर्म को ऊँचा बनायें। इनसे पाप वासना न आने दे। यही हमारा जीवन है। इसी में हमारे जीवन की एक महान प्रतिभा है, एक महान धारा है उसको अपनाने में हम सदैव तत्पर होते चले जाएं। इसी से हमारे जीवन का उत्थान होगा। द्रव्य भी कई प्रकार का होता है और तीसरी सम्पदा शारीरिक बल की होती है। नाना प्रकार की जो सम्पदा है यह सब सम्पदा कहलाती है। न तो बुद्धि का दुरूपयोग होने दो, न बल का दुरूपयोग होना चाहिए और न लक्ष्मी का दुरूपयोग होना चाहिए। जब तीनों का दुरूपयोग नहीं होगा तो मानव जीवन में मानवता के विशेष विशेष अंकुर ओत प्रोत होते चले जाएंगे।

मानव को परमपिता परमात्मा ने उसके संस्कारों में बुद्धि दी है और बुद्धि का जो दुरूपयोग करता है, बुद्धि के द्वारा ऐसे अनुचित्त कार्य करता है कि वह साधारण प्राणियों को कुदृष्टि पात करता है तो वह जो बुद्धि का दुरूपयोग है उसे नहीं करना चाहिए। बुद्धि का कार्य यह है कि यदि परमात्मा ने बुद्धि दी है, दैविक सम्पदा है तो उसमें स्वयं को ऊँचा बनाना है, स्वयं को बुद्धिमान रहना है और दूसरों को बुद्धिमान बनाना है। यह बुद्धि का सदुपयोग कहलाया जाता है। यदि बुद्धि हमारे द्वारा है और बुद्धि का दुरूपयोग

है और आज पद की लोलपुता में, पद के आँगन में साधारण प्राणियों को अपने पगों के नीचे दबाना चाहते हैं और ऊँचा बनाना चाहते हैं तो यह परमात्मा की दृष्टि में और धर्म की दृष्टि में यह बुद्धि का दुरूपयोग कहलाया गया है। इसी प्रकार यदि मानव के समीप शारीरिक बल है और शारीरिक बल से नाना प्रकार के अनुचित्त कार्य करता रहता है, न तो चरित्र का ही विचार रहता है और किसी प्राणी को अपने भुजबल से वह नष्ट करने की प्रवृत्ति उसमें आती है यह प्रवृत्ति नहीं आनी चाहिए। यह उसका दुरूपयोग है। आज जिन कारणों से उसको प्रभु की सम्पदा वह बल प्राप्त हुआ है, स्वयं अपने स्तर से नीचे न जाना और आगे चलक के जब वह प्राणी चलता है तो उसके जीवन में एक महान प्रतिभा ओत प्रोत हो करके उसके बल का सदुपयोग माना गया है।

इसी प्रकार मैंने द्रव्य की चर्चायें की हैं द्रव्य का भी सदुपयोग करना। द्रव्य परमात्मा ने दिया है। पुरूषार्थ का फल है। स्वयं को द्रव्यपति बनना है, दूसरे अनाथों की सेवा करना यज्ञ इत्यादि करना और भी नाना कार्य करना जितना भी हम परोपकार स्वीकार करते हैं इसी सबका नाम यज्ञस्वरूप माना गया है। कल चर्चा प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त होता गया है कि आज हम किसी वस्तु का दुरूपयोग न होने दें। स्वयं उसके अधिकारी बनें, विचारशील बनें और जो इन को व्यर्थ में ही समाप्त कर देता है वह इनका अधिकारी नही होता इसलिए प्रभु का चिन्तन करते हुए, धर्म को जानते हुए, धर्म के साथ लक्ष्मी है धर्म के साथ बुद्धि है, धर्म के साथ बल है यदि इन तीनों के साथ में धर्म नहीं है तो इनका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। कल मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रकट करेंगे। आज का यह वाक्य समाप्त होता गया। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम अपने जीवन को यज्ञस्वरूप बनायें और प्रतिभाशाली बना करके यह जो प्रभु का रचाया हुआ ब्रह्माण्ड है, अलौकिक ब्रह्माण्ड है, अलौकिक ही है प्रभु हमें उसकी महिमा का गुण गान गाना, प्रभु का चिन्तन करना, इससे हमारा जीवन ऊँचा बनेगा। हम समाज के जीवन को ऊँचा बना सकेंगे। अब वेदों का पाठ

होगा। शेष चर्चायें कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त होता गया।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो वाक्य तो बहुत सुन्दर परन्तु समय की सूक्ष्मता। !गुरूदेव !

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य कल समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल होंगी। !बेटा .....

पूज्य महानन्द जीः अच्छा भगवन् कुछ सूक्ष्म सा समय प्रदान कर देना। !तो भगवन !

पूज्यपाद गुरुदेवः अच्छा बेटाक !ल का कल देखा जाएगा। तो मुनिवरों आज का ! वाक् समाप्त होता गया। समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रकट करेंगे।

१२ 06 11 1968 पुष्प 10 तपस्या

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परंपरागतों से कुछ मनोहर पद्धति अथवा उसका कर्म विचित्र माना गयास है। जब हम उस वैदिक अथवा प्रकाश के लिए अग्रसर हातेत है तो ऐसया प्रतीत होने लगता है जैसे वह प्रकाश हमें अमूल्य वस्तु प्रदान कर रहा हो क्योंकि जिस अमूल्यता के लिए मानव सदैव प्रयत्नशील रहता है और प्रकाश के लिए याचना करता रहता है अथवा वह किसी भी स्थान में हो परन्तु उसका जीवन सदैव्क प्रकाश के लिए अग्रणीम बनने के लिए तत्पर होता है। हमारी परंपरा यही उच्चारण करती चली आ रही है कि मानव को अपने प्रकाश के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। उसकी जो आंतरिक प्रेरणा है उसे सदैव प्रकाश के लिए बाध्य करती रहती है। वह संसार के नाना आवेशों में, नाना वस्तुओं में संलग्न रहता है परन्तु जब इन नाना आवेशों से मुक्त हो जाता है तो उसी काल में उसकी अंतरात्मा से एक ध्वनि उत्पन्न होती है जिस ध्वनि से मानव के हृदय में धर्म अथवा मानसिक चेतनाएं अथवा एक प्रकाश के लिए अग्रणीम बनाने के लिए तत्पर होती है। आज हमें उस प्रेरणा को जानना है। प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या, प्रत्येक मेरा प्यारा भद्र महर्षि मण्डल जब इस प्रेरणा को जान जाता है तो उस मानव का जीवन सदैव प्रकाश में रमण करने लगता है।

हमारे यहाँ वेद को वास्तविक प्रकाश माना है क्योंकि उसमें सदैव चेतना रहती है, उसमें

ज्ञान है अथवा विज्ञान है और उसमें से हम नाना विज्ञान प्राप्त करने लगते हैं। हमारा आध्यात्मिक विज्ञान क्या, भौतिक विज्ञान क्या, कर्म कांड क्या, उपासना कांड क्या अथवा उस वेद रूपी प्रकाश से हम अपने अपने पटल के अनुसार, अपने अपने मन्त्रालय के अनुसार उसमे से नाना वस्तुओं को निकालने का प्रयास करते रहते है मुझे स्मरण आता रहता है भगवान कृष्ण का जीवन और भी नाना ऋषियों का जीवन जैसे महर्षि कपिल जी के जीवन के नाना वाक्य स्मरण आनक लगते हैं। उनके जीवन की जो झांकी थी, जीवन का जो आदेश था वह हमारे लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। महर्षि कपिल जी का ही नहीं, हमारे यहाँ महर्षि कोकरानी जी महाराज और पनपेतु इत्यादि ऋषियों का जीवन भी मुझे स्मरण आने लगता है। इसी सम्बन्ध में हमारे यहाँ महर्षि याज्ञवाल्क्य का जीवन महत्वनपूर्ण माना गया है। अग्रणीय माना जाता है जिन्होंने अपने जीवन में अग्रणीम तपस्या और महानता का दिग्दर्शन करते हुए वेद रूपी प्रकाश को उस महान आंतरिक प्रेरणा को जानते हुए अपने मानत्व को जानने को सदैव प्रयास किया आज हमें भी उन्हीं के अनुसार उन्हीं की उन विचित्र विचार धाराओं को अपना लेना चाहिए जिनको अपनाने से हमारी मानवता वास्तव में अग्रणीय बनती चली जाती है क्योंकि संसार में जो भी वस्तु हम दृष्टिपात करते हैं अथवा वह सभी ततपस्या में प्रतीत होने लगती है।

महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने अपने वचनामृतों का पान कराते हुए कहा है कि यह जो सर्वशः ब्रह्माण्ड है उसकी प्रत्येक वस्तु तपस्या में प्रतीत होने लगती है परन्तु वह तपस्या क्या है? जब मानव अपनी आंतरिक प्रेरणा को जानने लगता है तो उसका जीवन साधारण व्यक्तियों से उपराम हो जाता है और उपराम होकर के वह अपने मानत्व को अच्छी प्रकार जानने के लिए तत्पर होने लगता है। तो मेरे प्यारे हमें !भद्र पुरुषों ! आंतरिक चेतना को जानने के लिए उस परमात्मा की याचना करने की आवश्यकता है। हम जबपरमात्मा की याचना करते हैं, परमात्मा को अपना अग्रणीम बनाते हैं, उस अपने प्यारे प्रभु से कहा करते हैं कि हे प्रभु जब तू हमारे जीवन का साथी बनता ! है, जीवन में एक महान प्रेरणा देता है तो वास्तव में यह जीवन आप में ही तन्मय हो

जाता है। तो मेरे प्यारेभद्र पुरु !षां आज हम उस प्रभु की !ऋषि मण्डल !मेरे प्यारे ! याचना करते हुए संसार सागर से पार होने का प्रयास करें क्योंकि यह जो ससांर है जो हमें दृष्टिपात आ रहा है यह संसार एक प्रकार का सागर है। इसमें नाना प्रकार की तरंगें मानव को बाध्य करती रहती हैं। कहीं मान के लिए बाध्य करती है कहीं अपमान के लिए किया करती है। यह मानव सदैव नाना प्रकार की आवृत्तियां में प्रवृत्त होता रहता है। कहीं वह किसी का मान करता है और वहाँ प्रणी अद्मण समय में उसी का अपमान करने के लिए तत्पर हो जाता है। यह जो चेतना है यह मानव की वास्तविक चेतना नहीं है। मानव कर जो वास्तविक चेतना है वह यह कहा करती है कि संसार तो ऐसा चलता ही रहता है परन्तु तेरा जो लोक है परलोक है वह और कोई वस्तु है वह मान और अपमान से वास्तव में उपराम है। वह जीवन एक साधारण व्यक्तियों का जीवन नहीं होता परन्तु वह जीवन एक महान और साधारण व्यक्तियों के जीवन से ऊँचा जीवन होता है जिसे हमारे यहाँ महापुरुष कहा जाता है।

हमारे यहाँ परम्परा से दो प्रकार के महापुरुषों का वर्णन आता रहता है। एक तो वह महापुरुष होते हैं जिनका जीवन सदैव ब्रह्मा में तल्लीन हो जाता है। एक वह महापुरुष होते हैं जो जनता जनार्दन में रहते हुए अपने जीवन को उपरूराम कर देते हैं। जनता जनार्दन में ही समाधि अथवा उसकी ब्रह्मय समाधि से ही तल्लीन हो जाता है। ब्रह्मय समाधि वह होती है जब मानव अपने इन नौ द्वारों को जानने के लिए तत्पर हो जाता है। वह नौ द्वारों को साधना से तनमय कर लेता है। वह उन नौ द्वारों से प्रगति नहीं होने देता मानो वह उस ब्रह्मा में तल्लीन हुआ अन्तरात्मा में ही लीन हो जाता है, अंतर आत्मा और प्रभु का तारत्मय हो जाता है। उसको हमारे यहाँ ब्रह्मय समाधि कहा जाता है। ब्रह्मयी समाधि केवल ब्रह्मा ही ब्रह्मा को विचारना, केवल ब्रह्मा ही प्रतीत हो रहा है, हम जिस आसन पर जाते हैं वहीं प्रकृति के कण कण में ब्रह्मा को दृष्टिपात किया करते हैं। संसार उसके लिए ब्रह्मा से पृथक कोई वस्तु नहीं होती। वह उसी में तन्मय हो जाता है उसी में तल्लीन होता हुआ उसी में अपने को स्वीकार करने लगता है। जब वास्तव में मानव अंतर आत्मा में ही स्वयं हवन करने वाला होता है, हवि प्रदान कर

देता है। ज्ञान रूपी अग्नि में अपने को तनमय कर देता है, ज्ञान में ही वह ब्रह्मा रमण करने वाला है। हमारे यहाँ कहा भी गया है ज्ञानम् प्रति अस्ति सुकृताम् अध्यानम् वेदत्तणी त्रानम् प्रिय अस्ति सुप्रजाः वेद का आर्य कहता, महर्षि वायु जी ने कहा है कि संसार में जो ज्ञान है वही ब्रह्मा को प्रिय है क्योंकि ज्ञान विज्ञान में ही प्रभु रमण करने वाला है। जब हम यह दृष्टिपात करते हैं कि संसार में जितना भी विज्ञानवाद है, विवेक है उस सभी में प्रभु ओत प्रोत है जब मानव इस प्रकार अपनी धारणा को धारण कर लेता है तो उस समय वह उस समाज में रहकर के केवल वह अपने को ब्रह्मा में स्वीकार करने लगता है। ब्रह्मा उसके लिए एक मात्र रह जाता है और अपने को ब्रह्मा में रमण करा देता है। इसी प्रकार आज हम विचारधाराओं में उस ब्रह्मा को अपने में धारण कराते हुए क्योंकि विचारधाराओं में ही प्रभु निवास करता है। प्रभु की जो कृति है, दृष्टि है वह सब मानवों के विचारों में, अंतरात्मा में ओत प्रोत हो जाती है। इसी प्रकार के बेटावह महापुरुष होते हैं जो ब्रह्मा को ही अपने में और स्वयं को ब्रह् !मा में तल्लीन स्वीकार करते हैं वह एक समय ब्रह्मा समाधि को प्राप्त हो जाते हैं।

अब जनता जनार्दन में रहने वाले जो महापुरुष होते हैं जो जनता जनार्दन में ही मानो अपने को क्या उस ब्रह्मा को स्वीकार कर लेते हैं। मानो जनता जनार्दन ही में रहता हुआ प्राणी उनके परोपकार की भावना लेता हुआ उस मानव का जीवन भी जनता जनार्दन में जब उसकी समाधि लग जाती है मानो वह अपने को इस प्रकार का बना लेता है कि आज तुम्हें जनता में रमण करना है परन्तु जनता तेरे दोषों का दिग्दर्शन करेगी परन्तु तुझे दोषों पर नहीं जाना है परन्तु तुझे महानता की उस पराकाष्ठा को जानना है जिससे मानव महान् बन जाता है। विचारों में इतना तन्मय हो जाता है कि उसका वाक्य मानव को छूने मात्र से मानव के मन पटल को पवित्र बनाता चला जाता है। मानव के मन पटल को प्रभावित करता हुआ जनता जनार्दन में ही उसका जन्म हो जाता है मानो उस के विचार उसमें तन्मय होते हुए उसी में अपने को समाधिस्थ बना लेता है। वह समाधिस्थ किस प्रकार बनाता है? जैसे भगवान मनु के जीवन में आता है मनु जी ने संसार में सबसे प्रथम राष्ट्र का निर्माण किया परन्तु उन्होंने अपने को

जनता में ही जनार्दन स्वीकार करते हुए जब जनता को ही स्वीकार कर लिया तो उन्होंने अपनी मानवता का परिचय देते हुए, अपनी महानता का दिग्दर्शन कराते हुए प्रजा में उनकी लोकप्रियता विराजमान हो जाती है। जैसे आज हमारे यहाँ भगवान श्रीराम का जीवन प्राप्त होता है। भगवान श्रीराम के जीवन में सदैव कितनी पवित्रता भासती थी वह राष्ट्रवाद में संग्राम भी कर रहे हैं, परन्तु उनकी जनता पराकाष्ठा कितनी विचित्र थी, चरित्र में इतनी संलग्नता। लंका को विजय करने के पश्चात् भी उनके विधाता को लंका को अर्पित कर देना। लंका के लिए उनका जो अपना कार्य था, विजयता थी उसको अपने तक छू न देने का ही नाम जनता में जनार्दन समाधिस्थ कहलाई गई है। मेरे प्यारे मुझे नाना महापुरुषों का जीवन स्मरण आता रहता है। जब !भद्र पुरुषों ! मैं उन महापुरुषों की चर्चाओं पर जाता हूँ तो हमारा हृदय गद्गद होने लगता है। आज हम विचार विनिमय करें कि जनता में ही जो समाधि है वह विचित्र मानी गई है। उसमें मानव को सदैव नीचे आने का भय रहता है परन्तु उस भय से वह कभी भी भयभीत नहीं होता। वह जो महापुरुष होता है जो जनता में ही जनार्दन को अपने में स्वीकार कर लेता है और जनता उसे स्वयं अपना प्रिय बना लेती है तो उसकी एक महान् समाधि लग जाती है इसी प्रकार आज हम विचार विनियम करते चले जाएं। संसार में वही महापुरुष होता है जो दुर्गुणों को दृष्टिपात नहीं करता वह मानव के गुणों का दिग्दर्शन करता है अवगुणों को त्या देता है वह मानव एक समय महानता की पवित्र वेला में चला जाता है। मानो महानता का दिग्दर्शन करने वाला बनता है। आओ मेरे प्यारे आज में क्या उच्चारण करने लगा। वाक्य यह प्रारम्भ करने जा रहा !भद्र पुरुषों ! था कि आज वास्तव में हम अपने को तपस्वी बनायें, अपने को महानता की वेदी पर ले जाएं आज हम वेद रूपी प्रकाश को अपनाने का प्रयत्न करें। वाक्य तो हमारा यह चल रहा था परन्तु समाधि पर चले गये। जनता जनार्दन और ब्रहम समाधि पर चले गये। वाक्य उच्चारण करते करते दूर चले गये। वाकय यह प्रारम्भ हो रहा था कि हम वेद रूपी प्रकाश को अपनाने का प्रयास करें परन्तु वेद रूपी प्रकाश क्या है? वेद नाम प्रकाश का है जो मानव के अन्तःकरण को पवित्र बनाने वाला है। मेरे प्यारे महानन्द !

जी यह कहा करते हैं कि सूर्य भी तो एक प्रकाश है, सूर्य को वेद क्यों नहीं उच्चारण कर देना चाहिए। मैं यह कहा करता हूँ कि ब्रह्मा ही कायम् वृद्धि अन्तान् नृत्य कामाः यह जो सूर्य का प्रकाश है यह मानव के नेत्रों को प्रकाशित बनता है परन्तु यह जो वेद रूपी प्रकाश है वेद रूपी सूर्य है यह मानव के अन्तःकरण को पवित्र बनाता चला जाता है। जब मानव का अन्तःकरण इस वेद रूपी प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है तो यह अंधकार के लिए अग्रणीम नहीं होता। वह सदैव प्रकाश के लिए संलग्न रहता है और प्रकाश में ही अपने को स्वीकार करने लगता है।

मुनिवरों मैं अभी अभी अपने कुछ विचार व्यक्त कर रहा था। यह हमारा ही विचार ! नहीं है यह वेदों का विचार है। वेदों में जो धारा आती है उनका मैं सूक्ष्म सा परिचय देता चला आ रहा हूँ। वाक्य यह प्रारम्भ हो रहा था कि हमवास्तव में वेद रूपी प्रकाश को अपनाने का प्रयास करें और वेद रूपी प्रकाश में हमें चेतना देता है। वह हमें महानता के लिए अग्रणीम बनता चला जाता है। आज हम आन्तरिक प्रेरणा को जानने के लिए तत्पर रहें। आंतरिक जो प्रेरणा है वह मानव को सदैव आगे चलने के लिए बाध्य किया करती है और यह कहा करती है कि हे मानव तू वास्तव में ऊँचा बन। ! मुझे आन्तरिक चेतना के ऊपर एक वार्त्ता स्मरण आती चली जा रही है।

एक समय मुनिवरोंमहर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज आनन्दपूर्वक विराजमान थे !, महानता का दिग्दर्शन कर रहे थे, परमात्मा का चिन्तन कर रहे थे, आन्तरिक चेतना जाग्रत हुई। मानो उस हृदय में एक वाक्य आ समाहित हुआ कि तू तपस्वी बन। परन्तु तपस्या कैसे की जाएं? आन्तरिक भावना जागी और आन्तरिक चेतना ने कहा कि हे याज्ञवल्क्य ! आज तू सबसे प्रथम अपनी गृह पत्नियों से आज्ञा ले। उसके पश्चात् तुझे तपस्या का कोईन कोई मार्ग प्राप्त हो सकता है। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज इसी चेतना के साथ वह अपने आसन को त्याग करके अपने स्थल में आ पहुंचे और अपनी पत्नी कात्यायनी से कहा कि हे देवी मेरी एक इच्छा है कि मैं तपस्वी बनूं। उसने कहा कि ! जैसी प्रभु की इच्छा हो मैं आपके कार््यों में बाधक नहीं बनूंगी। माता कात्यायनी ने जब ऐसा कहा तो ऋषि का हृदय गद् गद् हो गया उसके पश्चात् महर्षि जी भ्रमण करते

हुए अपनी द्वितीय पत्नी के द्वार पर जा पहुंचे। मत्रे द्वार जा पहुंचे तो महारानी मत्रे ने उनका बड़ा आदर किया। विराजमान हो गएं और बोले कि हे मत्रे मेरी इच्छा है कि मैं तपस्वी बनूं परन्तु तपस्या के लिए मेरी जो आन्तरिक चेतना है वह मुझे बाध्य करती चली जा रही है। उस समय मत्रे ने कहा कि भगवन् आप जब तपस्या के लिए जाते ! हैं तो मेरा साथी कौन बनेगा, क्योंकि पत्नी का इस संसार में केवल एक पति ही साथी होता है परन्तु यदि पति का आश्रय ही दूर हो जाता है तो पत्नी का कौन साथी बनता है उस समय महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने कहा कि हे मत्रे तु तो बड़ी भोली हो। तुम्हें यह ज्ञान नहीं आया कि यह जो संसार का पति होता है यह तो स्वार्थी पति होते हैं यह तो नाना प्रकार के भोग विलासों में तल्लीन रहते हैं। वास्तविक जो पति होता है वह परम पिता परमात्मा है। वह चैतन्य देव है जो तुम्हें सदैव चेतना देता रहता है, सदैव प्रकाश के लिए अग्रणीम बनाता रहता है। माता मात्रे ने कहा कि नहीं भगवन् मुझे तो ऐसा ! ज्ञान नहीं हो पाता। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह जो पति होते हैं यही परमेश्वर के स्थान में द्वितीय स्थान में विराजमान होते हैं क्योंकि यह पत्नी को चेतना देते रहते हैं। उस समय याज्ञवल्क्य जी ने कहा कि हे देवी आपको यह ज्ञान है कि क्या यह ! चेतना देता है। यह कोई महानता के भोग विलास की चेतना देताहै। यह नाना प्रकार की चेतना देता है। महान् बनने की तो केवल प्रभु ही चेतना दिया करता है। हे देवी ! यह जो संसारी पति है इनसे तुम्हें क्या प्राप्त होता है। नाना प्रकार के भोग विलास जिनाक संसार में कोई सार नहीं है न कोई अस्तित्व है जिनके ऊपर तुम यह वाक्य उच्चारण करती चली जा रही हो। वास्तविक पति वह है जो हमें वायु देता, प्राण देता है, नाना प्रकार की वस्तुओं को प्राप्त कराता है, अग्नि देता है। आज हम उस अपने प्यारे पति को तो त्याग देते हैं परन्तु यह जो संसारित पति हैं जो हमें विनाश के मार्ग पर ले जाते हैं उन्हें तुम वास्तविक पति चुन रही हो। आन्तरिक भावना वाले जो शब्द होते हैं वह मानव को बाध्य कर देते हैं। मत्रे को उन शब्दों ने बाध्य कर दिया। बाध्य करते हुए उन्होंने कहा कि हे देवी ब्रह्मे अस्ति परन्तु देवी उच्चारण करते हुए उन्होंने ! कहा कि प्रभु जैसी आपकी इच्छा। आप जाइये तपस्या कीजिए। ऐसे वाक्य उच्चारण

करते ही महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज का हृदय गद् गद् हो गया और वह भयंकर वन में पहुंच विचार विनियम करने लगे अब कैसी तपस्या करनी चाहिए परन्तु जब वह तपस्या में तल्लीन होने लगे तो उन्होंने विचारा कि अब मुझे तपस्या क्या करनी है। उन्होंने क्या किया कि जिस भूमि में से कृषक अन्न को ले जाते थे और उस अन्न को पान करते थे और गायत्राणी छन्दों का चिन्तन करते हुए, प्रभु का चिन्तन किया करते। चिन्तर करते हुए उनका चिन्तन इतना प्रबल हो गया कि उन्होंने बारह वर्ष तक की, इस प्रकार तपस्या की। कोई भी अन्न ग्रहण नहीं किया केवल अन्न कया ग्रहण किया कि उन्होंने उसी अन्न को ग्रहण किया जो कृषक विरोचन ने कहा कि इसमें तो वह ध्वनि नहीं है परन्तु जब इसमें ध्वनि नहीं है तो इसका बनेगा क्या। वह ध्वनि कहाँ गई उन्होंने कहा कि वह ध्वनि तो रेणुका के द्वारा चली गई।

विरोचन ने कहा कि रेणुका को छला जाएं रेणुका को कैसे छला जाएं। उन्हीं तीनों ने फिर प्रस्थान किया और भ्रमण करते हुए यह रेणुका के समीप पहुंचे। रेणुका को भी यह ज्ञान हो गया कि आज तू दैत्यों के द्वारा छली जाएगी। रेणुका ने अपनी ध्वनि को अपना लिया। अब जब रेणुका को छला गया और उसका मन्थन किया गया तो उसमें वह ध्वनि नहीं थी जिस ध्वनि से संसार देवता बनता था। विरोचन जी से कहा गया कि वह ध्वनि कहाँ गई। उन्होंने कहा कि वह ध्वनि तो अग्नि को अर्पित कर दी, जाओ अग्नि को छलो।

अब पुनः उन तीनों ने वहाँ से प्रस्थान किया और भ्रमण करते हुए अिग्न के द्वारा आये। अग्नि को भी छला गया परन्तु अग्नि को भी यह ज्ञान हो गया कि अब तू छली जाएगी तो अग्नि ने उसे यज्ञ के दस पात्रों में अर्पित कर दिया। अब जब उसको छला गया और दैत्यों कि सभा में उस अग्नि को लाया गया तो अग्नि में भी वह ध्वनि नहीं थी। विरोचन ने कहा कि वह ध्वनि तो यज्ञ के पात्रों में विराजमान हो गई। अब यज्ञ के पात्रों में से उस ध्वनि को तुम किसी भी प्रकार निकाल न सकोगे इसलिए अब तुम शान्त हो जाओ।

मुनिवरोंवाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है !? यज्ञ के दस पात्र क्या हैं? विरख

क्या है? रेणुका क्या है? अग्नि क्या हैं? इसके ऊपर टिप्पणी करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है और इसी प्रकार की टिप्पणियां हमारे यहाँ नाना ऋषियों की प्राप्त होती हैं और कहा गया है कि विरख नाम मन को कहा गया है। जब यह मन शुद्ध और पवित्र होता है, महानता की धारा पर होता है उस समय इस शुद्ध मन से एक ध्वनि उत्पन्न होती है, महानता उत्पन्न होती है और जो इसकी छत्रछाया में आता है वह देवता बन जाता है। मन को हमारे यहाँ विराख कहा गया है और दैत्य क्या है? काम, क्रोध, मद, लोभ इत्यादि हमारे शरीर में है यह मनीराम को छल देते हैं। कहीं मान के द्वारा, कहीं क्रोध के द्वारा, कहीं काम के द्वारा छला जाता है तो वह जो ध्वनि उत्पन्न होती है मुनिवरों ध्वनि हमारे यहाँ धर्म को कहा गया है। यह ध्वनि नाम का जो धर्म है वह ! रेणुका में समाप्त हो जाता है। रेणुका नाम बुद्धि को कहा गया है क्योंकि इसमें मन के पश्चात् जब बुद्धि को छला जाता है दैत्यों के द्वारा तो जब वह ध्वनि उसमें प्राप्त नहीं होती तो वह अग्नि को अर्पित कर देते हैं। अग्नि क्या है? अग्नि नाम प्रतिभा का है, अग्नि नाम चक्षुओं को कहा गया है। अब इन नेत्रों को छला जाता है तो वह धर्म तरंगे यज्ञ पात्रों में समाहित हो जाती हैं। यज्ञ के दस पात्र कौन से हैं? हमारा यह जो मानव शरीर है यह एक प्रकार सुन्दश यज्ञमाला है इस यज्ञवाला में बेटा हवि देतें रहते ! हैं। कहीं ज्ञान की हवि देते रहते हैं, नाना प्रकार की वस्तुओं की हवि देते हैं। कौन देते रहते हैं? यह पात्र पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्म इन्द्रिय मानी गई है। इनके द्वारा हवन होता रहता है। मानव शरीर एक प्रकार की यज्ञ वेदी है और इस यज्ञ वेदी में नित्य प्रति यज्ञ होता रहता है। हवि देते रहते हैं। वह जो यज्ञ के पात्रों में समाहित हुई है वह क्या है? उसका नाम धर्म है।

मुनिवरों नेत्रों का नाम धर्म है दृष्टिपात करना। घ्राण का धर्म है मन्द सुगन्ध को धारण ! करना। इसी प्रकार श्रोत्रों का धर्म है वाक्य को श्रवण करना। इसी प्रकार त्वचा का धर्म सपर्श करना। इसी प्रकार इन्द्रिय अपना कार्य करती रहती है। इन्द्रिय के विषय को दैत्य छीन नहीं सकते। उनमें कोई न कोई धर्म का अंकुर किसी न किसी रूप में रहता ही है। इसी प्रकार आज निर्णय कर लेना चाहिए कि जो हमारा मानव शरीर है

यह एक प्रकार की यज्ञ वेदी है। इसमें से सदैव सुगन्धि उत्पन्न होती रहती है और वह सुगन्धि प्रत्येक प्राणी मात्र को प्राप्त होती रहती है। सुगन्धि क्या है? मानव के जीवन में वास्तविक सुगन्धि उनके विचारों में सुगन्धि होनी चाहिए। उसके विचार इतने पवित्र होने चाहिए, विचारों में इतनी महानता होनी चाहिए जिससे बेटा वह ब्रह्मा समाधि जनता ! जनार्दन में दोनों तन्मय होता चला जाएं।

इसी प्रकार मेरे प्यारे मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट नहीं करने आया केवल !भद्र पुरुषां ! सूक्ष्म सी वार्त्ता आज प्रकट करने आया हूँ कि हमारे यहाँ यह जो दैत्य है जो धर्म को छल लेते हैं। हमारे यहाँ धर्म क्या है? आज जब हम धर्म की परिभाषा करते हैं, धर्म मुनिवरों !जो धर्म धारण किया जाता है उसे ही धर्म कहते हैं। इसके ऊपर जब हम टिप्पणी करते हैं कि धारण करने वाला ठग होता है वही ठगी को धारण कर लेता है कया यह उसका धर्म है? परन्तु ऐसा हमें कहीं प्राप्त नहीं होता इसके ऊपर जब हम गम्भीरता से विचार विनियम करते हैं तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह धर्म ऐसा शब्द है जिसकी व्यापक कह सकते हैं जो व्यापक शब्द हो वह किसी की सम्पत्ति नहीं, किसी की सम्पदा नहीं, किसी रूढ़िवाद की सम्पदा नहीं परन्तु धर्म उसे कहते हैं जिस कार्य को करते हुए स्वयं अपने लिए कष्ट हो वह कार्य दूसरे के लिए न करें। इसी का नाम मुनिवरों धर्म कहा गया है। !

धर्म की और भी नाना प्रकार की विवेचनाएं आती हैं। परन्तु जब हम अन्तिम निर्णय देते हैं तो धर्म उसे कहा जाता है जिससे यह संसार देवता बनता है। परन्तु धर्म वह वस्तु है जैसे हमारे यहाँ कोई सुन्दर पदार्थ है अथवा कोई सुन्दरी हमारे नेत्रों के पास आती है और जब नेत्रों की ज्योति उस सौन्दर्यता में तन्मय हो गई, उसको अपनाने की इच्दा हो गई तो जानो वही पाप हो गया। परन्तु जब वह नेत्रों की ज्योति जाती है और मननशील प्राणी मनन करने लगता है कि यह कितना सुन्दर लेपन है, कितनी कलाकारता उसमें मेरे प्यारे प्रभु की है जब ऐसा चिन्तन मानव के समीप हो जाता ! उसी का नाम धर्म कहा गया है। !है तो बेटा

तो मेरे प्यारे मैं आज धर्म की कोई विवेचना करने नहीं आया। केवल !भद्र पुरुषों !

वाक्य प्रकट करने आ पहुंचे कि वास्तव में हम यह विचार विनियम करते चले जाएं किहमारा जो यह यज्ञ रूपी शरीर है इसमें पाप रूपी कर्म नहीं करना चाहिए इसमें सदैव विचारशील, गम्भीरता से विचार विनिमय करना हमारे मानवत्व को अपनेपन को जानने की सदैव इच्छा रहनी चाहए। इसलिए बेटा यह प्रभु का रचाया हुआ सुन्दर ! सा मन्त्रालय है, यज्ञ वेदी है जिसमें ज्ञान रूपी अग्नि प्रदीप्त हां रही है, उस अग्नि को हमें जानना है, हमें अपने में धारणा कर लेना है। यही आज हमारे वाक्यों का अभिप्राय है। वेद रूपी प्रकाश को अपनाने का प्रयास किया जाए। वेद रूपी प्रकाश क्या है, वेद क्या है इसको जानने के लिए सदैव मानव को चेतना में ,तन्मय होना चाहिए। आन्तरिक जो चेतना है महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के कथनानुसार वास्तव में हमारा जो आन्तरिक चेतना है उसके आधारित हों अपने जीवन को तन्मय कर देना चाहिए क्योंकि हमारा जो जीवन है वह आन्तरिक चेतना के ऊपर हमारा यह मानव शरीर रूपी जो भवन है यह स्थिर हो रहा है। हमें इसी का विचार विनिमय करना है, अनुसन्धान करना है। अनुसन्धान वेत्ताओं के द्वारा ही इसका अनुसन्धान किया जाता है कि जीवन क्या है? ऋषि मुनियों के द्वारा जब इसका चिन्तन होता है तो तपस्या की जाती है। तपस्या बिना मानव और यह समाज और यह संसार शून्य रहता है क्योंकि बिना तपस्या के संसार में कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती। ब्रह्मचारी जो अपने ब्रह्मचर्य आश्रम में तपता है उसके पश्चात् गृह आश्रम में प्रविष्ट होता है तो वह उसे तपस्या का ही फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार सूर्य तपता है, पृथ्वी तपती है, ग्रीष्म ऋतु में जब सूर्य पृथ्वी को तपता है तो तपाने के पश्चात् वृष्टि और वृष्टि हो जाने के पश्चात् सुन्दर सुन्दर वनस्पतियों का जन्म होता है इसी प्रकार मेरी प्यारी माताएं तपा करती हैं तो सुन्दर से प्यारे पुत्र , है। इसी प्रकार संसार में बिना तप के मानव जीवन क्या, यह समाज क्या, प्रकृति क्या यह सब शून्यता को प्राप्त होते हैं। इनमें कोई भी बिना तपस्या के नहीं रह पाता। यह तपस्या से युक्त होते हैं। सदैव तपस्या करते रहते हैं। इसी प्रकार मुनिवरोंप् !रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्याओं को संसार में तपस्या करनी चाहिए और वह तपस्या क्या है

कि अपने मानव जीवन को संयम रहना चाहिए और चिन्तन हमारा महान् हो, धर्म से युक्त हो। यह है कि हमारा आज का वाक्। आज तो मैंने तुम्हें सूक्ष्म सा परिचय दिया है कल समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रकट की जा सकेंगी।

हमारे आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम अपने मानव जीवन के ऊपर चिन्तन करें, मननशील रहें और वेद रूपी प्रकाश को अपनाते हुए ज्ञान में रमण करते चले जाएं। आज के वाक्यों में मैंने संक्षेप सा परिचय दो प्रकार की आन्तरिक चेतना का भी दिया है एक जनता में ही जनार्दन अथवा एक ब्रह्म में समाधि इन दोनों की चेतना भी मैंने प्रकट कराई। यह मानव के हृदय से सदैव चेतनियम रहती है जैसे ययज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा है कि वास्तव में हमारी जो अन्तरिक चेतना है, वह हमें सदैव बाधक करती रहती है कि हम तपस्वी बनें, महान् बनें, विचित्र बनें। यही हमारा संसार में आने का उद्देश्य है बेटा आज का यह वाक्य समाप्त। अब समय मिलेगा तो शेष ! चर्चा में कल प्रकट करूंगा।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो भगवन् वाक्य तो बहुत गम्भीर था परन्तु समय !गुरुदेव ! बड़ा सूक्ष्म।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य कल समय मिलेगा तो शेष वाक्य कल प्रकट करेंगे। !बेटा .....

पूज्य महानन्द जीः अच्छा !

पूज्यपाद गुरुदेवः तो मुनिवरों आज का वाक् यहाँ अब समाप्त। समय मिलेगा तो शेष ! चर्चायें कल करेंगे। अब वेद का पाठ होगा।

ओं मयाः गृहणाम् मानः ही शरणा गातानी मनाः हीशरणाः गाताः।

ओं भगा मनु प्रज्ञा रथत् मानो रहीणाम् भगाः गृहणाम् दधि स्वनी।

१३ 07 11 1968 पुष्प 10 मृत्यु क्या है?

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगया आज हमने पूर्व की भांति, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से कुछ मनोहर पाठ होता रहता है जिसका कर्म, उच्चारण करने के भेदन कई प्रकार के होते हैं

जैसे हमारे यहाँ जठा पाठ, माला पाठ, घन पाठ, विसर्ग पाठ, उदात्त्, अनुदात्त और भी नाना प्रकार होते हैं वेद के उच्चारण करने के परन्तु हमने केवल आज अपने पठन पाठन के कर्म में जठा पाठ का उच्चारण किया है। हमारे यहाँ एक माला पाठ भी होता है। मेरे प्यारे महानन्द जी यह कहा करते हैं कि माला पाठ क्यों कहा जाता है। हम ! एक वाक्य बहुत परम्परा से उच््चारण करते चले आए हैं कि हमारे यहाँ वेद मन्त्रों के उच्चारण के प्रारम्भ में ओ३म् का उच्चारण, ओ३म् का पदक, उसकी विचित्रता का वर्णन किया जाता है।

हमारे यहाँ एक समय महर्षि रेवक मुनि महाराज के आश्रम में विभाण्डक, महर्षि पिप्लाद, दालभ्य इत्यादि ऋषि विराजमान थे। उनमें एक विवाद चला। उस समय महर्षि दालभ्य ने रेवक मुनि ने एक आपत्ति जनक अपने वाक्यों को प्रकट किया। उन्होंने कहा कि हम यह जानना चाहते हैं कि जब वेद का उच्चारण होता है तो प्रारम्भ में ओ३म् का उच्चारण क्यों किया जाता है। वाक्य तो बहुत सुन्दर था परन्तु ऋषि मुनियों में इस पर विचार होने लगा। विचार विनिमय होते अंत में महर्षि शौनक ऋषि ने एक वाक्य कहा था, सोमागृहि अप्रणान्तचे आबभ्राणी गृतीः ओ३म् अंग व च प्रति अस्ति रिताः वेद के ऋषि ने कहा, आचार्य जनो ने कहा कि हमारे यहाँ प्रारम्भ में ओ३म् का उच्चारण करने में मानो देखो, वेद की युक्तियां शुद्ध होती रहती हैं। दालम्य जी ने कहा, रेवक जी ने भी ऐसा ही कहा, काग केतु ऋषि ने भी ऐसा ही कहा कि भाई ओ३म् का उच्चारण जब वेद के प्रारम्भ में हो जाता है तो प्रत्येक वेदमन्त्र के साथ इसे क्यों कटिबंध किया जाता है। यहाँ महर्षि शौनक मुनि ने पुनः उत्तर दिया कि यह इसलिए किया जाता है कि इसकी विद्वमता, धृष्टता मानो इसकी जो मस्ती है वह इसके साथ संलग्न होनी चाहिए। परन्तु जब उनसे उत्तर नहीं बना तो वहाँ महर्षि पुनगाम्नी ऋषि महाराज ने एक वाक्य का और यह भी विचारकों में जब यह वाक्य विचारणीय हो गया तो उस समय आदि ऋषियों ने एक स्वर होकर यह कहा कि भाई ओ३म् का उच्चारण इसलिए किया जाता है कि वेद की जितनी ऋचायें, वेद का जितना ज्ञान है मानो वह ज्ञान विज्ञान और कर्म में ही निहित रहता है। मानो जितना भी ज्ञान है विज्ञान है वह एक मन्त्र ऐसा है जैसे

एक मनका है और धागा है। जैसे मन के जब धागे में पिरोए हुए होते हैं उस समय यह माला कहलाई जाती है इसी प्रकार हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने इसकी युक्ति देते हुए ऐसा कहा कि ओ३म् रूपी धागा है और जितनी वेद ऋचायें हैं वह एक प्रकार के मन हैं। वह ओ३म् रूपी धागे में पिरोए हुए मनके होते हैं इसलिए वह ऋचायें और उसका विसर्ग मानो वह पाठ उस समय माला पाठ बन जाता है। जैसे धागे में पिरोए हुए मन के माला कहलाती है इसी प्रकार यह जो माला पाठ है, पठन पाठन का जो कर्म है मानो वह बिना ओ३म् के शुद्ध पवित्रता में परणित नहीं होता न हमें उसकी युक्ति ही सुन्दर प्रतीत होती है।

ऐसा कहा गया है कि जितना ज्ञान है अथवा विज्ञान है यह तीन प्रकार की विवेचनाओं में आता है। संसार का जितना भी ज्ञान है वह केवल जीव जिसको हम आत्मा भी कहते हैं आत्मा परमात्मा और प्रकृति तीन प्रकार की व्याख्या इस संसार में होती है। मानो प्रकृति की जितनी व्याख्या है वह सर्वश जितना ज्ञान है विज्ञान है मानो जितना परमाणुवाद है अथवा वह कितना भी ऊँचे से ऊँचा वैज्ञानिक हो वह सब जो व्याख्या करता है वह ऋतु की व्याख्या है जिसको हम प्रकृति कहते हैं प्रकृति की व्याख्या की जाती है अथवा वह कृषक हो, भू गर्भ को जानने वाला हो, अन्तरिक्ष को जानने वाला हो, संसार में जितना ज्ञान विज्ञान है वह जो दृष्टिपात आता रहता है, जिनको हम यन्त्रों के द्वारा परणित करते हैं, यन्त्रों के द्वारा खोजा करते हैं वह सब मानो देखो, प्रकृति के ऊपर उनका निधान स्थिर रहता है। परन्तु जितना भी मानो ऋतुवाद है, व्यापकतावाद है वह सब जितना भी इसके ऊपर वार्त्ता भोगता है मानो जो भोगवाद है वह सब जीव आत्मा के ऊपर आता है जो कर्त्ता है, इस प्रकृति की तरंगों को जानने वाला है। परन्तु जैसे मद्द प्रकार से रमे हुए होते हैं इसी प्रकार वह जो परमपिता परमात्मा है जिसे ओ३म् उच्चारण करते हैं, कोई परमात्मा कहता है, ईश्वर के रूपों से परणित किया जाता है, विष्णु भी कहा जाता है रमेती भी कहा जाता है, भिन्न भिन्न प्रकार से उसका विवेचन आता है। मानो प्रकृति के एक एक काम में रमण होने से क्रियाशील बनाने से प्रभु शब्द बनता है मानो ओ३म् शब्द बनता है। इसलिए वेद की जितनी भी ऋचायें हैं

आती हैं प्रत्येक के प्रारम्भ में ओ३म् का उच्चारण किया जाता है। वह इसलिए किया जाता है क्योंकि वह जो परम वेद है, व्याहृति है वह प्रकृति के कण कण में ओत प्रोत होने के नाते जैसे माल में मन का और मनकों में धागा होता है इसी प्रकार प्रकृति का जितना भी कर्म है, कटिबद्धता है मानो वह ओ३म् रूपी धागे से पिरोई हुई होने के नाते हमारे यहाँ ओ३म् के उच्चारण करने में किसी प्रकार का संकोच व विवाद का विषय नहीं है।

यह विषय बहुत ही गम्भीरता से विचारणीय रह जाता है जब हम ओ३म् को व्यापक शब्दों में परणित कर देते हैं और यह कहा करते हैं कि ओ३म् रूपी जो धागा है यह प्रकृति में मानो इस संसार में ओत प्रोत है आज हमारे किसी दूसरे मध्य में जो भी क्रिया है, हमारे उस प्राणी के मध्य में कोई न कोई वस्तु है जिससे दोनों की भिडन्तना नहीं है तो मानो उसमें दूरी हो जाती है इसी प्रकार आज हम विचार विनियम करने वाले बनें कि हमारा जो यह ओ३म् रूपी धागा है यह प्रकृति के कण कण में ओत प्रोत होने के नाते प्रत्येक वेद की ऋचाओं में रमण करने के नाते बेटा वह रमेती ! अस्ति यह संसार में रमण करने !ब्रह्मा, व्यापत होने के नाते ओ३म् रूपी धागा कहलाया जाता है और वह जो धागे में पिरोएं हुए हैं वह वेद रूपी ऋचायें हैं, ज्ञान हैं, विज्ञान है, कर्मकाण्ड है उसी में निहित रहता है। वेद में त्री विद्या आती है। त्री विद्या किसे कहते हैं ज्ञान, कर्म, उपासना, मानो यह जितनी त्री विद्या है यह सब ओ३म् रूपी धागे में पिरोई हुई है। पिरोई हुई न होती तो प्रारम्भ में ओ३म् का उच्चारण नहीं होता।

आज हम इस वाक्य को अधिक गम्भीर नहीं बनाना चाहिए। मैं क्या वाक्य उच्चारण करने लगा हूँ। वाक्य यह उच्चारण कर रहे थे कि आज हम अपने मानवस्व को विचारविनियम में, वेद की परम्परा को, वेद विचर को हम अपने में धारण करने वाले बनें। जैसा हमने प्रारम्भ के वाक्यों में ही कहा है कि ओ३म् के उच्चारण करने के नाना प्रकार होते हैं जैसा जठा पाठ, घन पाठ, माला पाठ, विसर्ग पाठ, अनुदात्त उदात्त, सौमनी नाना प्रकार के वेदों के भेदन, उनकी परिक्रियायें विचित्रता में परणित की गई है। आज हम उन भेदनों को अच्छी प्रकार से वर्णन नहीं करना चाहते अथवा अपना

समय इन्हीं में व्यतीत नहीं करना चाहते वाक्य हमारा क्या चल रहा था? हमारे वाक्यों की परिक्रिया थी वह यह कि हम ओ३म् रूपी उस धागे को परम देव को अपने में धारण करने वाले बनें क्योंकि संसार में जो सर्वशक्तिमान वह ओ३म् है मानों उसमें तीन प्रकार की व्यहृतियां बनती हैं व्यहृतियों के आधार से जितना ज्ञान है, जितना विज्ञान है, जितना मानववाद है वह सब उसी के ऊपर निर्धारित रहता है।

मेरे प्यारेमहानन्द जी ए !क वाक्य कहा करते हैं कि यह जो संसार है कहीं चन्द्रमा में जा रहा है, कहीं बुद्ध में जा रहा है, कहीं शुक्र में जाने के लिए उद्यत हो रहा है। मैं अपने प्यारे महानन्द जी से एक वाक्य कहा करता हूँ कि बेटा यह संसार तो जाता ! ही रहेगा परन्तु मानववाद का जो निर्माण है, मानववावद की जो परिक्रियाएं हैं वह चन्द्रमा में जाने से ऊँची नहीं बनती है, बुद्ध में जाने से ऊँची नहीं बनती, वह शुक्र में जाने से ऊँची नहीं बनती वह तो तब तक मानववाद के कर्म नहीं अपनाओगे तक इस मानववाद का, राष्ट्रवाद का चुनाव किसी प्रकार भी ऊँचा नहीं बना सकेगा। आज हमें वास्तविक वस्तुओं को अपनाना है जिसके अपनाने से हमारे जीवन की परिक्रियायें, मानववाद की परिक्रियायें राष्ट्रवाद की परिक्रियायें ऊँची बनती चली जाएं।

मेरे प्यारेऋषि ने एक वाक्य और भी कहा कि यह स !ंसार विज्ञान के नाना प्रकार के यत्नों मे संलग्न हो रहा है। मैंने बहुत पूर्व काल में अपने पयारे ऋषि के प्रश्नों के उत्तर देते हुए एक वाक्य कहा था कि हे पुत्रवत् गृहणी अस्वते मानो यह संसार इसी प्रकार चलता रहा है, कहीं यन्त्रालय बनते हैं मानो यन्त्रों के गृह बनते हैं परन्तु मानव ने किसी काल में भी अपने इस मानव शरीर को यन्त्रालय को नहीं जाना। जो मानव अपने इस रूपी यन्त्रालय जान जाता है कि इस मानव शरीर में कहीं सूचना केन्द्र है, कहीं आज्ञा चक्र है कहीं श्रवण करने की शक्ति है, कहीं दृष्टिपात में भी कई प्रकार के भेद हैं। एक मानव कहीं पत्नी को दृष्टिपात करता है, कहीं पुत्री को दृष्टिपात करता है, कहीं माता को दृष्टिपात करता है मानो उन नेत्रों में उसी प्रकार की क्रिया आ जाती है यह यत्र कितना विशेष है। कया मानव ने अपने शरीर को अथवा मानव का शरीर जो यह यन्त्रालय है इसको जानने का भी तो प्रयास करना चाहिए जिससे मानवत्व का निर्माण

अच्छी प्रकार होता रहता है।

मानव का शरीर बड़ा महत्वपूर्ण है। इसके ऊपर मानव के अनुसन्धान करना है। क्योंकि मानव जब संसार में आता है तो दो प्रकार का अनुसन्धान मानव के समीप होता है सबसे प्रथम जो अनुसन्धान है वह मानव को अपनी प्रवृत्तियों का अनुसन्धान करता है। मानव के जीवन में नाना प्रकार की प्रवृत्तियां उत्पन्न होती हैं उनहीं प्रवृत्तियों के आधार पर अपने जीवन की, अपने मानववाद को ऊँचा बनाना है जिससे यह समाज, यह संसार, यह राष्ट्रवाद ऊँचा बना करता है।

तो मेरे प्यारे आज मैं वाक्य उच्चारण करते करते दूर चला गया हूँ। वाक्य !भद्र पुरुषों ! यह प्रारम्भ हो रहा था कि हम वास्तव में ओ३म् रूपी धागे को जानने का प्रयत्न करें। ओ३म् को जानने का प्रयास करें कि ओ३म् क्या हैं। देखो, वेद के प्रारम्भ में ओ३म् का उच्चारण किया जाता है। ओ३म् एक ऐसा शब्द है, ऐसा ध्वनि है जो चाहे मानव ! किसी सम्प्रदाय में चला जाए, किसी भी रूढ़िवाद में चला जाएं परन्तु ओ३म् का उच्चारण मानव से दूरी नहीं होता। वह इतना व्यापक शब्द है कि उसकी व्यापकता प्रकृति कण कण में ओत प्रोत है परन्तु शब्दों में निहित रहती है क्योंकि मानव की वाणी का जो निर्माण होता है जब परमपिता परमात्मा के गर्भस्थल में मानव जीवन का निर्माण करता है तो वह जो निर्माणवेत्ता मेरा प्यारा प्रभु है वाणी को इस प्रकार की बनाता है, इस प्रकार जो ओ३म् शब्द है वह ओ३म् शब्द किसी भी राष्ट्र में रहने वाला प्राणी हो सकता है किसी लोक लोकान्तरों में रहने वाला हो परन्तु ओ३म् जो शब्द है यह प्रत्येक मानव की वाणी से भी उच्चारण किया जाता है क्योंकि यह जो रसना है इसका निर्माण ही इस प्रकार का होता है। इसके ऊपर बहुत सा अनुसन्धान करता है परन्तु हम अनुसन्धान करें भी तो क्या? मानव जब अपनले मानव जीवन का अनुसन्धान कर लेता है कि मेरा जो मानव जीवन है इसमें कितने मन्त्र हैं, इन मन्त्रों को मुझे जानना है। इन मन्त्रों में किसी प्रकार की ध्वनि है, किसी प्रकार का कर्म हुआ करता है। जितने मन्त्र इस मानव शरीर में है उन मन्त्रों से इस भौतिकवाद का निर्माण होता है। भौतिक विज्ञान में जितने यन्त्रों का परमाणु का निकास होता है परमाणुओं को जाना

जाता है उन परमाणुओ से यन्त्रों को बनाया जाता है। वह सब मानव के शरीर में यन्त्र है परन्तु इन यन्त्रों की इतनी विशेषता हो जाती है उन यन्त्रों का मस्तिष्क में यन्त्रालय विराजमान है।

आज हम वास्तविक वस्तु को जानना चाहते हैं। मेरे प्यारे महानन्द जी एक वाक्य ! जब हम !कहा करते हैं कि संसार में यथार्थ क्या है। मैं यह कहा करता हूँ कि बेटा अनुसन्धान किया करते हैं तो में कोई वस्तु यथार्थ प्रतीत नहीं होती क्योंकि हम एक एक वस्तु को कई नामों से प्रतीत और दृष्टि और विचारों में आते रहते हैं जैसे सूर्य है। आज हम सूर्य को क्या उच्चारण करें। सूर्य में कहीं तेज शक्ति है, कहीं देखो, शीतल शक्ति है, कहीं सूर्य में आकर्षण शक्ति है कहीं दूसरी वस्तु को निगलने की शक्ति है, कहीं अग्नि देता है तो कहीं अवरित देता है। इसी प्रकार कहीं तेजों का समूह माना गया है कहीं प्रकाश का तो इसे प्रकाशक कहें, अन्धकार कहें क्या उच्चारण कर सकते हैं कहीं मानव के जो देखो, प्रकृति में ये नाना धाराएं हैं जहाँ तक हमें उसके वशीभूत प्रतीत होने लगती है कहीं सूर्य की किरणों शोधन करने वाली शक्ति को निगल लेती है। आज हम सूर्य को शोधन करने वाला कहें कहीं विष को लेता है मानो अपने किरणों द्वारा विषैले प्राणियों को अर्पित कर देता है इसी प्रकार आज हम सूर्य को वास्तविकता में क्या उच्चारण कर सकते हैं।

यहाँ हमारे ऋषि मुनियों ने, महर्षि दालभ्य जी ने और रेवक मुनि आदि ऋषियों ने जिसका निर्णय दिया है कहा है सूर्य ब्रह्म कृतिः विश्वन्ति सुकृताः वेद के आचार्यों ने कहा कि सूर्य इस को समूहता में इसलिए कहा है वास्तव में इसको भिन्न भिन्न रूपों से दृष्टिपात करने लगते हैं कहीं ऊषा नाम से है, कहीं क्रान्ति नाम से है कहीं तेजों में है इसलिए उसे सुग्रति ऊषा नाम रेणास्तिः वेद का आचार्य कहता है, महर्षि अगीरा जी ने भी कहा है कि सूर्य इसलिए कहा गया है क्योंकि सूर्य में सभी गुण आ जाते हैं जितने इसमें गुण होते हैं इसलिए देखो, नाना प्रकार की सूर्य की किरणों के समूह का नाम ही सुग्रित कहलाया गया है उससे सूर्य शब्द बना करता है। सूर्य कहलाया गया है। इसमें आकर्षण शक्ति भी है, इसी में शोषण करने की, भेदन करने की नाना प्रकार

की शक्ति होने के नाते हमारे यहाँ समूह का नाम सूर्य कहा गया है। यदि हम इसके भिन्न भिन्न भेदनों का वर्णन करने लगते है तो वास्तविकता अथवा सार्थकता प्रतीत नहीं होती। मैं इस वाक्य को दार्शनिक स्तर पर और गम्भीरता में नहीं ले जाना चाहता कि दर्शन क्या कहते है।

वाक्य यह चल रहा था कि आज हम अपनी मानवता को विर विनिमय में करने वाले बनें क्योंकि मानवता का जानना ही संसार में विशेषता कहलाई गई है। हमारे दर्धनाचार्यों ने, ऋषि मुनियों ने अपने मानवत्व के सम्बन्ध में ही विशेषता दी है क्योंकि जब हम दर्शनों में अच्छी प्रकार मानवता पर लाते है तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि जितना दर्शनवाद है यह सब मानवता की वेदी पर विराजमान है क्योंकि जितना भी मानववाद है वह दर्शनों के आधार पर है। क्योंकि जब हम परमात्मा का दिग्दर्शन करते है वास्तव में मृत्यु का विश्लेषण करते हैं तो हमें ऐसा प्रतीत होने लगता है न तो हमें मृत्यु की कोई वस्तु प्रतीत होती है न जीवन ही कोई वस्तु प्रतीत होती है मानों हमें स्वप्नवत प्रतीत होनें लगती है।

आज जब हम विचार करते हैं कि मृत्यु क्या है तो दर्शनों में आता है कि मृत्यु में कोई सारथकता नहीं है यह केवल शब्द मानव की कल्पना है, परन्तु जब हम इसे कल्पना मात्र समझते है तो इसमें हमें एक और भी महानता प्रतीत होने लगती है। परन्तु मैं इस वाक्य को अधिक गम्भीर नहीं जाना चाहता हूँ केवल यह वाक्य प्रकट करने आया हूँ कि मृत्यु शब्द क्या है। मृत्यु किसे कहा जाता है और जीवन क्या हैं क्योंकि मानव ूमृत्यु और जीवन के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार की विवेचनाएं करता है। इसी के ऊपर व्याख्या करता रहता है परन्तु मैं यह कहा करता हूँ जब हमारे समीप यह वाक्य आते हैं कि मृत्यु क्या है मेरी प्यारी माताएं अपवने मनों में यह विचार करने लगती हैं कि तेरे पुत्र की मृत्यु हो गई कोई माता कहा करती है मेरा पति समाप्त हो गया परन्तु पति कहा करता है कि मेरी पत्नी की मृत्यु हो गई। यहाँ मृत्यु के सम्बन्ध में प्रत्येक स्थान पर मृत्यु शब्द आता है। मैं अपनी प्यारी से अब यह प्रश्न करता हूँ कि हे मातेश्वरी मृत्यु क्या है। इ मृत्यु के मुखारबिन्द में तेरा पुत्र चला गया वह क्या है? वह कहती है

कि वह मेरे से चला गया।

परन्तु वास्तविक दृष्टि से जब हम दृष्टिपात करते हैं, ज्ञान और विज्ञान की महिमा में दृष्टिपात करने लगते हैं तो हमें और ही कुछ प्रतीत होता है। मुझे महर्षि दालभ्य की और शैनक मुनि दोनों का एक समय सम्वाद स्मरण आता रहता है। परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से वह उनका सम्वाद आज भी स्मरण आता चला जा रहा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है जैस आज ही हमारे समीप दोनों का सम्वाद हो रहा हो। महर्षि शौनक मुनि महर्षि दालभ्य के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा था मृत्यु मानव की एक कल्पना है। साधारण प्राणियों की कल्पना है। मानव कल्पित वाक्यों को स्वीकार कर लेते हैं इसलिए उन्हें भय रहता है उन्होंने मृत्यु का विश्लेषण करते हुए कहा है कि मृत्यु वह है जो मानो मानव संसार में कायर बन करके रहता है। जो मानव कायर होता है वह मृत्यु के मुख में रहता है वरना मृत्यु कोई शब्द नहीं है। मृत्यु का अपना अस्तित्व नहीं है क्योंबिक मानव की अपकीर्ति मानव का हताश होना है, जीवन में अपनी मानवता को त्यागना है वही उसकी मृत्यु है। उन्होंने विश्लेषण करते हुए दालभ्य जी ने कुछ ऐसा भी कहा है कि हमरा मानव शरीर जिन परमाणुओं से बना है, जिन शब्दों से बना है इसका विश्लेषण कीजिए।

उस समय शौनक जी ने इसका विश्लेषण करते हुए कुछ ऐसा कहा है कि यह मानव शरीर हमें प्रतीत हो रहा है परन्तु जब मानव शरीर इस प्रकार का नहीं था तो इससे पूर्व यह मानव का शरीर कहाँ था, यह परमाणु कहाँ थे? तो उन्होंने कहा कि उस समय ये माता के गर्भ में थे। जब माता के गर्भ में बालक होता है, जरायुज होता है उसी में यह परमाणु विराजमान रहीते हैं जिन परमाणुओं से मानव का शरीर बनता है। उन परमाणुओं को सुगठित करने वाला, शासन में लाने वाला एक अभिमानी जीवात्मा होता है उन्होंने प्रश्न किया कि महाराजजब माता के गर्भ में हय ! परमाणु नहीं थे उससे पूर्व ये परमाणु कहाँ थे। उन्होंने कहा उससे पूर्व यही परमाणु माता और पिता के रज और वीर्य के रूप में थे। परन्तु जब माता पिता के रज में नहीं थे तो ये परमाणु कहाँ थे? उन्होंने कहा कि उससे पूर्व यह परमाणु यह परमाणु कुछ अन्न में थे और कुछ वनस्पतियों

में सूक्ष्म रूपों से इन्हीं में निहित थे। परन्तु जब यह अन्न और वनस्पति नहीं थे तो ये परमाणु कहाँ थे? उन्होंने की यह कृषक की भूमि में ललाहित हो रहे थे, ऋषि ने कहा महाराजजब कृषक की भूमि में ललाहित नहीं थे तो उससे पूर्व ये परमाणु कहाँ थे !? उन्होंने कहा कि यही परमाणु पृथ्वी में बिखरे हुए थे। मानों पृथ्वी के गर्भ में विराजमान थे। यह पृथ्वी के ही परमाणु हैं जिनसे मानव का शरीर बना है। उन्होंने कहा कि कदापि नहीं ये परमाणु नाना प्रकार के होते है। मानो कुछ परमाणु पृथ्वी में थे, कुछ वायु में थे, कुछ अन्तरिक्ष में भ्रमण कर रहे थे। मानो यह पांच प्रकार के परमाणु होते हैं। यह पाचं प्रकार के परमाणु मानो जल में सुगठित होते हैं। मानों प्रथम रज में होते हैं। रज जल में होता है। जल से ही कणों में कुछ अन्न और कुछ वनस्पतियों में आते हैं। अन्न और वनस्पतियों को तपाया जाता है। तपा करके मानो उससे रज और वीर्य बनता है। रज वीर्य माता के गर्भ में विराजमान होता है उससे यह परमाणु सुगठित होते हैं। उन परमाणुओं से हमारे मानव शीर का निर्माण होता है।

जब यह जीवात्मा शरीर को त्यागता है और अग्नि के मुख में अर्पित कर दिया जाता है तो अग्नि के परमाणु अग्नि में चले जाते हैं, वायु के परमाणु वायु में चले जाते हैं, जल के परमाणु जल में, अन्तरिक्ष के परमाणासु अन्तरिक्ष में और पृथ्वी के परमाणु पृथ्वी के रमण कर जाते हैं। इसलिए दर्शनों के आधार पर हमारे यहाँ बेटा मृत्यु कोई ! शब्द बनता ही नहीं। मृत्यु शब्‍्द इसलिए नहीं बनता क्योंकि कोई भी परमाणु हमे नष्ट होता प्रतीत नहीं होता। जब कोई भी परमाणु हमे नष्ट होता प्रतीत नहीं होता तो मृत्यु शब्द क्यों बना मृत्यु का आश्रम संसार में क्यों आया? तो बेटा वेद के आचार्यों ने ! कहा कि संसार जो अपनी मानवता को नहीं जानता, अपनी वास्तविक दृष्टि को नहीं जानता, वास्तविकता को अपने से दूर कर देता है वह सदैव मृत्यु से भयभीत रहा करते हैं।

तो मेरे प्योर भद्र पुरुषों आज जब हम प्रत्येक वाक्य को विचार की दृष्टि से दृष्टिपात ! करते हैं तो हमें यह प्रतीत होता है कि हमारा जो जीवन है हमारी ज‌ो मानवता है वह जब मृत्यु शब्द नहीं है तो जीवन शब्द भी कुछ नहीं बनता। परन्तु मृत्यु शब्द क्या

है? यह जीवात्मा के साथ लगा हुआ है। जीवात्मा के साथ क्यों लगा है? क्योंकि भोगवाद में इसको परणित किया गया है। जब तक जीवात्मा के साथ भोगवाद है तब तके ही जीवन है। मानो जीवन की सत्ता भोगवाद के साथ साथ ह संलग्न हो जाती है परन्तु जब हम मृत्यु शब्द स्वीकार नहीं करते तो जीवन शक्ति कहाँ से आ गई? तो वेद के आचार्यों ने कहा कि वह जीवात्मा का भोगवाद है। मानो भोगवाद के साथ जीवन शक्ति है। जीवन शक्ति का भी अस्तित्व नहीं, अस्तित्व केवल उसके भोगवाद के गर्भ में रहता है। इसलिए उसको जीवन शक्ति उच्चरारण कर देते हैं परन्तु उसका भी हमें कोई अस्तित्व नहीं होता।

तो मेरे प्यारे मैं इन वाक्यों को अधिक गम्भीरता से नहीं ले जाना चाहता !भद्र पुरुषो ! हूँ परन्तु यह वाक्य गम्भीर बन जाता है मैं इसको गम््भीरता में नहीं ले जाना चाहता। वाक्य यह प्रारम्भ करने जा रहा था कि हम अपनी मानव प्रक्रिया को जानने का प्रयत्न करें अथवा हम विज्ञान से यह जिना भी भौतिकवाद है यह मानव को ऊँचा नहीं बनाता मानव को अभिमान में लाता है। जहाँ अभिमान होता है नहीं मृत्यु होती है और प्रत्येक मानव मृत्यु के मुखारविंद में विराजमान रहता है। मैंने बहुत पूर्व काल में कहा था कि मानव प्रत्येक देवकन्या संसार में आध्यात्मिकवाद में रमण करने लगते हैं, आध्यात्मिकवाद इसका भूषण रहता है मानो उतने समय तक हमारा जीवन सुखमय, आनंदमय रहता है और जब हम भौतिकवाद चले जाते हैं, यन्त्रों में चले जाते हैं, एक दूसरे को नष्ट करने की प्रवृत्तियों में चले जाते हैं उतना अभिमान आ जाता है और जितना मानव में अभिमान आ जाता है और जितना मानव में अभिमान होता है उतनी ही संकीर्णता होती है औी जितनी संकीर्णता होती है उतना ही मानव का भय होतास है और जितना भय होता है उतना ही मानव मृत्यु के मुखारविंद में जाता ही रहता है। उसी को मृत्यु कहा जाता है। परन्तु वास्तविकता में मृत्यु कोई शब्द नहीं है। आध्यत्मिकवाद में मृत्यु को कोई अस्तित्व नहीं है।

तो मेरे प्यारे आज हम !भद्र पुरुषों !आध्यात्मिक वेत्ता और भौतिक वेत्ता दोनों ही बनते चले जाएं क्योंकि जब दोनों का स्थान ऊँचा होगा तो यह समाज, राष्ट्र, मानववाद ऊँचा

होगा। और संसार में जब भौतिकवाद प्रगतिशील होगा, नाना प्रकार के यन्त्र होगें, एक दूसरे को नष्ट करने वाले मन्त्रों का निर्माण होता ही रहेगा। वहाँ प्रीति नहीं रहती वहाँ धर्म नहीं रहता। जहाँ प्रीत नहीं है वहाँ धर्म भी नहीं है, मानो जहाँ धर्म और प्रीति नहीं है वहाँ अभिमान होता है और जहाँ अभिमान होता है वहाँ वहीं मृत्यु का स्थान प्रदीप्त हो जाता है और मानव एक समय मृत्यु के मुख में चला ही जाता है उस विज्ञान के उग्र अभिमान के बल पर? तो आज हम उस महानता को लाने के लिए सर्वदा प्रयत्नशील रहें कि हम वास्तव में राष्ट्रवादी बनें, विचारशील बनें परन्तु राष्ट्रवाद किसें कहते है? मैं राष्ट्र की चर्चाएं कल प्रकट करूंगा कि राष्ट्र का निर्माण क्यों किया जाता है? राष्ट्र किसलिए होता है? कल मुझे समय मिलेगा तो लि में शेष चर्चाएं इस राष्ट्र के सम्बन्ध में प्रकट कर सकता हूँ। आज का समय मुझे इतनी आज्ञा नहीं दे रहा है। आज का हमारा केवल जो विचार है वह केवल मृत्यु के सम्बन्ध में, आध्यात्मिकवाद में, विचारक पुरुषों के बनने के लिए मैं प्रेरणा देने नहीं आया केवल अपने वाक्य प्रकट करने आया हूँ संक्षिप्त परिचय देने चला आता हूँ। मेरे प्यारे माहनंद जी ने कई समय प्रकट कराते ! हुए कहा है परन्तु हमने इनके प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा है कि हम अपनी मानवता की रक्षा स्वयं करेंगे तो हमारा जीवन ऊँचा बनेगगा। हमारी मानसिक प्रक्रियाएं, आंतरिक वेदनाओं को हम स्वीकार कर सकते हैं जब तक हमें अपने ऊपर, अपनी आत्मा पर स्वयं अभिमान नहीं होगा स्वाभिमान नहीं होगा हम अपने को अपनेपन में ही स्वीकार नहीं करेंगे तो बेटा जीवन में कोई महानता नहीं आ सकती !क्योंकि महानता हमारी बिखर जाती है। जहाँ महानता बिखर जाती है वहाँ मानवता की जो महाकृतिज्ञाएं हैं वह सब नष्ट हो जाती है।

तो मेरे प्यारे आज का हमारा यह वाक्य क्या कहता चला रहा !आओ !भद्र पुरुषों ! था? कि हम वास्तव में ओ३म् रूपी धागे को जानने का प्रयास करें। मृत्युञ्जय करें। आज हम मृत्युञ्जय कैसे बन सकते हैं? जब हमारे द्वारा ज्ञान, विवेक और महानता होगी उसी काल में हम ऊँचे बनेंगे। आज के अब यह वाक्य समाप्त होने जा रहे ळे। आज के वाक्यों का अभिप्राय क्या था कि हमारा मृत्यु से उपराम हो। हमारी मानसिक

परिक्रियायें उच्चता से परणित होती चली जाएं। आज हमारा वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। कल समय मिलेग तो बेटा राष्ट्र के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करूंगा ! आज कास यह वाक्य समाप्त होता गया।

आज के इन वाक्यों का अभिप्राय क्या है? कि हम अपनी मृत्यु जीवन सम्बन्धी वाक्यों को जानने का प्रयास करें। वह आज का हमारा वाक्य है। कल समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रकट होगी। आज का यह वाक्य समाप्त होता गया।

पूज्य महानन्द जीः गुरुदेव आपका वाक्य तो बहुत ही सुदंर परन्तु समय की सूक्ष्मता ! और वाक्य में कुछ विलम्ब वृत्तिः विर्सग आ जाता है।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य ऐसा नहीं जैसा तुम उच्चारण कर रहे हो। !बेटा ......

पूज्य महानन्द जीः नहीं भगवन् हमें ऐसा ही प्रतीत हुआ। !

पूज्यपाद गुरुदेवः अच्छा बेटा कल समय मिलेगा तो कल इसके ऊपर अपने विचार ! प्रकट करूंगा।

तो मुनिवरों आज का हमारा वाक्य अब समाप्त !होने जा रहा है। आज के वाक्यों का अभिप्राय क्या था यह तुमने जान ही लिया होगा। अब वेद का पाठ होगा। कल हम राष्ट्र का निर्माण क्यों होता है। वेद का पाठ।

१४ 08 11 1968

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेन मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों पठन पाठन किया हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, आधारित कुछ वेद मन्त्रों का पठन पाठन चलता रहता हैं जिसकी ध्वनि विचित्रता में परितण की गई हैं वास्तव में हम यह उच्चारण कर सकते है कि पूर्व की भांति, तो पठन पाठन नही कियाजाता परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कहा कते थे कि न करने से कुछ करना सुन्दर होता हैं क्योंकि वेदवाणी इस प्रका अगम्य हैं कि मानव अनुसन्धान करता रहता हैं इस पर विचार विनिमय होता रहता हैं कि किन स्वरों से शब्दों का उच्चारण होना चाहिए। इस प्रकार अगम्य ज्ञान और अगम्य ज्योति जो मानव के अन्तःकरण को उज्ज्वल और

प्रकाश में लाने वाली हैं उस वेदवाणी का प्रसारण करते चले जा रहे थें यह वेदवाणी सामान्य प्राणियों के लिए नही देवताओं के लिए भी और प्राणीमात्र के लिए इसमें ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा हमें प्रतीत होने लगती हैं इसीलिए इसे हमारे यहाँ वेद ध्वनि कहा गया हैं

आज जब हम वेद के सम्बन में ध्वनि के सम्बन्ध में विचार विनिमय कराने लगते हैं तो हमें कुछ ऐसा प्रतीत होता हैं कि हम राष्ट्रवाद में जाते हैं तो राष्ट्रीयता की चर्चा कर रहे है अथव आध्यात्मिकवाद में जाते हैं हो वहाँ उन्हीं शब्दों से ऐसा प्रतीत होत है कि आध्यात्मिक चर्चा कर रहे हैं अथवा प्रतीत होने लगता है कि हम योग की ऊँची प्रतिभा को जानने के लिए उद्धत हो रहे हैं तो हमें इन्ही से ऐसा प्रतीत होता हैं कि हम विज्ञानवेत्ता बनने के लिए आ रहे हैं अगर हम वेदवाणी का सुन्दर रूपों से उनकी अगम्यता पर विचार विनिमय करते हैं तो हमें ऐसा प्रतीत होता है जैसे ईश्वरवादी जो प्राणी होत है वह प्रकृति के कण कण में प्रभु को दृष्टिपात किया करता है इसी प्रकार जो वेद वेत्ता होते हैं प्रकाशक होते हैं बुद्धिमता होते हैं जिनकी बुद्धि भी अगम्य विचारों को विचार विनिमय करने वाली होती हैं यौगिक जिनके विचार होते हैं वह भी वेद रूपी प्रकाश को इसी प्रकार प्रकाशित करता हैं।

मेरे प्यारे आज की हमारी वेद की प्रतिभा हमें राष्ट्र के लिए बाध्य करती !भद्र पुरूषों ! चली जररही थी कि आज हम राष्ट्र के ऊपर अपने कुछ विचार प्रकट करते चले जाएं राष्ट्र का निर्माण क्यों होता हैं राष्ट्र किसे कहते हैं जब यह शब्द हमें प्राप्त होते हैं तो हम विचार विनिमय करते है कि मानव जीवन का जो निर्माण है मानव जीवन की जो प्रतिभा हैं यह राष्ट्र निर्माण एक सूक्ष्म रूप माना गया हैं हमारे यहाँ नाना ऋषियों ने मनु महाराज इत्यादि ऋषियों ने बड़ी बड़ी सुन्दर प्रतिभा में इसका निरूपण किया है आज मैं भी रष्ट्रवाद के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार प्रकट कर सकता हूँ।

वेद का आदेश है कि आज जब हम यह विचार विनिमय करते हैं कि राष्ट्रवाद का चुनाव, राष्ट्रवाद की प्रतिभा कहाँ से उत्पन्न हो गई क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ में जब मानव जाति का मानव समाज का प्राणीमात्र का जन्म हुआ तो यह सब अपने अपने कर्तव्य

में संलग्न होते रहे। प्राणीमात्र जब अपने अपने कर्तव्य का पालन करता है तो उनके लिए कोई राजा नही होता राष्ट्र का निर्माण है राष्ट्र का जो चुनाव है जो राष्ट्र का नेतृतव करने वाले हैं वह उन्हीं का नेतृतव करते हैं जो सिद्धान्त को, यौगिक विचार को, सामान्य विचारों को अपनाते हैं उनके लिए नेतृतव चुना करते है इसीलिए यह विचार विनिमय करते चले जाएं कि राष्ट्र का जो निर्माण है राष्ट्र का जो विचार है वह केवल साधारण पुरूषों के लिए जो संसार में कर्तव्यों का पालन नही किया करते हैं।

आज हम विचार विनिमय यह करते चले जाएं कि राष्ट्र की महता कहाँ से उत्पन्न हो गई, कहो से यह आ गया देखो, राष्ट्र में कही रक्षा विभाग हैं कहीं गुप्तचर विभाग हैं कहीं स्वास्थय विभाग है कहीं निरीक्षण करने वाले हैं कहीं सूचना विभाग हैं इसी प्रकार के नाना विभाग हमें प्रतीत हो रहे हैं यह राष्ट्र में कहाँ से आ गये? किसने इनका निर्माण कर दिया कौन करने वाला हैं?

मेरे प्यारे मुझे स्मरण है कि हमारे यहाँ एक समय मनु के आश्रम में एक !भद्र पुरूषों ! सभा हुई सभा में महर्षि पांगृत महाराज, महर्षि अंगिरा जी, वायु जी उपरेता आदि ऋषियों का एक समाज था उस समाज मे भगवान मनु ने सभी ऋषियों का एक आग्रह था कि हे भगवनकोई ऐसा निर्माण होना चाहिए जिससे प्रजा अप !ने कर्तव्य का पालन करने लगे। भगवान मनु ने विचार विनिमय करते हुए कि राष्ट्र का निर्माण तो कर सकता हूँ वेद में मन्त्र आते हैं राष्ट्र दा मम् देहि प्रभु से याचना की जाती है कि हे प्रभु ! हम अपनी मानवता को उस महान आँगन में ले !हमें राष्ट्रीयता दे जिससे भगवन आयेें। नियन्त्रण में ले आए कि प्रजा हमारे सिद्धान्तों से अपने कर्तव्यों से बिखर न जाएं।

मुनिवरों भगवान मनु जी ने अपनी लेखनी बद्ध करते हुए बड़े सुन्दर शब्दों में कुछ ! ऐसा कहा है कि ब्रह्मे राजन्नमः कृति राजन्ना राष्ट्र का मिर्नाण करते हुए भगवान मनु जी ने कहा कि राष्ट्र का निर्माण करते हुए हम यह विचार लें कि हमारा जो मानव शरीर है इसका निर्माण कैसे हुआ है जो मानव शरीर के निर्माण को जान लेता है इसकी प्रतिक्रियाओं को अच्छी प्रकार जान लेता हैं वह राष्ट्र का निर्माण भी अच्छी

प्रकार कर सकता है भगवान मुन ने सबसे प्रथम दसों इन्द्रियों को विचरा यह जो पांच कर्मेन्द्रियां हैं पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं इनका विचार विनिमय करते हुए उन्होंने कहा कि इन्द्रियों में तो रक्षा विभाग भी है, वैद्य विभाग भी हैं इसमें गुप्तचर विभाग भी है इसमें वैश्य विभाग भी है सूचना केन्द्र भी है मानो देखो, आकाशवाणी के सम्वादता भी इसके द्वारा उत्पन्न होते हैं भगवान मनु ने भगवान मनु ने इस प्रकार अपने मानव शरीर का निरीक्षण किया इसी में दया और उदगारता भी हैं मानो इसी मानव शरीर में हमें बिखरनापन भी प्रतीत होता हैं

भगवान मनु जी ने सबसे प्रथम विचारा कि रक्षा का जो विभाग हैं वह क्षत्रिय है हमारे इस मानव शरीर का जो द्रव्य है उसका जो रक्षक हैं वह हमारे दन्त माने गएं हैं इसी प्रकार रसना है यह हमारा गुप्तचर विभाग का कार्य करता है नेत्र हमारा वैद्य का कार्य करता है घ्राण हमारी गन्ध सुगन्ध को ग्रहण करने वाली है इसी प्रकार जब उन्होंने अपने मानव शरीर का अच्छी प्रकार विनिमय कर लिया तो उस के पश्चात उन्होंने राष्ट्रीयता की घोषणा की और यह विचारा कि राष्ट्रवाद तो मानव के शरीर से ही उत्पन्न होता है मानो इसमें शिक्षक भी हैं और ब्रह्मचारी भी हैं शिक्षक कौन हैं।

मुनिवरोंइस शरीर ! में चार प्रकार की वर्ण व्यवस्था भी उत्पन्न होती हैं ब्राह्मण हैं, क्षत्रिय हैं, वैश्य और शूद्र माने गएं हैं मानो कण्ठ से ऊपर का जो भाग हैं वह ब्राह्मण का माना गया हैं क्योंकि विचार शक्ति है, दृष्टिपात करने कीसता है दुगन्ध सुगन्ध को ग्रहण करने की सत्ता हैं। इसी में विज्ञान को भी देखो, इसमें जो दिशाओं का चक्र हैं वह भी श्रोत्रों से उत्पन्न होता है इसी प्रकार रसना से वाक्य उच्चारण किया जाता हैं यह तो एक ब्राह्मण का अस्तित्व माना गया हैं तो मुनिवरों कण्ठ के ऊपर के भाग को ब्राह्मण ! माना हैं।

इसी प्रकार हमारा जो इससे नीचे का भाग है। वह क्षत्रिय विभाग हैं इन्हीं भुजदण्डों से मानव अपनी रक्षा करता हैं ब्राह्मण की भी रक्षा करता है और इन सब ही वर्णों की रक्षा करने वाला क्षत्रिय कहलाया जाता हैं जब यह अपनी गदा सहित राजा के राष्ट्र में स्थिर रहता है सदाचारता से रहता है उस समय राष्ट्र में आक्रमण करने की किसी में

सत्ता नही होती।

इसी प्रकार जब आगे विचार विनिमय किया कि ब्राह्मण भी है क्षत्रिय भी है परन्तु अब वैश्य कौन हैं? जितना भी हम आहार किया करते हैं नाना प्रकार के सुन्दर पदार्थों का पान करते हैं परन्तु यह उदर में जाते हैं और उदर में में जा करके वह जो उदान प्राण हैं इसका रस बना देता है और जब रस बना देता हैं जिसको जठराग्नि भी कहते हैं जब रस बना देता हैं तो वह सामान्य प्राण को अर्पित कर देता हैं सामान्य प्राण का उसको मानव के शरीर में देखो, बहतर करोड़ बहतर लाख दस हजार दौ सौ दो नाड़ियों का समूह माना गया, प्रत्येक नस नाड़ियों में उनकी सत्ता उन्हें प्राप्त हो जाती हैं नेत्रों को नेत्र की शक्ति प्राप्त हो जाती हैं घ्राण को घ्राण की शक्ति प्राप्त हो जाती हैं इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रियं उस रस से बलवान होती चली जाती हैं सब प्रजा को उसी से अदभुत बल प्राप्त होता हैं शूद्रा को भ उसी से बल प्राप्त होता हैं

तो मेरे प्यारेयह जो हमारा ब्राह्मण !भद्र पुरूषों !, क्षत्रिय, ख् वैश्य और शूद्र है यह भी सब मानव के शरीर में ही नाना प्रकार के विभाग माने गएं हैं आज यदि राष्ट्र को ऊँचा बनाना है तो हमें वर्ण व्यवस्था को ऊँचा बनाना है एक दूसरे के बिना संसार में कार्य न चलेगा यदि एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से दृष्टिपात होगा तो राष्ट्र की व्यवस्था एक अपंग हो जाएगी। अपंग हो करके उसमें एक लंगड़ापन आ जाएगा उसकी व्यवसथा अंग भ्रग हो करके मानवता का विनाश होता चला जाता हैं तो भगवान मनु जी ने बड़े सुन्दर शब्दों में इसका निर्माण किया है आज हम उसी प्रकार राष्ट्र की चर्चायें विचार विनिमय करते रहें यदि हम शूद्र को अपने से घृणा करेंगें तो राष्ट्र में आतंक छा जाएगा। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य घृणा करेगा तो वहाँ भी आतंक छा जाएगा इसी प्रकार एक दूसरे में सुगठितता एक दूसरे में प्रीति एक दूसरे में मानवता का सदव्हार होना चाहिए जब इस प्रकार का व्यवहार राष्ट्र में या मानव शरीर मं नही रहेगा तो वह राष्ट्र वह मानवता किसी प्रकार भी ऊँची नही बन सकेगी।

आज हम राष्ट्र को कैसे बनायेंगें। मनु जी ने संसार में सबसे प्रथम राष्ट्र का निर्माण किया भगवान मनु ने पूर्व कोई राजा नही था मनु ने करोड़ों वर्ष पूर्व यह संसार बिना

राष्ट्र के रहा जो मानव आज भी अपने कर्तव्य का पालन करने लगें तो यहाँ राष्ट्र की कोई आवश्यकता नही हैं। जब ऐ दूसरे के प्रति सहानुभूति, प्रीति, प्रम होता है तो वहाँ राष्ट्र की कोई आवश्यकता नही रहती, वहाँ राजा की आवश्यकता नही वहाँ उस राजा की आवश्यकता नही तो साधरण प्रजा के ऐश्वर्य को वैभव को अपने में धारण करके स्वयं ऐश्वर्यवादी बन जाते हैं ऐसे राजा की आवश्यकता इस संसार में नही होती क्योंकि ऐसा राजातो अनैतिकता की प्रसारण करता रहता हैं राष्ट्र मे आतंक छा जाता है। ऐश्वर्य में संलग्न हो जाता है कामी बन जाता है इस प्रकार के राजा की आवश्यकता नही।

मेरे प्यारे भद्र पूरूषों आज हम विचार विनिमय यह अवश्य करते चले जाएं कि राजा ! वह होता हैं जो अपनी ज्ञानेन्द्रियों को, कर्मेन्द्रियों को जानने वाला होता हैं और मानव शरीर के आधर पर अपने राष्ट्र का निर्माण करता हैं जब इस प्रकार अपने राष्ट्र का निर्माण करता है तो उसको हमारे साम्यवाद की दृष्टि से दृष्टिपात करता हैं तो उसको हमारे साम्यवाद की दृष्टि से दृष्टिपात किया जाता हैं हम साम्यवाद किसे कहते हैं साम्यवाद उसे कहते हैं जहाँ सब प्रजा के लिए साम्य विचार होते हैं अपने में स्वयं ऐश्वर्य नही होता राजा अपने मन में अपने परिक्रियाओं में तटस्थ रहता है विचार विनिमय करता रहता है कि ब्रह्मवेत्ता होता है ब्रह्म के विचार होते हैं और यदि राजा के विचारों में व्यापकवाद नही होगा तो उस राजा को प्रजा का नेतृतव करने का कोई अधिकार नही होता प्रजा का कर्तव्य है कि सब मिल करके अपनी प्रीति से उस राजा को घोषणा करें कि हे राजनतू हमारे योग्य नही है क्योंकि जब तू ब्रह्म का ज्ञान नही ! है तो ब्रह्म को नही जानता अपने मानवतव को नही जानता आत्मा को नही जानता तो तू राष्ट्र को अधिकारी नही है राष्ट्र का अधिकारी वही होता हैं जिसको प्रजा स्नेह होता हैं राजा के लिए अपना पुत्र और एक साधारण प्रजा का पुत्र दोनों एक तुल्य होते हैं वह राजा प्रजा का नेतृतव करने का अधिकारी होता हैं आज राजा अपने पुत्र को तो पुत्र स्वीकार करता है और प्रजा के पुत्र को नष्ट कर देता है उसको अपने पगों के नीचे दबाने का प्रयत्न करता है तो उस राजा को ईश्वरीय दृष्टि से भी मानवता की दृष्टि से भी राष्ट्रीय दृष्टि से भी उसे प्रजा का नेतृतव करने का अधिकार किसी भी काल में नही

होता।

तो मुनिवरों महानन्द जी ने !आज हम वैदिक साम्यवाद को लाना चाहते हैं मेरे प्यारे ! मुझे स्मरण है कि भगवान मनु !मुझे कई काल में प्रगट कराते हुए कहा था बेटा जी ने लगभग सात हजार पांच सौ पैंसठ प्रणालियों ने राज्य किया था इस महान भूमि पर इससे हम कल्पना कर सकते है कि उनके द्वारा कितना सदाचार था सदाचार की ही प्रणाली संसार में ऊँची बना करती हैं सदाचारी प्राणी कौन होता है जो मानो सत्य पर आचरण करने वाला होता हैं आज कोई प्राणी यह कहता हैं जो पराई स्त्री से गमन नही करता वह सदाचारी हैं परन्तु मैं यह कहा करता हूँ कि सदाचारी वह होता है जिसके मन में व्यापक वाद होता हैं मोह नही होता प्रीति होती हैं स्नेह, होता है नेतृतव होता हैं उसका व्यक्तित्व बहुत विशाल होता है। वह देखो, सदाचार की वेदी पर उच्चारण करने का अधिकारी होता है मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे कई काल में ! प्रकट कराते हुए कहा था कि यह संसार में साम्यवाद की घोषणा करनी चाहिए और साम्यवाद आना भी चाहिए परन्तु साम्यवाद कहते किसे हैं साम्यवाद उसे कहते हैं जहाँ वर्ण व्यवस्था सुन्दर होती हे राजा के राष्ट्र मं जितना शिक्षक विभाग होताहै वह भिन्न भिन्न विभागों में विभाजन करने वाला राजा होता हैं परन्तु राजा के राष्ट्र में चार आश्रम में माने गएं हैं सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य है उसके पश्चात गृहस्थ हैं पच्चीस पच्चीस वर्ष की अवधि मानी गई हैं मानो पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य और पच्चीस वर्ष तक गृह आश्रम उसके पश्चात वानप्रस्थ आरम आ जाता हैं

हमारे यहाँ परम्परा से सतोयुग काल में इसी प्रकार की परम्परा मानी गई है कि यह जो वानप्रस्थ आश्रम हैं पति और पत्नी अपने गृह को त्याग देते थे और त्यागने के पश्चात वह जो गृह पत्नी थी वह ब्रह्मचारिणीयों को उपदेश देती थी और वानप्रस्थी थे वह ब्रह्मचारियों को अपने अनुभव की चर्चा प्रगट करते थे शिक्षा क्या होती हैं शिक्षा किसे कहते है बेटादेखो !, शिक्षा पर केवल मानव का चरित्र निर्धारित होता हैं मानव जब अपने चरित्र का निरीक्षण करता है और ब्रह्मचारी के समीप शिक्षा होती हैं कि ब्रह्मचर्य की रक्षा कैसे होती हैं कैसे हमें अपना आहार व्यवहार करना चाहिए यह जो गृहस्थी

पच्चीस वर्ष का जो अनुभव होता है वह अपना अनुभव ब्रह्मचारी को जब प्रस्तुत कर देता हैं तो तो यह ब्रह्मचारी सदैव ऊँचे बना करते हैं परन्तु जहाँ केवल ब्रह्मचर्य आश्रम से निकला है और संस्कार हुआ और शिक्षक हो गया तो उस शिक्षक से राजा के राष्ट्र में भ्रष्टाचार का प्रारम्भ हो जाता हैं भ्रष्टाचार का प्रारम्भ उस काल में होता है क्योंकि अनुभव तो होता नहीं और अनुभव न होने के कारण उसकी चति की वृत्ति नवीन पत्नी के समीप रहती है ब्रह्मचारी के द्वारा शिक्षा दे रहा हैं परन्तु उसके मन के जो उदगार है मन के विचार हैं वह ब्रह्मचारी को प्रभावित करते हैं न कि वह शिक्षा इतनी प्रभावित करती हैं उस मानव के जो आन्तरिक विचार हैं वह उसकी आन्तरिक प्रवृत्तियों को प्रभावित करते हैं इसीलिए यदि राज के राष्ट्र में भ्रष्टाचार का प्रारम्भ होता हैं तो शिक्षक वर्ग से होता हैं शिक्षक प्रणाली से होता हैं

तो मेरे प्यारे भद्र पुरूषों आज मैं यह नही कहता किसी भी दर्शन का उदगार होना ! चाहिए किसी भी दिगदर्शन की प्रणाली हो परन्तु जब तक शिक्षक अनुभवी नही होगा तब तक शिखा का माध्यम मानो ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्यतव को किसी काल में ऊँचा बना ही नही सकता और न राजा के राष्ट्र में सदाचार की प्रणाली की आ सकेगी। सदाचार की जो प्रणाली हैं परम्परा है वह केवल अनुभवी प्राणियों से आया करती हैं ब्राह्मण इस प्रकार का होना चाहिए, ब्राह्मणी इस प्रकार की होनी चाहिए कि ब्रह्मचारिणीयों को ऊँची शिक्षा देने में तत्पर हो, अपने अनुभव प्रसारण करते हैं तो अध्ययन किया है उसका जब अनुभव की चर्चायें कुछ दर्शनों की चर्चायें कुछ राष्ट्रीय विधान जो जो उन्होंने अपने जीवन में अध्ययन किय है उसका जब अनुभव प्रसारण करते है तो राजा के राष्ट्र में सदाचार या साम्यवाद क्यों नही आयेगा। परन्तु वह तो आता इसीलिए नही है कि मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक काल में आधुनिक काल की वार्त्ता प्रकट कराते हुए ! कहा था कि आधुनिक काल का जो समाज है आधुनिक काल के जो विद्यालय है मानो देखो, उमें जहाँ अनुभवी व्यक्ति होता है जब वह पचास वर्ष के पश्चात जब गृहस्थ आरम से उपराम होता है उस समय उसको कह देते है कि यह शिक्ष के योग्य नही रहा है इसको शिक्षालय से पृथक करो यह शिक्षा के राष्ट्र का दुर्भाग्य हैं कि राष्ट्र का

दुर्भाग्य आ जाता है जब वह शिक्षा देने के योग्य होता हे उसका उस विभाग से दूर कर दिया जाता हैं तो राष्ट्र का एक बड़ा दुर्भाग्य होता हैं

मैं आज कोई अधिक चर्चा प्रगट करने नही आया हूँ केवल यह वाक्य प्रगट करने आ पंहुचा हूँ कि आज हम शिक्षा के माध्यम को ऊँचा बनायें शिक्षा को माध्यम मानव के विचारों से ऊँचा बनता है मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय प्रगट कराते हुए ! कहा था कि आधुनिक काल में शिक्षालयों में जो प्रणाली है वह किस प्रकार की है है मैं इस वाक्य को नही जानता और न उस प्रणाली को जानता हूँ मैं तो केवल एक ही वाक्य जानता हूँ कि यदि शिक्षालयों में ऊँचीप्रणाली होती हैं तो शिक्षालय के उस शिक्षक के विचार होते हैं शिक्षक के जो विचार है उसकी जो आन्तरिक भावनाएं हैं वह उसको ऊँचा बनाती हैं मुझे स्मरण आती रहती हैं द्वापर काल की वार्त्ता

द्वापर काल में ऋषि मुनियों के द्वारा एक प्रश्न आता हैं कि महाभारत का संग्राम क्यों हुआ एक ही गुरु के दोनों शिष्य आपस में नष्ट हो गएं इसका कारण क्या था इसका कारण हमारे यहाँ कुछ ऐसा माना गया हैं कि जिस समय द्वापर का काल अया तो शान्तनु की ही प्रणाली थी महाराज विचित्र वीर्य दोनो प्रणाली थी परन्तु वह जो पितामह भीष्म थे वह बड़े महान और ऊँचे थे नेतृतव करने वाले ब्रह्मचारी थे श्रवण किया जाता हैं व्यास जी के शब्दार्थों से हमें पान किया है कि जब पाण्डव पुत्र और धृतराष्ट्र के पुत्र दोनों शिक्षा के योग्य हुए तो भीष्म् जी को यह चिन्ता हुई कि उनकी शिक्षा होनी चाहिए परन्तु शिक्षा कौन दे सकता हैं पितामहा भीष्म ने अपने गुरु परशुराम को निमन्त्रण दिया, जब परशुराम जी आए तो उन्होंने अपने शिष्यों को एकत्रित किया धृतराष्ट्र पुत्रों को ! को और जब उनके मस्तिष्कों को दृष्टिपात किया मनोवैज्ञानिक !और पाण्डव पुत्रों सिद्धान्त से गुरु वही होता जो शिष्य को जान लेता है कि वह कौन सी शिक्षा का अधिकारी हैं जब उन्होंने उनके मस्तिष्कों का निरीक्षण किया, अन्तर्भावनाओं को निरीक्षण किया तो उस समय भीष्म जी से कहा कि हे भीष्म यह जो पाण्डु पुत्र हैं यह धनुर्विद्या के अधिकारी हैं परन्तु यह जो धृतराष्ट्र के पुत्र हैं इनमें एक दो को त्याग करके यह उस धनुर्विद्या के अधिकारी नही हैं उस सयम भीष्म जी ने विचारा कि यदि इनको शिक्षा

नही दी जाएगी तो राष्ट्र का कार्य किस प्रकार बनेगा उस समय कहा कि मैं अनुचित्त व्यवहार किसी भी काल में नही करूंगा परन्तु कर्म यह होगा कि मैं भी इनके साथ भस्म हो जाऊंगा अस्त्र शस्त्रों की अग्नि में और यह स्वंय भी भस्म हो जाएंगें। असीलिए मैं इनको शिक्षा किसी भी काल में दे सकूंगा। जब परशुराम का यह वाक्य उनके समीप आया तो अब उनको शिक्षा कैसे दिला सकते हैं भीष्म जी तो यह जानते थे कि मेरे लिए तो दोनों एक तुल्य है दोनो ही सामान्य है उन्होंने अपने स्थान को प्रस्थान किया इनते में द्रुपद से किसी प्रकार का वाद विवाद हो करके द्रोणाचार्य ने एक प्रतिज्ञा की है कि हे विवादम् ब्रह्मणे हे प्राणाश्चयि हे राजन यदि मैं ब्राह्मण हूँ मैं आचार्य हूँ तो ! तेरी मृत्यु बना करके अपने समीप दृष्टिपात करना चाहता हूँ द्रोणाचार्य वहाँ से प्रतिज्ञा करके हस्तिनापुर के आँगन मे आ गएं भीष्म जी ने जब यह वाक्य श्रवण किया कि ब्राह्मण आए हुए हैं और वह धनुर्विद्या के बड़े प्रकाण्ड है उनहें अपने राष्ट्र में स्थान दे देना चाहिए भीष्म जी ने द्रोणाचार्य को निमन्त्रण दिया गृह में भोजन करया और उनसे कहा कि यह राजकुमार है इनको शिक्षा दीजिए। वह भी मनोविज्ञान के महान ज्ञाता थे। धनुर्विद्या को वही जानसकता है जो मनोविज्ञान में भी बहुत ऊँचा होता है द्रोणाचार्य ने जब शिष्यों को दृष्टिपात किया तो उन्होंने यही विचारा कि यह पांचो पाण्डव पुत्र और विक्रम प्रीति वह सात पुत्र इनमें इस प्रकार के है जो धनुर्विद्या के अधिकारी है शेष अभिमानी हैं और धनुर्विद्या के अधिकारी नही हैं भीष्म जी से यह वह उच्चारण करने वाले थे कि इतने में यह विचार आया कि यदि मैं इनको शिक्षा नही दूंगा तो मेरा जो वचन है यह जो मेरी घृणा भरा वचन हैं वह किसी भी काल में पूर्ण न होगा परन्तु यह वाक्य जब उनके समीप आया तो उनको शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया मुनिवरोंदेखो !, वही तो घृणा भरे शब्द थे गुरुओं के जो उदगार थे उनका इतना गम्भीर उनके जीवन पर आघात हुआ कि विधता कौरव और पाण्डव अग्नि के मुख में चले गएं। मानो उन्हीं का परिणाम था यदि उनको अधिकारी और अनधिकारी का विचार करके शिक्षा दी जाती तो महाभारत जैसा संग्राम न होता। यह जो गुरु के घृणा भरे उदगार थे कि मैं द्रुपद को मुश्क के द्वारा अपने समीप लाना चाहता हूँ उसी घृणा ने क्या किया कि

महाभारत जैसा संग्राम कर दिया।

मेरे प्यारे आज हमें विचार विनिमय करना है कि आज हम राष्ट्रवाद को !भद्रपुरूषों ! लाना चाहते है सामान्यवाद को लाना चाहते हैं परन्तु गुरुजन कैसा हों? यह निष्पन्न होने चाहिए वानप्रस्थी हों, जो अपने ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रम का अनुभव प्रसारण कर कसें। वह जब विद्यालयों में शिक्षा देते हैं तो उनके जो उदगार है उनके जो नाना प्रकार के मन में उदगार होते हैं चंचलताएं होती है वह सब शान्त हो जाती हं मानो वही मानव ब्रह्मचारी को ब्रह्मचारी बना सकता है जिसके मन में ब्रह्मचारी बनाने की वेदना होती हैं

तो यह बेटा आज का हमारा वाक् मैं कोई अधिक चर्चा प्रगट करने नही आया हूँ ! वाक्य यह कि प्रगट करने जा रि था कि हम अपने वाक्यों को ऊँचा बनाने में कितने तत्पर हों हम अपने जीवन को अपन मानवीयता को उस वेदी पर ले जाना चाहते जहां हमारं उदगार, हमारी मानवता वास्तव में हमें विचित्रता में प्राप्त हो चली जाएं। आज हम प्रभु की महिमा को विचार विनिमय करते चले जाएं कि हमारे यहाँ तो राष्ट्रका निर्माण होता हैं राष्ट्र की जो परम्परायें चलती हैं वह केवल अधिकार अनधिकार चेष्टा को ले करके अथवा उसमे कर्तव्य का पालन करने से राष्ट्र का निर्माण और विद्या का निर्माण इन्ही के द्वारा होता हैं इन शब्दों के साथआज मैं अपने वाक्यों को शान्त करने जा रहा हूँ

आज के इन वाक्यों का अभिप्रायः क्या है कि हमारे यहाँ राष्ट्र का निर्माण करने वाले सबसे प्रथम भगवान मनु जी थे भगवान मनु जी ने सबसे प्रथम राष्ट्र का निर्माण किया राष्ट्र का निर्माण केवल कर्तव्यवाद पर हुआ करता हैं राजा के राष्ट्र में जहाँ कर्तव्यवाद पर हुआ करता है राजा के राष्ट्र में जहाँ कर्तव्य का पालन किया जाता हैं राजा स्वयं अपने कर्तव्य कापालन और प्रजा अपने कर्तव्य का पालन करते हैं वहाँ अनीति नहीं होती वहाँ क्रान्ति नही आती वहाँ अनधिकार चेष्टा नही होती, वहाँ केवल सदाचार की तरंगें राजा का सदाचार प्रजा का सदाचार, प्रत्येक बालिका, प्रत्के पुत्र, प्रत्येक पुत्री में गहरे संस्कार ओत प्रोत हो करके राष्ट्र और समाज दोनों को ऊँचा बना करते हैं बेटा !

यह मैंने तुम्हें सतोयुग के राष्ट्र का दिग्दर्शन कराय कल मुझे समय मिलेगा तो राम राज्य की विवेचना करूंगा कि राज राज्य में कैसी व्यवस्था थी आज तो अब यह वाक्य समाप्त होने जा रहा हैं।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो भगवन !

पूज्यपाद गुरुदेवः तो मुनिवरोंआज के इन ! वाक्यों को अभिप्रायः क्या हैं हम राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहते हैं राष्ट्र को महान बनाना चाहते हैं अधिकार अनधिकार को विचार करके कर्तव्यवाद का पालन करने से राष्ट्र का निर्माण और राष्ट्र ऊँचा बना करते हैं वह है बेटाआज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चा !एं कल प्रगट करेंगें। अब वेदों का पठन पाठन होगा।

१५ 09 11 1968 पुष्प 10 राष्ट्रवाद की चर्चा

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की शान्ति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गासमे चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज से पूर्व हमने जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परंपरागतों में कुछ मनोहर हर वेद मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है जिसका कर्म विचित्र मालना गया है क्योंकि जब मानव किसी भी शब्द को उच्चारण करता है तो उस मानव के तन, मन, धन की प्रवृत्ति सब ही उसमें संलग्न होनी चाहिए। तो वह शब्द महत्वपूर्ण होता है। परन्तु जब शब्द का उच्चारण कर रहे हैं और मानव का मानसिक संकलन नहीं है तो उस शब्द में कुछ शक्ति नहीं होगी क्योंकि जब मानव किसी शब्द को उच्चारण करता है, अपवने जीवन का ही प्रतिपादन करता है परन्तु उसके जीवन परिचय देने में यदि सत् वाक्य और सकंलन सहित नहीं होगा तो उसका जो चरित्र है, उस मानव का जो परिचय है उसमें कोई सार्थकता नहीं होगी। इसलिए आज से बहुत पूर्व काल में हमने अपने शब्दों को प्रकट करते हुए कहा था कि हम जिस वाक्य को उच्चारण करना चाहते है वह हृदय से होना चाहिए। हृदय की जो आंतरिक वेदना है उसके साथ शब्द की रचना होती है तो वह रचना विचित्र हांती है, उस रचना में ईश्वरीयवाद होता है। क्योंकि जितना भी ईश्वरीयवाद है अथवा ईश्वर की रचना है वह सब सत् के गर्भ में निहित रहती है।

क्योंकि यदि उसकी रचना में सत् नहीं होगा तो उसकी रचना में कोई सार्थकता नहीं होगी। इसी प्रकार मानव की जो सुदंर रचना है, मानव के जो विचार हैं, मानव का जो संकलन है वह हृदयागंम होना चाहिए।
एक मानव व्याख्याता है। उस व्याख्याता के मन में एक वेदना है द्रव्य को उपार्जन करने की तो उससे व्याख्या सुदंर नहीं होगी। यदि व्याख्या भी सुंदर होगी। इसलिए मानव को जो वाक्य उच्चारण करना चाहिए वह हृदय से करना चाहिए। मेरी प्यारी माता जब अपने पुत्र को लोरी देती है तो उस माता के हृदय के जो विचार हैं, हृदय की जो उद्गारता है वह बालक के रक्त में प्रविष्ट हो जाती है। परन्तु जब माता के हृदय विचार कहीं रहते हैं और लोरियों का पान हो राह है तो उस बालक के हृदय में माता की कोई भावना नहीं जा सकती क्योंकि भावना उसी काल में जाती है, विचार उसी में जाते हैं जब माता का बासक पर एकाग्र चित्त होता है तो वह बालक अपनी अपनी परिस्थिति पाकर पनपता रहता है, विचित्रता में परणित रहता है।
जैसा मैंने कल के वाक्यों में अपने विचार प्रकट किए आज भी कुछ करते हैं। वाक्य यह प्रारम्भ करते जाएं कि आज के वेद पाठ में हम प्रभु की महिमा का गुणगान गाते चले जास रहे थे जो प्रभु महान है, विचित्र है। उसकी रचना एक आलौकिकता में परणित की गई है। उस मेरे प्यार प्रभु ने नाना लोक लोकांतरों की रचना की है। उन रचनाओं में कितना सुदंरवाद है, विचित्रवाद है उसको जब मानव हृदय से विचार विनिमय करता है उसके विज्ञान को विचारने लगता है तो मानव का हृदय शान्त हो जाता है। अंत में यह कहा करता है कि प्रभु की महिमा को मैं कहाँ तक विचार विनिमय कर सकता हूँ। उसकी प्रशंसा करने में मानव की वाणी थकित हो जाती है, नेत्र शान्त हो जाते हैं, श्रोत वाक्य श्रवण करते करते शान्त हो जाते हैं। एक नहीं उस प्रभु की महिमा महान् है, विचित्र है। प्रत्येक देव कन्या और ऋषि मण्डल का कर्त्तव्य है।
आज हम उस महिमा और विचित्रता को धारण करते हुए अपने हृदय में उस महानता को धारण करना चाहते हैं जिस महानता से प्रभु ने इस आलौकिक ब्रह्माण्ड की रचना की है। यह जो आलौकिकवाद हमें प्रतीत हो रहा है, भिन्न भिन्न प्रकार के विचार हैं,

नाना प्रकार की ज्योति प्रतीत होती है प्रभु एक है। मानव का विज्ञान कहाँ तक कार्य करता है? मेरे प्यारे महानन्द जी ने प्रकट कराते हुए कहा था आधुनिक काल की ! चर्चाएं और पंरपराएं क्या है। मुझे स्मरण है जब हम मनोविज्ञान के सम्बन्ध में विचार विनिमय करने लगते हैं। मनोविज्ञान क्या है? मन की प्रवृत्तियां क्या हैं? जब मानव मन की प्रवृत्तियों को विचारने लगता है तो मानव के हृदय में मन की तंरगें होती हैं जो एक एक अद्धण समय में नाना प्रकार की तंरगें तंरगित होने लगती हैं और वह तंरगें मानव को कितना प्रभावति करने लगती है। उन्हीं तंरगों के ऊपर जब मानव अनुसन्धान कर लेता है तो वही तंरगें लोक लोकांतरों में पहुँचा देती हैं।

संसार में जितना विभाजनवाद प्रतीत हो रहा है वी सब मन की ही तो प्रक्रियाएं है। मानव की प्रवृत्तियों में जितना विभाजनवाद है मानो देखो, नाना प्रकार की मेरी प्यारी माताएं एकत्रित हैं उनमें पत्नि हैं, भोजाई हैं, पुत्री हैं, महामाता हैं नाना प्रकार की देवीयां हैं परन्तु उनके शरीर की वेशभूषा इसी र्पकार की है परन्तु जब वह परिचय देता है कि यह मेरी पुत्री है, अथवा यह मेरी माता है, यह पत्नि है तो मन की उसी प्रकार की तरंगें उस मानव को प्रभावित करती चली जाती हैं। मानव के विचार उन्हीं तरंगों के साथ तंरगित होते रहते हैं।

तो मेरे प्यारे मैं मनोविज्ञान के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करने नहीं !भद्र पुरुषों ! आया हूँ। मन का जो क्षेत्र है, मन का जो एक साम्राज्य है वह भिन्न ही राज्य है। इस संसार में जितनी लोक लोकांतरों की परिक्रियाएं हैं, लोक लोकांतरों में जतो विभाजनता प्रतीत हो रही है यह सब मन के ही द्वारा होती है। आज मैं मन की चर्चा तो करने नहीं आया। मन की दो प्रकार की गति होती है। एक विश्वमान होता है और एक विशेष होता है परन्तु विश्वमान मन की चर्चा तो मैं कल कर सकूंगा यदि समय मिला आज तो केवल यह विचार प्रकट करने आ पहुंवा हूँ कि हम अपने उस महान देव की याचना करते जाएं जिसके द्वारा मन की परिक्रियाएं उत्पन्न होती हैं। जहाँ यह धारायें, यह जो मन की तरंगें हैं यह किस द्वारा होती हैं अथवा इसको जड़ चैतन्य में परणित करते हैं? यह कल का विषय मुझे बाध्य कर रहा है क्योंकि वेदमन्त्र भसी और मन्त्र सूक्तों में भी

आता चला जा रहा है।

मेरे प्यारे आज का हमारा वेद पाइ केवल राष्ट्रवाद की ही चर्चा नहीं वह !भद्र पुरुषों ! प्रभु की महिमा की भी चर्चा करता चला जा रहा है। तो आज का हमारा वेद पाठ क्या कह रहा था कि हम वास्तव में शिक्षालयों मे जाते हैं, शिक्षा अध्ययलन करते हैं। मुझे स्मरण आता रहता है जब मेरे प्यारे महानन्द जी आधुनिक काल की चर्चा प्रकट ! कराते हैं अथवा उससे पूर्व के वाक्यों का भी प्रतिपादन करते हैं तो मुझे ऐसा स्मरण होने लगता है, आज भी मेरे प्यारेमहानन्द जी बाध्यकर रहे हैं !, इनकी विचार धारा मुझे छूती चली जा रही है। इनके विचार है कि राम राज्य के सम्बन्ध में कोई भी वाक्य प्रकट करना नहीं चाहते। राम राज्य की कल्पना मैंने तुम्हें बहुत पूर्व काल में कराई है। आज मुझे समय इतनी आा नहीं दे रहा है परन्तु राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कर सकता हूँ।

यह राष्ट्रवाद क्या है जो मैंने कल के अपने वाक्यों में कुछ विचार व्यक्त किये, वेदमन्त्रों के द्वारा अपने विचार भी उसी के साथ प्रकट कराते हुए कहे। आज भी वह मुझे स्मरण आते चले जा रहे हैं परन्तु आज का हमारा वेद पाठ, हमारी परिक्रियायें राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में क्या, माता के सम्बन्ध में क्या, रचना के सम्बन्ध में क्या, कला कौशल के सम्बन्ध में क्या भिन्न भिन्न विषयों पर विचार व्यक्त किए जा रहे थे। परन्तु आज हमारा वेद पाठ हमें परमपिता परमात्मा के लिए, मित्रता के लिए बाध्य कर रहा था। संसार में मानव का वास्तविक मित्र कौन है? आज जब हम मित्रताव पर दृष्टिपात करते हैं तो कोई तो गृहस्थ आश्रम में मानव का मित्र पत्नी को कहता है कोई एक ब्रह्मचारी दूसरे ब्रह्मचारी को अपना मित्र उच्चारण करता है कोई अपने पयारे प्रभु को मित्र कहता है कोई अपने पिता और महापिताओं को मित्र कहता है कोई नाना सम्बन्धियों को मित्र कहता है। परन्तु जब हम विचार विनिमय करते हैं कि वास्तव में हमारा मित्र कौन हैं तो हमें यह प्रतीत होता है कि मित्र की जितनी महिमा हम उच्चारण करते हैं उतनी महिमा वाला केवल प्रभु ही हो सकता है। मैं प्रभु से कहा करता हूँ कि प्रभु हमें वह ! मित्र नहीं चाहिए जो मित्र की जितनी महिमा हम उच्चारण करते हैं उतनी ही महिमा

हमें वह मित्र !वाला वह केवल प्रभु ही हो सकता है। मैं प्रभु से कहता हूँ कि प्रभु नहीं चाहिए जो मित्‌्र केवल हमें अवगुणों में लगाने वाले हों जो हमें नाना अवगुणों पर ले जाएं वह मित्र हमें नहीं चाहिए। वास्तविक मित्र कौन है? जो हमें शक्ति देता है वास्तविकतावाद पर ले जाता है। हमारा वास्तविक मित्र वह है जो महानता को दिग्दर्शन कराता है महानता का दिग्दर्शन कौन कराता है यह विचार विनिमय ही करते रहते हैं। आज हमें कोई गुरु के द्वारा ले जाता है। वास्तव में गुरु भी हमें महानता का दिग्दर्शन कराता है परन्तु कौन सा गुरु जो स्वयं अपने में प्रकाशवान होता है। जो अपने में ! ही प्रकाशवान नहीं होगा, नाना भोग विलासों में तल्लीन होगा आज वह जो गुरु की तरंगे हैं, प्रेरणायें हैं वह हमें तरंगित करती रहती हैं और इसलिए वह हमें गुरु वास्तविक मार्ग को नहीं चला सकता। वास्तव में जब हम और भी विचार विनिमय करते हैं क्योंकि उसकी मित्रता में किसी प्रकार का अन्तर किसी काल में नहीं आता। हम कुटिल हो जाते हैं। हम नास्तिक बन जाते हैं परन्तु उसकी महानता में उसकी देन में उसकी मित्रता में किसी भी काल में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं आता। जैसे मेरी प्यारी माता है परन्तु पुत्र कुटिल हो जाता है पुत्र को क्रोध आता है माता पर आक्रमण कर देता है परन्तु माता के हृदय की उद्धारता है पुत्र के प्रति जो उदारता है वह उदारता कहीं भी नष्ट नहीं होती। इसी प्रकार वह जो मेरा प्यारा प्रभु है वास्तविक जो मेरी माता है वास्तविक जो मेरा पयारा मित्र है उसकी मित्रता हमें बाध्य करती रहती है वह नाना प्रकार की शक्ति प्रदान करता रहता है समय पर वायु देता है ऋतुदान देता है ऋतु का अनुाव कराता है उसमें जो प्रीा है हमारे अन्तःकरण को, मानवत्व को ऊँचा बनाने का उसको ऊँचा बनाता है। यह सब ऋतुओं के द्वारा होता है। आज जो मित्र बन करके मित्रता के बदले जीवन दे रहा हे वही वास्तविक मित्र कहलाता है। वह वास्तविक मित्र तो हमारा प्रभु है।

यदि हम उसको भी अपना मित्र न बनायें, संसार में किसी को अपना मित्र बनाते हैं तो उसके अवगुणों पर विचार न दें परन्तु उसके गुणों के सम्बनध में सदैव विचार विनियम करते रहें और उन गुणों पर हम अपने जीवन को न्यौछावर कराने वाले हों। हे प्रभु !

हमारा कोई मित्र हो तो यथार्थ मित्र होना चाहिए।

बेटा मैंने कल के वाक्यों में एक वाक्य प्रकट कराया था मनोविज्ञान के सम्बन्ध में ! राजा के राज्य में जितने गुरु होने चाहिए वह मनोविज्ञान के जानने वाले होने चाहिए मनोविज्ञानिक जितने गुरु होते हैं वहीं हमें राष्ट्र का दिग्दर्शन कराते हैं। आज हम राष्ट्र की प्रणाली को लेते हैं तो राष्ट्र का प्रारम्भ कहाँ से होता है? राष्ट्र का प्रारम्भ राजा से नहीं होता। राष्ट्र का प्रारम्भ प्रजा ब्रह्मण से नहीं होता। राष्ट्र का यदि प्रारम्भ होता है तो वह यथार्थ मनोविज्ञानिक गुरुओं से हुआ करता है क्योंकि जब हम शिक्षालय में जाते हैं तो हम उन गुरुओं के द्वारा जाते हैं जहाँ चार शिष्य विराजमान हैं परन्तु चारों शिष्यों के अन्तःकरण, उनकी प्रवृत्तियों को, उनके मस्तिष्क की जो देन है वह देन जो उनको किसी के द्वारा आई है परन्तु उनके मस्तिष्क में जो तरंगे हैं उनको जानने का कार्य गुरुओं का होता है कि मुझे एक समय परमपिता की अनुपम कृपा से महर्षि वशिष्ठ मुनि के द्वारा जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके आश्रम मे नाना शिष्य थे। जब प्रारम्भ में शिष्य प्रविष्ट हुआ तो उस समय उसे तीन दिवस अपने गर्भ में धारण करता है।

गुरु का गर्भाशय क्या है? माता का गर्भाशय तो स्वीकार कर सकते हैं परन्तु गुरुओं का गर्भाशय कया है जो आचार्य शिष्य को अपने गर्भ में धारण करता है। मुनिवरोंदेखो !, उस का गर्भाशय उसके मनों की जो प्रवृत्तियां हैं, तरंगे हैं उन तरंगों में जब धारण करता है ब्रह्मचारी को जब वह तीन दिवस में जानकारी करता है मनोविज्ञान से कि यह बालक किस प्रवृत्ति का है। तो महर्षि वशिष्ठ मुनि जी के आश्रम में जब प्रविष्ट होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो वहाँ दृष्टिपात किया गया कि पंक्ति मैं ब्रह्मचारी जी विराजमान हैं। नेत्रों से नेत्रों की ज्योति का दिग्दर्शन कराया जा रहा था। महर्षि वशिष्ठ जी जब नेत्रों से नेत्रों की ज्योति का दिग्दर्शन कर रहे थे तो उन्हें यह जानकारी हो गई कि ब्रह्मचारी व ब्रह्मण बन सकता है यह ब्रह्मचारी वैश्य बन सकता है यह ब्रह्चारी क्षत्रिय बन सकता है परन्तु ब्रह्मचारी न विद्या अध्ययन कर सकता है न ब्रह्म विद्या प्राप्त कर सकता है न धनुविद्या ही प्राप्त कर सकता है तो वह क्या करता है वह इन तीनों आश्रमों की सेवा ही करता है। गुरुजनों का यह एक महान् कर्त्तव्य होता है और उसके पश्चात्

उसको उसकी मार्ग की शिक्षा प्रदान की जाती है उसी शिक्षा के आधार पर।
एक समय मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे वर्णन कराते हुए कहा न प्रतीत यह कहाँ ! से ऐसे वाक्य ले आए कि प्राचीन काल में हमारे यहाँ शिक्षालय नहीं थे। उस समय शिक्षा का माध्यम क्या था? तो मैंने यह कहा था कि उस समय वास्तव में प्रायः शिक्षालय न हों परन्तु उस समय बड़े प्रबल शिक्षालय थे। कैसे प्रबल शिक्षालय थे कि उस समय ब्रह्मचारीजनों को जो शिक्षा दी जाती थी वानप्रस्थियों द्वारा दी जाती थी। वानप्रस्थी वह होता है जो गृह को त्यागने के पश्चात् ब्रह्मचर्य के भुषण को धारण करता है। वानप्रस्थी का वास्तविक भूषण क्या है? उस का ब्रह्मचर्यत्व है। इसी प्रकार उस माता का क्या भूषण है? नाना प्रकार के स्वर्ण भूषण नहीं है। उसका स्वर्णमयी वाणी और ज्ञानमयी उसका भूषण होता है। वह जब ब्रह्मचारणियों के द्वारा, कन्याओं के द्वारा विराजमान होकर के अपने अनुभव की चर्चा, शिक्षा दीक्षा का अध्ययन कराती। उस शिक्षा दीक्षा में जब ब्रह्चारिणी पनपती तो हृदय में उद्दारता उत्पन्न होने लगती। ब्रह्मचारिणी जब अपने ब्रह्मचर्य को धारण करती तो उस समय बेटादेखो !, राष्ट्र में किसी प्रकार का भ्रष्टाचार नहीं होता। भ्रष्टाचार उस काल में नहीं होता जब शिक्षाओं की परम्परा भिन्न भिन्न होती है। शिक्षा का जो माध्यम था वह क्या था? मानो देखो, उसमें धनुर्विद्या, वैदिक परम्परायें, उपनिषद, ब्रह्मविद्या, ब्रह्मविज्ञान और ब्रह्म की प्रतिभा, वनजविद्या जो वैश्य कन्या है वह साहस पूर्वक अपने पति वैश्य को यह उच्चारण कर सके कि आपको यह वाणिज्य करना है अपने द्रव्य की उपलब्धि करनी है राष्ट्र को ऊँचा बनाना है क्योंकि तीनों आश्रमां में राष्ट्र की परम्परा ओत प्रोत रहती है। वैश्य को कहा जाता है हे कन्याम् ब्रह्मोस्ति तू शिक्षा के योग्य नहीं है मानो !हे कन्या !तू शिक्षा को अध्ययन नहीं कर सकती आज तू सेविका बन, सेवक बन। इस प्रकार जो परम्परा वाली शिक्षा है वह राष्ट्र को ऊँचा बना सकती है। उसमें राष्ट्रीयवाद परम्परागतों से आ सकता है।
मनोविज्ञान से यह भी जाना जाता है कि यह ब्रह्मचारी युवा होने के पश्चात् इस विद्या को अध्ययन करके क्या करेगा मानो कोई धुनर्विद्या को अध्ययन करने वाला है, प्रकाण्ड

बुद्धि है परन्तु जब वह उस विद्या को अध्ययन करके युवा अवस्था में आता है उसमें किस तत्त्व की मात्रा अधिक है यदि अग्नि की मात्रा, क्रोध की मात्रा अधिक है, अभिमान की मात्रा अधिक है तो उस ब्रह्मचारी को धनुर्विद्या का अधिकार नहीं होता क्योंकि क्रोध में वह अपनी आत्महत्या भी कर सकता है मानो वह अपने गुरूतव और अपने परिवार को ही नष्ट कर सकता है तो इस प्रकार का विचार विनियम किया जाता था।

तो मेरे प्यारेमुझे वह काल अच्छी प्रकार !भद्र पुरुषों ! स्मरण आता रहता है वहाँ प्रायः शिक्षालय न हों परन्तु गृह गृह में सूक्ष्म विद्यालय मानो देखो, गृहों में पुरोहित जन बन करके भी शिक्षा प्रदान की जाती थी। आज मैं उस प्रणाली को धारण नहीं करना चाहता हूँ परन्तु उच्चारण करने का तात्पर्य यह है कि मनोविज्ञान में आज मानव अपने अनुभव से इन वाक्यों को उच्चारण कर दिया करता है। जो मेरी प्यारी माता है गृहस्थ है आश्रम के सर्वस्व अनुभव को जानती है वह सुन्दर कन्या को संस्कार से पूर्व यह जान लेती है कि इस कन्या का जो प्रभाव है इसकी जो रूचि है आन्तरिक जो भावना है वह कहाँ जा रही है तो इस प्रकार की जो मेरी प्यारी मातायें वानप्रस्थ लेकरके शिक्षा अध्ययन कराती। यह हम त्रेता काल की कया सतोयुग काल की कल्पना कर रहे हैं बेटा मानो कल्पना मात्र ही रह गया है जब तुम्हारे कथानुसार वाक्यों को ग्रहण करते ! हैं तो यह कल्पना है।

आज हम इस वास्तविकता को उच्चारण करना चाहते हैं कि आज हम इस राष्ट्र को, इस समाज को कैसे ऊँचा बना सकते हैं। राष्ट्र का जो प्रादुर्भावर है वह केवल गुरुजनों की प्रवृत्तियों से होता है उसके जीवन चरित्र से होता है। जब गुरुजनों का चरित्र ऊँचा होता है तो ब्रह्मचारी, शिष्यगण उस चरित्रवाद की महिमा को जानकर आगे प्रवृत्त होते हैं। आगे उनकी परिक्रियायें ऊँची बनाती हैं आगे अपने राष्ट्र को अपने मानव समाज को ऊँचा बनाने में वह सदैव तत्पर रहते हैं। इसी प्रकार मैं आज अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं जाऊंगा।

मैंने अपने कल के वाक्यों में एक वाक्य कहा था वह वास्तव में तुम्हें कटु प्रतीत हुआ होगा कि राष्ट्र की परम्परा जब नष्ट हो जाती है जब शिक्षालयों में व्यवस्था अंग भंग

हो जाती है। देखो, छात्र बल जो है वह सबसे महान् बल है। दात्रबल में जब क्रान्ति आ जाती है किसी प्रकार की क्रान्ति हो तो उसका प्रभाव राष्ट्र पर हुआ करता है। राष्ट्र पर प्रभाव हो करके राष्ट्र की व्यवस्था भी अंग भंग हो सकती है। छात्रबल को ऊँचा बनाने के लिए गुरुजनों का ऊँचा होना बहुत अनिवार्य है। आज जब छात्रबल भी उसी आयु का है गुरुजन भी उसी आयु का है मानो संस्कार होने वाला है वह एक आश्रम से दूसरे आश्रम में नहीं पहुँचा है वह शिक्षालयों में जाता है उसके मन की जो रात्री की तरंगे हैं मानो गृह से जिन तरंगों को लेकर चलता हे वहीं तरंगे जब उसके मस्तिष्क में ओतप्रोत रहती हैं वही तरंगे जब उसके मस्तिष्क में ओत प्रोत रहती है वह तरंगे उन ब्रह्मचारियों को वैज्ञानिक धूप से छुआ करती है छूने से यदि तुच्छ तरंगें होंगी, कामना की तरंगे होंगी तो ब्रह्मचारी को कामी बना सकती हैं वही तरंगे उस छात्रबल को अंगभंग कर सकती हैं उसको अपंग बना सकती है मानो उससे छात्रबल में एक क्रान्ति आ जाती है। कैसी क्रान्ति? कि गुरुओं का आदर नहीं होती। आदर का कारण क्या है? आदर का केवल कारण यह है कि उनका चरित्र, उनका मानवत्व ऊँचा नहीं है उनका वास्तविक संकल्प ऊँचा नहीं है। जिस सकल्प के द्वारा वह आना चाहते हैं मानो जिस पद को उन्होंने अपनाया है उस पद के वह अधिकारी नहीं है।

कल के वाक्यों में मैंने द्रोणाचार्य की चर्चा प्रकट कराते हुए कहा था कि द्वापर के काल में द्रोणाचार्य की इस प्रकार की प्रवृत्ति न होती तो यह जो हमारा राष्ट्र है, भारत भूमि है इस में भगवान श्रीकृष्ण, भगवान श्रीराम की पतिका तरंगित होती यह वीरों से, क्षत्रियों से विहीन न होती। हीन का कारण केवल पन का संकल्पन है। मन की प्रवृत्तियां हैं, मन के जो द्वेषी विचार हैं वह राष्ट्र के राष्ट्र को द्वेषी बना देते हैं। यह वाक्य मैं इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ कि हमें अपने राष्ट्र की परम्परा को ऊँचा बनाना हो तो हमारे यहाँ गुरुजनों का होना बहुत अनिवार्य है छात्रबल को ऊँचा बनाना बहुत अनिवार्य है। वह ब्रह्मचारी होंगे, छात्र बलों में सान्त्वना होगी, चरित्रवाद की तरंगे होंगी आदर होगा तो राष्ट्र की परम्परा ऊँची बन सकती है। राष्ट्र का जो निर्माण है वह केवल सदाचार के आधार पर होता है और जब राष्ट्र का सदाचार ही नष्ट हो जाता है अंगभंग

हो जाता है तो वह राष्ट्र आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट भ्रष्ट हो जाया करते हैं।

मुनिवरों आज बहुत समय हुआ जब मैंने एक वाक्य प्रकट किया था। वह वाक्य मुझे ! स्मरण आता रहता है। मेरी प्यारी माताओं को अपने जीवन को ऊँचा बनाने में कितना तत्पर होना चाहिए। यदि मेरी मातायें अपने गृह आश्रम में पुत्र का निर्माण नहीं कर पातीं तो देखो, क्या होता है? एक समय मुझे महानन्द जी ने वर्णन कराते हुए कहा था कि जब मेरी प्यारी माता गृहसथ योग्य नहीं होती परन्तु गृहस्थ में प्रविष्ट हो जाती है वह मनोकामना में चंचलता में तल्लीन रहती है। उससे आशा नहीं की जाती कि वह ऊँचे बालक को जन्म दे सके, यहाँ कणाद, गौतम को जन्म दिया जाएं। जब उन से इस प्रकार की आशा नहीं की जाती तो क्या होता है? उसके गर्भ से चंचल बालक का जन्म हो करके वह युवा होकर के कन्याओं पर, पुत्रियों पर आक्रमण किया करता है। उसमें कारण यह है कि अकधिकार अनधिकार की बड़ी ही चेष्टा की गई है।

बेटा मुझे त्रेता के काल की वार्त्ता स्मरण है। त्रेता के काल की चर्चा जब मुझे ! स्मरण आती है तो मेरा हृदय गद् गद् होने लगता ह ै। मैं प्रभु से कहा करता हूँ कि हे प्रभु तू पुनः हमें उस काल का दिग्दर्शन करा। मुझे तो ज्ञान नहीं कि आधुनिक ! काल किस प्रकार का है परन्तु मैं त्रेता के काल की वार्त्ता प्रकट करता चला रहा हूँ।

माता कौशल्या जी जब अपने गुरुजन के द्वारा शिक्षा ग्रहण करती। उनकेगुरु जी का नाम तत्त्व मुनि महाराज था। तत्त्व मुनि महाराज की आयु उस समय वर्ष की 284 थी। महर्षि तत्त्व मुनि वृद्ध और अखण्ड ब्रह्मचारी थे। वह शिक्षा गृहण करती रहीं। एक समय शिक्षा अध्ययन करते करते दर्शनों का अध्ययन कर रही थी कि माता कौशल्या के मन में एक विचारआया कि हे गुरुदेव मैं इस गृह आश्रम में प्रविष्ट नहीं होना ! चाहती। ऋषि ने कहा, पुत्री जैसी तुम्हारी इच्छा। परन्तु पुत्री कौशल्या ने जब अधिक ! अध्ययन किया तो एक समय रात्री के समय अपने गुरुदेव के द्वार पहुंची और चरणों मेरी इच्छा है कि मै !को छूकर बोली हे प्रभु ः अपने गर्भस्थल से एक ऊँचे और महान् बालक को जन्म देना चाहती हूँ। जब समय पुनः से ऋषि ने आज्ञा दी कि पुत्री जैसे

तुम्हारी इच्छा हो। परन्तु इच्छा पर न्यौछावर करने वाले बहुत ही सूक्ष्म ऋषि होते हैं। कुछ समय पश्चात् देखो, कौशल्या का संस्कार राजा दशरथ के द्वारा हुआ। संस्कार होने के पश्चात् गृह में प्रविष्ट हो गई। रघु परम्परा थी रघु परम्परा के साथ वह राष्ट्र गृह में जा पहुंची। माता कौशल्या जी का यह नियम था कि वह स्वयं कला कौशल करती और उसके द्वारा जो द्रव्य आता उसके स्वयं ग्रहण किया करती थी। उसने संकल्प धारण किया था कि मैं राष्ट्र का कोई अन्न ग्रहण नहीं करना चाहती क्योंकि राष्ट्र में आ करके ऊँचे बालक को उसी काल में जन्म दे सकती हैं। जब मेरे मन की प्रवृत्तियां पुरुषाथी होंगी, महान हांगी, पवित्र होंगी और अन्न की जो प्रतिभा है वह ऊँची होंगी क्योंकि अन्न से मन की प्रतिभा उत्पन्न होती है। माता कौशल्या जी ने यह नियम बनाया। कुछ काल हुआ प्रतम् ब्रह्मे व्यापनोति कामाः वशिष्ठ मुनि के द्वारा, आदि ऋषियों के द्वारा पुर्त्रेष्ट यज्ञ किया गया। पुत्रेष्टि यज्ञ होने के पश्चात् माता कौशल्या के गर्भ की स्थापना हो गई। गर्भ की सथापना हो जाने के बाद माता कौशल्या का यही नियम था कि वह स्वयं कला कौशल करतीं और उसके बदले जो द्रव्य आता उस द्रव्य को ग्रहण करके वह संतुष्ट रहती। जब राजा दशरथ को एक समय यह ज्ञान हुआ कि कौशल्या जी राष्ट्र का कोई अन्न ग्रहण नहीं करती तो वह एक समय महर्षि वशिष्ठ मुनि जी के आश्रम जा पहुंचे। वहाँ माता अरूणादति और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज दोनों विराजमान थे। दोनों के चरणों को छू करके प्रणाम किया। ऋषि ने कहा कहिए राजन आज ! आपका आगमन क्यों हुआ? उन्होंने कहा कि महाराज आपके आश्रम में मेरा ! आगमन इसलिए हुआ है कि मैं आपको अपने गृह में प्रविष्ट करना चाहता हूँ अरूणदती ने कहा कि कार्य क्या है? उन्होंने कहा कि हे माता कार्य यह है कि जो ! कौशल्य जी मेरे गृह में हैं उत्तम पत्नी हैं वह राष्ट्र का कोई अन्न ग्रहण नहीं करती। मेरे मन की यह प्रवृत्ति है कि मैं तुम्हें अपने राष्ट्र में प्रवृविष्ठ करना चाहता हूँ और यह मेरी इच्छा है कि मेरी पत्नी को ऊँची शिक्षा प्रदान कीजिए। उस समय अरूदती ने कहा हे राजनआप हमें ले जाना चाहे हैं !? उन्होंने कहा कि हां मातेश्वरी। उन्होंने कहा

कि चलिए भगवन् । !

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरूणदती और महाराज दशरथ तीनों प्राणी वहाँ भ्रमण करते हुए राष्ट्र गृह में प्रविष्ट हुए। राष्ट्र गृह में प्रविष्ट होने के पश्चात् माता कौशल्या जी ने जब राष्ट्र गृह में उन तीनों महापूज्या का आगमन होता दृष्टिपात किया तो उन्हें तीन आसन दिए और तीन आसन देकर के तीनों के चरणों को छू करके माता अरूणदती और वशिष्ठ से बोली कि कहिए भगवन् आज मेरे आश्रम में आपके आगमन होने का ! क्या कारण है? उन्होंने कहा कि देवी हमने यह श्रवण किया है कि तुम राष्ट्र का ! कोई अन्न ग्रहण नहीं करती। अरूणदती जी ने कहा कि क्यों नहीं करती हो? उन्होंने कहा हे मातामेरी इच्छ !ा नहीं होती। क्यों नहीं होती कारण क्या है? उन्होंने कहा कि भगवन् कारण यह है कि मैंने गुरुदेव के द्वारा एक संकल्प किया था कि मैं अपने ! गर्भ स्थल से एक ऐसे महान् पवित्र बालक को जन्म देना चाहती हूँ जो राष्ट्र का लोक परलोक दोनों में उसको इच्छा की प्रबलता हो मानो वह चरित्रवान हो राष्ट्र और पर्वत की शय्या उसके लिए एक तुल्य हों ऐसे बालक को मैं जन्म देना चाहती हूँ। जब वशिष्ठ जी ने कहा तो राष्ट्र का अन्न ग्रहण करने लगंगू तो मेरे गर्भस्थल से राष्ट्रीय बालक का जन्म होगा, महान बालक का जन्म नहीं हो सकता क्योंकि राष्ट्र का जो अन्न होता है वह रजोगुण और तमोगुण से सना हुआ अन्न होता है इसलिए मैं उस अन्न को ग्रहण नहीं करना चाहती। उस अन्न से मेरे मन की प्रवृत्तियों में मेरे मन की तरंगे उस प्रकार की न बन सकेंगी जिस प्रकार की तरंगे मैं बनाना चाहती हूँ। वशिष्ठ मुनि ने जब यह विचार श्रवण किए तो मनोवैज्ञानिक क्या बुद्धिमान थे उन्होंने विचार विनिमय किया और राजा दशरथ से कहा, बालो दशरथ जीक्या उच्चारण करना चाहते हो !? राजा दशरथ जी ने कहि कि महाराज मेरे राष्ट्र में पाप का अन्न नहीं आता। !

माता कौशल्या जी ने कहा कि हे राजनहे मेरे पति ब् ! !रह्मा राष्ट्र !हे पूज्य गुरुदेव ! का निर्माण रजोगुण से होता है क्योंकि राजा जब बनता है वह जब राष्ट्रीय वस्त्रों को धारण करता है तो उसके राष्ट्रीय विचार होते हैं न्याय के विचार होते हैं परन्तु वह जो करते हैं। जहाँ तक राजा का न् !वास्तविक न्याय है वह तो प्रभुयाय होता है जो

अपराधी राजा के राष्ट्र में आता है और वह जो अपराध है वह रजोगुण और तमोगुण से सना हुआ होता है और जब उसका न्याय किया जाता है तो उस राजा की प्रवृत्तियां भी रजोगुण और तमोगुण से सनी हुई होती है। यदि रजोगुण तमोगुण से सनी हुई प्रवृत्तियां नहीं हुई तो तमोगुण रजोगुणी पापी का किसी भी काल में तुम न्याय ही नहीं कर सकेगो। जब उन्होंने ऐसा उच्चारण किया तो राजा मौन हो गए इसी प्रकार हे राजन् तुम्हारे राष्ट्र के कोष में जो द्रव्य है वह भी रजोगुण से सना हुआ होता है ! और इसलिए मैं उसे ग्रहण नहीं करना चाहती। तीनों प्‌्राणी मौन हो गएं और कहा कि वास्तव में इनके जो विचार हैं, इनकी जो धारणायें हैं, वह ऊँची कहलाई गई हैं। तीनों ने कहा कि हे राजन तुम्हारी कोई हानि नहीं यदि यह स्वयं कला कौशल करके ! ऊँचे बालक को जन्म देना चाहती हैं। तीनों ने अपने अपने स्थान को प्रसथान किया। वह त‌ो अपने आश्रम में जा पहुंचे। माता कौशल्या जी का वही कार्य चलता रहा। वह स्वयं कला कौशल करती और उसके बदले जो द्रव्य आता उससे ही अपने उदर की पूर्ति करती और अपने गर्भस्थल में बालक को जन्म देने के लिए उत्सुक रहती कि आज उस महान बालक को जन्म होना चाहिए।

तो मुनिवरोंदेखो !, वही माता कौशल्या जी के गर्भ से भगवान श्रीराम का जन्म हुआ। ! कलाओं से पूर्ण था !भगवान श्रीराम का जीवन बेटा, कितना महान था कि उनके लिए राष्ट्र के ऐश्वर्य और पर्वतों की जो शय्या थी वह दोनों उनके लिए सामान्य रहती थी। भगवान श्रीराम ने जब अपने राष्ट्र को त्याग दिया और पर्वतों की शय्या बना ली तो उन्होंने बहुत से अपंग व्यक्तियों को अपनाया। राजा ने जिको दूर कर दिया था उनको अपनाया और भी द्रविड आदियों को अपनाकर उन्हें अपने जीवन को व्यतीत किया। इससे आज हम अनुभव कर सकते हैं कि भगवान श्रीराम का जीवन कितना पवित्र था।

तो मेरी प्यारी माताएं जब अपने गर्भस्थल से ऊँचे बालक को जन्म देती हैं तो वह अमरावती को प्राप्त हो जाती हैं। उनका जीवन सदैव अमर रहता है। माता कौशल्या के जीवन को बेटा आठ लाख वर्षों के लगभग हो गया है परन्तु आज भी जब मैं उनके !

जीवन चरित्र की चर्चा करता हूँ तो आज भी हमें प्रतीत होता है कि माता कौशल्य हमारे नेत्रों के समक्ष प्रतीत हो रही हैं। उनके चरित्र की प्रतिभा नेत्रों के सन्मुख रहती है। आज हम यह विचार विनियम कर सकते हैं कि हमारा जीवन वास्तव में महानता से गुन्था हुआ होना चाहिए। यदि जीवन में अच्छाइयां नहीं होगी, पवित्रवाद नहीं होगा तो वह राष्ट्र भी ऊँचा नहीं बनेगा।

मैं राष्ट्रवाद की चर्चा प्रकट कर रहा था। वाक्य उच्चारण करते करते मानव निर्माण की चर्चा करने लगे। मानव निर्माण की चर्चा प्रकट नहीं करनी थी प्रकट यह करना था कि आज हम अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहते हैं। राष्ट्र का जब भी निर्माण होता है वह उसी काल में होता है जब प्रजा में अंग भंगता आ जाती है। आपस में प्रीति नहीं रहती, विचारों में त्रुटियां आ जाती हैं। राष्ट्र के निर्माणवेत्ता कौन होते हैं जो चरित्रवान होते हैं जिनके द्वारा महानता ओत प्रोत होती है इसी प्रकार आज हम विचार विनिमय करते चले जाएं कि राष्ट्र के लिए हम सदैव अपने चरित्र और मानवता को अपनाते हुए सदैव अपने विचारों को ऊँचा और महानता की पवित्र वेदी पर अपने को ले जाते हुए अपने जीवन को ऊँचा बनाते चले जाएं।

देखो,राजा दशरथ के काल में रघुकुल प्रणाल !ी में कुछ भिन्नता आ गई। महाराज रघु के पुत्र का नाम अजय था। अज्य में किसी प्रकार की त्रुटियां आई, ऐश्वर्य में संलग्न हो गएं और अज्य के पुत्र का नाम दशरथ था। वह भी ऐश्वर्य में इतना आ गया कि उनके द्वारा तीन पत्नियां थी। उन्हीं ऐश्वर्य में संलग्न रहते और राष्ट्र का यह विचार नहीं रहता था कि कहाँ तक मेरे राष्ट्र की सीमा है। राजा रावण जो लंका के पतिधीश थे मैंने लंका की प्रणाली कई काल में वर्णन कराते हुए कहा है कि राजा रावण से पूर्व महाराज कुबेर थे महाराज कुबेर से पूर्व महाराजा महिदन्त थे, महाराज महिदन्त से पूर्व महाराजा शिव थे। लंका की प्रणाली बहुत पूर्व से चली आ रही थी परन्तु राजा रावण जब राजा बन गएं तो महाराजा रघु का जितना राज्य था उस पर अपना अधिपथ्य जमा लिया। राजा दशरथ की इस पृथ्वी पर सूक्ष्म सा अध्योध्या का राज्य रह गया था। वहाँ रावण का राज्य नहीं था। इन्द्रपुरी में उनका राज्य था, त्रिपुरी में उनका राज्य था,

पातालपुरी में अहीरावण राज्य करता था। इसी प्रकार इस पृथ्वी के एक एक अंग में राजा रावण का अधिपथ्य हो गया था। इसलिए उस काल में माता कौशल्या जी के गर्भ से श्रीराम के जन्म की आवश्यकता हुई। क्योंकि माता कौशल्य यह जानती थी कि तेरा पति ऐश्वर्य में आ गया है और राष्ट्र का उत्थान होना चाहिए। वशिष्ठ मुनि भी यही चाहते थे। माता अरूणादति भी यही चाहती थी क्योंकि रावण का राज सुन्दर नहीं था। रावण के राज्य में दुराचार की मात्रा अधिक थी, वहीं एक दूसरे का विचार नहीं किया जाता था। जब रावण के राष्ट्र में चरित्रवाद की कोई वस्तु न रही तो उसके पश्चात् जब भगवान श्रीराम जैसे महान चरित्रवानों का जन्म हुआ तो उन्होंने सबसे प्रथम वशिष्ठ मुनि महाराज से यही कहा था कि मैं अपनी संस्कृति को, अपनी मानवता को इस विश्व में प्रसारण करना चाहता हूँ। उस समय वशिष्ठ मुनि ने कहा था कि हे राम तुम कर ! सकते हो क्योंकि रावण का राज्य इस पृथ्वी के आँगन आँगन में अधिकपत्य हो गया मुझे !है अब तुम कैसे ऊँचा बना सकोगे। उस समय श्रीराम ने कहा कि महाराज आज्ञा दीजिए मैं वास्तव में आप की अनुपम कृपा से यह कार्य कर सकता हूँ। तो ब्राह्मण गुरु ने, पवित्र गुरु ने अपनी प्रतिभा और ओज भरी वाणी से उन अपंगों को जिनको राजा दशरथ ने त्याग दिया था जिन भीलों और द्रावड़ों का त्याग किया था भगवान राम ने उन्हीं को अपनाया और अपना करके उनकी सेना बनाई। पवन पुत्र हनुमान जी को अपनाया। बाली को नष्ट किया और बाली के यहाँ अपनी संस्कृति का प्रसार किया। मानो सुग्रीव को अपनाकरके रावण से संग्राम किया।

मुनिवरों मुझे स्मरण है कि उस समय श्रीराम ने ऐसे ऐसे यन्त्रों का निर्माण किया ! उनके यहाँ बड़े बड़े नल नील जैसे वैज्ञानिक रहते थे परन्तु लक्ष्मण जैसा महान वैज्ञानिक उस काल में भी प्राप्त नहीं होता था। इस प्रकार विज्ञान उन के द्वारा था और ऋषि मुनियों की सहायता होती रहती थी। जैसे भारद्वाज जी हैं, अन्नवेष्णी ऋषि थे, पाकुंण थे, पिल्लाद थे, किकिति थे, भिलनी थी। भिलनी अपने समय की बहुत ऊँची वैज्ञानिक थी उन्होंने मानो श्रीराम की भक्ति के द्वारा भक्ति ही क्या थी उनके द्वारा बड़ी बड़ी सुन्दरताएं, अवृतकला कृत्रि उनके स्मरण थी। इसी प्रकार श्रीराम ने इन्हें अपना

करके ऋषि मुनियों के विचार ले करके रावण से संग्राम किया और रावण को विजय किया। पातालपुरी को विजय किया वहाँ हनुमान के पुत्र को राजा को बनाया। महन्ति राज्य को विजय किया, नारायन्तक को नष्ट किया वहाँ के मामाधुक नाम के राजा को राज्य दिया। इस प्रकार की प्रणाली है मैं उसको अधिक नहीं ले जाना चहता हूँ केवल वाक्य यह उच्चारण करना चाहता हूँ कि माता और गुरु संसार में जब तक दोनों ऊँचे नहीं होगे तो राष्ट्र किसी काल में ऊँचा नहीं बना करता है।

तो मेरे प्यारे मैं केवल गुरुजनों का चित्रण कर रहा हूँ। गुरु चरित्रवान !भद्र पुरुषों ! होने चाहिए, पवित्र होने चाहिए और मनोविज्ञान में सने हुए होने चाहिए। मेरे प्यारे ! महानन्द जी ने मुझे एक समय वर्णनकराते हुए कहा था कि आधुनिक काल का जो मनोविज्ञान है वह इतना परिपक्व नहीं है मानो उस विज्ञान में नास्तिकवाद है। विज्ञान में नास्तिकवाद नहीं होना चाहिए उसमें तो आस्तिकवाद आना चाहिए। विज्ञान में जब नास्तिकवाद आ जाता है तो वह विज्ञान चरित्र को ऊँचा नहीं बनता। यह विज्ञान मानव को केवल नास्तिक बना देता है और अपंग नास्तिकवाद आ गया तो भ्रष्टाचार आ ही जाता है परन्तु जब तक मनोविज्ञान की महिमा है मनोविज्ञान इतना ही होना चाहिए जिससे हम अपने दूसरे शिष्यों को जानकारी दे सकें किसी दूसरे को जान सकें उस के हृदय की गति जान सकें। इस प्रकार जो मनोविज्ञान होता है वह स्वयं अपने पर करने से होता है वह केवल वक्तव्य देने से नहीं आता। आज कोई मानव यह उच्चारण करे कि मनोविज्ञान की चर्चाओं के वक्तव्य मैं देता चला जाऊं तो वक्तव्य से नहीं परन्तु जब तक मन की प्रवृत्ति की स्वयं साधना नहीं करोगे मन की स्वयं साधना नहीं होगी आत्मविश्वास की साधना नहीं होगी तो मनोविज्ञान की भी साधना नहीं की जा सकती। इसलिए हमारा आज का वाक् यह कह रहा है कि हम जो भी उच्चारण करें जो भी कुछ साधना हम कर सकें परन्तु मनोविज्ञान साधना से प्राप्त होता है वक्तव्य देने से नहीं होता। वक्तव्य देने वाला व्यक्ति कदापि मनोवैज्ञानिक नहीं होता। वह मनोविज्ञान की चर्चा प्रकट कर सकता है परन्तु वह स्वयं अपने पर न आए तो इसीलिए वह मनोविज्ञान सुन्दर नहीं होता। मनोवैज्ञानिक वह व्यकित होता है जो अपने पर स्वयं आत्मविश्वासी

होता है और जिसको स्वयं पर आत्मविश्वास नहीं होता वह मनोवैज्ञानिक भी नहीं होता इसलिए आज हम स्वयं क्रियाशील बनें। क्रियाशील गुरु जब होते हैं तो राष्ट्र और समाज सब पवित्र होते हैं।

आज का यह वाक्य अब समाप्त होने चला। आज के इन वाक्यों का यह अभिप्राय है कि आज हम अपने महान राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहते हैं, पवित्रता को लाना चाहते हैं तो वास्तव में हमें विचारना होगा हमें अपनी तरंगों को, अपनी भावनाओं को अपनी महानता को विचारते हुए अपने जीवन को क्रियाशील बनाना होगा तक हम इस संसार को ऊँचा बना सकते हैं अन्याय किसी काल में भी ऊँचा नहीं बना सकते। तो यह है आज का वाक् कल समय मिलेगा तो कल शेष चर्चाएं प्रकट करेंगे। तो आज का वाक् क्या कह रहा है कि हम प्रभु को अपना मित्र बनाते हुए हम जो भी वाक्य उच्चारण करें वह हृदय से, तन मन से धन से। इसी प्रकार हम अपने जीवन को, मानवीयता की वेदी पर ले जाना चाहते हैं। हमें अपने जीवन पर अनुसन्धान करना है और अनुसन्धान करते हुए अपने पन को जानकर स्वयं संसार में ऊँचा बनना है और संसार को ऊँचा बनाने की प्रवृत्ति बनानी है। आज का वाकय समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा इसके पश्चात् यह वाक्य समाप्त हो जाएगा।

१६ 05 03 1969 पुष्प 12 परम शान्ति का वास्तविक मार्ग

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ नित्य प्रति ज्ञान और विज्ञान की विवेचन होता रहती है। प्रायः मानव के मन में एक जिज्ञासा रहती है, कि हम ज्ञानी और विज्ञानी बने। विज्ञान में भी दोनों प्रकार के विज्ञान की जिज्ञासा रहती है। हम आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता भी बनें और भौतिक विज्ञानवेत्ता भी बनें और उसकी उत्कट इच्छा यह होती है, कि मैं सुख और आनन्द को प्राप्त होता चला जाऊं। प्रायः मानव को ज्ञान और विज्ञान को जानने की उत्कट इच्छा, इसलिए होती है, कि आनन्द को

प्राप्त करने के लिए।

तो मेरे प्यारेहमने कल के वाक्य में भी कहा था !ऋषिवर !, कि हमारा जो वेद का ज्ञान है, वह चतुष्पाद में वर्णन किया है। वास्तव में जब अनुसन्धान अथवा विचार विनिमय किया जाता है, तो उसमें ऐसा प्रतीत होता है, कि परमात्मा का ज्ञान अथवा उसका विज्ञान महान है, क्योंकि उसके ज्ञान में वृद्धपन नहीं होता और न न्यूनता होती है। वह एक रस रहने वाला है, जिस प्रकार परमपिता परमात्मा कण कण में व्याप्त है उसी प्रकार उसका ज्ञान भी कण कण में व्याप्त रहता है, ज्ञान विज्ञान के सहित रहता है, तो हमें उसी प्रभु का ज्ञान लेना चाहिए, जिसमें ज्ञान और विज्ञान की महानता समाहित होती है, जब हम अपने प्रभु को जान लेते है तो ये ज्ञान और विज्ञान भी हमारे नीचे दब जाते है, हम उस परमदेव, आनंद को प्राप्त हो जाते है वह परम आनंद जब मानव को प्राप्त हो जाता है, तो मानव की एक महान प्रतिभा जागृत हो जाती है, वही प्रतिभा मानव के जीवन को उज्ज्वल क्या, वह परम आनंद को प्राप्त करा देती है।

प्रभु का गुणगान

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम अपने उस प्यारे प्रभु का गुणगान गाते चले जाएँ, वह प्रभु कितना अलौकिक है उसकी महानता का वर्णन नहीं किया जाता, उसकें उच्चारण करने में अंत में वाणी असमर्थ हो जाती है आज हम उस मधुरता को प्राप्त करते चले जाएं, बेटा! हमारी जो रचना है वह कहा होती है, कितना सुंदर रचेता है, माता के गर्भस्थल में जब वह जीवात्मा विराजमान हो गया है, परमाणु को एकत्रित करते हुए मानो वही रचेता उन परमाणुओं से आत्मा के शरीर का निर्माण कर देता है, बेटा! वह कितना सुन्दर है मेरी प्यारी भोली माता के गर्भस्थल में रचना हो रही है, परन्तु माता से दूर है, कितना दूर, कितना निकट है, निकट से निकट है, और दूर से दूर है। जब दूरी का प्रश्न आता है, तो उसी का नाम अंतर्द्वंद्व माना गया है।

आओ, मेरे प्यारे! प्रभु के गुणगान गाने का आज हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है, माता के गर्भस्थल में जब जरायुज आता है, वह पनपता रहता है, परन्तु दिन दिन नाड़ियों के

द्वारा पनपता रहता है, इसके ऊपर मानव को विचार विनिमय कर लेना चाहिए, जब माता की रसना के निचले विभाग में, एक स्वांग नाम की नाड़ी होती है, और स्वांग नाम की नाड़ी के निचले विभाग में क्रिकेतु नाम की नाड़ी होती है, और क्रिकेतु नाड़ी के मध्य में आगे चलकर पञ्चम नाम की नाड़ी होती है, इस तीनों नाड़ियों का समूह हो करके और रसना के द्वार से रस ले करके माता की लोरियों में वह रस परिपक्व होता रहता है, जब वह रस पकता है तो माता की लोरियों से पञ्चम नाम की नाड़ी चलती है जिसको संघात नाम की नाड़ी कहते है संधात नाम की नाड़ी का सम्बन्ध बालक की नाभि के द्वारा होता है, तो नाभि के द्वारा बालक माता के जरायुज में गर्भस्थल में पनपता रहता है, अपनी आयु को प्राप्त करता रहता है, अर्थात उस आनंददायक पदार्थ को प्राप्त करता रहता है, वह कितना सुंदर रचेता है।

आनंद की प्राप्ति का आधार

एक ही गर्भस्थल में शरीर बनते है, मानव का शरीर भिन्न है, और माता का शरीर भिन्न है, जब उन दोनों की रचना में भी नाना प्रकार का भेदन है, आज की इस रचना पर तो मैं अधिक बल देने नहीं जा रहा हूँ, केवल वाक्यों का अभिप्राय यह है, की वहाँ कितना कष्ट होता है, वह जीवात्मा जनता है, क्योंकि जब माता के गर्भस्थल में हमारे ऋषि मुनियों ने ऐसा कहा है कि वह जो माता पिता का गर्भाशय है उससे मुक्त होने के लिए मानव ज्ञान और विज्ञान के लिए उत्सुक रहता है । उसी के लिए प्रयत्नशील रहता है, कि मैं ज्ञान और विज्ञान को जानने का प्रयत्न करूँ और उस आनंद को प्राप्त करूँ, जिससे मुझे अंधकार में जाने का अवसर न प्राप्त हो। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम उसी अंतर्द्वंद्व से दूर होने के लिए ज्ञान और विज्ञान में पहुँचना चाहते हैं। वेद का आश्रय लेना चाहते हैं, कहीं ब्रह्मज्ञानी गुरु का आश्रय लेना चाहते हैं। परन्तु तात्पर्य क्या, कि मानव की वास्तविक शान्ति के लिए और परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को जानने के लिए मानव सदैव प्रयत्नशील रहता है। एक ब्राह्मण है, नाना प्रकार की पोथियों को एकत्रित करता है। उनका अध्ययन करता है, नवीन जीवन को प्राप्त

करता है। अपने जीवन को, उसके अनुसार बना लेता है। किसलिए बनाता है? इसलिए बनाता है, कि मुझे यह भी आवागमन का चक्कर है, इससे मैं मुक्त हो जाऊं। केवल अभिप्राय एक ही रहता है। इसलिए मेरे प्यारेऋषियों ने कहा है !, कि आज हम आनन्द के लिए रमण करने जा रहे हैं। एक राष्ट्रवेत्ता है, वह राजा बनता है, नाना प्रकार के ऐश्वर्यों के लिए, यदि उससे प्रश्न किया जाता है, क्या तुम ऐश्वर्यवादी बन गएं हो? तो उस समय उसके मुखारविन्द से भी यही उत्पन्न होता है, ज्ञान और विज्ञान की दृष्टि से, कि मुझे कदापि भी आनन्द प्राप्त नहीं हो रहा है, मैं तो नाना प्रकार के भोग विलासों में लग गया हूँ और मुझे वास्तविक शान्ति प्राप्त नहीं हो रही है।

तो मेरे प्यारेराजा बनता इसलिए है !ऋषिवर !, कि मैं आनन्द को प्राप्त होऊंगा, परन्तु नाना प्रकार का वैभव मेरे समीप रहेगा। परन्तु उससे भी मानव को शान्ति प्राप्त नहीं होती। तो शान्ति कहाँ प्राप्त होती है? मैं उन्हीं के वाक्यों को उच्चारण करने के लिए तत्पर रहता हूँ, कि प्रभु का ज्ञान और विज्ञान को जानने के लिए, जब मानव तत्पर होता है और उसको तत्परता से जान लेता है और उसके निकट चला जाता है, तो वहाँ मानव को वास्तविक शान्ति उत्पन्न होने लगती है।

बेटामैं कल के वाक्यों में चला जाऊं !, जहाँ मैंने अपना कल का क्या समाप्त किया था। कल जो हमारा विवरण चल रहा था, कि मन कला, चक्षु कला, श्रोत्र कला और घ्राण कला के चतुष्पादों का वर्णन किया जा रहा था। जैसा मुनिवरों !षोडश कलाओं के जानने वाले भगवान कृष्ण ने अपने जीवन में किसी प्रकार का पाप कर्म नहीं किया। वह इतने महान थे। क्यों नहीं किया? यह प्रायः होता है कि जब मानव संसार में आता है तो पाप भी करता है और पुण्य करता है। क्योंकि यह शरीर ही उसे पाप पुण्य कर्म करने के लिए प्राप्त होता हैभगवान कृष्ण इतने महान थे !, अपने कार्यों में इतने दक्ष थे, ज्ञान और विज्ञान में पारांगत थे, कि वह किसी कार्य को करने के पश्चात, उस पर पश्चाताप नहीं होता था। नम्रता की उनमें प्रतिभा थी। बेटा तुम्हें स्मरण होगा जब !

इन्द्रप्रस्थ मेंं यज्ञ हुआ था।

भगवान कृष्ण

जिस समय यज्ञ का कार्यक्रम बनने लगा, कि कौन कौन मनुष्य क्या क्या कार्य करेगा, तो युधिष्ठिर जी से कहा कि महाराजआप तो यज्ञ दृष्टिपात करते रहो !, अर्जुन से कहा कि तुम सेवा करो, भीम से कहा कि तुम अस्त्र शस्त्रों को नियुक्त करो और शकुनि से कहा कि तुम पशुओं के भोजन के प्रति हो, इसी प्रकार द्रव्य का स्वामी महाराज दुर्योधन को बनाया। जब सब चुन लिए, महाराजा युधिष्ठिर कृष्ण से बोले कि महाराज आप ! क्या करोगे? वह बोले कि मैं वह कार्य करूंगा, जो मैं सदा परम्परा से करता चला आया हूँ उसी कार्य को मैं कर पाऊंगा। उन्होंने कहा कि महाराजक्या करोगे !? उन्होंने कहा कि यज्ञ में जो अतिथि आएंगे, मैं उनके चरणों को, जल से स्पर्श करके, आचमन करूंगा। अभिप्राय क्या है उच्चारण करने का? कि मानव जितना भी गम्भीरता में, विवेक में चला जाता है, उतनी ही उज्ज्वल उसकी प्रतिभा होती चली जाती है।

तो मेरे प्यारे मैं भगवान श्रीकृष्ण की चर्चा करता चला जा रहा था। वह !ऋषिवर ! कितने बड़े विज्ञान में रमण करते थे। कितना विज्ञान उनके समीप था? वह जानते थे, कि पृथ्वी में क्या है, अन्तरिक्ष के परमाणु क्या कह रहे थे। जो मानव विज्ञान के आश्रित हो करके, वायुमण्डल की तरंगों को जानने लगता है, वही तो संसार में विज्ञानवेत्ता कहलाया जाता है। आज मैं इस वाक्य को अधिक दूर नहीं ले जाना चाहता। वाक्य यह प्रारम्भ करने जा रहे थे, कि हमारा कल का वाक्य क्या कहता चला जा रहा था। कल का वाक्य कहता चला जा रहा था, कि हम मन कला को जानने का प्रयास करें। मन कला, चक्षु कला, श्रोत्र कला और घ्राण कला जिसे प्राण कला भी कहते हैं, जानने का प्रयास करें।

महर्षि कपिल का विकासवाद दर्शन

मेरे प्यारेमुझे स्मरण है !ऋषिवर !, एक समय महर्षि कपिल मुनि महाराज शान्त मुद्रा में विराजमान थे और लेखनीबद्ध करने लगे, तो उस समय यह विचार विनिमय होने

लगा, कि मैं लेखनीबद्ध करने तो जा रहा हूँ, परन्तु लेखनीबद्ध मैं क्या करूं? लेखनी के लिए मेरे द्वारा है क्या? तो विचार विनिमय हुआ कि वास्तव में मुझे ज्ञान और प्रयत्न दोनों के ऊपर टिप्पणी करनी चाहिए, जिसका विभाजन होता है और जो विभाजन करता है। अब तक जो मैंने मन्थन किया है, मुझे परमात्मा की सृष्टि में दो ही वस्तु प्रतीत होती है एक विभाजन जो करती है और एक जिसका विभाजन होता है। इसके पश्चात महर्षि कपिल जी ने लेखनीबद्ध करते हुए कहा, कि दो ही वस्तु हैं मन और प्राण। दोनों के ऊपर विचार विनिमय होने लगा, कि तो मुझे ऐसा ही प्रतीत होता है, कि मानव का विकास कैसे होता है। वास्तव में जो उसे मृत्युवाद कहना चाहिए। परन्तु मानव उसे विकासवाद कहता है।

कपिल जी कहते हैं, कि मानव का विकास कैसे हुआ? उन्होंने कहा कि संसार में जब यह जीवात्मा आता है, मानो जब यह शरीर प्राप्त होता है, तो शरीर प्राप्त होते ही इस शरीर में एक क्रिया है, मानो एक बिन्दु है, उस बिन्दु के दो विभाग होते हैं एक को हम ज्ञान कहते हैं और द्वितीय को प्रयत्न कहते हैं, ज्ञान और प्रयत्न दोनों उत्पन्न हो गए। अब जिसको हम प्रयत्न कहते हैं इसका माध्यम तो प्राण बन गया और जिसको हम ज्ञान कहते हैं इसका माध्यम मनीराम बन गए। अब दोनों की प्रक्रियाएं शरीर में सुचारू रूप से होने लगीं। क्योंकि प्रायः ऐसा होता है, कि जहाँ भी ज्ञान होता है, वहाँ कामना उत्पन्न होती रहती है। मनीराम के द्वारा कामना की उत्पत्ति होने लगी। अब जब कामना ओत प्रोत हो गई, तो अब उसका पूर्ण होने का कोई न कोई साधन होना चाहिए। जब ज्ञान के द्वारा कामना उत्पन्न हो गई तो यह जो प्रयत्न है, जिसको प्राण कहते हैं, इसकी धाराएं प्रारम्भ होने लगीं। सबसे प्रथम प्राण की प् 5रकार की धाराएं बनी प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान। जब पांच प्रकार की धाराएं बन गई, तो मनीराम का कर्त्तव्य ही था जहाँ ज्ञान होता है वहाँ कामना उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। तो कामना उत्पन्न होने लगी। अब जब कामना आ गई, तो पूर्ण कहाँ हो? अब इन्हीं पांचों प्राणों के पांच उपप्राण बन गए नाग, देवदत्त, धनञ्जय, कूर्म और कृकल। यह पांच उपप्राण बन गए। अब इनको कार्य अर्पित कर दिया। प्राण के कार्य को नाभि केन्द्र से

चलो, नाभि से चलकर घ्राण के द्वारा नाना प्रकार के परमाणु लाओ और जहाँ से दुर्गन्ध भरे परमाणुओं को ले जाओ और वास्तविक सुन्दर परमाणु ले जाओ। यह प्राण को कार्य दिया। अपान ने कहा कि तुम्हारा सम्बन्ध पृथ्वी से है मानो तुम देखो, जो भी अवृहीण होता है, इसमें मृत्यु समाहित रहती है, तरंगतनत समाहित रचना है। मानो इसका पृथ्वी से सम्बन्ध हो गया, कि पृथ्वी से गन्ध लाओ और दुर्गन्ध को त्यागते रहो। यह कार्य अपान का हो गया। इसी प्रकार व्यान कण्ठ में रहता है। हम जो भी कुछ आहार करते हैं तो व्यान वायु का कार्य है, कि वह उनको ले जाकर के उदर में परणित कर देता है जिसे हम उदान कहते हैं वह उदान प्राण उसका रस बना देता है परिपक्व बना देता और वह सामान्य प्राण को अर्पित किया जाता है। मानव के शरीर में 72, 72, 10, नाड़ियां प्रभु ने रची हैं। प्रत्येक नस नाड़ी में वह रस अपनी गति करने 202 लगता है। इस प्रकार हमारे यहाँ यह पांच प्राण माने गएं हैं। उसके ऊपर पांच उपप्राण हैं। नाग का कार्य है जब मानव कोक्रोध आता है, क्रोध की अति मात्रा आती है, तो यह नाग प्राण अमृत को निगल जाता है और विष को उगल देता है। मानो क्रोध द्वारा मानव की शक्ति नष्ट भ्रष्ट होती रहती है। इसी प्रकार देवदत्त का भी कार्य है। परन्तु मैं इसका संक्षिप्त परिचय देने जा रहा हूँ।

क्रोध की उत्पति

इस प्रकार जब यह दस प्राण बन गए, अब प्राण में इतनी गति नहीं थी, कि विभाजन और हो सकते थे। परन्तु यही दस प्रकार का विभाजन हो गया। विभाजन होने के पश्चात वह जो मनीराम था, वह तो स्वभाव से कामना उत्पन्न करने वाला था। शरीर में कामना उत्पन्न करता रहा। उसके पश्चात देखो, पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्म इन्द्रिय बन गई। उनके भिन्न भिन्न कार्य हो गए। मानो चक्षु को दृष्टि का कार्य, श्रोत्रों को शब्दों का, घ्राण को दुर्गन्ध सुगन्ध का और प्रत्येक इन्द्रिय को अपना कार्य परणित कर दिया। जब उनको कार्य अर्पित कर दिया, तो वह अपना कार्य करने लगी। कामना उत्पन्न होती रही और कामना उत्पन्न होने से उन इन्द्रियों का बाहरी स्वरूप बन गया। इन्द्रियों का

जब बाहरी स्वरूप बन गया, तो और भी कामना उत्पन्न हुई। उस कामना के उत्पन्न होने पर आगे चल करके तृष्णा बन गई। जब तृष्णा बन गई, अब तृष्णा ऐसी महान कलंकिनी है, कि मानव के समीप जब तृष्णा उत्पन्न हो जाती है, तो यदि आज्ञा के अनुकूल मानव का कार्य हो जाता है, मानव को तृष्णा के पश्चात अभिमान आता है और यदि आज्ञा के अनुकूल कार्य न होता, तो उस समय क्रोध उत्पन्न हो जाता है।

तो मेरे प्यारे !ऋषिवर !देखो, जहाँ मान और अपमान भी उत्पन्न हो गए। जब मान और अपमान उत्पन्न हो गए। अब उससे काम की धाराएं उत्पन्न हो गई। आगे चल करके, उसी से मोह आ गया देखो, एक नवीन परिवार बन गया। इसलिए आज हमें यह विचार विनिमय करना है कि यह जो हमारा घृणित परिवार बन गया है इस घृणित परिवार से हमें पार होना है, इससे हमें दूर होना है। परन्तु इस घृणित परिवार से वही मानव पार हो सकता है जिसको न तो मान है, न अपमान है। यदि मान और अपमान दोनों होंगे तो मानव में मोह इत्यादि नाना प्रकार की वस्तुएं उत्पन्न हो जाती हैं।

मुक्ति

तो मेरे प्यारेऋषिव !रआज हम क्या उच्चारण करने चले आ !ए। महर्षि कपिल जी ने कहा है कि इसी प्रकार मानव को विचार विनिमय करना चाहिए। आज मानव को संयमी बनना है। इसीलिए कई वाक्यों से उच्चारण करते चले आए हैं, कि मानव को संयमी बनना है। संयमी कैसे बनोगे। सबसे प्रथम कामना को शान्त करना होगा, जो मानव मुक्ति अथवा परमानन्द को प्राप्त करना चाहता है, उस मानव की जो कामना है और कामना में जो विडम्बना है, कामना में जो मधुपन है इस सबको विचार विनिमय करना होगा। विचार विनिमय करके सबसे प्रथम कामनाओं को शान्त करना होगा। वह किसी भी प्रकार की कामना हो, मानो वह हमारी लोक की कामना हो, परलोक की कामना हो। क्योंकि कामना होगी, तो संस्कार उत्पन्न होंगे और संस्कार उत्पन्न होंगे तो आवागमन भी स्वाभाविक बन जाता है। तो इसलिए आज हमें विचार विनिमय करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हम इनके ऊपर विनिमय करें, कि यह क्या है? हमें मुक्ति

के द्वार पर जाना है। मुक्ति हमें कैसे प्राप्त होगी क्योंकि यह तो मानव के शरीर में एक महान परिवार बन गया है। कोई महान जीवन मुक्त होना चाहता है कोई मानव यह चाहता है कि मुझे परमानन्द प्राप्त हो जाएं, जिसको परम मुक्ति कहते हैं वह भी चाहता है, परन्तु यह सब कुछ कैसे प्राप्त होंगे। कपिल जी ने कहा है कि हम सबसे प्रथम मान अपमान पर संयम करें।

मान और अपमान

इसको विचार लो। यदि मान आएगा तो वह भी हमारी मृत्यु का कार्य करेगा और अपमान आएगा, तो वह भी हमें मृत्यु में ले जाएगा। तो यह दो अज्ञानता के द्वार हैं। मान और अपमान को त्याग करके, शान्त मुद्रा में विराजमान हो जाना चाहिए। क्योंकि वह जो तृष्णा का केन्द्र है, मान अपमान का केन्द्र है, वह मनीराम है। इस मन को हमें शोधन करना है। यह जो ज्ञान के आसन पर विराजमान है, ज्ञान ही ज्ञान चाहता है। परन्तु यह जो प्रतिष्ठा पाए हुए हैं, अर्थात् मनीराम इस पर संयम करना है इन पर (संयम कैसे करोगे? यह जो मनीराम है और इससे जो दूसरी शक्ति है जो इससे प्रबल है, उसमें इस मनीराम को सुगठित कर दो। उसी में लय कर दो। वह किस प्रकार करोगे? जब मान अपमान नहीं रहेगा, तो तृष्णा पर संयम हो जाएगा। जब तृष्णा नहीं होगी, तो जो वह ज्ञान और प्रयत्न दोनों में अंतर्द्वंद्व है उस पर संयम होना स्वाभाविक हो जाएगा। ज्ञान की जो धारा है वह मानो आवागमन के आँगन पर अर्थात् मन की प्रवृत्तियों पर रमण कर देनी चाहिए।

मन से शक्तिशाली प्राण

मन से शक्तिशाली संसार में कौन है? मन से शक्तिशाली संसार में प्राण है और कोई वस्तु नहीं है। क्योंकि एक प्राण ही ऐसा है, जो मन को अपने वशीभूत कर सकता है, अन्यथा और कोई भी इसका ऐसा आश्रय नहीं है, जहाँ यह मन शान्त हो जाएं, तो मेरे प्यारेप्राण के विज्ञान में !ऋषिवर !, प्राण के विभाजन में इस मनीराम को सुगठित कर देना चाहिए। जब यह तृष्णा एकाग्र हो जाता है, इन्द्रियों के जो विषय हैं, वह शान्त हो

जाते हैं, क्योंकि मन का इससे विच्छेद हो जाता है, यह इन्द्रियों शून्य हो जाती हैं, काम से रहित हो जाती हैं। जब यह शून्य हो जाती हैं, तो उस को समाधि कहते हैं। हमारे यहाँ देखो, लघु मस्तिष्क में जब प्राण और मनीराम दोनों सुगठित होकर के चले जाते हैं, अर्थात् अपना अपना कार्य करते हैं, तो उसके पश्चात वहाँ इन्द्रिय शून्य हो जाती हैं और इन्द्रियों के शून्य होने पर जो नाग, देवदत्त, धनंजय आदि पांच उपप्राण हैं यह सुगठित हो जाते हैं और इससे आगे जो पांच मुख्य प्राण हैं, वह भी सुगठित हो जाते हैं और वह जो ज्ञान और प्रयत्न दोनों धारा बन गई थी, उन दोनों को मिलाने के पश्चात, मानव को मुक्ति का द्वार प्राप्त हो जाता है उसी को हमारे यहाँ मुक्ति कहते हैं ऐसा कपिल जी ने कुछ वर्णन किया है। ज्ञान और प्रयत्न दोनों के मध्य से जब अन्तर्द्वन्द्व समाप्त हो जाता है, तो उस समय कारण से कार्य कार्य और कारण बेटा ! दोनों एक ही रूप में परिणत किए गए हैं। कारण से कार्य कदापि भिन्न नहीं होता।

तो मेरे प्यारेआओ !ऋषिवर !, आज हम अपने प्यारे प्रभु की चर्चा करते चले जावें। विचार विनिमय में यह आता है, कि वह जो अन्तर्द्वन्द्व आया है, मानो दोनों को जो भिन्न भिन्न करने वाला है, वह कौन सी शक्ति है। गम्भीर जो व्यक्ति होते हैं, यौगिक जो पुरूष होते हैं, उनके हृदय में एक इसी प्रश्न को ले करके आगे चलकर धारा प्रारम्भ हो जाती है। जब मानव का शरीर प्राप्त हुआ, तो दो धाराएं बनी, ज्ञान और प्रयत्न। ऐसी कौन सी शक्ति थी, जो दोनों को एक से द्वितीय भाव उसमें जगा गया। वह कौन था ऐसा? अन्तर्द्वन्द्व वह क्यों आया? तो बेटाआगे ऋषि ने कहा है !, कि इसके ऊपर मानव जब शान्त हो जाता है विचार विनिमय में हो जाता है, तो यह मानव वाणी से इसको वर्णन करने में असमर्थ हो जाता है, तो यह जो अन्तर्द्वन्द्व आता है, इस पर विचार विनिमय होता रहता है। कोई मानव कहता है कि प्रकृति से आता है। मानो जब प्रकृति जीवात्मा के निचले भाग में स्वीकार करते हैं, तो उससे अन्तर्द्वन्द्व कैसे आ सकता है और यदि हम ब्रह्म के अन्तर्द्वन्द्व स्वीकार करते हैं, तो बेटावहाँ तो प्रकाश ! ही प्रकाश है। वहाँ अन्तर्द्वन्द्व का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। अन्त में यह एक ऐसा गहन विषय आ जाता है, कि मानव को यह उच्चारण करना होता है, कि इसके ऊपर केवल मानो

अनुभव कर सकता है, यह मानव की वाणी का विषय नहीं रह जाता।

तर्क के लिए तपस्या

तो मेरे प्यारेआज हम कहाँ चले ग !ऋषिवर !ए। वाक्य उच्चारण करते करते बहुत दूर चले गए। वाक्य प्रारम्भ यह हो रहा था कि साधारण रूपों से हम अन्त में इस वाक्य को क्यों ले जाएं, क्योंकि यह वाक्य तो समाधिष्टों का है, साधकों का है, विचारकों का है, और उन विचारकों का जो स्वयं अपने में अनुभव करते हैं, वह शब्दों का विषय नहीं, शब्दों से उसका उच्चारण भी नहीं किया जाता, बेटा कपिल जी ने जब यह ! विचारा कि मुझे तो संसार में दो ही वस्तुएं प्रतीत होती हैं ज्ञान और प्रयत्न और दोनों रूपों से यह संसार चल रहा है। अब तृतीय वस्तु मुझे ब्रह्म कोई प्रतीत नहीं होता। ब्रह्म कोई वस्तु नहीं है। जब कपिल जी ने यह विचारा, तो कपिल जी के गुरूदेव आ गए। गुरूजी ने कहा कि अरे, कपिल जी! शान्त मुद्रा में क्यों हैं? उन्होंने कहा कि प्रभु! मेरी तो तार्किक गति बन गई है, और मैंने यह निश्चय किया है कि संसार में प्रभु नहीं है, यह तो केवल मानव के लिए एक उच्चारण करने के लिए है, क्योंकि संसार में तो मुझे ज्ञान और प्रयत्न ही प्रतीत हो रहा है। जो वस्तु विभाजन होती है, और जो कर्त्ता है, वही दो वस्तु मुझे प्रतीत हो रही है, तृतीय कोई वस्तु नहीं।

मुनिवरोंउस समय ऋषि ने कहा कि अरे !, कपिल जी! अब तुम तपस्या करो, क्योंकि तुम तर्क में तो चले गए। परन्तु तर्क करने के लिए तपस्या की आवश्यकता होती है। जो तुमने जाना है, इसके ऊपर तपस्या करो, अनुसंधान करो और तपस्वी बन करके, मौन हो करके, विचार विनिमय करोगे, तो तुम्हारे द्वार से यह अन्तर्द्वन्द्व भी समाप्त हो जाएगा। उसके पश्चात उन्होंने तपस्या की और तपस्या करने के पश्चात अन्त में कपिल जी ने नेतिःनेतिः कहा कि आगे वह अनुभव का विषय रह जाता है लेखनी का विषय नहीं।

मेरे प्यारेमैं महर्षि कपिल जी की कुछ चर्चा !ऋषिवर !एं प्रकट कर रहा था। आज मुझे इतना समय तो प्रदान नहीं किया जा रहा था, केवल सूक्ष्म समय था, मैंने सूक्ष्म इनका

परिचय कराया है। आज हमें विचार विनिमय कराने का सौभाग्य मिला कि मानव के जीवन का विकास बाहरीय कैसे बनता है। यह सूक्ष्म सी मैंने चर्चाएं प्रकट की हैं कि मानव जो बाहरीय जगत में आता है इस मनीराम के कारण से आता है यही इसको लाने वाला है और यही बाहरी जगत से आन्तरिक जगत तें ले जाता है। इसलिए इसको जानना मानव का सदैव कर्त्तव्य है और इसी को कर्त्तव्यवाद में ले जा करके, इसी से मानव को परमानन्द और परम शान्ति प्राप्त होती है। तो शान्ति किस काल में प्राप्त होती है? जब ज्ञान होता है और ज्ञान भी शुद्ध और पवित्र होता है। उस समय मानव को वास्तविक शान्ति प्राप्त होती है। मानो ज्ञान ही वस्त्र होता है, ज्ञान का ही भूषण होता है, ज्ञान का ही उसका मार्ग होता है और ज्ञान का ही उसका सर्वस्व शरीर होता है उस समय वह मानव परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

मानव का कर्तव्य

तो मेरे प्यारेआज का हमारा वाक्य क्या कहता चला जा रहा था !ऋषिवर !, कि हम प्रभु की महिमा का गुणगान गाते चले जाएं और मानव को यह भी विचार विनिमय करना चाहिए, कि यदि मानव ज्ञान के क्षेत्र में नहीं जाना चाहता, विचार विनिमय का सौभाग्य मानव को प्राप्त नहीं होता, तो मानव यह न विचारे कि जो मैं कर्म करता हूँ, वह मुझे नहीं भोगना होगा। क्योंकि मानव जो भी कर्म करेगा शुभ करो, अशुभ करो, दोनों को भोगना उसके लिए अनिवार्य है। इसलिए मानव के लिए सूक्ष्म चर्चा की, कि तुम विचार विनिमय करो, अपने मानव शरीर को जानने का प्रयास करो। यह हमारा मानव शरीर है क्या? इसमें वास्तविकता है क्या? यह कैसे परमाणुओं से सुगठित होने वाला शरीर, कितना सुन्दर लेपन है, कितने सुन्दर लेपन है, कितने सुन्दर चक्षु हैं? प्रत्येक इन्द्रिय प्रभु ने कितने ज्ञान और विज्ञान से रची है परन्तु इन्हें बाहरीय और आन्तरिक रूप दोनों से जानना, यह मानव का कर्त्तव्यवाद कहलाता है।

तो मेरे प्यारेआज मानव को यह विच !ऋषिवर !ार विनिमय नहीं करना चाहिए, कि जो हम कर्म करते हैं यह हमें नहीं भोगना होगा। यह भोगना अनिवार्य है, क्योंकि जैसा

भी तुम कर्म करोगे, वैसा ही भोगना है। इसके ऊपर बेटा मुझे एक वार्त्ता स्मरण ! आती चली जा रही है जो पूर्व काल में भी मैंने इस वार्त्ता को प्रकट करायाहै आज भी स्मरण आती चली जा रही है।

बिना समय के वृष्टि, कथानक

एक समय बिना समय के वृष्टि हो गई। प्रजा में त्राहिमाम् त्राहिमाम् हो गई। ब्राह्मणजनों ने कहा कि हम किसको उपदेश दें, किसके द्वारा ज्ञान की वर्षा करें, क्योंकि यहाँ तो अनावृष्टि हो गई और वैश्यों ने कहा कि हमारी सर्वस्व सम्पत्ति समाप्त हो गई। क्षत्रियों ने कहा कि किसकी रक्षा करें और शून्द्रों ने कहा कि हम किसकी सेवा करें, यहाँ तो सर्वस्व समाप्त हो गया। प्रजा में त्राहिमाम् त्राहिमाम् हो गई, तो प्रजा का समूह बना। वह प्रजापति के द्वार पर जा पहुंचे और कहा कि महाराज हम आपके आसन को ! पवित्र करने नहीं आए हैं, हम तो अपनी कुछ पुकार लेकर आए हैं, कि हमारा सर्वस्व समाप्त हो गया है, विनाश को प्राप्त हो गए, हमारा जीवन किस प्रकार चलेगा। उन्होंने कहा कि महाराजबिना समय के वृष्टि हो गई है !, हमारी सर्वस्व सम्पत्ति नष्ट हो गई है। प्रजापति ने कहा कि कहो, यह वृष्टि कहाँ से हुई, उन्होंने कहा कि यह वृष्टि मेघों से आई है। अब प्रजापति ने मेघ मण्डलों को निमन्त्रित किया और सभा में नियुक्त किया गया और कहा कि अरे, मेघ मण्डलों तुम तो बड़े स्वच्छ और पवित्र हो क्योंकि ! जल का रूपही सतोगुणी होता है, यह मानव की नाना कामनाओं को भी शान्त कर देता है, यह तुमने क्या किया कि अनावृष्टि करके प्रजा का विनाश कर दिया।

प्रजापति से मेघ मण्डलों ने कहा कि भगवन् इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। मेरे से ! तो महाराज इन्द्र ने कहा था। इन्द्र ने आज्ञा दी, मैंने वृष्टि कर दी। अब प्रजापति ने मेघों को तो शान्त कर दिया और निमन्त्रण देकर इन्द्र को सभा में नियुक्त किया गया और कहा कि अरे, इन्द्र यह बिना समय के वृष्टि की इच्छा मेघ मण्डलों को क्यों ! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है !प्रकट की। उन्होंने कहा कि भगवन्, क्योंकि मुझसे तो मेरी पत्नी शचि ने कहा था। अब प्रजापति ने इन्द्र की पत्नी शचि को निमन्त्रण दिया और

उनको सभा में लाया गया। सभा में प्रजापति ने जब यह प्रश्न किया कि हे शचि तुम ! तो जगत की माता हो और जगत में भ्रमण करने वाली हो, सांत्वना बना देने वाली हो, क्या कारण है कि तुमने पति को वृष्टि की इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा इसमें भगवन्मेरा कोई दोष नहीं है। मेरे से तो समुद्रों ने कहा था !।

अब प्रजापति ने समुद्रों को निमन्त्रण दिया और सभा में नियुक्त किया गया और उसके पश्चात प्रजापति ने कहा कि अरे, समुद्रों यह तुमने बिना समय के वृष्टि की इच्छा ! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है !क्यों प्रकट की। उस समय समुद्रों ने कहा कि भगवन्, मेरे से तो आदित्य ने कहा था।

मुनिवरोंदेखो !, अब प्रजापति ने आदित्य को निमन्त्रण दिया और आदित्य से कहा ! कि तुमने बिना समय के वृष्टि की इच्छा क्यों प्रकट की है। उन्होंने कहा कि भगवन् ! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। मेरे से तो पृथ्वी माता ने कहा था। अब प्रजापति ने !पृथ्वी माता को निमन्त्रण दिया और सभा में लाया गया। प्रजापति ने कहा कि हे पृथ्वी तुमने बिना समय के वृष्टि की इच्छा क्यों प्रकटकी। तो पृथ्वी माता ने कहा हे भगवन् ! मैं क्या करूं? जब यह प्रजा मेरे ऊपर पाप कर्म करने लगती है और जब मैं पाप में सन जाती हूँ, तो उस समय मेरी इच्छा होती है, कि मैं जल में स्नान करूं। तो भगवन् ! मेरी जो वेदना है, मेरी जो पाप भरी पुकार है, आदित्य तक जाती है, आदित्य नाम सूर्य का है। सूर्य से भगवन तेज का उत्थान होता है। तेज समुद्रों में जाता है और ! उसी तेज से जल का उत्थान होता है और उसी से मेघ मण्डल बनते हैं।

मुनिवरोंदेखो !, जलों का उत्थान समुद्रों से हुआ। उससे मेघ मण्डल बने। !शचि नाम विद्युत का है और इन्द्र नाम वायु का है। इन तीनों का जब संघर्ष होता है तो धीमी धीमी वृष्टि होने लगती है। उसी वृष्टि के द्वारा जब कहीं प्रजा में पाप होते हैं, वहाँ अतिवृष्टि हो जाती है और कहीं अनावृष्टि हो जाती है। प्रायः यह होता है प्रजा के कर्मों के द्वारा। तो पृथ्वी माता ने कहा कि भगवन्जब मेघ मण्डलों से वृष्टि होती है !, तो उसमें में स्नान कर लेती हूँ और प्रजा अपने लिए हुए पाप पुण्य कर्मों के फल भोग

लेती है।

तो मेरे प्यारे आज हमें विचार विनियम यह करना है कि मानव ने यदि !ऋषिवर ! अपनी शान्ति के लिए प्रयत्न नहीं किया, मानव जो भी कर्म करता है उसे भोगना अनिवार्य है और भोगा ही जाएगा। आज हम वास्तव में अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए, अपनी मानवीयता की प्रतिभा को जानते हुए, इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। हमें आत्मिक शान्ति को विचारना है, क्योंकि आत्मा में शान्ति होना बहुत अनिवार्य है। कल मेरे प्यारे महानन्द जी जो अपनी कुछ वार्त्ता प्रकट करेंगे। इनका ! वाक्य भी बड़ा गम्भीर होता है। कटु तो होता है, परन्तु सत्यता से सना होता है। तो आज का हमारा वाक्य कहता चला जा रहा है, कि हम अपने जीवन को वास्तविक उन्नतशील बनाएं, पवित्र बनाएं, जिससे हम आत्मोन्नति प्राप्त करके परम शान्ति को प्राप्त करते रहें।

तो आज के वाक्य का अभिप्राय यह है, कि आज मानव मानव से शान्त होकर के पाप कर्म कर सकता है, परन्तु परमात्मा जो सर्वव्यापक है, उससे शान्त होकर के मानव कोई भी पाप कर्म नहीं कर सकता। हमें विचारना है कि हम सर्वस्व प्रभु को दृष्टिपात करें, कण कण में जब हम प्रभु को दृष्टिपात करते हैं, तो मानो मानव पाप कर्म नहीं करता। मानव पाप कर्म उस काल में करता है, जब परमात्मा को अपने से दूर कर देता है और दूर क्यों कर देता है? केवल अज्ञानता के वश, क्योंकि वह प्रभु को जानता नहीं। जो मानव प्रभु को जानता है, वह पाप नहीं करता। पाप वही मानव किया करता है, तो प्रभु से दूर हो जाता है। जो प्रभु के कण कण में, मनों में, चक्षुओं में, श्रोत्रों में प्रत्येक इन्द्रिय में प्रभु की प्रतिमा स्वीकार करता है जिसने जो वस्तु बनाई है वह उसमें रमण भी कर रहा है और जब मानव को यह निश्चय हो जाता है, तो वहाँ मानव पाप नहीं करता।

यह है आज का हमारा वाक्य। आज के वाक्यों का अभिप्राय कि हे मानव आज तू ! अपने पापों से स्वयं भयभीत हो। क्योंकि मानव को स्वयं अपने ऊपर दया करनी होगी। मानव जब अपने ऊपर दयालु बन जाएगा उस समय उसे स्वयं शान्ति होगी।

दूसरों पर दयालु मत बनो, सबसे प्रथम अपने पर दयालु बनो। अपने पर दयालु कौन प्राणी बनता है और किस काल में बनता है? जब उसे अपने ऊपर पूर्ण आत्मविश्वास हो जाता है, आत्मसंयमी हो जाता है। इन्द्रियों पर संयम हो जाता है। वह मानव अपने ऊपर स्वयं दया करता है, जो परमात्मा को अपने शरीर में कण कण में स्वीकार करता है और उसकी इस प्रकार की प्रतिभा बन जाती है, तो जानो कि वह मानव स्वयं अपने ऊपर दयालु बन गया है और जब मानव स्वयं दयालु बन जाता है तो शान्ति उसके हृदय में आ समाहित होती है और वह उस आनन्द को अनुभव करने लगता है जहां उसे जाना है, जिसे पारलौकिक कहते हैं क्योंकि परलोक को जाना है, भौतिक लोक को त्यागना है। कल मुझे समय मिलेगा, तो कल मैं कुछ आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान की चर्चा प्रकट कर सकूंगा। कल मेरे प्यारे महानन्द जी अपने कुछ वाक्य ! प्रकट कर सकेंगे। अब यह समय समाप्त होने जा रहा है। अब वेदों का पाठ होगा। शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। मानव को स्वयं अपने ऊपर दया करनी होगी और यदि दया न करोगे, तो मानव इसी आवागमन में रमण करते रहोगे, जीवन में शान्ति नहीं आ पाएगी। इसलिए आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। पश्चात यह वाक्य समाप्त।

१७ 06 03 1969 पुष्प 12 ब्राह्मणों का राष्ट्र उत्थान में कर्तव्य

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमें उस परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से उन ऋषि मुनियों की विचारधारा को मन्थन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिनका सर्वस्व जीवन यौगिकता में प्रायः रमण करता रहता था। क्योंकि जो आत्मवेत्ता पुरूष होते हैं, उनके द्वारा संसार की विचारधाराएं प्रायः पवित्र बना करती हैं, उनकी आत्मा सदैव पवित्र रहती हैं। हमारे ऋषि मुनियों ने दो प्रकार की चर्चा की हैं। एक तो वह महापुरूष होते हैं, जो जनता में ही जनार्दन को दृष्टिपात करते हैं। एक वह पुरूष होते हैं जो ब्रह्म में समाविष्ट हो जाते हैं और उसके पश्चात मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं।

हमारा वेद का ऋषि कहता है, ब्रह्मा व्यापाम् व्यापकम् रहिनश्तत् प्रभा वसनध्यम् ब्रह्मे व्यापा गृति रुदाः यह महर्षि श्रृंगकेतु शाखा का मन्त्र है। इसमें हमें यह प्रतीत होता है, कि मानव का जो जीवन है, मानव का जो धर्म है वह है व्यापकता, क्योंकि मस्तिष्क में जब तक व्यापकवाद ओत प्रोत नहीं होता, तब तक मानव अपने उस निश्चय मार्ग पर नहीं पहुंच पाता, जहाँ के लिए, उसे परमपिता परमात्मा ने उत्पन्न किया है। यहाँ प्रायः मानव के मस्तिष्क में संकीर्ण विचार ओत प्रोत होते चले आते हैं, जैसा अभी अभी मेरे प्यारे महानन्द जी अपने विचारों में कुछ प्रकाश देंगे। मैं आज राष्ट्रवाद की ! चर्चा प्रकट करने नहींआया और न समाज को वर्तमान समय की चर्चा करने आया, क्योंकि यह तो आज मेरे प्यारेमहानन्द जी अपनी कटुता को त्यागकर !, अपना प्रकाश देंगे। हम तो केवल इतना उच्चारण करना चाहते हैं, कि समाज में दो प्रकार के महापुरूषों की कल्पना कर लेनी चाहिए। वह दोनों प्रकार के महापुरूष, एक जनता में, जनार्दन में समाविष्ट रहते हैं और द्वितीय वह होते हैं, जो ब्रह्मा में समाधिष्ट हो जाते हैं, परन्तु जो अपनी आत्मा में हवि देते हैं और आत्मा में ही हव्य पदार्थों को ओत प्रोत करते हुए, ब्रह्म को सदैव दृष्टिपात करते हुए, ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। वह ब्रह्म में लीन नहीं, परन्तु ब्रह्म में समाधिष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार जो जनता में जनार्दन वाले पुरूष होते हैं। वह द्रष्टा होते हैं। उनको हमारे यहाँ महर्षि कपिल जी ने ऋष्टम् ब्रह्मे अप्राप्त रुद्रा : कृति कहा है। कपिल जी के विचारों को लेकर जब हम प्रायः विचार विनिमय करते हैं, तो महर्षि कपिल जी ने जनता में जनार्दन वाले महापुरूष के लिए, एक ही वाक्य कहा है, वह जो महापुरूष होते हैं, वह इष्टी कहलाते हैं क्योंकि उनका जो इष्ट है, वह परमपिता परमात्मा को कण कण में स्वीकार करना है, प्रत्येक प्राणी के हृदय में, उनको विचारना और उन्हीं में संलग्नता रहना, त्रुटियां जो होती हैं उनको निकालने का प्रयत्न करना और अपने ऊपर न आने देना, वह जनता में जनार्दन महापुरूष होते हैं, क्योंकि जनता जनार्दन उनके लिए ब्रह्म के रूप में प्रतीत होती रहती है। उसी में उनका आत्मा इतना उन्नत हो जाता है, वह जो उच्चारण करते हैं वह राष्ट्र से लेकर के साधारण प्रजा के लिए या तो वह मानना अनिवार्य हो जाता है अन्यथा उसके भौतिक पिण्ड को नष्ट

भ्रष्ट कर दिया जाता है। अब मैं अपने प्यारे महानन्द जी से उच्चारण करूंगा कि वह अपनी कुछ वार्त्ता प्रकट करें और कटुता को त्याग करके।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् शनैः कृति विश्वा रहि गृत्याम मनुवंचामनगृहे देवम् भागाः।

मानव की शंकाएँ

मेरे पूज्यपाद गुरूदेव मुझे मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने आज एक अमूल्य !ऋषि मण्डल ! समय दिया। यह दो प्रकार के महापुरूषों की चर्चा प्रकट कररहे थे। इनका विचार आत्मोन्नति के लिए प्रायः होता है। मैंने अपने विचार अपने पूज्य गुरूदेव को प्रकट किए। उन्होंने यह अमूल्य समय प्रदान किया। प्रायः मानव के हृदय में आशंकाएं रहती हैं, मानव को कहीं द्रव्य की शंका रहती हैं, कहीं पदों की शंकाएं रहती हैं, कहीं मानव को अपनी प्रतिष्ठा की शंकाएं रहती हैं। कहीं नाना प्रकार की शंकाओं में मानव सदैव संलग्न रहता है। जब मैं यह विचार विनिमय करता रहता हूँ, कि आधुनिक काल का जो मानव है, इसकी विचारधाराएं कहाँ जा रही हैं, तो मुझे यही प्रतीत होता है, कि इनकी विचारधाराएं शनैः शनैः ऐसे शान्त होती जा रही है, जैसे प्रदीप्त अग्नि के ऊपर जल का प्रहार हो जाता है। आज मैं इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना नहीं दूंगा। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को इस संसार की परिस्थिति का वर्णन कराना चाहता हूँ, कि यह संसार कैसा है। इस संसार में हो क्या रहा है। मेरे मस्तिष्क में तीन प्रकार के विवाद रहते हैं। सबसे प्रथम विवाद है कि राष्ट्र कैसा हो, उसके पश्चात ब्राह्मण समाज कैसा हो और तृतीय वाक्य मेरा यह है कि यह भूमि जिसमें हमारी आकाशवाणी जा रही है, इस भूमि पर त्रेताकाल में किसका प्रभाव था, कौन यहाँ का राजा विराजमान रहता था। इसके सम्बन्ध में संक्षिप्त परिचय देना है, उनका विस्तार नहीं देना है, जिससे यह ज्ञान मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को भी श्रवण हो जाएँ, कि वास्तव में प्रायः ऐसा होता रहता है।

गुरुदेव के प्रवचनों पर विमर्श

जब मैं विचारता रहता हूँ, कि यह हमारी आकाशवाणी मृत मण्डल में जा रही है,

और मृत मण्डल का प्राणी विद्वत मण्डल भी इन वाक्यों को श्रवण करने के लिए तत्पर रहता है, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। मानव के मस्तिष्क में प्रायः एक वाक्य और रहता है, कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का जो स्थूल शरीर है जिसके माध्यम से हमारी वाणी जाती है, यह वाणी क्या है? इसके ऊपर हमारे शास्त्रोक्त वाक्य और अनुभवी वाक्यों को श्रवण कर लेना चाहिए। कोई तो मानव पठन पाठन करने के पाश्चात्य अपनी पाण्डित्य दृष्टि से इसको दृष्टिपात करना चाहता है, कोई यौगिक दृष्टि से इसको दृष्टिपात करना चाहता है, कोई यह उच्चारण करना चाहता है, कि शब्दों में कितनी अशुद्धियां हैं, नाना प्रकार की दृष्टि से दृष्टिपात किया जाता है और किया जाना चाहिए। इसमें हमारा किसी प्रकार का विवाद नहीं है, क्योंकि जब मानव आपत्ति के लिए चलता है, तो नाना प्रकार की आपत्तियां उसके समक्ष आती रहती हैं। उनको सहन करना, उनको विचार विनिमय करना और उनको अपने जीवनचर्या में लाना, यह मानव का स्वाभाविक गुण होना चाहिए। मानव को किसी भी काल में हताश नहीं होना चाहिए।

मैंने अभी अभी जब यज्ञ की परम्परा चल रही थी, अपने पूज्य गुरुदेव को प्रेरणा दी, की भगवन्आप य !ज्ञ के सम्बन्ध में अपना कुछ प्रकाश दीजिए, परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने कुछ प्रकाश दिया और उसके पश्चात मुझे कुछ समय प्रदान किया। मैंने कुछ यौगिक प्रक्रियाओं का वर्णन कराया था, कि मानव को विचारना चाहिए, कि दर्शनों का सिद्धान्त क्या है?विचारधाराएँ क्या है, मानव ने अपने सिद्धान्त को ही सिद्धान्त बना लिए हैं, परन्तु दर्शनों का सिद्धान्त उसके सिद्धान्तों के आगे, दूर चला जाता है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव के सम्बन्ध में एक वाक्य कहा था, कि प्राणों का संघात होता रहता है। आज मानव यह नहीं जानता, कि प्राणों की परिभाषा क्या है, प्राण शरीर में क्या क्या कार्य करते हैं, यौगिक क्रिया में क्या क्या कार्य करते हैं। प्राणों से लेकर जब मानव अनुसंधान करना प्रारम्भ करता है, तो अनुसंधान सहज हो जाता है।

अन्तरिक्ष में आत्माएं

यह जो बाहरीय जगत् हमें प्रतीत हो रहा है, इसकी कल्पना मानव शरीर से की जाती

है। मानव की जो आन्तरिक प्रवृत्तियां हैं, इनमें अन्तरिक्ष भी है, मानो उसमें सर्वश है। हमारा तटस्थ सिद्धान्त यह कहता है कि अन्तरिक्ष में आत्माएं विराजमान रहती हैं, परमाणु भ्रमण करते रहते हैं। हमारे यहाँ धर्मज्ञ शास्त्रों ने और महर्षि कपिल जी ने जो आत्मा का परिमाण माना है, वह इस प्रकार माना है कि मानव के सिर का जो एक बाल होता है, उसका एक गोल विभाग बना लिया जाएं और उस गोल विभाग के साठवां भाग किए जाएं, और साठवां जो भाग है, उसके भाग किए जाएं 99, तो उतनी सूक्ष्म आत्मा अन्तरिक्ष में भ्रमण करती है। आज जब मानव के द्वारा मानव का सिद्धान्त यह कहता है, कि जैसा यह पिण्ड है, इसी प्रकार का यह ब्रह्माण्ड है। मानव को यह विचार विनिमय यह होगा, कि यह बाहरीय जगत् में अन्तरिक्ष है, इसमें सब परमाणु ओत प्रोत हो जाते हैं, मानो वह जो परमाणुवाद का क्षेत्र है, वह अन्तरिक्ष है, तो क्या जो हमारा आन्तरिक अन्तरिक्ष है उसमें परमाणुवाद भ्रमण नहीं करता होगा? अवश्य करता होगा। यदि नहीं करता होगा, तो आंतरिक जगत में आकाश का स्वीकार करना व्यर्थ हो जाता है, इन वाक्यों को लेकर जब हम प्रायः हम अनुसंधान की दृष्टि से इसका दृष्टिपात करते है, तो हमें यह प्रतीत होता है, कि प्राणों का जो संघात है, उस प्रक्रिया के साथ साथ यह प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। हमें प्राणों का संघात स्वीकार करना होगा। प्राणों की प्रक्रियाओं में, प्राणों की एकता में सहकारिता का होना बहुत अनिवार्य हो जाता है। यह साधारण योगियों का विषय नहीं है, यह पुस्तकों की लेखनीबद्ध करने के पश्चात योगी कहलाने के पश्चात, मानव का यह विषय नहीं रहता, परन्तु यह उन महापुरूषों का विषय होता है, जो जनता में जनार्दन समाधिष्ट लगाने वाले होते हैं, जो ब्रह्म समाधिष्ट हो जाते हैं, उनका यह अनुपम विषय रह जाता है। यह लेखनी का विषय तो है ही, परन्तु लेखनी के साथ अनुभव का विषय विशेषकर रहता है।

गुरुदेव का महत्व

इस सम्बन्ध में एक वाक्य ओर भी उच्चारण करना था, पूज्यपाद तो यह वाक्य सर्वथा

जानते ही हैं, मैं तो सूर्य के समक्ष एक सूक्ष्म से प्रकाश के तुल्य जा पहुंचा हूँ, उनके चरणों को वन्दना करने के लिए। मैंने अपने जीवन में क्या क्या किया है, यह नहीं उच्चारण करना चाहता, क्योंकि गुरूदेव सब कुछ जानते हैं। आज मानव दुराचारी भी बन जाता है, परन्तु उसके पश्चात भी मानव जीवन मुक्त की प्रवृत्तियों में जा सकता है। यह मैंने अपने जीवन में स्वयं अनुभव किया है। इस वाक्य को हम यहीं समाप्त कर दें, तो सुन्दर नहीं होगा। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हमारे पूज्यपाद गुरुदेव का यह वह आपत्ति काल है और प्रायः भोगा जा रहा है। मुझे इसमें बड़ी प्रसन्नता रहती है कि करोड़ों करोड़ों वर्षों के संस्कार भी मानव भोगा करता है। आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव उस कर्म को भोग रहे हैं, जो आज से लगभग चालीस लाख वर्ष पूर्व किया था। मानव को इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। यह प्रायः ऐसा ही चलता रहता है। संसार की प्रक्रियाएं चलती रहती हैं और संसार में ऐसा प्रायः प्रत्येक मानव के साथ होता रहता है। मैं आज अपने पूज्यपाद गुरुदेव को वह समय स्मरण नहीं कराना चाहता हूँ, जब यह राजा दशरथ के यहाँ, यज्ञशाला में लाए जाते थे। केवल नग्न रहते थे। 28 वर्ष तक कोई वस्त्र धारण नहीं किया। उन वार्त्ताओं को स्मरण 4 कराने नहीं जा रहा हूँ।

गुरुदेव की प्रवचन विधा

रहा यह वाक्य, कि गुरुदेव की यह आकाशवाणी कैसे जाती है? हम माध्यम बनाकर कैसे वाक्य प्रारम्भ करते हैं? परन्तु जब हृदय में आकाश होता है, तो उस आकाश में आत्माएं भ्रमण करती रहती हैं और जब बाहरीय जगत और आन्तरिक जगत दोनों की समता हो जाती है, दोनों का मिलान हो जाता है, उस समय ऐसी ऐसी वार्त्ता कोई आश्चर्यजनक नहीं रह जाती। यह तो महापुरूषों का केवल एक खिलवाड़ होता है, एक अग्रणीय होता है जैसे सूक्ष्म सा बालक माता की लोरियों में खिलवाड़ करता है, आनन्द करता रहता है इसी प्रकार यह तो सब आनन्द हैं। यह कोई आश्चर्य नहीं है। जिस मार्ग में जो मानव चलने लगता है, उसे उस मार्ग का सब कुछ प्रतीत होने लगता है। तो

इस सम्बन्ध में कोई अधिक चर्चा प्रकट नहीं करना चाहता है।

राष्ट्रवाद

आज मैं राष्ट्रवाद पर आना चाहता हूँ, कि राष्ट्रवाद क्या है? जो भगवान् मनु जी ने निर्णीत किया है और जो वर्तमान में दृष्टिपात कर रहे हैं, यह क्या है। आज का राष्ट्रवाद नहीं कह लाया जाता, क्योंकि आज का राष्ट्रवाद, राष्ट्रवाद नहीं स्वार्थवाद है। इसमें मानव को आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि स्वार्थवाद क्यों उच्चारण कर दिया, क्योंकि जब मानव राष्ट्र के पदों का अधिकारी बन जाता है, तो जब तक उसका उदर, उसका गृह सुन्दर नहीं बन जाता, तब तक वह दूसरों के आँगन को दृष्टिपात करता ही नहीं। जब यह प्रक्रियाएं राष्ट्र में आ जाती हैं, समाज में आ जाती हैं, उस समय राष्ट्र में प्रायः क्रान्ति के आने के सिवाय रहता ही कुछ नहीं। आज कहीं भाषा का विवाद है, कहीं वाणी का विवाद है, कहीं द्रव्य का विवाद है। मानव के मस्तिष्क में आता रहता है, परन्तु वास्तव में आज समाज में न तो कोई भाषा का विवाद है और न राष्ट्र का विवाद है, विवाद है तो अपने उदर की पूर्ति करने का। प्रायः जो मानव द्रव्यपति है, उन्हें कोई न कोई ऐसा आश्रय चाहिए, जिससे विवाद होता रहे और उनके उदर की पूर्ति होती रहे। यह है सबसे विशेष कारण।

भारत भूमि का महत्व

मैं महान् इस भूमि की चर्चा करना चाहता हूँ, जहाँ यवनों का राष्ट्र भी रहा है, यहाँ वाल्मीकि जी ने भी अपने लेखनी को बद्ध किया है, नल और नील दो वैज्ञानिक इसी भूमि के रहने वाले थे, जो लंका को विजय करने के लिए भगवान राम की सहायता को पहुंचे। मैं आज इसका उच्चारण करने नहीं आया। आज मुझे यह उच्चारण करना है, कि आज हम कहाँ जा रहे हैं, और कहाँ थे? महर्षि वाल्मीकि जी ने अपनी लेखनी बद्ध करते हुए नल नील की प्रशंसा करते हुए कहा है, किष्किंधा की प्रशंसा करते हुए कहा है। भगवान राम को जब वन प्राप्त हुआ, तो माता कैकेयी का दोष नहीं था। यह राजा दशरथ की आज्ञा नहीं थी, यह ऋषि मुनियों की आज्ञा थी। वशिष्ठ मुनि ने

बाल्यकाल में भगवान राम से कहा था हे रामयह जो रावण आततताई आ रहा है !, जिसने अराजकता उत्पन्न कर दी है, उसको तुझे विजय करना है और अपनी संस्कृति का प्रचार करना है। भगवान राम ने भील और द्रावड़ जो भयंकर वनों में रहने वाले थे, उन्हें अपनाया और अपनाने के पश्चात एक सुन्दर मार्ग लेकर के चले, क्योंकि माता केकई ने यह कहा था कि राष्ट्र की उन्नति होनी चाहिए। माता केकई का कोई दोष नहीं था, वशिष्ठ, विश्वामित्र, देवऋषि नारद ने सोम और लोम इत्यादि ऋषियों ने उसके निर्णय कराया था। देखो, यह एक प्रकार की ऋषि मुनियों की ब्राह्मणों की विचारधारा थी।

ब्राह्मणों से राष्ट्र

आज हमारे राष्ट्र का जब तक ब्राह्मण समाज उन्नतिशील नहीं होगा, आत्मविश्वासी नहीं होगा, तब तक राष्ट्र की उन्नति होना असंभव प्रतीत होता है। ब्राह्मण किसे कहते हैं? ब्राह्मण रहते हैं त्याग और तपस्या को, क्योंकि जिसके द्वारा त्याग और तपस्या की प्रतिभा रमण करती है, उस ब्राह्मण को भोजन की इच्छा नहीं होती, उसे यह प्रतीत होता है, कि मेरा जो जीवन है, वह राष्ट्र के लिए, त्याग और तपस्या के लिए है इसके लिए संसार में आया है, जब इस प्रकार की प्रवृत्ति होती है, तो राष्ट्र की उन्नति हुआ करती है। आज का मानववाद, राष्ट्रवाद केवल स्वार्थ के वशीभूत हो रहा है, स्वार्थ में संलग्न है। उन्हें यह ज्ञान नहीं, कि हमारे ऊपर क्या क्या प्रहार हुए, क्या क्या नहीं हुए। हमारे यहाँ ऐसी ऐसी पुस्तकें थी, जिन्हें हम स्वप्न में भी दृष्टिपात नहीं कर पाते। हमारे यहाँ नाना स्मृतियां थी, शतपथ ब्राह्मण इत्यादि नाना लिपियां थी और भी देखो, महाराजा घटोत्कच का पुस्तकालय, महाराज अभिमन्यु का, अर्जुन का और भीम इत्यादियों के पुस्तकालय थे जो इतने वैज्ञानिकता से परिपूर्ण थे, कि मानव उन्हें अनुभव में ला ही नहीं सकता। आज मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है, जब मैं यह दृष्टिपात करता रहता हूँ कि राष्ट्र में भाषा का विवाद है, वाणी का विवाद है, संस्कृति का विवाद है। अरे, जिस राजा के राष्ट्र में संस्कृति का विवाद होता है, उसको राष्ट्र नहीं कहते। क्या, वह भी

कोई राष्ट्र होता है, उसको राष्ट्र नहीं कहते।

राष्ट्र में मुझे ब्राह्मणों की सूक्ष्मता प्रतीत होती है, क्योंकि यह राष्ट्र का विषय तो होता ही है, परन्तु ब्राह्मण को अपनी पुकार राष्ट्र तक पहुंचानी चाहिए, कि हे राजन तेरे ! राष्ट्र में एक संस्कृति होनी चाहिए। मुझे स्मरण है, जब यहाँ बाली असंस्कृति में पहुंच गया था, संस्कृति का अभिप्राय यह नहीं है, कि हम वाणी को संस्कृति कहते, परन्तु चरित्र को कहते हैं। चरित्र होना चाहिए। राजा के राष्ट्र में वाणी के साथ में चरित्र होना चाहिए और चरित्र इतना बलिष्ठ हो, कि राजा उसको स्वतः अपनाएं और उससे राष्ट्र उन्नत हो, प्रजा उसके अनुकूल अपना कर्त्तव्य प्रारम्भ करती चली जाएं। भगवान राम जब अपनी संस्कृति के चक्र को लेकर के चले और निषाद इत्यादि तथा बाली के द्वारा पहुंचे, तो बाली को नष्ट किया और उससे यही कहा था, कि हे बाली तुमने अराजकता ! को उत्पन्न किया है, तुमने छोटे विधाता की पत्नी को अपनाया है, इसलिए मैंने तुम्हारे ऊपर प्रहार किया है। आज वही भूमि मुझे पुकार पुकार करके कह रही है, कि यहाँ का ब्राह्मण समाज पवित्र होना चाहिए। नाना प्रकार का जो प्राणी का विवाद है, वह मेरी दृष्टि में कोई विवाद नहीं है। मैंने प्रथम शब्दों में कहा है, कि वह तो अपने उदर की पूर्ति करने का है, वह कोई विवाद नहीं है। वाणी का विवाद होता, तो स्वीकार कर लेते, वह तो कुछ इस प्रकार के प्राणी होते हैं, जो दुर्योधन प्रकृति के प्राणी होते हैं, कि राष्ट्र उन्नत नहीं होना चाहिए। राष्ट्र में सम्पत्ति को नष्ट करा देना चाहिए, क्योंकि साधारण प्रजा अशान्ति होगी, तो हमारे उदर की पूर्ति का साधन बना रहेगा। यही कारण होता है, द्रव्यपतियों का, प्रायः यह बहुत समय से चला आ रहा है। इसको नष्ट करने के लिए त्यागी पुरूषों की आवश्यकता होती है।

तो आज मैं यह वाक्य उच्चारण करने पहुंचा हूँ कि मानव का जीवन क्या है? राष्ट्र कैसा हो? राष्ट्र में ब्राह्मण समाज होना चाहिए। राष्ट्र उन्नत होना चाहिए। यह अराजकता आज से नहीं बहुत समय हो गया है। यहाँ महाराज युधिष्ठिर के राष्ट्रके पश्चात अभिमन्यु के पुत्र का राष्ट्र हुआ, जिसको हमारे यहाँ परीक्षित कहा जाता है। उसके पश्चात परीक्षित प्रणाली में मामनुक नाम के राजा हुए, मानो आभान्तरी राजा हुए, आभान्तरी राजा के

पश्चात यहाँ विक्रम नाम के राजा हुए। उनके पश्चात शांगीरा नाम का राजा हुआ। शामिराम नाम के राजा के पश्चात सतकामातुर नाम का राजा हुआ, उसके पश्चात यह प्रणाली समाप्त हो गई थी। इस प्रणाली के समाप्त हो जाने के पश्चात, यहाँ जैनियों का साम्राज्य आ गया। जैनमत की उत्पत्ति हो गई। यहाँ एक महावीर नाम के स्वामी आ गए। उन्होंने अपना प्रसार किया, परन्तु वह प्रसार इस प्रकार का था, जो भ्रमात्मक था। उस महावीर से इस भारत भूमि में घृणा की उत्पत्ति हुई। उससे पूर्व घृणा की उत्पत्ति नहीं थी। वास्तव में घृणा की उत्पत्ति तो महाराजा दुर्योधन से हो गई थी, परन्तु मानव के द्वारा इतना पक्षपात महात्मा महावीर के समय में आ गया। वास्तव में वह महात्मा थे, मैं उनका आदर करता हूँ, परन्तु उनके शब्दों में घृणा थी, घृणा होने के नाते, उनके मानने वालों ने अधिक घृणा उत्पन्न कर दी और उसका परिणाम यह हुआ कि अराजकता का प्रसार प्रारम्भ होने लगा।

आगे चलकर के वही समय आता रहा। उनके सिद्धान्त के विपरीत जो यहाँ पुस्तकें थी, वैज्ञानिक थे, जो उनके आँगन में नहीं आते थे, अग्नि के मुख में अर्पित होने लगे। आगे चल करके, वही महात्मा बुद्ध के रूप में महापुरूषों की उत्पत्ति होती रही। मैं उन सभी पुरूषों का आदर करता हूँ, परन्तु मैं आदर इसलिए नहीं करता, क्योंकि उन्होंने वैदिक साहित्य को, वेद की पोथी को, अपने नेत्रों के समक्ष नहीं आने दिया। परन्तु आदर इसलिए करता हूँ, क्योंकि वह महान थे, विचित्र थे। उनके शब्दों में पश्चात में आकर के घृणा की दृष्टि आ गई थी और जब राष्ट्र में घृणा आ जाती है, तो अशान्ति नष्ट हो जाती है।

आगे जैनियों का साम्राज्य चलता रहा। यहाँ पुस्तकम् के पुस्तकम् अग्नि के मुखारविन्द में जाते रहे। 1127 वेदों की शाखाएं थी, परन्तु वह भी अग्नि के मुख में चली गई। किसी महापुरूष ने कोई संहिता स्मरण की, उसकी परम्परा चलती रही। वेद की रक्षा होती रही। वेद को परमात्मा का ज्ञान कहा है, इसलिए प्रायः उसकी रक्षा होती रही।

आगे चल करके महात्मा शंकराचार्य ने अपनी प्रतिभा से, अपनी यौगिकता से एक संस्कृति का प्रसारण करने का प्रयत्न किया। परन्तु यहाँ के ही धर्मज्ञों ने, जिन्होंने यह

जाना कि तुम्हारी पद्धति नष्ट होने जा रही है, उन्हें नष्ट भ्रष्ट कर दिया, मैं इस सम्बन्ध में अधिक नहीं चर्चा करने जा रहा हूँ।

आगे चलकर के इस भारत भूमि पर महापुरूष होते रहे। महात्मा ईसा हुए। महात्मा ईसा ने भी अपनी संस्कृति का प्रसार किया। अपने चरित्र बल का प्रसार किया। महात्मा ईसा ने इस भारत भूमि में चरित्र बल का प्रसार किया। महात्मा ईसा ने इस भारत भूमि में शिक्षा पाने के पश्चात, अपने धर्म का प्रसार किया, परन्तु धर्म क्या है यह उन्होंने नहीं विचारा। हम यह उच्चारण कर सकते हैं, कि उनका पांडित्य बहुत ऊँचा और पवित्र था, आयुर्वेदाचार्य के नाते। उनका हृदय बड़ा निर्मल और स्वच्छ था।

उसके पश्चात जिन्हें महात्मा मुहम्मद कहा जाता है, हुए। जिनका जीवन राष्ट्रीय रहा। राष्ट्र में यहूदियों को नष्ट करने के लिए, जहाँ चार मुख्य कार्य होते थे, वहाँ मुहम्मद का जन्म हुआ, वहाँ एक तो मानव अपनी प्रीति से दूर रहता था और नाना घृणित कार्य करता था। जहाँ अपने अधीन बनाने की प्रकृतियां आ जाती हैं, वहाँ कोई न कोई सुन्दर पुरूष आ ही जाता है। महात्मा मुहम्मद आएं। मुहम्मद राष्ट्र को अपनाने के पश्चात पाखण्डता में परणित हो गएंये। उन्होंने पाखण्ड का प्रसार करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने एक पुस्तक बनाया और किसी आँगन में स्थिर कर दिया और राष्ट्र के पुरूषों को किसी भी प्रकार से अपने वशीभूत करके, उस पुस्तक का अपना प्रभुत्व उनके ऊपर आ पहुंचा, क्योंकि राष्ट्र में आने के पश्चात मानव का साधारण प्रजा पर प्रभुत्व स्वतः ही आ जाता है। परन्तु मैं महात्मा मुहम्मद को महात्मा की दृष्टि से दृष्टिपात नहीं करता हूँ। मैं यह कहा करता हूँ, कि मुहम्मद ऐसा पुरूष था, जो राष्ट्र के लिए कुछ सुधारक था, परन्तु जहाँ चरित्र और मानवता का प्रश्न है, महात्मा का प्रश्न है, वह मेरी दृष्टि में सुन्दर प्रतीत नहीं होता, क्योंकि मैं प्रायः परम्परा से यथार्थ वक्ता रहा हूँ। अपने जीवन के सम्बन्ध में भी शब्द उच्चारण करने के लिए तत्पर रहता हूँ। मुहम्मद ने तेरह संस्कार किए । तेरह पत्नियां रही। एक नष्ट होती रही, दूसरी आती रही। उन्होंने अपने जीवन में ही देखो, कुरिस परिवार था, उस परिवार से उन्होंने उसी दूर के पुत्र की स्त्री को, अपने आँगन में, अपने गृह को चलाने के लिए अपनाया। पत्नी के पश्चात उससे संस्कार

कर लिया। मैं इस दृष्टि से सुन्दर स्वीकार नहीं करता हूँ।

आगे मैं चलता चला जाऊं। आगे इन्हीं के मानने वालों ने, क्या क्या कुरीतियों का आक्रमण किया है, संस्कृति का विनाश हो गया, परन्तु जिसको हमारे आधुनिक काल में ईरान कहते है वहाँ महर्षि गौतम जी का आश्रम रहा है। उन्होंने वहाँ बड़ा प्रसार किया। महर्षि जैमिनि मुनि महाराज ने भी उन्हीं आगनों पर भ्रमण किया है। इसमें आगे प्रसारण करने का मुझे समय प्राप्त नहीं हो रहा है। ईरान से पूर्व उस राष्ट्र का नाम श्वांगनी था, आर्यत्व कहलाया जाता था। इसी प्रकार जिसको आधुनिक काल में अरब रूपों से वर्णन किया जाता है, यह मुहम्मद के रूपान्तर हैं उससे पूर्व अरब नाम का शौनधेत नाम का राज्य कहलाता था, जहाँ महर्षि जैमिनी जी का प्रायः भ्रमण होता रहता था। इन वाक्यों को मैं और अधिक नहीं ले जाना चाहता हूँ। क्योंकि यह तो वन है, मैं कहाँ तक उच्चारण करूंगा। उच्चारण करने का अभिप्राय यह है, कि मुहम्मद के मानने वालों ने इस भारत भूमि पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया परन्तु हमारे यहाँ राजा भोज के काल में महाराज कालिदास हुए, जिन्होंने मुहम्मद को नष्ट किया था, मृत्यु को प्राप्त करा दिया था क्योंकि मुहम्मद यह चाहता था, कि इस भारत भूमि पर उसका साम्राज्य हो जाएं, प्रभुत्व हो जाएं, तो सारे संसार को अपनी छत्रछाया में लाया जा सकता है। राजा भोज के महामन्त्री कालि से, उन्हें नष्ट कर दिया था। इस परम्परा में मैं अधिक नहीं जाना चाहता हूँ कि कैसे नष्ट किया, क्यों नष्ट किया।

आगे समय आया मुहम्मद के मानने वालों ने, इस भारत भूमि पर आक्रमण कर दिया, विजयी हो गए, साम्राज्य हो गया। उस साम्राज्य में क्या हुआ, इस घृणित चर्चा को मैं नहीं लाना चाहता। सूक्ष्म सूक्ष्म चर्चा यह देना चाहता हूँ, कि उनका चरित्र, उनकी मानवता उनका इतिहास प्रकट करता है। उनकी अराजकता उनके द्वारा प्रकट करती है, यदि मुहम्मद के मानने वालों ने अराजकता न होती, तो यहाँ से जाने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता था।

यवनों ने क्या किया? उनका मुख्य कार्य माता के श्रृङ्गार का हनन करना था और अपना प्रभुत्व करना यह उनका कार्य था। उनके राष्ट्र की परम्परा चली। उनके राज्य में जहाँ

तक अच्छाइयों का प्रश्न है, वह कहाँ है? जहाँ उनके पांडित्य पर विचार किया जाता है, तो यहाँ कोई ऐसा राजा नहीं हुआ, जिसमें पांडित्य हो और पांडित्य की दृष्टि से राष्ट्र को उन्नत बनाने का प्रयत्न किया हो। रहा क्या? क्यों इतने काल तक राज्य किया गया? इसी कारण से, जो आधुनिक काल में प्रायः चल रहा है कहीं भाषा का विवाद है, कहीं मानवता का विवाद है। अरे,? जब यहाँ स्वार्थवाद आ जाता है, तो प्रायः मानव पराधीन हो ही जाता है। मैं इस वाक्य को, इस दृष्टि से प्रकट नहीं करना चाहता हूँ। वाक्य यह उच्चारण करना चाह रहा हूँ, कि जब यहाँ स्वार्थ आया, उसी काल में मानव मानव का पिपासी हो करके, अपनी संस्कृति को दूर कर देता है। यदि मानव के द्वारा अपनी संस्कृति हो तो यहाँ कोई कारण नहीं बन सकता, कि हमारे पांडित्य को, किसी प्रकार की हानि पहुंचाने के लिए कोई आ पहुंचे।

आगे चलकर के जब पश्चिम से प्राणी यहाँ आकर राज्य करने लगे, इसी मध्य में एक आचार्य दयानन्द नाम के महात्मा आ गए। महात्मा दयानन्द ने क्या किया, उसको, मानव को अपने हृदय से दूर नहीं होने देना चाहिए क्योंकि महात्मा दयानन्द जी ने एक ही वाक्य कहा है, कि जो तुम्हारी संस्कृति है, परम्परा है, आदि ब्रह्मा से लेकर के जैमिनि पर्यन्त जो तुम्हारा सिद्धान्त कहता है, उसी पर आ जाओ। यदि आ जाओगे, तो शान्ति उत्पन्न होगी, महान साम्राज्यवादी बनोगे, अन्यथा तुम्हारा जीवन यों ही नष्ट भ्रष्ट होता रहेगा। महात्मा दयानन्द ने अपने जीवन में कितना प्रयत्न किया, परन्तु अपने धर्म के ठेकेदारों ने उनको विष देकर नष्ट करने का प्रयत्न किया, परन्तु वह तो विभूति थी, परम आत्मा थी, महान् आत्मा थी, उसको संसार का लेपन नहीं आया, द्रव्य का लेपन नहीं आया। जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण के जीवन में द्रव्य का लेपन नहीं आया, इसी प्रकार महात्मा दयानन्द के जीवन में किसी प्रकार की कुरीतियों का लेपन नहीं आया। अच्छाइयों की परम्परा बनी रही, क्योंकि ऋषित्य और पाडित्व उनके जीवन का स्वतः अधिकार रहा है। जिनका यह जन्मसिद्ध अधिकार होता है, वहीं यहाँ संसार में कुछ उत्थान कर सकते हैं। मुझे स्मरण है कि महात्मा दयानन्द की आत्मा के जो उद्गम विचार थे, वह पांडित्य से गुथे हुए, कई जन्मों से चले आ रहे थे। यहाँ आकर के

उन्होंने यवनों को दीर्घ वाणी से उच्चारण किया और जो यहाँ पश्चिम के राष्ट्र नेता थे, उनको दीर्घ वाणी से कहा, अपने राष्ट्र में रहने वाले प्राणियों से कहा, कि कहाँ जा रहे हो। आज तुम अपना समाज बनाओ, अपनी उन्नति करने का कोई साधन बनाओ। यह जो जातिवाद से ब्राह्मवाद चल रहा है, जातिवाद को नष्ट कर दो। यह जो जातिवाद की परम्परा है, यह महाभारत काल के पश्चात की है, इसे नष्ट करो। यौगिकता उनके द्वारा होने के नाते, जैसे सूर्य प्रकाशवान रहता है, ऐसे ही उनका जीवन मानव के हृदयों में प्रदीप्त रहता आया है और रहता रहेगा।

हम उनका जितना आदर करते चले आए हैं, वह हमारा हृदय जानता है। रही यह बात, कि यह संसार उनका आदर करता है अथवा नहीं, यह बात मैं अभी अभी प्रकट करूंगा, परन्तु वाक्य में यह उच्चारण करने जा रहा था, कि उनका महान् आत्मा कितना सुन्दर, कितना पवित्र, कितना मानवता से, ऋषित्व से, पांडित्य से गुथा हुआ था। उन्होंने आदि ब्रह्मा से जैमिनि मुनि तक के सिद्धान्तों को प्रकट किया, उनके हृदय में वह कुञ्जी भी, उनका वह हृदय पुकार करके कहता था। समाज ने उसको अपनाने का प्रयास किया। अपनाया, क्रान्ति भी आई, उनके कारनामों का महान् परिणाम हुआ।

आधुनिक काल में उनके मानने वाले क्या कहते हैं, यह वाक्य मैं उच्चारण करने जा रहा हूँ। उनके मानने वाले यह कह रहे हैं, कि तर्कवाद पर आने के लिए तत्पर हो गए। जहाँ विचार विनिमय करना था वहाँ तर्कवाद आ गया। जहाँ जातिवाद को नष्ट करना था, वहाँ जातिवाद में पारंगत हो गएं हैं। जहाँ दयानन्द की पद्धति का प्रश्न है, दयानन्द की पद्धति नहीं, मनु जी की पद्धति कहती है, कि जातिवाद नहीं होना चाहिए। जातिवाद क्या वस्तु है? मानववाद होना चाहिए। यह जातिवाद कैसे नष्ट हो? जब यहाँ ब्राह्मण हों, और ब्राह्मण कैसे हों? त्यागी और तपस्वी हों और वह ब्राह्मण प्रत्येक गृह में जा करके, उत्तम समाज को एकत्रित करके, यह कहें कि वर्तमान का समय यह कहता है, उसके अनुसार तुम्हें परिवर्तित होना होगा और नहीं होंगे, तो भयंकर क्रान्ति मानव के निकट आती चली जा रही है।

दयानन्द के मानने वालों ने तर्कवाद को अपना करके सिद्धान्त को त्यागा, यौगिक वाक्यों

को त्याग दिया है। महात्मा दयानन्द की आत्मा भी अन्तरिक्ष में व्याकुल हो रही है, कि यह मेरे मानने वाले पुजारी क्या कर रहे हैं। यह प्रायः हो रहा है। मैं आज उनका आदर करता हूँ, क्योंकि उन का कार्य कितना पवित्र, कितना महान, कितना पांडित्य का है। महात्मा शंकराचार्य की पुनीत आत्मा भी इसी प्रकार व्याकुल होती है परन्तु आज मैं कुरीतियों में नहीं जाना चाहता। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है, कि आज के मानववाद को उन्नतशील बनाना है, विचारशील बनाना है, राष्ट्रवाद को उन्नत बनाना है, तो परम्परा को अपनाना होगा अन्यथा यहाँ तो क्रान्ति होने वाली है ही। इसमें कोई संदेह नहीं है।

जब मैं राष्ट्र के पूर्व दिशा में, उत्तरायण में, पश्चिम में, दक्षिण विभाग में अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा इस राष्ट्र की पद्धतियों को विचार विनिमय करने लगता हूँ, तो मेरे हृदय में वेदना उत्पन्न होने लगती है और मेरी वह वेदना पुकार करके यह कहती है, कि समाज कहाँ जा रहा है। यह राम का राष्ट्र जहाँ हनुमान, नल नील जैसे वैज्ञानिक हुए, कहाँ जा रहा है। यह भगवान कृष्ण का राष्ट्र कहलाया जा रहा है। भगवान कृष्ण ने अपने जीवन में कोई पाप नहीं किया। पाण्डिय की दृष्टि से रहे, वैज्ञानिक दृष्टि से रहे, उनका जीवन कितना महान रहा है। आज उनके मानने वाले कहाँ जा रहे है। मुझे यहाँ बड़ा आश्चर्य आता है, जब मैं इन वाक्यों का चिन्तन करता हूँ। गुरूदेव को जब मैं इन वाक्यों का वर्णन करता हूँ, तो वह बड़ा आश्चर्य करते हैं, इन वाक्यों पर। मुझे एक वेदना रहती है। जब राष्ट्र के पूर्व विभाग में जाता हूँ, तो वहाँ मुझे अग्नि प्रदीप्त होती प्रतीत हो रही है। जब मैं दक्षिण के विभाग में आता हूँ, तो वहाँ भी मुझे ऐसा प्रतीत होता है, यौगिक प्रक्रियाओं से जैसा समुद्रों से अग्नि प्रारम्भ होने जा रही है। यह अग्नि क्या करेगी? यह अग्नि मानवत्व को नष्ट करती चली जाएगी?

यह राष्ट्र कैसे उन्नत हो, यह प्रश्न है हमारे समक्ष। उन्नत होना चाहिए, परन्तु ब्राह्मणों के द्वारा होना चाहिए? आधुनिक काल का जो ब्राह्मण समाज है, वह किस प्रकार का है। मैं आज निंदा करने नहीं जा रहा हूँ। केवल वास्तविक जो दशा है, उसको प्रकट करने जा रहा हूँ, आज ब्राह्मण समाज कहीं पदों की लोलुपता से अपने को नष्ट करता चला

जा रहा है, वहीं अभिमान की मात्रा है। अरे, परमात्मा के राष्ट्र में, परमात्मा की विद्या का चिन्तन करने वाले को ब्राह्मण कहते हैं, और जो ब्रह्म का चिन्तन करता है, ब्रह्म विद्या का चिन्तन करता है, यदि उसे अभिमान आ गया, तो उसके द्वारा तपस्या का लेश चिन्तन भी, उसके मन में नहीं होता, क्योंकि पांडित्य वहीं होता है, जिसमें अभिमान नहीं होता। परमात्मा कहाँ रहता है? परमात्मा को न मान है और न अपमान है। इसी प्रकार ब्राह्मण, ब्राह्मण उसी काल में कहलाएगा, जब उसे न मान रहेगा न अपमान। इसी प्रकार आज हमें विचार विनिमय करना है, कि यहाँ ब्राह्मणों का एक समाज होना चाहिए। त्यागी और तपस्वियों का समाज, जब राजा तक पहुंचेगा और राजा से कहेगा, कि हे राजन्हमने यह अपना विधान बनाया है !, हमारे दर्शनों का सिद्धान्त, राष्ट्र की पद्धति, यह कहती है तुम उसको क्यों नहीं स्वीकार करते हो। जब ब्राह्मण अपने हृदय के उद्गार को इतना विचित्र बना लेता है, तो राजा उन वाक्यों को स्वीकार कर ही लेता है।

महापुरूष वही होता है, जिसका या तो वाक्य स्वीकार किया जाएं, अन्यथा वह अपनी मृत्यु के आँगन को चला जाएं। ब्राह्मण वही होता है, या तो ब्रह्म के वाक्य को स्वीकार कराओ, अन्यथा अपने शरीर को भी नष्ट कर देना चाहिए। यहाँ तक हमारे यहाँ दर्शनों में आता है, प्रायः स्मृतियों में आता है, इसको विचारना है।

महर्षि याज्ञवल्क्य

मुझे स्मरण है, जब महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज कात्यायनी और मैत्रेयी दोनों का त्याग करके तपस्या करने के लिए चले गए। उन्होने देखो, बारह वर्ष का एक अखण्ड संकलन धारण किया था, कि मैं उस अन्न को पान करूंगा, जो अन्न भूमि पर, कृषक द्वारा अन्न ले जाने के पश्चात रह जाता है, उसे चुनकर मैं पान करूंगा। यह संकलन उन्होंने धारण किया। उसके पश्चात सम्राट जनक जी उनके द्वारा आए और भी राजा महाराजा आए, चरणों में ओत प्रोत हो गए। त्यागी और तपस्वी को यह नहीं विचारना, कि हमें उदर की पूर्ति करने का साधन बनाना है। उसको यह बनाना है, कि हमारी

वाणी का प्रसार किस प्रकार होगा और हमारी वाणी में कितना तेज होना चाहिए। हमें वस्त्रों की चिन्ता नहीं होनी चाहिए और नाना प्रकार के आभूषणों की चिन्ता नहीं, हमें तो हमारे वाक्य की चिन्ता है कि हमारे वाक्य में इतना पांडित्य है, इतना त्याग और तप होना चाहिए कि या तो वाक्य को स्वीकार किया जाएं, अन्यथा राष्ट्र हमें मृत्यु को पहुंचा दे, तो बहुत ही सुन्दर है।

मुझे तो माता गार्गी का जीवन भी स्मरण है, मेरे पूज्यपाद गुरूदेव तो ब्रह्मवेत्ता आदियों को जानते हैं उनका जीवन कितना सौन्दर्य में परणित रहता था। एक समय माता गार्गी भयंकर वनों से सभा में आई, तो नग्न आई, तो उस समय जनक जी ने कहा कि तुम मेरी सभा में नग्न आ रही हो, तुम्हें लज्जा नहीं आती। तो उस समय उन्होंने कहा था, कि हे राजनक्या तू राजा है !? तुम्हें आत्मा का ज्ञान नहीं है? संसार में नग्न कौन होता है? नग्न वह होता है, जो ज्ञान से शून्य होता है, नग्न वह होता है, जिसके द्वारा शब्दों का ज्ञान और अभिमान होता है, वह संसार में नग्न होता है। वह नग्न नहीं होता, जिसके द्वारा त्याग, तपस्या होती है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवरपूज्यपाद गुरुदेव !मेरे प्यारे !! आज मैं यह क्या वाक्य प्रकट करने लगा हूँ। मानव वही हेता है, जो त्याग और तपस्या में परणित रहता है। आज के राष्ट्रवाद में, आज के समाज में, मैं पंडितों की सूक्ष्मता को दृष्टिपात करता हूँ। यहाँ पांडित्य की सूक्ष्मता होती चली जा रही है, होती क्या चली जा रही है, हो गई है। उसको पुनः से उन्नत बनाया जाएं। आज त्यागी और तपस्वी बन करके चलें और ब्राह्मणों को उन्नत बनाएं स्वयं शिक्षा में तत्पर हों। जब यहाँ का आधुनिक ब्राह्मण समाज अपने उदर की पूर्ति में परणित हो जाता है, वाणी के श्रृङ्गार को त्याग देता है, अभिमान की मात्रा आ जाती है, तो जानो कि ब्रह्म की दृष्टि में वह कोई पंडित नहीं कहलाता, न विवेकी पुरूषों में विवेकी कहलाता है, वह तो केवल अपने उदर का ही ब्राह्मण बना हुआ है। मैं इस सम्बन्ध में कोई अधिक चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो यह कहेंगे कि इन्होंने यह क्या वाक्य उच्चारण कर दिया। यह मूर्ख क्या उच्चारण कर रहा है। परन्तु जब मुझे समय प्रदान

किया जाता, तो मैं पूज्य गुरूदेव से कहा करता रहूँ कि मुझे समय देना चाहिए और मैं उच्चारण ही करता हूँ, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव प्रायः ऐसा समय प्रदान कर ही दिया करते हैं।

रावण विनाश की योजना

आज मैं क्या उच्चारण करने जा रहा हूँ। हमारा जो वाक्य वह क्या है? कि राष्ट्र का जो गुरू होता है, वह ब्राह्मण है और ब्राह्मण के वाक्य को मानना राजा के लिए अनिवार्य होता है और मानता रहा है, हमारी परम्परा की पद्धति कहलाई चली जा रही है, त्रेता के काल में अराजकता आने लगी, राजा रावण का साम्राज्य छाने लगा, तो उस समय सब ब्राह्मणों ने समाज एकत्रित किया। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, विश्वामित्र, देवऋषि नारद, आनवाद ऋषि आभूषण, लोमपाद, गौतम आदि ऋषियों का समाज एकत्रित हुआ। वशिष्ठ मुनि जी के आश्रम में यह सभा हुई और सभा में यह निर्णय हु कि क्योंकि रावण आतताई आ रहा है और केवल यह सूक्ष्म सा अयोध्या रह गया है और रघुकुल में उत्पन्न होने वाले दशरथ ऐश्वर्य में चले गएं हैं, तीन पत्नियां हैं, तो अब क्या करना चाहिए। उन्होंने कहा कि अब ब्राह्मण समाज को अपने जीवनों को नष्ट करना होगा। वही हुआ, कि सब समाज ने वह पुकार राजा दशरथ से कही। राजा दशरथ के दोनों पुत्रों को आँगन में लाए। विश्वामित्र ने उन्हें अस्त्रों शस्त्रों की शिक्षा दी, धनुर्वेद की शिक्षा दी और पांडित्य उन्हें दिया नाना प्रकार की विद्याओं का प्रसारण कराया और जब वह पारंगत हो गएं, तो विश्वामित्र जी ने यह कहा कि हे बेटा अब तुम जाओ और अपनी ! अस्त्र शस्त्र विद्या का प्रसार करो। शिक्षा देने का परिणाम यह हुआ, कि रावण जैसे के साम्राज्य को, जिसका राष्ट्र सर्वश पृथ्वी मण्डल पर छाने वाला था। कहाँ नहीं था रावण का राज्य? आधुनिक काल के राष्ट्रों का वर्णन कराता चलूं। रावण के पुत्र जिन्हें मेघनाथ कहते थे, वह त्रिपुरी के राजा थे। उन्होंने इन्द्र के राज्य को नष्ट किया था, राजा रावण के पुत्र नारायन्तक सौन्धुक के राज्य में राज्य किया करते थे, जिसको आधुनिक काल में रूस कहा जाता है। पातालपुरी में अहिरावण राज्य करता था जिसको

आधुनिक काल में अमेरिका कहा जाता है। इसी प्रकार सर्वशः उन्हीं का साम्राज्य था। राम जैसे त्यागी महापुरूष ने उनके साम्राज्य का आंकुचन कर दिया और अपनी संस्कृति का प्रसार किया। राष्ट्र का ब्राह्मणों का यह कर्त्तव्य हुआ करता है।

तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आज मैं अपने वाक्यों को उच्चारण करता करता दूर चला ! गया। वाक्य यह उच्चारण करने जा रहा था, कि आधुनिक राष्ट्र में न तो भाषा का विवाद है और न अपना कोई वाद है परन्तु कोई वाद है, तो अपने उदर का सबसे प्रथम विवाद है। उसके पश्चात और कोई कार्य है। यहाँ निर्धनों की दृष्टि से नहीं दृष्टिपात किया जाता। जिस राष्ट्र में स्वर्ण का प्रसार होता रहता था, अन्न का प्रसार होता रहता था, वहाँ आधुनिक काल के राष्ट्रों में ऐसे ऐसे प्राणी हैं, जिनको अन्न प्राप्त नहीं होता। वह अपने उदर को शान्त करके रात्री माता की गोद में चले जाते हैं। क्या इस राष्ट्र में क्रान्ति आएगी? मुझे तो प्रतीत हो रहा है कि राष्ट्र का जो उदर है उसमें एकत्रित करने की प्रवृत्ति आ गई है। राजा के राष्ट्र में चार वर्ण होते है ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। मानो राष्ट्र को जो वैश्यवाद है उनकी जब संग्रह करने की प्रवृत्ति बन गई तो राष्ट्र को जो उदर है वह जीर्ण हो गया है, इस जीर्णता को कौन नष्ट करेगा, ब्राह्मण समाज होगा तो नष्ट हो सकेगा, अन्यथा नष्ट नहीं होगा।

अब मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ। अब मैं अपने पूज्य गुरुदेव से उच्चारण करुंगा, वे अपने वाक्य उच्चारण करें, मेरे गुरुदेव समय देंगे, तो मैं इस वाक्य को और भी कल प्रकट करूंगा। आज तो मैं केवल यह उच्चारण करने चला हूँ कि महात्मा दयानन्द ने एक सभा बनाई थी। परन्तु उस सभा में भी जब यहाँ उदर की पूर्ति करने का प्रश्न आया, तो वह भी छिन्न भिन्न होने लगी, उसमें भी पांडित्य नहीं, पांडित्य जब होता है, जब पांडित्य के साथ में योग होता है, योग की सूक्ष्मता है। योगी कहते तो अवश्य हैं, परन्तु वास्तव में योग होता नहीं। पांडित्व के साथ में योग होता है, तो त्याग की प्रवृत्ति आ जाती है। यह आज के समाज में सूक्ष्मता है। इसको उन्नत बनाना, यह सब महापुरूष का कार्य होता है। आएगा कोई पुरूष। मेरी तो यह वेदना होती है, कि कोई पुरूष आएगा इसी वेदना को लेकर के और इसको उन्नत अवश्य बनाएंगा। परन्तु

आधुनिक काल में तो मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, कि जो महान अग्नि प्रदीप्त होने वाली है, वह अपने स्थान से चल दी है। समय निकट आ रहा है, जब एक मानव दूसरे मानव के रक्त का पिपासी बनेगा। वह समय दूर नहीं है। मैं अपने पूज्य गुरुदेव से प्रार्थना करूंगा कि अब मुझे आज्ञा दें।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य !आज तो मेरे प्यारे !धन्य हो। मेरे पूज्यपाद ऋषिवर ..... महानन्द जी ने नाना वार्त्ताएं प्रकट की हैं। परन्तु इनके वाक्यों में ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे उनके हृदय में अधिक वेदना रहती है। क्यों रहती है, इसको महानन्द जी ही जानते हैं। रहा यह वाक्य कि आधुनिक काल कैसा है? ब्राह्मण समाज होना चाहिए, क्योंकि हमारी जो परम्परा है, हमारा जो पांडित्य है, वह ब्राह्मणों के लिए विशेषकर उच्चारण करता रहता है, वेदों में मन्त्रों के मन्त्र, ब्रह्म सूक्त आते रहते हैं, ब्राह्मणत्व की विवेचना और चर्चाएं आती रहती हैं। अब मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक वाक्य बहुत ! सुन्दर कहा है कि ब्राह्मण उदार होना चाहिए। वास्तव में यह वाक्य बहुत सुन्दर है जितना यौगिक पुरूष होता है, उसको अभिमान नहीं होता, जितना बुद्धिमान होता है, उसे भी अभिमान नहीं होता। वह साधारण बुद्धि को त्याग करके मेधा में चला जाता है, मेधा को त्याग करके, वह ऋतम्भरा में चला है और ऋतम्भरा को त्याग करके वह महान पुरूष प्रज्ञावी के दर्शन कर लेता है। उनके द्वारा अभिमान की मात्रा नहीं होती, उनके पापों की प्रतिष्ठा नहीं होती। प्रतिष्ठा किनमें होती है, जिसके द्वारा अपनी वाणी पर, अपने हृदय पर स्वयं और आत्मा पर श्रद्धा नहीं होती। ऐसा वेद का वचन कहता है मैं नहीं कहता और न महानन्द जी ने ही उच्चारण किया है, इन्होंने पांडित्य की दृष्टि से कुछ दृष्टिपात किया, वह बहुत सुन्दर। इन्होंने नाना महापुरूषों की चर्चाएं की हैं, उन चर्चाओं में कटुता भी है, जैसे इन्होंने किसी महापुरूष का नामोच्चारण किया मुहम्मद, परन्तु उनके विषय में इनकी कदापि आस्था नहीं है। क्यों नहीं है, मैं नहीं जानता, क्योंकि इस काल को यही जानते हैं। रहा यह वाक्य, कि इन्होंने बहुत से राष्ट्र की चर्चाएं की, पुस्तकों को अग्नि के मुखारविन्द में जाने के लिए भी कहा है, परन्तु इनकी पूर्ति तो बुद्धिमानों के द्वारा यौगियों के द्वारा प्रायः होती रहती है और होती रहेगी। रहा

यह वाक्य, कि आरण्यक और शतपथ, गोपथ नाना प्रकार की पोथियां थी, जो महर्षि याज्ञवल्क्य महाराज और भी नाम आचार्यों के विचार थे, वह भी अग्नि में चले गएं, वह वास्तव में इनके लिए बड़ा कष्ट का समय रहा है, क्योंकि मुझे तो परमपिता परमात्मा की कृपा से इन महापुरूषों के दर्शन करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है। हम तो यह भी कहा करते हैं कि इनका ज्ञान, इनकी प्रतिभा बड़ी पांडित्यमय थी। आज हम अपने जीवन में इनके वाक्यों को लाने का प्रयास करें और त्यागी और तपस्वी बनने का प्रयास करें। त्यागी तपस्वी कौन होता है, जैसा मैंने कल के वाक्यों में और आज भी कहा है, कि हृदय विशाल होना चाहिए। जितना व्यापकवाद मस्तिष्क में होगा उतना ही जीवन उन्नत, मानवता से परिपूर्ण होगा।

आज का यह वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। कल समय मिलेगा, तो दो प्रकार के महापुरूषों की चर्चाएं जो प्रारम्भ की थी, वह कल उच्चारण की जा सकती हैं, और मेरे प्यारे महानन्द जी समय चाहते हैं परन्तु जैसा इनका कल !का समय आएगा उसके अनुसार समय का विधान हम परिपूर्ण करेंगे। आज का वाक् यह अब समाप्त होने चला है।

पूज्य महानन्द जीः गुरुदेव यदि कल समय प्रदान कर देते तो बहुत ही सुन्दर होता। !

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्यकल का कल देखा जाएगा !अच्छा बेटा ....., जैसा भी समय होगा। उसके अनुकूल वाक्य उच्चारण कराएंगे।

पूज्य महानन्द जीः अच्छा भगवन् !

पूज्यपाद गुरुदेवः तो मुनिवरों आज का यह वाक्य अब समाप्त हुआ। कल जैसा समय ! होगा, उसके अनुकूल वाक्य प्रकट करेंगे अब वेद का पाठ होगा।

१८ 08 03 1969 पुष्प 12 आत्मा का प्रकाश

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, कि आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ नित्य प्रति कुछ मन्त्रों का पठन पाठन होता रहता है, जिसका वर्णन मनोहर परम्परागतों से गठित है। तो

आओ, मेरे प्यारेआज हम अपने उस देव की रचना करते चले जाएं !ऋषिवर !, जिस परमदेव ने इस सुन्दर संसार की रचना की है और जिस रचना के आधार पर मानव अपने जीवन को उन्नत बनाता रहता है। मानव ही नहीं, प्रत्येक प्राणी उन्नत बनाता रहता है। वह वायु मण्डल में विचरण करने वाले हों अथवा जल में विचरण करने वाले हों, दो पद वाले हों अथवा चतुष्पद वाले, प्रत्येक प्राणी उन्नत होता चला जाता है। यह उस परमपिता परमात्मा की महान अलौकिकता का दिग्दर्शन है, जिस दिग्दर्शन का पान करता हुआ, मानव अपने जीवन को स्वतः उन्नत बनाता है। हमारे यहाँ प्रत्येक मानव यह घोष करता है, कि मैं अहिंसा परमोधर्म की वेदी पर आता हूँ। प्रत्येक मानव के हृदय में एक आकांक्षा रहती है और यह विचारधारा बनी रहती है, कि अहिंसा परमोधर्म मानव का ही धर्म है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है, कि मानव का अहिंसा परमोधर्म ही धर्म है, परन्तु विचार विनिमय यह करना है, कि अहिंसा परमोधर्म किसे कहते हैं। प्रत्येक मानव को उच्चारण करने के लिए वाक्य हैं। परन्तु अहिंसा परमोधर्म है क्या? मुझे स्मरण आता रहता है, कि जिस समय महर्षि भृगु के आश्रम में आदि ऋषिवर पहुंचे, जिसमें महर्षि शांडिल्य, महर्षि मुद्गल, महर्षि सुकेतु आदि ऋषियों का समाज एकत्रित हुआ। महर्षि शांडिल्य जी ने कहा कि महाराज हम आपके दर्शन करने आ ! पहुंचे हैं। हम यह जानना चाहते हैं, कि ऋत किसे कहते हैं? ऋत के सम्बन्ध में जब विचारधारा उनके समीप आई तो महर्षि भृगु जी ने कहा कि भाई! मैं तो अनुसन्धान कर रहा हूँ। चलो, यह जो आश्रम निकट प्रतीत हो रहा है, इस आश्रम में महर्षि पनपेतु जो निवास करते हैं, उस आश्रम में चलते हैं।

आत्मा की वाणी

तो मुनिवरोंजब मृद्गल ऋषिवर इत्यादि महर्षि पापड़ी मुनि के आश्रम में पहुंचे !, तो महर्षि पापड़ी मुनि जी ने कहा कि आओ! उन्होंने उन्हें आसन दिया। आसनों पर विराजमान हो गए, पंक्ति लग गई। तो वहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होने लगे, कि महाराज ! हम ऋत को जानने के लिए आए हैं, महर्षि पापड़ी जी ने कहा कि विराजो ऋषिवर !

विराजमान हो गए और उनका वेदों का पठन पाठन प्रारम्भ होने लगा। जब वेदों की ध्वनि जटा पाठ में हुई और माला पाठ की पुट लगी, तो मार्ग से मृगराज आने प्रारम्भ हो गए। जब मार्ग से मृगराजों की भी पंक्ति लग गई, तो वहाँ एक नवीन प्रश्न मानव के मस्तिष्कों में आना स्वाभाविक था। परन्तु ऋषियों का मस्तिष्क, मस्तिष्क होता है वह साधारण मस्तिष्क नहीं होता। उनका मस्तिष्क तपा हुआ होता है। शान्त मुद्रा में विराजमान रहे। जब मृगराज आ गएं, तब महर्षि पापड़ी मुनि जी भी विराजमान हो गए। जब पठन पाठन प्रारम्भ होने ही वाला था, तो विचार विनिमय यह आया, महर्षि मुद्गल जी ने कहा, कि महाराजमैं यह जानना चाहता हूँ !, कि हमारे मध्य में यह मृगराज भी आ पहुंचे हैं। यह आपकी ध्वनि पान करते ही क्यों आ पहुंचे हैं? महर्षि पापड़ी जी ने कहा कि इनके हृदय में भी अन्तरात्मा है और जब आत्मा से वेदना उत्पन्न होती है, क्योंकि आत्मा ज्ञान का स्रोत है, ज्ञान का भण्डार है। आत्मा से ही ज्ञान की उत्पत्ति हुआ करती है और आत्मा का भोजन जब मानव को प्राप्त होने लगता है, तो वह कोई भी प्राणी हो। जब आत्मा का भोजन प्राणी को प्राप्त होने लगता है, तो आत्मा से प्रेरणा आती है, मनीराम से बाधित हो जाता है। वह हिंसक प्राणी, अपनी हिंसा भाव को त्याग करके, अहिंसा परमोधर्म की पवित्र वेदी पर आ जाता है। इसलिए यह हमारे आश्रम में आ पहुंचे हैं, कि हमारा जो हृदय स्वच्छ महान है। देखो, जितना भी हृदय स्वच्छ और महान होगा, उतना उसका वाक्य तपा हुआ होगा और जितनी वाक्यों में तपस्या होगी, जितना वाक्य शोधन किया होगा, उतना ही दूसरे प्राणी के अन्तःकरणः को पवित्र बनाने वाला होता है।

तो मुनिवरोंजब महर्षि पापड़ी जी ने यह वाक्य ! उच्चारण किया तो ऋषि मौन हो गए। मुद्गल ऋषि ने पुनः प्रश्न किया कि महाराजमैं यह जानना चाहता हूँ !, ब्रह्मे काता प्रति अस्ति विश्वानम् नमो जानम् मा माच्चम् ब्रह्मे वाणी शब्दा उत्पत्तम् न हस्तेः ऋषि ने कहा कि शब्द की जो उत्पत्ति है, वह मानव के अन्तरात्मा से उत्पन्न होती है, परन्तु उसका जो बाहरीय रूप है, वह अन्तरिक्ष और ऋत दोनों से मिल करके उस शब्द में एक ओज आ जाता है। ओज होने से वह जैसा आत्मा से चला था, वास्तव में वैसा इन्द्रियों

तक नही रहता, क्योंकि इन्द्रियों में जाकर के उस शब्द की रूपरेखा परिवर्तित होती रहती है और जब अन्तरिक्ष में आता है, जितना वाणी का और तन्तुओं का जितना भी दुर्गुण होता है, जितना दबाव होता है, जितना उग्रायण होती है, उतनी शब्द में उग्रता प्रारम्भ हो जाती है। उसी उग्र भाव से, उसका ओजस्वी रूप बन जाता है। जब ऋषि जी ने यह उत्तर दिया, कि हे मुद्गल ऋषि जीइसीलिए शब्द की महानता होती है !, परन्तु शब्द का जो विकास है, वह अन्तरात्मा से है। परन्तु वह मन के क्षेत्र से भी परे शब्द की उत्पत्ति उत्पन्न होने लगती है, क्योंकि आत्मा से वेदनाएं, धाराएं चलती हैं वह धाराएं प्राणों के द्वारा रमण करती हुई, मन के द्वारा, मन से इन्द्रियों के द्वारा और इन्द्रियों से उसका बाहरीय रूप बन जाता है। इसलिए यह आत्मा की ही वाणी है, जिसको हमें श्रवण करना है। बिना आत्मा के मानव शब्द भी उच्चारण नहीं कर सकता। मुनिवरोंमुझे एक वार्त्ता बार बार स्मरण आती रहती है !, जिसका उल्लेख मैंने कई काल में प्रकट भी किया है, आज भी मुझे सौभाग्य प्राप्त होगा। परन्तु आज मैं केवल यह वाक्य उच्चारण करने जा रहा हूँ, कि शांडिल्य जी ने पुनः यह कहा कि महाराज इस ! मानव की वाणी में कौन सी शक्ति है, जो यह हिंसक प्राणी जो मानव का भक्षण कर जाते हैं, वह हमारे मध्य में विराजमान हैं, और ऐसे शान्त मुद्रा में हैं, जैसे जड़ तू हो। उस समय महर्षि पापड़ी जी ने कहा, कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है, जैसा इसके ऊपर अध्ययन किया है विचार विनिमय किया है, कि मानव का अन्तःकरण क्योंकि मानव के श्वासों में से परमाणु जाते हैं, वह परमाणु हमारा हृदय शुद्ध और पवित्र होने के नाते, वह परमाणु, वह वाणी के उद्गम जो मानो वायु मण्डल में, वातावरण में परणित होते हैं, तो वह जो वायु है, वह हिंसक प्राणियों के अन्तःकरण की छूती है और छूने के नाते वह परमाणु इतने प्रबल होते हैं, इतने शक्तिशाली होते हैं, कि वह हिंसक परमाणुओं को नीचे दबा लेते हैं, और जो अहिंसा परमोधर्म वाले, धर्म परमाणु हैं, वह इनके अन्तःकरण में स्थान ग्रहण करते हैं, इसलिए इनकी जो वेदना है, वह हिंसक न रह

करके, अहिंसा परमोधर्मी बन जाती है।

ऋत का स्वरूप

यह नाना प्रश्न होने के पश्चात् ऋषिवर मौन हो गए। ऋषियों ने कहा कि महाराज ! आज हम ऋत को जानने के लिए आए हैं। ऋत क्या है? उन्होंने कहा कि क्या तुम ऋत को अभी नहीं जाने हो? ऋत इसी को कहते हैं, जिसमें ब्रह्म का वास रहता है, जिसमें ब्रह्म परणित रहत है। मानो ऋत और सत्य दो ही पदार्थ हैं। सत्यता के गर्भ में भी कहीं कहीं मानो मिथ्या रहता है और कहीं कहीं मिथ्या के गर्भ में भी सत्य रहता है। परन्तु यह जो ऋत है, यह ऐसा शब्द है, ऐसी एक रचना है, कि जो प्रत्येक प्राणी मात्र के हृदय में ओत प्रोत हो रही है।

सत्य का स्वरूप

ऋत कहते हैं मानो विद्युत को, जो विद्युत सर्व संसार में, प्राणी मात्र में रमण कर रही है और वह क्रियात्मक होती चली जा रही है, जिससे क्रिया उत्पन्न होती है, उसी का नाम ऋत है। यह ऋत ही हमारा जीवन है और ऋत के आधार पर ही हमारे जीवन का प्रसारण होता रहता है। इसके पश्चात् सत्य आता है। सत्य क्या है? वास्तव में सत्य भी तीन प्रकार का होता है। एक तो सत्यम् ही ब्रह्म है एक तो ब्रह्म ही सत्य है एक यह प्रकृति सत्य प्रतीत होती है और एक जीवात्मा, हमें सत्य प्रतीत होता है। प्रकृतिवाद में जो सत्यता है, उस सत्यता में परिवर्तन आता रहता है। जीवात्मा की सत्यता में भी परिर्वतन आता रहता है, परन्तु वह जो ब्रह्म है, उस ब्रह्म के सत्य होने में परिवर्तन नहीं होता। इसलिए जिसमें परिवर्तन नहीं होता। उसी के गर्भ में यह सर्व संसार समाहित रहता है।

तो मेरे प्यारे मैं इस वाक्य को !ऋषिवर !ओर गम्भीर नहीं बनाऊंगा। मैं इस वाक्य को बहुत ही सरलता में ले जाना चाहता हूँ। आओ, मेरे प्यारे आज हम सत्य !ऋषिवर ! के ऊपर विचार विनिमय करते चले जाएं। सत्य क्या है? तो देखो, सत्य ब्रह्म है, जो सर्वत्र विराजमान है, जो सच्चिदानन्द है, शुद्ध बुद्ध निरंजन है, उसी को हमारे यहाँ

सत्यदेव कहते हैं।

प्रकृति

मुनिवरोंदेखो !, एक प्रकृति हमें सत्य प्रतीत होती है, प्रकृति कहीं हमें स्थूल रूप में प्रतीत होती है, तो कहीं सूक्ष्म रूप में। परन्तु उसका स्थूलता में भी अभाव है और सूक्ष्मता में भी अभाव। क्योंकि वह जो क्रिया है, वह स्वयं प्रकृति की न होने के नाते, उसमें सदैव सत्य का अभाव रहता है। है तो सत्य, परन्तु उसकी सत्यता में अभाव है, जैसे मानव का शरीर है, जैसे मेरे प्यारेमहानन्द जी विराजमान हैं !, मैं इनको दृष्टिपात कर रहा हूँ, परन्तु यह स्थूल शरीर में परणित हो जाएं, तो मुझे महानन्द जी अपने में अभाव प्रतीत होगा, क्योंकि जब शरीर से यह आत्मा चला जाता है तो शरीर में वह महानता नहीं रहती है, इसकी सत्यता में परिवर्तन आ जाता है। एक तो सत्य वह होता है, जिसका परिवर्तन होता रहता है, जैसे आज मुझे एक मानव प्रतीत हो रहा है, कल वह नहीं रहेगा। परन्तु सत्य तो रहेगा। परन्तु उस सत्य में अभाव भी रहता है। यदि हम गम्भीरता में सूक्ष्मवाद में जाते हैं, तो यह प्रतीत होता है, कि वास्तव में उसमें भी अभाव नहीं है, क्योंकि स्थूल रूप का रूपान्तर हो जाता है, परन्तु जिन कणों से मुझे स्थूल संसार प्रतीत हो रहा था, वह कण तो ज्यों के त्यों हैं, उसमें तो अभाव नहीं होता। उनका अभाव इसलिए, क्योंकि वह प्रकृति के कण हैं और उनमें जो क्रिया है, वह किसी चैतन्य की है, किसी सत्य की है, इसलिए सत्यता में भी मुझे परिवर्तन और अभाव प्रतीत होता है।

तो मेरे प्यारे आज हम ऋत और सत्य का विवेचन करने के लिए सूक्ष्म !ऋषिवर ! वार्त्ताएं प्रकट करना चाहते हैं। उस वाक्य को लेना चाहते हैं, कि मानव को ऋत और सत्य पर जाना है, जिसको विचार विनिमय करते हुए, मानव के जीवन में एक महानता की ज्योति प्रकट होने लगती है। उसके शरीर की दिग्दर्शिका होने लगती है। उसी को हमें जानना है, उसी का अनुसन्धान करना है। अनुसन्धान करते हुए, हमारा जीवन,

हमारी मानवीयता, वास्तव में सदैव विचित्रता में परणित रहती है।

तो आओ, मेरे प्यारेआज !ऋषिवर ! का हमारा वेद का ऋषि यह क्या कह रहा है, कि हम ऋत और सत्य पर चिन्तन करने वाले बनें। महर्षि पापड़ी जी ने कहा है शांडिल्य जीतुमने यह श्रवण किया होगा !, कि ऋत उसी को कहते हैं, जिसके गर्भ में हिंसा नहीं होती। अहिंसा परमोधर्म और सत्यता की महा पुट होती है क्योंकि सत्य नहीं होगा तो अहिंसा परमोधर्मः भी नहीं होगा और जहाँ सत्य होता है, जहाँ ब्रह्म होता है, वहाँ भय नहीं होता, लज्जा नहीं होती, शंका नहीं होती। जहाँ शंका, लज्जा, भय नहीं होते, वहीं अहिंसा परमोधर्म होता है और वह परमधर्म कहलाया गया है।

मेरे प्यारे !ऋषिवर !इसलिए आचार्यजनों ने कहा है, कि हे मानव यदि तू अपने ! जीवन को उन्नत बनाना चाहता है, अपने जीवन में प्रतिभा को लाना चाहता है, तो तेरे जीवन में एक महानता का दिग्दर्शन होना चाहिए और उन कर्मो को, उन विचारों को नहीं लाना चाहिए, जिस कर्म के करने में शंका, लज्जा, भय की उत्पत्ति होती हो। वही कर्म तुम्हारे लिए अहिंसा कहलाया जाता है, परन्तु जहाँ शंका लज्जा नहीं होती, जहाँ हमारे मध्य में ब्रह्म क्रिया कर रहा है, क्रीड़ा कर रहा है, उसी को हमारे यहाँ सत्य ब्रह्मे अहिंसा परमोधर्म कहा जाता है। इस सम्बन्ध में मुझे एक वार्त्ता स्मरण आती चली जा रही है, कि हमारा जो यह अन्तरात्मा है, यही तो प्रकाशक है, जहाँ ब्रह्म प्रकाशक है, वहाँ आत्मा भी प्रकाशक है, क्योंकि आत्मा के प्रकाश से ही मानव प्रकाशित होता है। एक आत्मा और एक परम आत्मा मानो परम आत्मा से यह विश्व प्रकाशित होता है, और अन्तरात्मा से मानव का शरीर प्रकाशित होता है।

प्रकाशक सूर्य

मेरे प्यारेआज हम चिन्तन करते चले जाएं। मुझे स्मरण आता रहता है !ऋषिवर !, एक समय राजा जनक के द्वारा महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज जा पहुंचे। इस वाक्य को मैंने पूर्व काल में भी प्रकट किया है आज भी मुझे स्मरण आता चला जा रहा है। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज बड़े आनन्दपूर्वक भ्रमण करते हुए, राजा जनक के द्वार

पर जा पहुंचे। राजा जनक ने उनका बड़ा आदर किया और ऊँचा स्थान दिया और नाना प्रकार के पदार्थों का पान कराने के पश्चात् ऋषि चरणों की वन्दना की और वन्दना करने के पश्चात् कहा कि प्रभु मैं आपसे कुछ प्रश्न करने के लिए आ पहुंचा हूँ। महर्षि ! मैं !जो चाहते हो वह प्रश्न करो। उन्होंने कहा कि प्रभु !याज्ञवल्क्य मुनि बोले राजन् यह जानना चाहता हूँ कि हमारे इस मानव शरीर में जो नेत्र हैं, यह किसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं? ऋषि, बड़े हर्षित हुए और बोले राजन् इसको तो प्रत्येक बालक ! जानता है, सूक्ष्म सूक्ष्म प्यारे पुत्र भी जानते हैं, कि हमारे जो नेत्र हैं, वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित हुआ करते हैं क्योंकि सूर्य नेत्रों का देवता है। जब प्रजापति ने यह संसार रचा था, उस समय सबसे पूर्व आदित्य देवता ने नेत्रों को चुना था।

यह सूर्य हमारा प्रकाशक है, इसलिए प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, कि हमारे यह नेत्र किसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, क्योंकि सूर्य देवता है, सूर्य को प्रतिमा आती है, मानव के नेत्र प्रकाशमान हो जाते हैं। मेरी प्यारी माताएं जब प्रातःकाल होता है, उषा नाम की किरण आती है, माता अपने पुत्रों से कहा करती है, कि हे पुत्रो जागरूक ! हो जाओ, इस समय सूर्य का प्रकाश आ गया है। नेत्रों का प्रकाश आ गया है। तो सूक्ष्म प्यारे पुत्र भी आसन को त्याग देते हैं और सूर्य के प्रकाश में प्रकाशित हो जाते हैं, क्योंकि अन्धकार में मानव शैय्या पर विश्राम करता है और जब वह प्रकाश होता है, तो उस समय उसे नवीन प्रकाश प्राप्त होता है और वह अपनी शैय्या को त्याग देता है। तो नेत्रों का देवता सूर्य कहलाया जाता है।

चन्द्रमा प्रकाशक

उसके पश्चात् राजा जनक ने ऋषि से कहा कि भगवन्मैं यह नहीं जान पाया हूँ !, कि जब सूर्य नहीं होता, तो उस समय नेत्रों का कौन देवता कहलाता है? हम किसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने कहा हे राजन जब !सूर्य नहीं होगा, उस समय हमारे नेत्रों का देवता चन्द्रमा होता है, चन्द्रमा प्रकाशक होता है, अपनी कांति को लेकर आता है, उसी कांति में जो हम सूर्य के प्रकाश में कर्त्तव्य कर रहे थे,

वही कर्त्तव्य हम चन्द्रमा की कांति में भी करने को तत्पर रहते है। चन्द्रमा की जो सुदंर सुंदर कान्तियां चलती हैं, वे मानव को अमृत प्रदान करती चली जाती हैं। जहाँ पृथ्वी में आभूषणी आभा कर्त्री नाम की धातु होती है, वहाँ श्वेतकेतु नाम की कांति जाती है, जहाँ अमृत विशेषकर उत्पन्न होता है, मानो पात बनती रहती है, उसी पात से नाना प्रकार की धातुएं उत्पन्न होती रहती हैं और हमारे नेत्रों में वह अमृत का मार्ग करती हैं, मानों नेत्रों के पिछले विभाग में प्राणिक नाम की नाड़ियां होती हैं, जिनके द्वारा मानो अमृत जाता है, वह अमृत मानव को पवित्र बनाता है, क्योंकि चन्द्रमा का सम्बन्ध जल से होने के नाते इसको अमृतम् कहते हैं। मन का विशेष सम्बन्ध चन्द्रमा के साथ रहता है, चन्द्रमा में ही रस आता है और उस रस का सम्बन्ध मानव के मन से होता है। मन का सम्बन्ध नेत्रों से और इन्द्रियों से होता है, इसीलिए हमारे नेत्रों और इन्द्रियों का देवता जब सूर्य नहीं होता, तो यह चन्द्रमा होता है। चन्द्रमा हमें प्रकाश को अर्पित करने वाला है, पवित्रता को प्रदान करने वाला है। उसी से हम अमृत का पान किया करते हैं।

तारा मण्डल का प्रकाश

राजा जनक ने पुनः प्रश्न किया, महाराजजब यह चन्द्रमा नहीं रहता !, सूर्य नहीं होता, उस समय हमारे नेत्रों का देवता कौन होता है? उन्होंने कहा कि हे राजन तुम कैसे ! भोले हो। जब यह चन्द्रमा सूर्य नहीं होता, तो हमारे नेत्रों के यह तारागण देवता होते हैं, जिन्हें हम यह मण्डल कहते हैं। नाना प्रकार के मण्डलों से प्रकाश आता है। उसी प्रकाश में हमारे नेत्र प्रकाशमान रहते हैं। उसी प्रकाश से अपना कर्त्तव्य करने को तत्पर रहते हैं। हे राजन उस परमात्मा की सृष्टि में इस ब्रह्माण्ड में तीन प्रकार के !सौर मण्डल कहे जाते हैं। एक सौर मण्डल का अधिपति सूर्य कहलाया जाता है, द्वितीय सौर मण्डल का बृहस्पति कहलाया जाता है और तृतीय मण्डल का अधिपति ध्रुव कहलाया जाता है यह तीन प्रकार के सौर मण्डल हैं। इन सौर मण्डलों में नाना प्रकार के सूर्य हैं, नाना चन्द्रमा हैं, नाना मंगल हैं, नाना बुद्ध हैं, नाना प्रकार के मण्डल

कहलाए जाते हैं। हम उसके प्रकाश में अपना कर्त्तव्य करने में तत्पर रहते हैं। ऐसे ऐसे लोक लोकांतर हैं, जिसमें नाना सूर्य समाहित हो जाते हैं। नाना पृथ्वियां हैं, नाना बुद्ध और वृहस्पतियां हैं, जिनकी आज मैं गणना कराने नहीं जा रहा हूँ। वाक्य केवल यह प्रकट कराने जा रहे हैं, कि इतने विशाल विशाल मण्डल हैं, आज वैज्ञानिकगण उसका अनुसंधान करते हैं, तो प्रतीत होता है, कि प्रभु की कैसी उत्तम सृष्टि है, कि सब लोक लोकांतर अन्तरिक्ष में विराजमान हैं, परन्तु एक दूसरा लोक एक दूसरे मण्डल तक उनका मिलान नहीं होता। बेटाजब समय आता है !, तो जो सूर्य का प्रकाश आज है वह करोड़ों वर्षों के पश्चात् न रहेगा, जो कान्ति चन्द्रमा में है, वह कुछ समय के पश्चात् नहीं रहेगी। इसका अभिप्राय क्या हैकी परमात्मा की जो रचना है, उसका अंत भी आना है, उसका समय भी आना है यह कैसी विचित्रता है यह सब लोक लोकातंर अन्तरिक्ष में रहते हैं, परन्तु एक दूसरे के आकर्षण शक्ति से रहते हैं। वह प्रभु कितना सुदंर वैज्ञानिक है, कितना महान् है कि उसकी जो आकर्षण शक्ति है, किसी भी काल में सूक्ष्म नहीं होती। बेटाजब सूक्ष्म होती है !, तो लोकों का एक पिण्ड बन जाता है। पिण्ड बन करके परमाणु बन जाते हैं, यह संसार अभ्रा गति नश्चतम् प्रभा अश्चति प्रलय काल को प्राप्त हो जाता है।

पृथ्वी का मण्डल

मेरे प्यारेजब प्रभ !ऋषिवर !ु ने यह जगत रचाया, जो दृष्टिपात आ रहा है यह कितना विचित्रता में परिणत हो रहा है। सबसे प्रथम प्रभु का महत् और इस महत् से जो गति चली, महत् से जो एक प्रबलता चली उससे अन्तरिक्ष के परमाणुओं में गति आ गई। जबकि अन्तरिक्ष के परमाणुओं में गति आई, जब कि अन्तरिक्ष के परमाणुओं में गति आई तो उन परमाणुओं से वायु के परमाणुओं में गति आ गई और वायु से अग्नि के परमाणुओं में गति आ गई और अग्नि के परमाणुओं में गति आ जाने के पश्चात जल के परमाणुओं में गति आ गई । जल बन गया और जब जल, जिसे हमारे यहाँ रजन नमः सुप्रजाः जिसे रज कहते हैं, जिसको हमारे यहाँ अमागृति कहते हैं। जल रजस्वला

होता है। सूर्य जब तपता है, तो पृथ्वी के परमाणु एकत्रित हो जाते हैं, स्थूल रूप में आ जाते हैं, यह पृथ्वी का मण्डल बन जाता है। यह कैसी सुंदर प्रभु की रचना है, जिसके ऊपर मानव को विचार विनिमय करना बहुत आवश्यक है।

मेरे प्यारेआगे मैं उच्चारण करता चला जा रहा था !ऋषिवर !, कि ऋषि ने कहा कि हे राजनहम तारा मण्डलों के प्रकाश से यह लोक लोकांत !रों की उत्पत्ति इस प्रकार हो जाती है, क्योंकि जल के परमाणुओं में जो रज होता है, जैसे रजस्वला रज नाम पृथ्वी का है और स्वला नाम जल का है, क्योंकि पृथ्वी के परमाणु जल में रमण करते रहते हैं। आज यही स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए कि हमारा यही समुद्र है, यही जल है। परमात्मा की सृष्टि में जहाँ भी लोक होगा, वहाँ जल के परमाणु होंगे वहीं जल होगा और जैसा ग्रीष्म ऋतु में जो जल है वह कहाँ चला जाता है? मुनिवरों सूर्य ! अपनी किरणों में अपने में धारण कर लेता है और वह जो किरणें हैं, वह उन्हीं परमाणुओं को अन्तरिक्ष में विराजमान कर देती हैं। जब भी सूर्य की किरणें तेज हुईं और मेघों का उत्थान होते ही वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है। यह प्रभु की रचना कितनी विचित्र है। इसी को तो ऋत कहते हैं, इसी को तो महानता में परणित किया गया है।

मेरे प्यारे आगे मैं इस वाक्य को ले जाना चाह रहा हूँ कि वेद के ऋषि ने !ऋषिवर ! हम तारा मण्डलों के प्रकाश से यह नाना तारा मण्डल बन जाते !कहा कि हे राजन् हैं। इनमें नाना प्राणी विश्राम करने लगते हैं। जहाँ जैसा लोक होता है और कैसी प्रभु की विचित्रता है कि जैसे यह पृथ्वी मण्डल है, ऐसे पृथ्वी मण्डल पर पार्थिव तत्त्व वाले प्राणी रहते हैं और वृहस्पति मण्डल में वायु तत्त्व वाले प्राणी भ्रमण करते रहते हैं, सूर्य में अग्नि तत्त्व वादी प्राणी भ्रमण करते हैं, जहाँ जैसा लोक होगा, जिस लोक में जो तत्त्व प्रधान होगा उसी तत्त्व वाले प्राणी भ्रमण करते हैं। यह सुष्टि का चक्र बड़ा अनुपम है, बड़ा विचारणीय है। इसको विचारने के लिए मानव को अनुसंधान करने की

आवश्यकता है।

शब्द का प्रकाश

तो मेरे प्यारेमैं कहाँ च !ऋषिवर !ला जा रहा था। वाक्य यह उच्चारण करता चला जा रहा था, कि जब चन्द्रमा और सूर्य नहीं होता, तो हम तारा मण्डलों के प्रकाशित से प्रकाशित हुआ करते हैं। तो राजा ने कहा प्रभु जब यह तारा मण्डल नहीं होते तो ! हम किसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं? उस समय ऋषि ने कहा राजन् इसको ! तुम जानते हो, प्रायः मानव जानता है, यह तुम्हें भी प्रतीत होगा, कि तारा मण्डल ही बहुत विशाल हैं, बड़े उज्ज्वल हैं, हम इनके प्रकाश से तो प्रकाशित होते ही है, परन्तु जब यह तारा मण्डल भी नहीं होते, तो हम वाक् के प्रकाश से प्रकाशित हुआ करते हैं। वाक् आता है, जैसे एक मानव अन्धकार में विराजमान है, उसे कोई भी वस्तु दृष्टिपात नहीं हो रही है, उस समय वाणी से कहता है अरे, कोई है हमें मार्ग चेताने वाला। उस समय उसी वाणी पर, दूसरा मानव जो मार्ग में स्थिर है, वह कहा करता है कि आओ, मैं मार्ग में स्थिर हूँ, मैं आपको मार्ग चेताऊंगा। उसी शब्द के प्रकाश से मानव उस मार्ग को प्राप्त कर लेता है, जहाँ से उस शब्द की उत्पत्ति हो रही थी। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है, कि आज हमें जानना है, कि यह शब्द की उत्पत्ति कहाँ से होती है? शब्द अन्तरिक्ष से आता है। एक दूसरे प्राणी जब मिलान करते हैं, परमाणु जब संघर्ष करते हैं, उनमें से शब्दों की उत्पति होती है और वह शब्द है मानव की रसना के द्वारा। यह जो अंतरात्मा में अन्तरिक्ष विराजमान है, इनके द्वारा श्वास पर श्वास द्वारा नाना प्रकार के परमाणु आते रहते हैं और वह परमाणु आवागमन करते हैं, उन्हीं परमाणुओं से अंतरात्मा की जो पवित्र ध्वनि है, उस ध्वनि से बेटा शब्द की उत्पत्ति ! होने लगी है। याज्ञवल्क्य जी ने कहा है कि इसी को ले करके जब हम आगे चलते हैं, मानो यह शब्द ही प्रकाशमान है, शब्द ही हमें प्रकाश का देने वाला है, यह अन्तरिक्ष से आता है, लोक लोकांतर जो एक दूसर के आकर्षण शक्ति से स्थिर हैं, उनके मध्य में ही तो शब्द है। यदि शब्द भ्रमण नहीं करेगा तो आकर्षण शक्ति भी नहीं रहेगी। तो

ऋषि ने कहा कि हे राजन हम शब्द के प्रकाश में प्रकाशमान होते हैं। !

आत्मा का प्रकाश

राजा ने कहा कि हे ऋषिवर जब यह !शब्द नहीं होता, तब हम किसके प्रकाश से प्रकाशवान् होते हैं? उस समय ऋषि ने कहा कि हे राजन्‌जब यह सूर्य !, चन्द्रमा, तारा मण्डल, नक्षत्र नहीं होते और शब्द भी नहीं होते, तो उस समय हम इस आत्मा से प्रकाशवान् हुआ करते हैं। आज हमें आत्मा को जानना चाहिए। आत्मा ही प्रकाश का देने वाला है, इस शरीर में जब तक आत्मा विराजमान है, जब तक इसमें चेतना है और यदि आत्मा नहीं रहेगा तो बेटा! इसमें चेतना भी नहीं रहेगी। इसकी चेतना आत्मा के साथ चली जाती है। हे राजन् इसलिए हमें आत्मा को जानना चाहिए। आत्मा के ! लिए तभी कहा जाता है, कि आत्मा को जानो, क्योंकि प्रकाश देने वाला तो शरीर में आत्मा विराजमान है। मानो मानव अन्धकार में है, कोई वाक्य नहीं है, वहाँ वह कोई वस्तु को जानता है, तो आत्मा में उसका ज्ञान है। उस ज्ञान के साथ में ही उस वस्तु को ग्रहण कर लेते हैं अन्धकार में। वहाँ सूर्य की आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार हमारी जो अंतरात्मा है, वही प्रकाशक है, वही हमें प्रकाश देने वाला है और उस अनुपम प्रकाश को जानना चाहिए क्योंकि उस प्रकाश के जानने से हम शुद्ध बुद्धता में परणित हो जाते हैं और हम मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं। जो मानव इस अंतर आत्मा को नहीं जानता, आत्मा को जानने का प्रयास नहीं करता, कि आत्मा क्या है कि जो प्रत्येक मानव को क्रिया प्राप्त हो रही है और परमाणुओं में सुगठित विचार आ रहे हैं, यह सुगठितता आ गई है, यह आत्मा जब इस शरीर से चला जाता है, तो अरे, उस समय मुनिवरोंसूर्य भी है !, मानव के नेत्र भी हैं, परन्तु क्यों नहीं मानव प्रकाशवान् हो जाता। बेटाप्रकाश देने वाला तो चला गया !, इस शरीर से। देखो, शरीर है, परन्तु यह शरीर केवल नेत्र रह गए हैं, सूर्य का प्रकाश भी है, परन्तु वह प्रकाश जो प्रकाश में रमण करने वाला, अंतर आत्मा न रहा। इसलिए नेत्र भी नहीं रहे और देखो, सूर्य का प्रकाश

भी नहीं रहा।

परमानन्द की प्राप्ति

तो मेरे प्यारेवाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह !ऋषिवर ! है, कि इस मानव को चेतना देने वाला आत्मा है, इसीलिए आत्मा को जानना हमारा कर्त्तव्य है। आत्मा को जानने से हमारा उत्थान होगा। संसार के नाना प्रकार के भोग विलास में मानव कों शान्ति प्राप्त नहीं होती। मानव को यदि शान्ति प्राप्त होती है, तो आत्मा को जानने में प्राप्त हुआ करती है, जो मानव आत्मा के लिए निवेदित नहीं होता, वह भी कोई मानव नहीं होता। आत्मा में ही मानव को हवि करना चाहिए। आत्मा को जब हवि प्रदान की जाती है, तो यह हवि इसमें ओत प्रोत हो करके, मानव, मोक्ष की ओर परमानन्द को प्राप्त हो जाता है।

तो मेरे प्यारे आज मैं इस वाक्य को बहुत गम्भीर ले गया हूँ। आज का !ऋषिवर ! हमारा वाक्य कह रहा है। इसी को हमारे यहाँ ऋत कहा जाता है, इसी को जानना ऋत है, क्योंकि अंतर आत्मा जिसके द्वारा मानव में चेतना आती है, यह चेतना संसार में ओत प्रोत है। इस चेतना पर मानव को अनुसंधान करना है। विचार विनिमय करना है, कि चेतना कहाँ से आई है, इस चेतना का मूल क्या है। आज हमें ऋत को जानना है। महर्षि पापड़ी जी ने कहा है कि हे शांडिल्य जी तुमने !हे मुद्गल ऋषि महाराज ! जान लिया होगा, कि यह ऋत क्या है। संसार को जो प्रक्रिया चेतनावादी है, जो चेतना है वह कहाँ से आती है, उसका मूल मन्त्र क्या है, उसकी मौलिकता क्या है? इसको जान करके, इसके अनुसार हमें अपने को पहुंचा लेना। इसी को हमारे यहाँ ऋत कहा जाता है। आज हम जिस चेतना से, इन्द्रियों का पान करते हैं, उसी चेतना का नाम ऋत कहा जाता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने कहा, कि हे राजन् यह तुमने जान लिया होगा। राजा जनक ! मौन हो गए। जब राजा जनक मौन हो गए, तो ऋषि ने कहा कि अब तुम्हें ज्ञान हो गया है, कि माता के गर्भस्थल में भी यदि जीवात्मा नहीं होगा, तो माता के जो रजवीर्य

के परमाणु हैं, जिनसे शरीर सुगठित होता है, उन परमाणुओं में भी स्थूलता किसी काल में आ ही नहीं सकेगी। इसीलिए आत्मा ही चेतनित रहता है, आत्मा के कारण ही माता के गर्भस्थल पुत्र हो अथवा पुत्री हो वह पनपता रहता है और जरायुज परिपक्क होता रहता है, यह सब आत्मा की ही चेतना है। इसीलिए मेरे प्यारे आज !ऋषिवर ! हमें विचार विनिमय करना है और आत्मा को जानना है। आत्मा के आश्रय को जानना है, जिससे हमारा अंतरात्मा पवित्रता को प्राप्त हो जाए। इसीलिए वेद के आचार्य और दर्शनवादी यही कहते हैं, कि आत्मा को जानो। आत्मा को जानना ही तुम्हारा कर्त्तव्यवाद है। इसी से तुम अपने शरीर रूपी राष्ट्र को उन्नत बना सकोगे?

अहिंसा परमोधर्म

मुनिवरोंदेखो !, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने प्रस्थान किया और महर्षि पापड़ी जी ! मुनिमहाराज के आश्रम में जो नाना ऋषिवर पहुंचे, उन्होंने भी अपने आश्रम को प्रस्थान किया, कि हमारी पुष्टि हो गई। परन्तु अहिंसा परमोधर्म बेटा उनके लिए होता ! है, जो अन्तरात्मा को जानते हैं, जो अन्तरात्मा में ही वेदनीत रहते हैं, क्योंकि आत्मा के ज्ञान में ही अहिंसा परमोधर्म होता है। आत्मा के द्वारा अंतर्द्वंद्व आ जाने के कारण मानव में भय, लज्ञा, शंका उत्पन्न होती रहती है, उसी से वह प्राणी हिंसक बना रहता है। जिसका हृदय विशाल होता है, महान् होता है, पवित्र होता है, अन्तरात्मा को जानने वाला होता है, वही संसार सागर में अहिंसा परमोधर्म का पालन कर सकता है। अन्यथा शब्दों में उच्चारण करते रहो, इससे कोई लाभ नहीं है।

वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय है, कि हमें आत्मा को जानना चाहिए, आत्मा को जानने से हमारा कल्याण होगा। हमारी मानवता उन्नत बनेगी। आज का यह वाक्य अब समाप्त होने जा रहा हैं, आज के वाक्यों का अभिप्राय है, कि आज हम वेद के प्रकाश में रमण करें, आत्मा के प्रकाश को जानें, आत्मा ही हमारा प्रकाशक देव है और वही हमें चेतना देने वाला है, इसलिए उसको जानना चाहिए। उसको जानने से संसार में और जानने योग्य वस्तु नहीं रह जाती। कल मुझे समय मिलेगा, तो मैं आध्यात्मिक

विज्ञान और भौतिक वाद की चर्चा कर सकूंगा। आज का यह वाक्य समाप्त हो गया है अब वेद का पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जी धन्य हो भगवन् गुजराती हाई स्कूल मीरा सिकन्दराबाद में दिया ! गया प्रवचन

१९ 08 04 1969 पुष्प 12 तप

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ नित्य प्रति कुछ मनोहर पठन पाठन का कर्म प्रायः परम्परागतों के आधारित प्रसारण होता रहता है जिससे हम जान सकते हैं, कि हमारा जीवन परम्पराओं से सुगठित रहता है। हमारे जीवन में यदि परम्परा नहीं होगी, तो हमारे जीवन का कोई अस्तित्व नहीं रह सकता।

वसुन्धरा

तो मेरे प्यारेआज का हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा था !ऋषिवर !? आज के हमारे इस मनोहर वेद पाठ में, कहीं शकुन्तला, कहीं धेनु और कहीं वसुन्धरा का वर्णन आता चला जा रहा था। हे माँ वसुन्धरा तू वास्तव में हमारा कल्याण करने वाली है। हे कल्याणमयी ! हम तेरे समीप आए हैं !मां, तू वास्तव में हमारा कल्याण करने वाली है, हम अपने जीवन को उन्नत चाहते हैं। मांहम तेरे गर्भ में बसते हैं !, बसने के नाते वसुन्धरा कहते हैं। आओ, मेरे प्यारे हम उस महामना मातेश्वर वसुन्धरा पालन करने वाली !ऋषिवर ! है। हमें महान जीवन प्रदान करने वाली है। हम उस माता वसुन्धरा को बारम्बार नमस्कार कर रहे हैं। इसलिए वेद ने नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्दों का विवेचन करते हुए कहा है, कि वसुन्धरा पृथ्वी को भी कहते हैं, जो नाना प्रकार का खाद्य और नाना प्रकार का खनिज पदार्थ प्रदान करने वाली है, जिसके गर्भ में हम नाना प्रकार की वनस्पतियों द्वारा पनपते हैं। तो आज हम उस माता को वसुन्धरा कहा करते हैं। जब हम यह विचारने लगते हैं, कि वसु ब्रह्मे मानो जो नाना प्रकार के खनिजों को

उत्पन्न करने वाली है और मानव जीवन से उनका कितना सम्बन्ध है, तो हमारा हृदय विशालता को प्राप्त होने लगता है। हम अपने हृदय में यह अनुभव करते हैं, कि वह तो वास्तव में महामना है, हमारा कल्याण करने वाली है। आज हम उस वसुन्धरा के आँगन में आए हैं, इसलिए हम उसे बारम्बार नमस्कार कर रहे हैं।

तो मेरे प्यारे आज का हमारा वेद पाठ क्या कह रहा था। हमारा वेद पाठ !ऋषिवर ! यह उच्चारण करता चला जा रहा था, कि हमारे यहाँ उस परमा पिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, प्रत्येक तत्त्व में जब विचारने लगते हैं, तो हमें प्रतीत होने लगता है, कि यह सर्वस्व ब्रह्माण्ड वसुन्धरा का स्वरूप ही है, क्योंकि वसुन्धरा महामना प्रभु को भी कहते हैं, जिसके गर्भ में यह सर्वस्व जगत् विराजमान हो रहा है, जिसकी प्रक्रियाओं से यह पृथ्वी क्रियमान हो रही है, सर्वस्व ब्रह्माण्ड उसी के आश्रित भ्रमण कर रहा है। आज हम उस परमपिता को भी वसुन्धरा के रूपों में परणित किया करते हैं और उसका गुणगान गाते हैं। गुणों का अनुवाद करते हुए कहा करते हैं, कि वह प्रभु है, संसार का रचयिता है, क्रियात्मक है, सर्वस्व ब्रह्माण्ड, सर्वस्व प्राणी, उसी के आँगन में रमण कर रहे हैं। जब हम सब उसी की ज्योति में व्याप रहे हैं, वह हमें व्यापक बनाता चला जा रहा है, प्रकाशमय बनता चला जा रहा है, तो हम उस प्रभु के गुणगान गाने में तत्पर रहते हैं। उसी के गर्भ में यह सर्वस्व लोक लोकान्तर विराजमान हैं। उसकी महिमा बेटाआदि ऋषि !यों ने बड़े सुंदर रूपों से वर्णन की है । आओ मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम उच्चारण करते चले जाएं, कि वह जो वेद की अनुपम देन है, वह जो अनुपम प्रकाश है, उसमें नाना प्रकार का ज्ञान और विज्ञान आता है। नाना प्रकार की प्रतिमा उसमें विराजमान होती हमें प्रतीत होती है।

आनन्दमयी वेदवाणी

मेरे प्यारेउस प्रभु की जो आनन्दमयी वेदवाणी की देन है !ऋषिवर !, उसका अनुवाद करते हुए वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है कि हे महाप्रभु अक्रते तू वास्तव ! में हमारा कल्याण करने वाला, जीवन को उदबुद्ध करने वाला है, तेरी ही महती

अनुपम कृपा से, यह हमारा जीवन उदबुद्ध हो रहा है। आज तेरा ही रचना हमें व्याप रही है, तेरी महानता में हम सदैव रमण करने वाले हैं। हमें जो नाना प्रकार का अज्ञान आता है, वह हमें आपसे दूर कर देते हैं। तो प्रभुहम चाहते हैं !, कि सदैव प्रकाश में रमण करते रहें, आनन्द में ही रमण करते रहें, क्योंकि हमारा जीवन सदैव आनन्द के लिए उत्पन्न होता है, जीवन की प्रतिभा को जानने के लिए उत्पन्न होता है। हमें प्रभु ! ऐसा महान् सामर्थ्य प्रदान करो जिससे हम आपकी महती अनुपम कृपा के द्वारा आपकी महिमा को जानते हुए अपने मनुष्यत्व को जानते चले जाएं। हे प्रभु यह आपकी ! अनुपम देन है। जब हम यह विचारते हैं, कि यह जगत आपसे ही व्याप्त हो रहा है तो प्रभुहम कहाँ जाएं !, किस आँगन में रमण करें।

बेटाहम केव !ल प्रभु का गुणगान गाने ही नहीं आए। संसार उस काल में उन्नत बनता है, जब प्रत्येक मानव अपने अपने कर्त्तव्यवाद का पालन करता चला जाता है, जैसा मैंने कई काल में वर्णन करते हुए कहा है, कि कर्त्तव्यवाद को ही कहीं कहीं धर्म कहा गया है। तो जहाँ कर्त्तव्यवाद होता है, वहाँ मानव की प्रतिभा होती है मानव का जीवन उन्नत होता प्रतीत होने लगता है।

मैंने कई काल में वर्णन करते हुए कहा है, गुरु शिष्यों के सम्बन्ध में, कि गुरु शिष्य उस परमात्मा को मध्य में विराजमान करके, जब शिक्षार्थी अध्ययन करता है, उसकी बुद्धि में तीव्रता आती चली जाती है और आचार्य के हृदय में विशालता आती चली जाती है। परन्तु जब दोनों ही आचार्य और शिक्षार्थी जनों में स्वार्थवाद की अनुपमता आ जाती है, उस समय न तो शिष्य ऊँचा बनता है और न गुरु ही तपता है क्योंकि संसार, सर्वस्व ब्रह्माण्ड तपस्या में ओत प्रोत है।

तप में जीवन

मेरे प्यारे जब गुरु अपने कुल में तपता है और ब्रह्मचारी अपने गुरु के कुल !ऋषिवर ! में तपता है सूर्य अपने आँगन में तपता है, समुद्र अपनी परिधि में तपता है, पृथ्वी अपने आँगन में तपती है, चन्द्रमा अपने रसों में तपता, तो इसी प्रकार यह जो सर्वस्व जगत

है, यह तप से ऊँचा बना है। पृथ्वी तपा करती है, तो सुन्दर सुन्दर वनस्पतियों का जन्म होता हैं, मेरी पुत्री ब्रह्मचारिणी जब तपा करती है, तो तपने के पश्चात् वह सुन्दर बालक को जन्म देती है। कणाद और गौतम जैसे ऋषियो का जन्म होता है, राम और कृष्ण जैसों का जन्म होता है। जब यह सूर्य तपता है, तो समुद्रों से जलों का उत्थान होता है और जलों से मेघ बनते हैं और मेघों से सुन्दर धीमी धीमी वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है, उससे नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होने लगता है। इसी प्रकार यह चन्द्रमा जब शरद् ऋतु में तपता है, अपनी अमृतमयी ज्योति प्रदान करता है तो कृषक की जो भूमि होती है, उसमें अमृत प्रदान करता है। जिससे वह सर्वस्व अन्न अमृतमय हो जाता है। यहाँ तक है, कि माता के गर्भस्थल में जो जरायुज होता है, वहाँ तक अमृत प्रदान करता चला जाता है।

वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय है, कि तपने से ही यह सर्वस्व जगत विराजमान रहता है। आचार्य के कुल में ब्रह्मचारी तपता है। हे ब्रह्मचारी तू वास्तव में तपस्यामय ! है, क्योंकि तेरा जीवन तप है। हे आचार्य जब तू अपने कुल में तपता है, मानो जब तू विद्या से तपायमान हो जाता है तेरा तप क्या है? जब तू इन ज्ञानमीय ज्योति को ग्रहण कर लेता है, तो तेरा जो तप है, वह महान बन जाता है।

महर्षि पिप्पलाद मुनि के छह जिज्ञासु

मेरे प्यारेमुझे स्मरण आती रहती है !ऋषिवर !, तप की वार्त्ता। देखो, तप मानव का विचार है, मानव का आहार और व्यवहार है क्योंकि जब आचार्य तपता है, तो आहार और व्यवहार से तपा करता है, परन्तु हमारे यहाँ परम्परा तप करने के लिए कहती है। मुझे स्मरण है, बेटाजब महर्षि पिप्पलाद मुनि के आश्रम में रेव !क इत्यादि छह जिज्ञासु पहुंचे और कहा कि प्रभु !आपकी शरण में आए हैं। उन्होंने कहा कि क्या चाहते हो? उन्होंने कहा कि प्रभु !हम ऋत को जानना चाहते हैं, ऋत किसे कहते हैं? उस समय महर्षि पिप्पलाद जी ने कहा, कि हमारे आश्रम का यह नियम है, कि यह चार सौ गऊएं हैं इनका एक वर्ष तक लालन पालन करो, उसके पश्चात् तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर

दिया जा सकेगा। यदि मैं जानता हूँगा।

तो मुनिवरोंदेखो !,उन ब्रह्म जिज्ञासुओं ने एक वर्ष तक नियम धारण किया !, कि गऊओं का पालन करें। गऊओं का लालन पालन करते थे। एक वर्ष हो गया, लालन पालन करते हुए। एक वर्ष के पश्चात् महर्षि पिप्पलाद के चरणों में ओत प्रोत हो गएं और कहा कि भगवन्हम यह जानना चाहते हैं !, कि ऋत किसे कहते हैं? उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर, क्या तुम यही जानना चाहते हो? उन्होंने कहा कि हां, महाराज तो ! उन्होंने कहा कि जिस शक्ति से तुमने एक वर्ष तक गऊओं का पालन किया, उसी शक्ति को हमारे यहाँ ऋत कहते हैं।

तो मेरे प्यारे कितना संक्षिप्त उत्तर है ऋषि का। !ऋषिवर !ऋषि ने कहा जिस आस्था से, जिन तरंगों से गऊओं का पालन किया है, संयम से रहे हो, उसी को ऋत कहा जाता है। आज हम ऋत को जानना चाहते हैं। ऋत नाम है तपस्या का। क्योंकि तपस्या एक रूप से ऋत का स्वरूप धारण कर लेती है। जब हम ऋत का वर्णन करते हैं, तो जिससे यह संसार क्रियात्मक हो रहा, उसी को ऋत कहा जाता है और दूसरा शब्द सत्यता में परणित होता है।

सत्य के तीन प्रकार

देखो, हमारे यहाँ तीन प्रकार के सत्य का विवेचन आता है एक तो अभावमय सत्य है, एक सत्य, , सत्य है, एक ब्रह्म सत्य है। एक तो वह जो प्रकृति हमें प्रतीत हो रही है वह सत्य है, परन्तु इसका अभाव भी होता है परन्तु इतना नहीं होता, यह सदैव सत्य रहती है। परन्तु एक अभावमय सत्य है। जैसे एक मेरे प्यारे ऋषि महानन्द जी दृष्टिपात ! आ रहे हैं, परन्तु कुछ समय के पश्चात् जब यह परमाणु रूप हो जाता है, तो उसी सत्य का अभाव हो जाता है। एक माता का पुत्र हमें प्रतीत होता है, शिष्य गुरु को प्रतीत हो रहा है, शिष्य के नेत्रों के समीप गुरुजन हैं परन्तु गुरुजनों का अभाव है क्योंकि उसका जो स्थूल शरीर है, वह नहीं रहेगा वह परमाणुवाद बन जाएगा, इसलिए वह स्वरूप जो हमें प्रतीत हो रहा था, वह सत् था। परन्तु सत् के आँगन में सत्यमयी

अभाव प्रतीत होता है। एक ब्रह्म सदैव सत्य रहता है। उसका किसी भी काल में अभाव नहीं होता।

तो मेरे प्यारेआज हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते चले जाएं !ऋषिवर !, जिसका किसी काल में भी अभाव नहीं होता। आज हम मानवत्व के सम्बन्ध में जब यह उच्चारण करने लगते हैं, कि वास्तव में मानव का जीवन क्या है, तो उसमें एक महानता प्रतीत होने लगती हैं, यहाँ एक मेरी प्यारी माता अपने प्यारे पुत्र के लिए व्याकुल हो रही है। परन्तु जब मैं यह प्रश्न करता हूँ, कि हे मातायह तेरा पुत्र जिसके लि !ए तू व्याकुल हो रही है, यह पुत्र तेरा कहाँ था, यह कहाँ चला गया? तो माता से कोई उत्तर नहीं प्राप्त होता क्योंकि वह मोह में परिपक्व है, मोह में इतनी लिप्त हो चुकी है, कि वह अपनेपन को समाप्त कर चुकी है। परन्तु हे मातातेरा जो पुत्र था !, वह कहाँ चला गया? उत्तर मिलता है, कि उसका मुझे प्रतीत नहीं। हे माता मैं यह जानना चाहता ! हूँ, कि तेरे जो पुत्र का निर्माण है, वह किस वस्तु से हुआ है? तो उत्तर मिलता है कि माता के गर्भस्थल में सूक्ष्म से बिन्दु से, इसका निर्माण होता है। जैसे पिप्पलाद ऋषि से उनकी पत्नी ने कहा था कि प्रभुहमार !ा जो यह मानव शरीर है, इसका किस वस्तु से निर्माण होता है? तो ऋषि से उत्तर मिलता है, कि इस मानव जीवन का जो निर्माण है, वह सूक्ष्म से बिन्दु से होता है। मानो जब हमारा यह शरीर उस रूप में नहीं था, तो माता के गर्भस्थल में विराजमान थे। माता के गर्भस्थल में पनप रहे थे। देवी ने कहा कि प्रभुजब हमारा यह मानव शरीर माता के गर्भस्थल में नहीं था !, तो उससे पूर्व यह परमाणु देखो, माता पिता के रज वीर्य के रूप में विराजमान थे। उन्होंने कहा कि हे भगवन्मैं यह जानना चाहती हूँ !, जब माता पिता के शरीरों में रजवीर्य भी नहीं थे, तो उससे पूर्व यह परमाणु कहाँ रहते थे? उन्होंने कहा कि यह परमाणु कुछ अन्न में थे, कुछ नाना प्रकार की वनस्पतियों में थे, उन्होंने कहा कि हे भगवन् मैं यह जानना ! चाहती हूँ, कि जब यह अन्न और वनस्पतियां भी नहीं थी, तो उससे पूर्व यह परमाणु कहाँ रहे थे? उन्होंने कहा कि यह परमाणु कृषक की भूमि में ललाहित हो रहे थे। उन्होंने कहा कि भगवन्जब यह कृषक की भूमि भी नहीं थी !, उससे पूर्व यह परमाणु

कहाँ रहते थे? उन्होंने कहा कि यही परमाणु पृथ्वी में बिखरे हुए थे। उन्होंने कहा भगवन्क्या यह पृथ्वी के ही परमाणु हैं !? उन्होंने कहा कि कदापि नहीं, मानो कुछ अन्तरिक्ष के परमाणु हैं, कुछ जल के परमाणु हैं, कुछ वायु के परमाणु हैं और कुछ अग्नि के परमाणु और कुछ पृथ्वी के परमाणु। यह पञ्च महाभूतों का पिण्ड माना गया है और इन परमाणुओं को सुगठित करने वाला, इस शरीर में जीवात्मा रहता है। जीवात्मा इन परमाणुओं को सुगठित करने वाला है। जब इस शरीर से यह जीवात्मा चली जाती है, उस समय यह परमाणुओं का पिण्ड रह जाता है परन्तु क्रिया से शून्य रह जाता हैं इसी को अग्नि के मुखारविन्द, में अर्पित कर दिया जाता हैं, अग्नि के परमाणु अग्नि में चले जाते हैं, जल के परमाणु जल में चले जाते हैं, वायु के परमाणु वायु में चले गए, अन्तरिक्ष के परमाणु अन्तरिक्ष में चले गए, और पृथ्वी के परमाणु पृथ्वी में रमण कर गए। देखो, संसार में कोई वस्तु नष्ट होती ही नहीं। परन्तु स्थूलता का जो दृष्टिपात आ रहा था, उसका अभाव हो जाता है।

तो तीन प्रकार के सत्यों में यह मानव शरीर भी सत्य है। परन्तु इसकी सत्यता में भी अभाव रहता है। इसका परमाणु रूप हो जाता है। स्थूलता में प्रतीत होता है, तो इसका अभाव प्रतीत नहीं होता। इसलिए वेद के शिष्यों ने कहा है, आचार्य जनों ने कहा है, कि यह जो प्रकृति है, यह भी सत् है। इसका रूपान्तर होता रहता है। आज यह स्थूल रूप में हैं, परन्तु प्रलय काल आता है, तो यह सूक्ष्म रूप में परणित हो जाती है। यह बह्म के गर्भ में चली जाती है। एक ब्रह्म है, जो सदैव चैतन्य, क्रियाशील, ज्ञान स्वरूप रहता है। उस ब्रह्म का किसी काल में भी अभाव नहीं होता।

ऋत और सत् में रमण

तो मेरे प्यारे आज वाक्य उच्चारण करते करते कितनी दूरी चला गया हूँ। !ऋषिवर ! हम ऋत की व्याख्या करते जा रहे थे। ऋत नाम ब्रह्म को कहा गया है। ब्रह्म नाम चैतन्य शक्ति को कहा गया है क्योंकि उसी के आश्रित हम सब जकड़े रहते हैं, उसी में कटिबद्ध रहते हैं, इसलिए वेद के ऋषियों ने कहा है कि हम सदैव ब्रह्म के आँगन में

ऋत और सत् में रमण करते रहते हैं। ऋत क्या है? आज हमें ऋत को जानना है। शिष्य और गुरु जब दोनों विराजमान होते हैं, तो ऋत और सत् का विवेचना करते रहते हैं, मानो वह अपने जीवन की प्रतिमा को जानते हैं। दोनों तपे हुए होते हैं।

हमारे यहाँ, परम्परागतों में यह माना गया है, कि प्रथम हमारे यहाँ गुरु और शिष्य दोनों को तपस्वी बनाने के लिए आज्ञा दी जा रही है। हे गुरुओं तुम्हें वास्तव में ! मनोवैज्ञानिक बनाना है। तुम्हेंऐसा मन का विज्ञान अपने समीप लाना है, जिस से तुम ब्रह्मचारी को अच्छा चुन सको, क्योंकि ब्रह्मचारी का चुनना ही होता है। अधिकार अनधिकार को विचार विनिमय करना होता है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय ! कहा था, कि संसार में जब से अधिकार अनधिकार चेष्टा चली गई है तभी से यहाँ संसार में बुद्धिमानों का अभाव होता चला जा रहा है, क्यों होता चला जा रहा है? क्योंकि अधिकार अनधिकार को नहीं विचारा जा रहा है, उस पर विवेचना नहीं किया जाता। यदि विवेचन किया जाता, तो यह संसार इतने गढ़ले में नहीं जाता, इसमें सुन्दरवाद होता। उच्चारण करने का अभिप्राय है, कि हे गुरूजनोंतुम्हें उत्तम बनना है !, तपना है और तपने के पश्चात् ब्रह्मचारी को तपाना है और उस शिक्षा, संस्कृति को अपनाना है, जिस संस्कृति में ऋषित्व हो, जिस में विडम्बना नहीं, विवेक होना चाहिए। उसमें अशुद्धवाद नहीं होना चाहिए।

बुद्धिमानों का कर्तव्य

मेरे प्यारेजब अपभ्रंश शब्द हो जाते हैं !ऋषिवर !, तो बुद्धिमानों का कर्तव्य है कि उन शब्दों का शोधन कर लेना चाहिए। राष्ट्र की अनुमति लेकर के, उनका संशोधन करना, यह हम सभी बुद्धिमानों का कर्तव्यवाद कहलाता है, क्योंकि शिक्षार्थी और गुरुजन वही होते हैं, जिनका दोनों में परस्पर प्रीति और स्नेह और एक दूसरे के कर्तव्य पालन उनमें विशेषकर होता है। तपे हुए होते हैं, तो जब उनके विचारों में तप का विवेचन होता है, तप की भावना होती है, तो शिक्षालयों में एक महानता की ज्योति प्रदीप्त हो जाती है, चरित्रवाद की प्रतिमा होती है, द्वेष की मात्रा नहीं होती, वहाँ सदैव आस्था वाला, जो

जो ऋत है, उसका श्रोत प्रोत होता रहता है।

तप से जीवन

तो मेरे प्यारेश्राज का हमारा यह वाक्य क्या कहता चला जा रहा है !ऋषिवर !, मैं कोई अधिक वाक्य उच्चारण करने नहीं आया हूँ। केवल यह वाक्य उच्चारण करने के लिए आ पहुंचे हैं, कि हमारा जीवन वास्तव में तपना चाहिए। बेटा !जब यह संसार तपता है, तो तापने के पश्चात ही संसार में कोई वस्तु आती है बेटा! जब पृथ्वी माता ग्रीष्म ऋतु में तपा करती है, तो तपने के पश्चात् इसमें जीवन की प्रक्रिया आती है, जीवन प्राप्त होता है। जब वर्षा ऋतु में मेघों से वृष्टि होती है, उस समय नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होता है। यहीं तक नहीं, यह खनिज पदार्थ भी, इसी तपने से प्राप्त होते हैं। जहाँ यह पृथ्वी अधिक तप जाती है, वहाँ सूर्य से उन किरणों की प्रतिमा इसमें आना प्रारम्भ हो जाती है, कि नाना प्रकार की धातुओं का जन्म होता है। इस पृथ्वी में कितनी विभाजन क्रिया प्रतीत हो रही है। एक सूक्ष्म से स्थान पर नाना प्रकार की वनस्पतियां होती हैं, उनके नाना प्रकार के स्वादन होते हैं। उसमें विभाजन क्रिया है, उसमें मनसतव है, मनसतव जो पृथ्वी में विराजमान है, उसी से रसों का विभाजन होता रहता है, प्राण की सत्ता से। पृथ्वी के परमाणुओं में, पृथ्वी के कणों में, नाना प्रकार का रस स्वादन होता है। जिस पृथ्वी में कसैला, कसैले में कड़वापन होता है कड़वापन में धिवा मधुर होता है, वहाँ जानो, स्वर्ण जैसी धातु का जन्म होगा।

तो मेरे प्यारेवाक्यों का अभिप्राय यह है !ऋषिवर !, कि हमें यह जानना है, यह विचारना है, कि यह पृथ्वी जब तपा करती है, तो नाना प्रकार के खाद्य और खनिज पदार्थों का इसी से जन्म होता है और इसी से हमारा जीवन महान बना करता है। आज हमें विज्ञान के क्षेत्रों में जाकर के विचारना है, तप के क्षेत्र में विचारना है, कि यह जो प्रभु मनसतव, इसको विचारना है। यह सब ऋत का ही वर्णन है, इन सब में ऋत रमण

करता रहता है।

प्रकृति का तप

आओ मेरे प्यारेसूर्य की नाना किरणें तपा करती हैं !ऋषिवर !, समुद्र को तपाती हैं। समुद्र से जलों का उत्थान होता है, जल से मेघ बनते हैं, मेघों से उत्तम वर्षा होती है, उससे समुद्रों में महानता की ज्योति जाग्रत हो जाती है। उसी से जीवन उन्नत बना करता है, उसी से मानव जीवन में रस आता है, आनन्दत्व आता है। तो हमें विचारना है कि सर्वस्व वस्तु तपा करती हैं।

महर्षि अगस्त्य मुनि

तो मेरे प्यारेमानव !ऋषिवर !, मानव का जीवन तप में होना चाहिए। मेरे प्यारी माता जब विचारों से तपती है, तो कणाद और गौतम को जन्म देती है। मुझे स्मरण है, बेटाजब महर्षि अगस्त्य मुनि ! का जन्म हुआ माता सुमेनलता के गर्भ में महर्षि अगस्त्य मुनि जी थे। उस समय माता तपा करती थी, विचारों में तपा करती थी, विवेक में तपा करती थी। उस माता के गर्भ से अगस्त्य जैसी महान विभूति का जन्म हुआ। तो मेरे प्यारे संसार में प्रत्येक वस्तु तप चाहती है। तपना चाहिए। शिक्षालयों !ऋषिवर ! में जब ब्रह्मचर्य सेतपते है तपने का अभिप्राय क्या है? ब्रह्मचारी कौन होता है? जो बेटाब्रह्म विद्या में चरता है। ब्रह्म विद्या को चरने वाला !, जैसे पशु पृथ्वी में से नाना प्रकार की वनस्पतियों को चरता है, इस प्रकार जब ब्रह्मचारी ब्रह्म विद्या को चरता है और ब्रह्मचर्यत्व उसमें समीप होता है, तो उसका जीवन महानता में तपा हुआ होता है।

गुरु का तप

तो मेरे प्यारेआज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है !ऋषिवर !, कि तपना चाहिए। तप उसे कहते हैं जहाँ मान अपमान नहीं होता, जहाँ गुरु की शरण में रहा जाता है और गुरु कैसा तपा हुआ, कि गुरु उसे अपने गर्भ में धारण कर लेता है। जब गुरु अपने आँगन में धारण कर लेता है, उसको शिक्षार्थी बना लेता है, और कहता है चक्षुम्मे शुन्धामी, प्राण मे अनुसन्धानी, श्रोत्रम् मे अनुसन्धामी। हे बालक तू मुझे !हे ब्रह्मचारी !

अपनी इन्द्रियों को अर्पित कर। आज मैं तेरे चक्षुओं को सुन्दर बना रहा हूँ, इनका शोधन कर रहा हूँ। आचार्य सब से प्रथम यह उपदेश देता है, कि हे ब्रह्मचारी अब तू ! गुरु के आँगन में आ गया है, अब तू इन्द्रियों को तपा। इन्द्रियों को तपाना है, ज्ञान से, विवेक से, मानो इसमें विडम्बना नहीं आनी चाहिए, इनमें तप होना चाहिए।

तो मेरे प्यारेआज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है !ऋषिवर !, कि संसार में तप होना चाहिए। हमारे यहाँ तप नहीं होगा, तो जीवन में कोई सार्थकता नहीं होगी। तो आओ, हम सर्व इन्द्रियों का शोधन गुरु की शरण में करना चाहते हैं, परन्तु इतना बुद्धिमान होना चाहिए, उसका स्वयं का जीवन तपा होना चाहिए। यदि गुरु का जीवन तपा हुआ नहीं होगा, तो वह ब्रह्मचारी को भी नहीं तपा सकेगा। तपा वही सकता है, जिसका स्वयं का जीवन तपा हुआ होगा, विचारों में तपा हुआ, ब्रह्मज्ञान में तपा हुआ, मानो सांसारिक व्यापार में तपा हुआ, राष्ट्र विधान में तपा हुआ हो, वही ब्रह्मचारी को तपा सकता है और उज्ज्वल बना सकता है।

मानव की प्रतिभा में ज्ञान

तो मेरे प्यारे आज का हमारा यह वाक्य क्या कह रहा है। हमें वास्तव में !ऋषिवर ! अपने जीवन को उन्नत बनाना है, पवित्र बनाना है। हमारे यहाँ, आचार्यों के यहाँ अधिक विद्या की आवश्यकता नहीं है। संसार में जो ज्ञान है, विवेक है, बहुत सूक्ष्म सा है। नाना प्रकार की पोथियों में नहीं है, वह मानव के विचारों में विराजमान रहता है। मानव की प्रतिभा में विराजमान रहता है। हमें यह विचारना है कि हमें अपनी प्रतिभा को ऊँचा बनाना है, महानता की ज्योति को ऊँचा बनाना है, जिससे हम प्रभु की उस महानता को, उस विचारमयी जीवन को, विचार सकें, जिस महानता से प्रभु ने इस जगत् और ब्रह्माण्ड की रचना की है यह जो जगत् हमें प्रतीत हो रहा है, इसकी रचना में क्या क्या तत्त्व है, इन सबको विचारना हमारा कर्तव्यवाद कहलाया गया है, और उस कर्तव्यवाद में धर्म परणित रहता है, इसी में धर्म की प्रतिभा होती है, जब जिज्ञासुओं ने कहा था, कि प्रभुक्या ऋत इसी को कहते हैं !, तो ऋषि ने कहा था, ऋतचम् ब्रह्मे

प्रभा कृति मानो देखो, जिस शक्ति से तुम क्रिया करते हो, तपते हो, इस तपने का नाम ही मानो ऋत कहलाया जाता है। ब्रह्म ज्ञान में जो तप लेता है, ब्रह्मचर्य में जो विचरण कर लेता है। बेटाउच्चारण करने का अभिप्राय यह है !, कि रसों की रक्षा करना ही ब्रह्मचर्य नहीं कहलाया जाता है, ब्रह्मचारी वह होता है, जो ब्रह्म का चिन्तन करता है, ब्रह्म के ऊपर विचार विनिमय करता है।

ब्रह्म में विचरण

तो मेरे प्यारेआज के इन वाक्यों का अभिप्राय यह !ऋषिवर !, कि हम ब्रह्म की याचना करते हुए सदैव अपने मानवत्व को जानते हुए, ब्रह्म में विचरण कराते हुए और अपने मानवत्व को जानते हुए, कि हमारा मानवत्व है क्या? मेरी प्यारी माता कितनी व्याकुल हो रही है, एक पुत्र के बिछुड़ जाने के पश्चात्, परन्तु हे माता यह जो तेरा पुत्र है ! क्या, जब यह कोई वस्तु नष्ट होती नहीं, तो अज्ञान में क्यों व्याकुल हो रही है? यह सब अज्ञान है। इसलिए कहा है, कि तपना चाहिए। हे माता तू अपने विचारों को ! !तपा। हे मानवतू अपने विचारों को तपा, व्याकुल न हो, क्योंकि संसार में किसी वस्तु का अभाव नहीं होता, परन्तु उसका रूपान्तर होता रहता है, उस रूपान्तर में अभाव स्वीकार कर लेता हैं, परन्तु यदि गम्भीरता से, विवेक से, विचार विनियम किया जाता है, तो मृत्यु जो शब्द है, वह अज्ञानता का प्रतीक माना गया हैं, आज के इन वाक्यों का अभिप्राय यह है, कि हम प्रभु की याचना करते हुए, उस महादेव की याचना करते हुए, अपने मानवत्व को उन्नत बनाते चले जाएं, प्रभु के जगत में आए हैं, माता वसुन्धरा के गर्भ में है, हम वास्तव में उस माता की याचना करते हुए, उसको बारम्बार नमस्कार कर रहे हैं और नमस्कार करके अपने वाक्यों को समाप्त करने जा रहे हैं।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो प्रभु !

पूज्यपाद गुरुदेवः तो मुनिवरों आज का यह वाक्य समाप्त होने गया। कल मुझे समय ! मिलेगा तो अधिकार अनधिकार के ऊपर विचार विनिमय किया जाएगा। यह पूर्व काल में भी मैंने विचार दिए हैं, कल भी मुझे सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। तो यह बेटा आज !

का वाक् । अब समय मिलेगा, तो शेष चर्चा कल प्रकट करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः गुरूदेव वाक्य तो बहुत सुन्दर परन्तु समय बड़ा सूक्ष्म। !

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्यचल .....ो, बेटाकल समय मिलेगा !, तो अधिक चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। (हायर सैकेन्डरी स्कूल खन्ना में दिया हुया प्रवचन ए0एस0)

२० 09 04 1969 अधिकार अनधिकार चेष्टा

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति !, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहां नित्य प्रति मानवत्व को सुगठित बनाने के लिए कुछ वाक्यों का प्रतिपादन किया जाता है। आज हम परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन करते चले जा रहे थे, जो सर्वज्ञ, सच्चिदानन्द, सर्वेश्वर है, जिसकी महिमा का गुणगान गाते हुए, आदि ऋषि मुनि इस संसार सागर से पार हो गए हैं। प्रत्येक मानव को विचार विनिमय करना है, कि आज हमें उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाना है, जो सदैव अन्तःकरणों में विराजमान है। परमात्मा का आह्वान कहां कर सकते हैं, जब परमात्मा सर्वत्र विराजमान है हमारे यहां उस ? परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन आ रहता है। हम सभी अनुभव किया करते हैं, कि उस परमपिता परमात्मा की जो अनुपम देन है, उसी के प्रकाश में यह ब्रह्माण्ड अपना कर्तव्य करता चला जा रहा है।

हमारे यहां वेद की परम्पराओं में आता है, कि हम आत्म उन्नति करने के लिए आते हैं। यह जो संसार क्षेत्र है, जो हमें दृष्टिपात आ रहा है, यहां प्रत्येक मानव किन्ही विषयों में व्याकुल होता रहता है। कोई अविद्या में व्याकुल हो रहा है, कोई मेरी प्यारी माता पुत्रों में व्याकुल हैं और कोई कोई पुत्र होते हुए व्याकुल है, तो यहां संसार मुझे एक संघर्ष प्रतीत होने लगता है। परन्तु जहां यह विचारने लगते हैं, कि विद्यार्थी इस लिए दुखित है, कि उस सांत्वना नहीं प्राप्त होती, परन्तु सांत्वना कैसे प्राप्त हो उसकी ? चंचलता, उदण्डता कैसे समाप्त होतो आचार्यजन कहता है ?, कि जब आचार्य शक्तिशाली होता है, उसके मन में मनस्तव होता है, केवल दण्ड का, दण्डित करने वाला नहीं

परन्तु भुजों में विद्या का सुन्दर दण्ड होता है, तो वह अपने उज्ञवल भाव से, ज्ञान रूपी डन्डे से, उसको अपने प्रभाव में ला सकते हैं, तो यहां भिन्न भिन्न प्रकार की वेदनाएं मानव के मस्तिष्कों में रहती हैं। यह वेदनाएं कैसे समाप्त हों इन वेदनाओं का मूल ? अज्ञान। क्योंकि ज्ञान के आंगन में पंहुचने के पश्चात मानव का हो ?कारण क्या है हृदय पटल है, प्रकाशमयी ज्योति है, वह उद्बुद्ध होती हुई मानव को प्रकाश में ला देती है।

मनोवैज्ञानिक

मुनिवरोंमैं महानन्द जी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा करता हूँ !, कि संसार को उन्नत बनाने के लिए, मानव को कर्तव्य अकर्तव्य पर विचार विनिमय करना होगा, क्योंकि एक राजा है परन्तु उस राजा के द्वारा नाना प्रकार के दोष हैं और एक दोष इस प्रकार का है, जो संसार और समाज में व्यापक बन करके समाज को दूषित कर सकता है, परन्तु किन्हीं के ऐसे पुण्य होते हैं, जो मानव दोषों को दबा करके और वह उन्नत बनाने में सदैव सफल हुआ करते हैं। तो अधिकार अनधिकार के ऊपर हमारे ऋषि मुनियों ने बडा सुन्दर बल दिया है और यह कहा है कि हे मानव तुझे समाज ! को उन्नत बनाना है, राष्ट्र को उन्नत बनाना है, शिक्षालयों को ऊँचा बनाना है। तो उनके लिए अधिकार अनधिकार चेष्टा कर लेने में किसी प्रकार का दोषारोपण नही होता। परन्तु जहां मानव यह विचारता रहता है, कि मैं आज अधिकारी अनधिकारी के ऊपर निरीक्षण कर सकूं, तो निरीक्षण करने का क्या विधान है मानव के द्वारा क्या नियम ? है, कि आज हम उसकी जानकारी कर सकें तो वेद के ऋषि ने कहा है वेदाम् मया ? वृक्षम प्रभा वसु नक्षम् प्रमेह कश्यंत रुद्राः न तपा न ब्रह्मे वेद का आचार्य कहता है कि यदि उसे जानकारी करनी है, अधिकारी के लिए तो उसे मनोवैज्ञानिक होना चाहिए। उसके द्वारा मन की शक्ति होनी चाहिए।

रावण का राज्याभिषेक

त्रेता के काल में भगवान राम जब वशिष्ठ मुनि के आश्रम में पंहुचे, तो वशिष्ठ मुनि के

मनोविज्ञान से विचारा कि शिक्षा का अधिकारी है अथवा नहीं। जब यह विचारा गया कि वास्तव में यह अधिकारी है, विचारशील है और धनुर्विद्या का अधिकारी है और ब्रह्मवेत्ता भी यह बन सकता है तो उसके पश्चात उसे स्वीकार किया गया। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह है कि सबसे प्रथम हमारे यहां अधिकारी गुरु होना चाहिए। हमें अपने जीवन को उन्नत बनाने के लिए अधिकार अनधिकार चेष्टा करनी है, क्योंकि अधिकारी ही संसार में पवित्र होता है और अनधिकारी संसार में भ्रष्टता को प्राप्त होता रहता है। इसी प्रकार राजा उसी को चुनना चाहिए जो राष्ट्र का अधिकारी हो। बेटा ! उस ?उसको कौन चुनता हैको भी शिक्षक ही चुने, उसको भी चुनने वाले वुद्धिमान ब्राह्मण बनें। जब बुद्धिमान ब्राह्मण राजा को चुना करते हैं, तो राजा सुन्दर और श्रेष्ठ होता है और प्रजा के लिए हितकर होता है, जिस राजा को साधारण अशिक्षित प्रजा चुनती है, वह राजा प्रजा को उन्नत बना ही नहीं सकता। वह राजा विचारवान नही होता, क्योंकि राजा को विचारवान् बनाता है ब्राह्मण क्योंकि ब्रह्मे व्यापम् ब्रह्मे अस्ति जो ब्रह्मविद्या में पारांगत होता है, ब्रह्मविद्या में जिसकी परमगति होती है, वही राजा को उन्नत बना सकता है अन्यथा यहां अनधिकारी को चुनते रहो, तो समाज में नाना प्रकार की क्रान्ति आती रहेंगी, समाज में शान्ति नहीं होगी, भ्रष्टाचार का का एक अंग बनता चला जाएगा।

बेटामुझे त्रेता के काल की एक वार्ता स्मरण आती रहती है !, जब राजा रावण ने बेटा राजा रावण का बाल्यकाल का नाम वरुण था जब उस वरुण ने पवन की ! सहायता ले करके और भी राजाओं की सहायता ले करके लंका के कुबेर को विजय कर लिया था। कुबेर हिमालय की कन्दराओं में चला गया था, मानो समुद्र से दूर चला गया था, जब कुबेर लंका को त्याग करके चला गया, तो उस समय वरुण ने महाराजा महिदन्त से कहा कि महाराज! मैंने लंका को विजय किया है। महाराज महिदन्त ने महाराजा पुलस्त्य ऋषि को निमन्त्रण किया। पुलस्त्य ऋषि महाराज ने कहा कि महाराज! अब क्या करना चाहिए। उन्होंने कहा कि भाई विचार लो। तो विचारा गया और राजा महिदन्त ने कहा कि मेरे हृदय की ऐसी वेदना है, कि इस वरुण ब्रह्मचारी को राजा की

चुनौती प्रदान कर देनी चाहिए। लंका का धिराज बना देना चाहिए। जब यह वाक्य उनके मस्तिष्क में आया तो महर्षि पुलस्त्य महाराज ने कहा कि बहुत सुन्दर। तो महर्षि पुलस्त्य ने आदि ऋषियों का एक समूह एकत्रित किया, जिसमें महर्षि पणपेतु जी, महर्षि पांगनानि, महर्षि कुक्कुट, महर्षि कुरांहाणड, महर्षि देवान्त आदि ऋषियों का एक समूह एकत्रित हुआ। जिसमें महर्षि दालभ्य और पिप्लाद भी थे। जिसमें महर्षि गारपथ्य और प्रिति, और कामातुत, महर्षि लोमत इत्यादि भी विराजमान थे। उस समाज में महर्षि पुलस्त्य ऋषि महाराज अर्वित हुए और उन्होंने आदि ऋषियों को नमस्कार करके कहा कि महाराज महिदन्त की ऐसी प्रबल इच्छा है कि यह जो वरुण ब्रह्मचारी है, इसको लंका का धिराज बना देना चाहिए। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर। उस सभा का कुक्कुट मुनि महाराज को निमन्त्रण दे करके, सभापति बनाया गया। जब सभापतित्व होने लगा, उस समय महर्षि पुलस्त्य ऋषि जी ने कहा कि महाराज! आप दो शब्दों में उच्चारण कीजिए कि इसका राज्यभिषेक होना चाहिए।

महर्षि कुक्कुट मुनि द्वारा राज्याभिषेक में असमर्थता

महर्षि कुक्कुट मुनि बोले कि मेरा तो हृदय ये कह रहा है, कि यह जो वरुण ब्रह्मचारी है, यह इस लंका का धिराज बनने का अधिकारी नहीं है, क्योंकि इसमें आगे चल करके देखो, समाज में दुराचार के अंकुर उत्पन्न हो जाएंगें, यह महान नही रह सकेगा। महर्षि पुलस्त्य ऋषि जी ने कहा तो क्या करना चाहिए? उन्होंने कहा कि भाई! मैं सभापतित्व को नहीं अपनाऊंगा, क्योंकि मैं अनधिकारी को अधिकारी नही बना सकता, इसमें मैं असमर्थ रहता हूँ। जब कुक्कुट मुनि के यह विचार हुए, तो पुलस्त्य ऋषि महाराज ने महर्षि सोम और गारपथ्य को कहा, दालभ्य को कहा, कि महाराज! आप राज्याभिषेक कीजिए। दालभ्य जी ने कहा कि महाराज जब महर्षि कुक्कुट जैसे इसमें मुनि असमर्थ हैं तो भगवन हम इनसे पहले असमर्थ रहते हैं। जब यह वार्ता प्रारम्भ ! हुई और इन वार्ताओं की विवेचना चलती रही, तो यह हुआ कि महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज ने अपने उस आसन को त्याग दिया। आसन त्याग देने के पश्चात महर्षि पुलस्त्य

ऋषि महाराज ने महाराजा महिदन्त से ये कहा कि अब क्या करना चाहिए उन्होंने ? मेरी ऐसी इच्छा बन रही है !कहा कि प्रभु, कि ये जो वरुण ब्रह्मचारी है, ये अधिकारी है और मेरा हृदय कह रहा है कि इसका राज्याभिषेक करना चाहिए। कुक्कुट मुनि नहीं हैं तो आप तो हैं।

तो मुनिवरों महर्षि पुलस्त्य जी ने कहा !कि मैं राज्याभिषेक नही करुंगा क्योंकि यह मेरा पौत्र है। तो मुनिवरों राजा स्वन्धकेतु ने उनका राज्याभिषेक किया और राज्याभिषेक ! करने के पश्चात उसी वरुण का नाम आगे चल करके रावण नियुक्त किया गया। मानो रावण को लंका का धिराज बनाया।

तो मेरे प्यारेजब लंका !ऋषिवर ! का धिराज बनाया, तो मुझे यह वाक्य इसलिए उच्चारण करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है, कि अधिकार अनधिकार के ऊपर विवेचना चल रही थी। वास्तव में ब्राह्मण को अधिकार अनधिकार को विचारना है। यहाँ योग परम्पराओं में ब्रह्म ज्ञान में विवेचना होती रहती है, मैं भी किया करता हूँ, आत्म उन्नति के सम्बन्ध में। कल मैंने कुछ सूक्ष्म सा तप के ऊपर विवेचन दिया, कि आज तपस्या हमारे समीप होनी चाहिए, क्योंकि बिना तप के मानव मनोविज्ञान में भी नही पंहुच सकेगा। इसीलिए तप होना चाहिए।

जाबाला पुत्र सत्यकाम

मेरे प्यारेहमारे यहां आच !ऋषिवर !ार्जनों के नाना वाक्य आते रहते हैं। जब यहां देखो, जाबाला पुत्र सत्यकाम महर्षि गौतम के आश्रम में पंहुचें तो गौतम जी ने कहा कि हे बालकमैं आपका शिष्य बनने के लिए !उन्होंने कहा कि प्रभु ?कैसे आए !, ब्रह्म विद्या का पान करने के लिए आया हूँ। उन्होंने कहा कि भाई! तुम्हारा गौत्र क्या है ? तो हमारे यहां एक परम्परा आती है, कि आचार्य कुल में जब ब्रह्मचारी जाता है, तो आचार्य उसके गौत्र का प्रश्न करता है, तो ब्रह्मचारी ने कहा कि प्रभु मुझे मेरे गौत्र का ! ज्ञान नहीं हैं, मैं इसका निर्णय माता से करके आपके शरण में आता हूँ। तो जाबाला पुत्र सत्यकाम जाबाला के समीप पंहुचा और कहा माताआचार्य ने कहा है !, कि तुम्हारा

गौत्र क्या है? उन्होंने कहा कि हे सत्यकाम्आचार्य से उच्चारण कर देना !, कि मुझे मेरे गोत्र का ज्ञान नहीं। मैंने नाना महापुरुषों की सेवाएं कीं हैं। सत्यकाम् इस वाक्य को ले करके जब आचार्य कुल में पंहुचा, तो आचार्य ने कहा कि बोलो हे ब्रह्मचारी तुम्हारा ! मुझे मेरे गोत्र का ज्ञान नहीं !उन्होंने कहा कि प्रभु ?गौत्र क्या है, माता ने ये कहा है कि प्रभुमुझे भी गौत्र का ज्ञान नहीं है !, क्योंकि मैंने नाना महापुरुषों की सेवाएं की हैं। जाबाला पुत्र के इन वाक्यों को पान करते ही ऋषि ने कहा ब्रह्मचारी! तुम तो वास्तव में ब्राह्मण हो। ब्राह्मण की उपाधि प्रदान की, क्योंकि सत्यवादी ब्राह्मण होता है। जो सत् का पथिक होता है, जिसे सत्य के उच्चारण करने में मान अपमान की मात्रा नहीं होती वह वास्तव में ब्राह्मण कहलाया जाता है।

सत्यकाम की परीक्षा

तो मेरे प्यारे जब सत्यकाम को !ऋषिवर !ब्राह्मण की उपाधि प्रदान कर दी, रात्रि का समय था, परन्तु गौतम जी ने यह विचारा कि तुमने इस ब्रह्मचारी को ब्राह्मण तो कहा है परन्तु वास्तव में ये ब्राह्मण है अथवा नहीं, इसका भी तो चिन्तन करना चाहिए। गौतम को सर्वस रात्रि हो गई, चिन्तन करते हुए। प्रातःकाल हुआ और जब ब्रह्मचारी आश्रम में आया, तो कहा कि प्रभुजाओ !महर्षि गौतम ने कहा कि हे ब्रह्मचारी ?कोई आज्ञा !, ये मेरे द्वार पर चार सौ गऊएं हैं, इन्हें ले जाओं और जब तक ये एक सहस्र नहीं हो जाएगी, मेरे आश्रम में नहीं आना। तो मुनिवरों हमारे यहां अधिकारी अनधिकारी की ! परीक्षा ली जाती है, परम्परागतों से। हमारा वेद कहता है कि वास्तव में हमें विचारना चाहिए इसी का नाम वेदत्र प्रमाणाः अस्तेः बेटा ब्रह्मचारी ने उस वाक्य को स्वीकार ! कर लिया। गऊओं को ले करके भयंकर वन में जा पंहुचा। मैं इनका वर्णन तो पूर्व काल में कर चुका हूँ। बेटा सत्यकाम ने उन गऊओं की सेवा करते करते ब्रह्मज्ञान ! हो गया था। सबसे प्रथम इन्हें कलाओं का ज्ञान जिनको पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उतरायण, ध्रुवा, ऊर्ध्वा और पृथ्वी इत्यादि जितनी कलाएं हैं, सबका ज्ञान एक वृख ने उन्हे कराया था। वायु देवता ने उसे पारंगत कराया। वाक्य संक्षिप्त देना चाहता हूँ, कि ब्रह्मचारी

सत्यकाम गुरु के आश्रम पर आते आते ही बेटा पूर्ण पारंगत ब्रह्म ज्ञान में परणित हो ! गया था। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायःक्या है, कि सत्यवादी ब्राह्मण कौन होता हैब्राह्मण वही होता है ?, जिसके अन्दर ब्रह्मणत्व होता है, जो सत्य का पथिक होता है। सत्य के उच्चारण करने में जिसके द्वारा मान अपमान नहीं होता, वह वास्तव में ब्राह्मण कहलाया जाता है।

मेरे प्यारे वह ब्राह्मण यह !ऋषिवर !जानता है, कि वह जो ब्रह्म है, जिसका तू उपासक है, जिसका तू जिज्ञासु है, उसे मान अपमान नहीं होता, इसीलिए जो ब्राह्मण, परमात्मा का जिज्ञासु है, परमात्मा का पथिक है, बेटाउसे भी मान अपमान नहीं होता !, इसीलिए उसे ब्रह्मवेत्ता कहा जाता है।

तो आओ, मेरे प्यारेऋष !िवरमुझे एक वार्ता स्मरण आती चली जा रही है !, जो वाक्य मैं उच्चारण करने वाला था, मैंने पूर्व भी कई स्थलों में वर्णन करते हुए कहा है, आज भी मुझे स्मरण आता चला जा रहा है। मेरे प्यारे महानन्द जी यह कहा करते ! हैं, कि आज का संसार कहीं चन्द्रमा में जा रहा है, कहीं बुद्ध में जाने के लिए तत्पर हो रहा है कहीं शुक्र कि कल्पना की जा रही है परन्तु मैं यह कहा करता हूँ, अपने प्यारे महानन्द जी से कि हे बेटायह संसार चन्द्रमा में चला जाओ !, शुक्र में चला जाओ, परन्तु इस जाने से बनता कुछ नहीं है, जब तक मानव के द्वारा अपनी मानवता उसके साथ नहीं होगी।

राजा रावण को अशान्ति

मुझे त्रेता के काल की एक वार्त्ता स्मरण होती चली जा रही है जिसका शीर्षक ले करके मैं चला था। अधिकार अनधिकार की वार्त्ता प्रकट कर रहा था बेटा वाक्य यह ! चल रहा था मैं सत्यकाम की चर्चापर चला गया, परन्तु मैं तो संक्षिप्त परिचय यह देने वाला था कि राजा रावण की ही चर्चा।

बेटा एक समय राजा रावण मन्त्रीमण्डल में विराजमान थे। उन्हें आत्मिक अशान्ति ! मैं भयंकर वन में जा रहा हूँ !आ गई। राजा रावण ने कहा कि हे मन्त्रियों, किसी

महापुरुष के दर्शन करने के लिए क्योंकि मैं आत्मिक शान्ति चाहता हूँ। मंत्रियों ने कहा कि भगवानबहुत सुंदर !, तो राजा रावण ने मन्त्रियों को त्याग करके भयंकर वन को प्रस्थान किया। इस वाक्य को मैं पूर्व काल में भी उच्चारण कर चुका हूँ। आज भी मुझे स्मरण आता चला जा रहा है।

बेटा राजा !रावण भ्रमण करते हुए भयंकर वन में जा पंहुचें। भ्रमण करते हुए वह कुक्कुट मुनि आश्रम में जा पंहुचें। महर्षि कुक्कुट मुनि ने रावण को बडा सुन्दर आशीर्वाद देकर के उसे आसन दिया। वह विराजमान हो गए। राजा रावण ने कहा प्रभु आप कोई ! वार्त्ता प्रकट कीजिए। दोनों का विचार विनिमय हुआ। राजा रावण ने कहा कि प्रभु ! मेरी इच्छा है, कि आप मेरे राष्ट्र को चलें और मेरी लंका का निरीक्षण करें। उन्होंने कहा कि हे रावणमुझे इतना समय नहीं है !, जो मैं तुम्हारी लंका का निरीक्षण करूं, क्योंकि तुम्हारी लंका तो बडी विचित्र है। तो रावण ने कहा कि भगवन मेरी ऐसी ! इच्छा है, कि आप लंका को एक बार अवश्य दृष्टिपात करें।

प्रायः ऐसा होता है, कि ऋषियों का हृदय उदार होता है। रावण के अधिक वन्दना करने के पश्चात ऋषि ने कहा अच्छा रावण चलो। तो मुनिवरों राजा रावण और महर्षि ! कुक्कुट मुनि महाराज दोनों भ्रमण करते हुए लंका में आ पंहुंचे। लंका में आ जाने के पश्चात, रावण ने कुक्कुट मुनि का आगमन राष्ट्र गृह में कराया, महारानी मन्दोदरी ने उनका बडा सुन्दर स्वागत किया और आसन दिया और चरणों को स्पर्श किया और उनसे निवेदन किया कि प्रभुआप क्या भोजन पान करेंगें !? ऋषि ने कहा पुत्री जो ! तुम्हारी इच्छा हो। नाना प्रकार के पदार्थ आ गए और वह पान करने लगे और वह मेरी ऐसी !तृप्त हो गए। महारानी मन्दोदरी चरणों में ओत प्रोत हो गई और कहा प्रभु कामना है कि जब आप लंका से अपना प्रस्थान करें, तो मेरे पति को भी कोई ऊँची शिक्षा देते जाना। उन्होंने कहा कि देवी मैं प्रभु से प्रार्थना करूंगा। परन्तु इतने में ! !रावण भी आ पंहुचें। मन्त्री मण्डल को वाक्य उच्चारण करके रावण ने कहा कि प्रभु

आईये, मेरी लंका का निरीक्षण कीजिए। ऋषि ने कहा बहुत सुन्दर।

लंका की शासन प्रणाली

तो मुनिवरोंमहर्षि कुक्कुट मुनि म !हाराज राजा रावण दोनों भ्रमण करते हुए सबसे प्रथम उन्होंने उस भवन का निरीक्षण कराया, जिस भवन का निर्माण महाराजा कुबेर ने कराया, क्योंकि लंका की जो परम्परा है, प्रणाली है, वह इस प्रकार मानी जाती है, कि राजा रावण से पूर्व लंका का स्वामी कुबेर था और महाराजा कुबेर से पूर्व लंका का स्वामी महाराज महिदन्त था, और महाराजा महिदन्त से पूर्व लंका का स्वामी महाराजा शिव था, और महाराजा शिव से पूर्व लंका का स्वामी धृणित नामक राजा था, और धृणित नामक राजा से पूर्व लंका का स्वामी विक्रम था और महाराजा विक्रम से पूर्व लंका का स्वामी सौमनी था, और सौमनी से पूर्व लंका का स्वामी दालभ्य नाम का राजा था, दालभ्य से पूर्व सेगनुक नाम का राजा राज्य करता था, सेगनुक नाम का राजा का नाम सांडिल्य जी था, सांडिल्य जी के पिता का नाम सुआगनी था, और सुआगनी राजा से पूर्व लंका का स्वामी सूर्य था, सूर्य नाम के राजा से पूर्व चन्द्रकेतु राज्य करते थेऔर चन्द्रकेतु राजा से पूर्व लंका का स्वामी पिप्लाद था ., और पिप्लाद से पूर्व लंका का स्वामी रेंगणी था, रेंगणी राजा से पूर्व लंका का स्वामी मामधुक था और मामधुक राजा से पूर्व सौमधुक था और सौमधुक राजा से पूर्व लंका का स्वामी कौतकुक नाम का राजा था। और कौतकुक राजा से पूर्व लंका का स्वामी रिधर्नी था और रिधर्नी नाम के राजा के पिता का नाम सागंधुक था, सागंधुक नाम के राजा से पूर्व मुगदल नाम के राजा थे और मुगदल नाम के राजा के पिता का नाम सांडल्य था, परन्तु सांडल्य के पिता का नाम त्रिभुन था और त्रिभुन के पिता का नाम गणेपापनु था। तो बेटा मैं वाक्य उच्चारण करते करते हुए दूरी चला गया। वाक्य मुझे लंका की ! प्रणाली का वर्णन नहीं करना था। उच्चारण करते करते दूरी चला गया।

रावण राष्ट्र में अनुसंधानशालाएँ

वाक्य यह प्रारम्भ करता चला जा रहा था कि राजा रावण ने ऋषि को सबसे प्रथम

उस भवन का निरीक्षण कराया, जिसका निर्माण महाराजा कुबेर ने किया। ऋषिवर बड़ेप्रसन्न हुए। ऋषि ने कहा रावणतुम्हारा राष्ट्र तो बहुत ही उन्नत है !, तुम्हारे राष्ट्र में तो आनन्द छाया हुआ है। आगे उन्होंने उन भवनों का निरीक्षण कराया जिसका महाराजा शिव ने निर्माण कराया। वह केवल स्वर्ण का था। उसका निरीक्षण करते हुए ऋषि के हृदय में और भी प्रसन्नता हुई। आगे नाना प्रकार के भवनों का निरीक्षण कराते हुए ऋषिवर को उस स्थान में ले गए, जहां नाना प्रकार की अनुसंधान शालाएं थीं। राजा रावण के राष्ट्र में बेटाकहीं पृथ्वी अनुसंधानशाला है !, कहीं अग्नि अनुसंधानशाला है, कहीं जल अनुसंधानशाला है, कहीं अन्तरिक्ष अनुसंधानशाला है, नाना प्रकार की शालाओं का निरीक्षण कराने लगे, जहां नाना प्रकार के अणु, महा अणु, त्रिसेणु, महा त्रिसेणु, पञ्च त्रिसेणु एकत्रित किए जाते थे, जहां नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण होता था राजा रावण ने कहा कि प्रभुयह मेरी अनुसन्धानशाला है !, प्रभु यहां नाना प्रकार के ! वैज्ञानिक हैं, नाना प्रकार का अनुसंधान होता रहता है, भगवन यहां ब्रह्म अस्त्र भी ! बनता है, अग्ने अस्त्रों का भी निर्माण होता है, जल अस्त्रों का भी निर्माण होता है परमाणु अस्त्रों का भी निर्माण होता है।

तो मुनिवरोंजब ऋषि ने उस अनुसंधानशाला का निरीक्षण किया !, तो ऋषि का हृदय प्रफुल्लित हो गया और कहा रावणतुम्हारा तो बहुत ही उन्नत हो गया। मैं तु !म्हारे राष्ट्र की कहां तक प्रशंसा कर सकता हूँ। जब ये वाक्य उनके मस्तिष्क में आया कि मैं कहां तक प्रशंसा करूं तो रावण हृदय और भी मग्न हो गया। ऋषि को कहा कि आइये भगवनआगे भ्रमण कराते हुए !, उस शाला में ले गए जहां राजा रावण का पुत्र नारायन्तक नित्य प्रति चन्द्रमा की यात्रा किया करता था। राजा रावण का पुत्र नारायन्तक बडा वैज्ञानिक था। उन्होंने कहा कि भगवन यह मेरा पुत्र नारायन्तक है। यह नित्य ! प्रति चन्द्रमा की यात्रा करता है। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर, रावण तुम्हारा राष्ट्र ! तो बहुत ही उन्नत है, क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में इस प्रकार के वैज्ञानिक हों, जो नित्य प्रति चन्द्रमा की यात्रा करते हों और यन्त्रों में सुशोभित हो, वह राष्ट्र तो बहुत ही

उन्नत है। मंगल की यात्रा राजा रावण के राष्ट्र में होती थी।

तो मेरे प्यारेमुझे स्मरण आता रहता है उनका राष्ट्र !ऋषिवर !। कुक्कुट मुनि ने नाना शालाओं का निरीक्षण कराया। उन्हें मार्ग शालाओं में ले गए। जहां सुन्दर सुन्दर मार्गों के निर्माण होते थे, सुन्दर सुन्दर मार्गों में राजा रावण ने कहा कि यह मार्गों के विशेषज्ञ विराजमान हैं, भगवनयह मार्गों का निर्माण करते रहते हैं। ऋषि ! का हृदय बडा मग्न हुआ। उन्होंने कहा रावणअहा !, तुम्हारा राष्ट्र तो बहुत उन्नत है। अन्त में चिकित्सालय में ले गए और चिकित्सालयों में भ्रमण कराते हुए कहा कि प्रभु यह मेरी चिकित्साशाला ! है। उन्होंने कहा रावण तुम्हारा राष्ट्र बहुत उन्नत है। जिस राजा के राज्य मे ें अश्विनी कुमार जैसे वैद्यराज रहते हों, चिकित्सक रहते हों, जहां मानव के मस्तिष्क के दो भाग कर दिए जाएं और उनका मिलान कर दिया जाए। तुम्हारा तो ये चिकित्सालय बहुत ही उन्नत प्रतीत होता है।

रावण राष्ट्र में चरित्रशालाओं का अभाव

तो मेरे प्यारे जब ऋषि !ऋषिवर !ने रावण को ऐसा कहा, तो रावण मग्न हो गया, परन्तु अन्त में सर्वस्व राष्ट्र का भ्रमण कराते हुए रावण ने नमस्कार करके कहा प्रभु ! अब मुझे निर्णय कराईए, आपको मेरी लंका कैसी प्रतीत हो रही है। ऋषि ने कहा रावणतुम्हारा राष्ट्र तो बहुत सुन्दर है !, अति सुन्दर है, परन्तु जहां मुझे ये सुन्दरता प्रतीत हो रही है, वहां मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि कुछ काल के पश्चात तुम्हारी लंका में अग्नि प्रदीप्त हो जाएगी। राजा रावण ने कहा प्रभु यह कैसे हो सकता है। ! जब मेरा राष्ट्र उन्नत है, हर प्रकार से सुन्दर है तो मेरे राष्ट्र में अग्नि कैसे प्रदीप्त हो जाएगी? उन्होंने कहा कि हे रावणतुम्हारे राष्ट्र में ऊंचे ऊंचे गृह हैं !, ऊंचे ऊंचे भवन हैं, तुम्हारे राष्ट्र में स्वर्ण के गृह हैं। नाना प्रकार की अनुसन्धानशालाएं हैं वायु अनुसंधानशाला, अग्नि अनुसंधानशाला, पृथ्वी अनुसंधानशाला, नाना प्रकार की शालाएं हैं, चन्द्रमा में जाने वाले यन्त्रों की शालाएं हैं, मार्गशालाएं हैं, चिकित्साशालाएं हैं, परन्तु हे रावण मुझे तुम्हारे राष्ट्र में कोई चरित्र शाला प्रतीत नहीं होती और जिस राजा के !

राष्ट्र में चरित्र नहीं होता, उस राजा का राष्ट्र आज नही तो कल अवश्य नष्ट हो जाएगा। तो मेरे प्यारे वास्तव में !जब रावण को ऐसा कहा तो रावण ने कहा प्रभु !ऋषिवर ! इसीलिए !मेरे राष्ट्र में कोई चरित्रशाला नहीं है। महर्षि कुक्कुट मुनि ने कहा रावण मैंने तुम्हारा राज्यभिषेक नहीं किया था। क्योंकि तुम राष्ट्र के अधिकारी नहीं थे, मैंने उस समय तुम्हारा राज्याभिषेक हुआ था वह नहीं किया था। मैंने उस पद को ही त्याग दिया था, जहां पुलस्त्य ऋषि ने मुझे सभापति चुना था, मैंने इसीलिए त्याग दिया था, कि तुम्हारा राष्ट्र भौतिकवाद में उन्नत हो सकता था। परन्तु आध्यात्मिकवाद तुम्हारे राष्ट्र से दूर चला जाएगा। जहां चरित्र नहीं होता, वहां भवनों से कुछ नहीं बनता। जहां चरित्र नहीं होता वहां चन्द्रमा में आने से कुछ नहीं बनता। जहां चरित्र नहीं होता वहां नाना प्रकार की अनुसंधानशालाओं से यह संसार किसी काल में ऊँचा नहीं बना करता है मानव का चुनाव चरित्र से हुआ करता है मानव का चुनाव पुनीत पवित्र विद्या से हुआ कता है हे रावण आज तो मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि कोई चरित्रवान् व्यक्ति ! आएगा और तुम्हारी लंका में अग्नि प्रदीप्त करके यहां से चला जाएगा।

तो मेरे प्यारे आज के हमारे इन वाक्यों का अभिप्रायः यह है कि !ऋषिवर !हमें विचार विनिमय करना है कि हमें संसार में चरित्र लाना है, आचार्यों को विचारना है कि ब्रह्मचारी में चरित्र को लाना है। हे आचार्य तू स्वयं तप कर और चरित्रवान ब्रह्मचारी ! बन करके, तू अपने शिक्षार्थियों को ऊँचा बना, पवित्रवाद में ले जा। इसी का नाम राष्ट्रीयता है, चरित्र का जो तप है, यह सबसे महान तप् होता है। हमें सदैव अपने जीवन को उन्नत बनाना है, केवल चरित्र को ऊँचा बनाना है और राजा के राष्ट्र में समाज में, शिक्षालयों में चरित्र की आवश्यकता है। जहां चरित्र नहीं होता, वहां मानवता नहीं होती, जहां मानवता नहीं होती वहां पवित्रवाद भी नहीं होता और जहां पवित्रवाद नहीं होता, वहां अज्ञान होता है, जहां अज्ञान होता है, वहीं अन्धकार होता है और जहां अन्धकार होता है, वहां मानवतव का सदैव पतन होता रहता है। आज का यह वाक् अब समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्यों का अभिप्रायः कि हम प्रभु की याचना करते हुए, अपने देव की महिमा को जानते हुए इस संसार सागर से पार होते चले

जाएं। अब मुझे समय मिलेगा, तो मैं शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा।
पूज्य महानन्द जी धन्य हो प्रभु !
पूज्यपाद गुरुदेव तो मुनिवरों आज के वाक्यों का अभिप्रायः यह है कि मानव !के चरित्रवाद मानववाद होना चाहिए और अधिकार अनधिकार की चेष्टा कर लेनी चाहिए। यह है आज का वाक् समाप्त। शेष इसका भाग द्वितीय काल में करूंगा। अब वेदों का पाठ होगा।

२१ 11 04 1969 पुष्प 11 मुक्ति के लिए साधना

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ नित्य प्रति कुछ मनोहर उस वेद प्राणी का प्रसार होता रहता है, जो अमृत है, जिसको पान करने के पश्चात्, मानव का जीवन भी अमृत बन जाता है। हम उस वेदवाणी, कल्याणमयी, आनन्द का प्रसारण करने वाली, प्रसारणाता को हम, पान करते चले जाएं। क्योंकि हमारा जीवन, सदैव प्रकाश से सुगठित रहता है, और वेद नाम प्रकाश को माना है। क्योंकि वह अनुपम प्रकाश है, जो मानव के अंतःकरण को प्रकाशमान बनाने वाला है। हम जब यह विचार विनिमय करने लगते हैं, कि हमारा जीवन, वास्तव में प्रकाश से सुगठित रहता है हमारे जीवन में एक महान ज्योति, सदैव जागरूक रहती है, जिससे मानव का जीवन, सदैव हमें प्रकाशमान प्रतीत होने लगता है। तो आओ, मेरे प्यारे आज !ऋषिवर !हम उस परमपिता परमात्मा का गुणगान गाते चले जाएं, जिसके प्रकाश में, हम सदैव प्रकाशमान हैं, क्योंकि हमारा जीवन, प्रकाश से सुगठित रहता है। हमारे जीवन की एक महानता, उस प्रकाश से ही प्रतीत होने लगती है।
तो मेरे प्यारेआज हम अपने उस प्यारे प्रभु का गुणगा !ऋषिवर !न गाते चलें जाएं, जिस प्यारे प्रभु ने, इस जगत को रचा है, जो हमें दृष्टिपात आता चला जा रहा है, हमारे यहाँ, ऋषि मुनियों के जो सुन्दर विचार हैं, उनके ऊपर हमें सदैव विचार विनिमय

करना, उन वाक्यों पर अनुसन्धान करना, यह हमारा जन्म सिद्ध अधिकार होता है। सदैव विचार विनिमय करना ही चाहिए। मेरे प्यारेमहानन्द जी यह कहा करते हैं !, आज भी मुझे इनका कुछ संकेत प्राप्त होता चला जा रहा है, परन्तु वह जो संकेत है, उसका उत्तर मैंने कई काल में, अपने वाक्यों में और कुछ विचारधाराएं, कई काल में दी है। आज भी समय आएगा, मैं इनका संक्षिप्त उत्तर दे सकूंगा। परन्तु आज का मेरे प्यारे महानन्द जी का द्वितीय वाक्य !ओर भी है, प्रेरणाबद्ध है, जिसको हमने सभी को विचार विनियम करना है। हमारे यहाँ, परम्परागतों से, आदि ब्रह्मा से लेकर के और वर्तमान काल का तो इतना प्रतीत नहीं है, परन्तु समय आता रहा, प्रत्येक मानव, प्रत्येक मेरा प्यारा ऋषि मण्डल, विचार विनिमय करता चला आया, अपने मन की परिस्थिति को विचार विनिमय करने के लिए, प्रत्येक मानव, मन के ऊपर अनुसन्धान करता रहा।

अहिंसक विचारों का प्रभाव

मुझे बेटा! स्मरण आता रहता है, बेटा ! जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के आश्रम में जाता, तो पूज्यपाद गुरुदेव के आश्रम में, मैं यह दृष्टिपात करता रहता था, कि यह जब हम उनके चरणों में ओत प्रोत होते, तो एक पंक्ति में शिष्यगण विराजमान हो जाते, और द्वितीय पंक्ति में मेरी पवित्र माताएं, और तृतीय पंक्ति में, मार्ग के मृगराज आते उनके चरणों में ओत प्रोत हो जाते थे। एक समय मैंने, अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा प्रभुयह क्या कारण है !, जो हिंसक प्राणी, आपके चरणों को छूते हैं, नमस्कार करते हैं? उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक बहुत सुन्दर उत्तर दिया, कि मानव जब विचारों के क्षेत्र में चला जाता है, और वह विचार, अहिंसा परमोधर्म से सने हुए होते हैं, जब वह विचार अहिंसा परमोधर्म से सने हुए होते हैं, तो उनमें इस प्रकार की विचारधारा, जिस प्रकार का मानव का परमाणुवाद, विचार इस प्रकार के बन जाते हैं, कि उसके हृदय में, उसके एक परमाणु में भी हिंसक भाव नहीं रहते, और जब हिंसक भाव नहीं रहता, तो जो हिंसक प्राणी होते हैं, वह परमाणु उनके अन्तःकरण को छुआ करते है, उनकी अन्तरात्मा को छूते है, परन्तु वह जो उनका अन्तर्भाव है, वह समाप्त

हो जाता है। परन्तु वह अहिंसा परमो धर्म का पालन करने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

वायुमण्डल की महानता

तो विचार क्या? कि मानव का जो विचार है, मानव के जो हृदय संकलन हैं, परन्तु वह इस प्रकार के होते हैं, कि हिंसक प्राणी भी अहिंसा परमोधर्म का पालन करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। मुझे बेटाएक वाक् स्मरण नहीं आता !, किसी काल में बेटा! विचार विनिमय होते रहते थे। एक समय महर्षि भृगु आश्रम में ऐसा ही हुआ, क्या जो महर्षि दालभ्य जी और रेवक और गारपथ्य इत्यादि ऋषिवर जब उनके समीप पंहुचे, तो ऋषि आश्रम में, भृगु आश्रम में जब पंहुचे, तो भृगु जी ने वहाँ केवल जटा पाठ के ऊपर एक प्रश्न उत्पन्न हो रहा था, ऋषियों के मस्तिष्क में और यह विचारधारा आती चली जा रही थी, कि हमें ये जो जटा पाठ है, इसमें ऋत है अथवा नहीं, एक यह प्रश्न था, परन्तु इसमें महर्षि भृगु जी ने, जब वेदों का पठन पाठन प्रारम्भ किया, उच्चारण करने लगे, तो बेटामार्ग से मृगराज भी आने लगे !, तो उस समय महर्षि दालभ्य जी ने कहा प्रभुयह क्या कारण है !? उन्होंने कहा कि उद्गम विचार सर्वोस्ति सुप्रजा, यह जो हमारे उद्गम विचार है, अन्तःकरण में जितनी उत्तमता होती है, महानता होती है, उतना ही वायुमण्डल में भी महानता होती है, और जब वायुमण्डल में महानता होती है, तो उस वायुमण्डल में हिंसक, हिंसक नहीं रहता। मेरे प्यारे मैं इस सम्बन्ध में अधिक !ऋषिवर ! चर्चा नहीं प्रगट करुंगा, केवल वाक् यह उच्चारण करना है कि प्रत्येक मानव, परम्परा से मन के ऊपर टिप्पणी करता चला आया है, मैं भी किया करता हूँ, जब मेरे प्यारे ! महानन्द जी किसी काल में देखो, अपवाद में आ जाते है। मानो इनके विचार उदबुद्ध होने लगते है, तो मुझे भी कुछ वाक् उच्चारण करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहता है, समय समय पर। परन्तु आज मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे मन के ऊपर बाध्य करते ! चले जा रहे हैं। मैंने बहुत पूर्व काल मे्ं, यौगिक प्रक्रियाओं का वर्णन करते हुए कहा था, कि आज प्रत्येक मानव योग की घोषणा करता रहता है, परम्पराओं से करता चला

आया है।

ब्रह्मरन्ध्र से ज्ञान

मुझे स्मरण है, आदि ब्रह्म ने योग को किस प्रकार जाना है, आदि शिव ने योग को किस प्रकार जाना। परन्तु मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है, उच्चारण करने की । मुझे एक वाक्य स्मरण आता रहता है, कि यहाँ तक योग में, जो शब्दों की रचना है, वह भी हमारे ऋषि मुनियों ने योग के द्वारा ही उत्पन्न की है। क्योंकि जब यह शब्दों की रचना होती है, और जितना भी प्रारम्भिक बाल्यकाल में देखो, शिक्षार्थी, शिक्षालय में जाता है, तो प्रारम्भिक शब्दों का अभ्यास कराते हैं। जब यह आता है हमारे सम्मुख, यह प्रश्न आता है कि इन शब्दों की रचना क्या हैतो ह ?इनकी उद्बुद्धता क्या है ?मारे ऋषि मुनियों से हमें प्राप्त होता है, कि सृष्टि के आदि में ब्रह्मा ने अपने योग के द्वारा ही, जो ब्रह्मरन्ध्र में जो नाद होता है, उसकी जो ध्वनि होती है, मानो उन ध्वनियों से ही शब्दों की रचना होती है। तो मेरे प्यारे मैं इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा !ऋषिवर ! भी प्रगट नही करुंगा, क्योंकि मैं केवल संक्षिप्त परिचय देता चला जा रहा हूँ। तो वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः क्या है, क्या ब्रह्मरन्ध्र में इनकी रचना कैसे होती है, और छन्दो को कैसे जाना जाता है, इसके ऊपर बहुत विचार विनिमय करने की आवश्यकता है, अध्ययन की आवश्यकता नहीं, जितना विचार की आवश्यकता होती है और इसमें अनुभव की आवश्यकता होती है।

सर्वज्ञाता योगी

तो विचार आया, कि इनकी रचना कैसे? मानव जब प्राणों का संघात किया जाता है, प्राणों की एकाग्र प्रवृत्ति हो जाती है, उस समय बेटामानव के जो मनो की गति है !, मन की जो साम्यावस्था है, मानो वह उन प्राणों के साथ में, ब्रह्मरन्ध्र में जब साम्य गति को प्राप्त होती है, तो ब्रह्मरन्ध्र में एक चक्र होता है। तो मेरे प्यारे ऋषियों ने तो ! ऐसा कहा है, कि उस ब्रह्मरन्ध्र में देखो, सहस्त्रों, इस प्रकार की वाहक नाड़ियाँ हैं, जिनका सम्बन्ध नाना लोक लोकान्तरों से होता है। मानो लोक लोकान्तरों से होता है,

इसीलिए योगी को कहते हैं, कि सर्वश ब्रह्माण्ड की वार्त्ता जानता है, क्योंकि वह जो नाड़ियाँ होती हैं, ब्रह्मरन्ध्र में, उनके द्वारा जब यह मन और प्राण दोनों का संघात होता है, दोनों की अग्रित गति होती है, उस समय बेटा जो नाना प्रकार की ज्ञान वाहक ! नाड़ियाँ होती है, देखो, जिसको व्यान प्राण कहते हैं, व्यान की अभ्यद गति होने के नाते बेटादेखो !, वह जो वाक नाड़ियाँ हैं, उनका मुख ऊपरी विभाग में अर्पित हो जाता है। मानो देखो, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की वार्त्ता, वह एक महान योगी जान जाता है। क्योंकि वह जो नाना प्रकार की नस नाड़ियाँ है। नाना सूक्ष्म सूक्ष्म वाहक नाड़ियाँ होती है, इनको नाड़ियाँ कहते हैं, क्योंकि नाड़ियों का तो स्थूल स्वरूप होता है, उनमें से जो विचित्र धाराएं होती हैं, जिनमें ज्ञान की उत्पत्ति होती है। ज्ञान की धाराएं रमण करती रहती है। तो मन और प्राण दोनों को विचार विनिमय करना, हमारे ऋषि मुनियों ने बहुत सुन्दर रूपों से इसका निरूपण करते हुए कहा है। महर्षि कपिल मुनि के शब्दार्थों में, मैं अपने कुछ विचार प्रगट करना चाहता रहता हूँ। किसी किसी काल में, आदि ब्रह्मा के विचार भी जब सम्मुख आने लगते हैं, योग के सम्बन्ध में तो नाना प्रकार की प्रक्रियाएं उत्पन्न होने लगती है।

मानव हृदय में योगी

मैंने एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव के सम्मुख एक वाक् कहा था। आज मुझे बेटा ! बहुत काल हो गया है, जब मैने उनके चरणों में ओत प्रोत हो करके एक वाक्य कहा था, कि प्रभु यह जो हृदयाँ ब्रह्मो आकृति !रुद्रां अभ्या वसु सन्धनं ब्रह्में विचक्रती आकाशं भवे अस्ति व्यापं भवनस्तम् ऐसा हमने एक वाक् कहा था, अपने पूज्य गुरुदेव से क्या भगवन यह जो अन्तरिक्ष हमें प्रतीत हो रहा है। क्या !यह अन्तरिक्ष मानव के हृदय में भी विराजमान होता है? उस समय पूज्य गुरुदेव ने कहा कि यह हृदय में भी है, क्योंकि यह तो इसी का एक सूक्ष्म रूप है। जैसा यह ब्रह्माण्ड है, ऐसा ही हमारा यह पिण्ड कहलाया गया है। मानो इस पिंड में भी जैसे इस लोक में एक साम्य गति हो रही है, और अन्तरिक्ष अपना कार्य कर रहा है, नाना प्रकार के परमाणु भ्रमण कर

रहे हैं, इसी प्रकार हमारे, इस मानव शरीर में भी अन्तरिक्ष होता है। आकाश होता है। इसमें मानो हमारे यहाँ जो गति, क्योंकि इसमें अन्तरिक्ष नहीं होगा, तो मानव कोई वाक् उच्चारण नहीं कर सकता। तो मैं इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा नहीं करूँगा बेटा ! केवल वाक् यह कि मैं तुम्हेंविवेचना सूक्ष्म सा एक उत्तर देता चला जा रहा हूँ, क्योंकि तुम्हारे प्रश्न बहुत हैं।

मानव जीवन का विकास

आगे उच्चारण करता चला जा रहा था, महर्षि कपिल जी की चर्चा। बेटा जब महर्षि ! कपिल जी महाराज अपने आसन पर विराजमान होते थे, तो नाना प्रकार की चर्चा उनके मस्तिष्क में आती रहती थी। अध्ययन करते रहते, विचार विनियम करते रहते और अपनी आत्मा का सन्निधान करते रहते, मन के ऊपर विचारधारा प्रारम्भ होती रहती थी। एक समय बेटा! देखो, ऋषि के मन में यह विचार उत्पन्न हो गया कि संसार में ईश्वर कोई वस्तु नहीं है। जब ऋषि के मन में यह एक आशंका आ गई, तो मुनिवरों ! देखो, नाना ऋषिवर उनके समीप आए। महर्षि जैमिनी जी ने कहा कि महाराज ! आपके मन में यह क्या विचार आया, तो महर्षि कपिल जी ने कहा था कि जो मेरे मन में विचार आया है, वह स्पष्ट है। क्योंकि उसके ऊपर मैं टिप्पणी कर सकता हूँ। तो ऋषियों ने का कि महाराजक्या इस मानव जीवन का विकास कैसे हुआ !? यह मानव जीवन है क्या? यदि तुम इसमें कोई वस्तु स्वीकार नहीं कर रहे हो?

ज्ञान और प्रयत्न

महर्षि कपिल जी ने कहा कि यह जो मानव का शरीर है, इस मानव के शरीर में मानो, दो प्रकार की प्रावृत गति होती रहती है, जिसको ज्ञान और प्रयत्न कहते हैं। ज्ञान और प्रयत्न दोनों का ही यह महान् विराट स्वरूप प्रतीत हो रहा है। यह जो ब्रह्माण्ड है, इस ब्रह्माण्ड में भी ज्ञान और प्रयत्न ही मुझे प्रतीत हो रहा है। जब महर्षि कपिल जी के विचार बेटा! इस प्रकार के आए, तो महर्षि जैमिनी जी, महर्षि शाण्डिल्य जी आदि ऋषियों का समूह उनके समीप आया, जिसमें महर्षि पनपेतु ऋषि महाराज, सोमधुक

आदि ऋषियों मुनियों का समाज उनके समीप विराजमान हो गया। उन्होंने कहा कि प्रभुहमें यह निर्णाय कराइये !, कि इस तृष्णा की उत्पत्ति कहाँ से होती है और ? इन्द्रियों का बाह्‌्य स्वरूप कैसे बनता है? अहा तो मुनिवरोंदेखो !, उस समय महर्षि कपिल जी ने अपने बहुत सूक्ष्म शब्दों में इसकी व्याख्या की, विवेचना की, महर्षि कपिल जी ने जब इसकी विवेचना करने लगे, तो महर्षि कपिल जी ने कहा भई ! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, कि जब यह मानव इस संसार में आता है, मानव का यह आत्मा कहो, मानो जब इस मानव शरीर में आता है, तो मानव शरीर में आते ही, यह जो मानव शरीर जिसको आत्मा कहते है, या कुछ भी कहो, परन्तु इसमें इसके दो स्वरूप हैं, जिसे ज्ञान और प्रयत्न कहा जाता है। परन्तु ज्ञान और प्रयत्न दोनों की उत्पत्ति हो जाती है। मानो जब दोनों अपने सुचारू रूप से कार्य करने लगते हैं। ज्ञान से ही, इस संसार का विभाजन होता है, क्योंकि ज्ञान नहीं होगा, तो संसार का विभाजन भी किसी काल में नहीं हो सकेगा। तो ऋषि ने कहा और विभाजन किसका होता है? प्रयत्न का, क्योंकि प्रयत्न का यह स्वभाव रहता है, कि वह अपनी प्रवृत्तियों का विभाजन करता रहता है, उसमें विभाजन क्रिया स्वाभाविक आती रहती है। क्योंकि ज्ञान के स्वभाव से जब तक प्रयत्न से संघात नहीं होगा, तब तक उसमें विभाजन क्रिया आ ही नहीं सकेगी। तो महर्षि कपिल जी ने अपनी विवेचना में कहा है, कि ज्ञान और प्रयत्न उत्पन्न हो गए, तो ज्ञान का कार्य है कि वह स्वाभाविक कामना उत्पन्न होती रहती है, क्योंकि जितना ज्ञान होता है, उतना मानव का हृदय व्यापी होता है और कामना उत्पन्न करने की उसकी प्रवृत्ति बन जाती है। अहा, जब यह ज्ञान की प्रवृत्ति बनने लगी, ज्ञान उत्पन्न होने लगा तो इस प्रयत्न के विभाग बनने लगे । तो ऋषि कहता है, ऋषि ने कहा कि ज्ञान का माध्यम तो मनीराम बन गया और प्रयत्न का माध्यम यह प्राण बन गया, यह संसार में जिसकी प्रक्रिया हमें प्रतीत हो रही है। मानो देखो, जहाँ भी हम दृष्टिपात करते हैं, वहीं हमें प्राण प्रतीत होता है, मानो देखो, प्रत्येक वस्तु में, आज पृथ्वी में हम वसुन्धरा के गर्भ में जाते हैं, तो वसुन्धरा के गर्भ में जितना भी विभाजन है, मानो जितनी भी उसमे

प्रक्रिया हो रही है, वह सब उस प्राण की ही प्रतीत हो रही हैं।

प्राण से विभाजन

तो वेद ऋषि कहता है, आचार्य जनों ने कहा है, कपिल जी कहते हैं, कि यह जो प्राण है, शरीर में आते ही इसका विभाजन होने लगा। सबसे प्रथम इस मनीराम ने ज्ञान का माध्यम लेकर के, इस प्राण के पांच भाग बना दिए जिनको प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान कहा जाता है। मानो देखो, जब यह पांच प्राण बन गएं, तो इस मनीराम को शान्ति कहाँ हो सकती थी, वह कामना उत्पन्न करने लगा। यह कामनाओ का केन्द्र था, जब कामना उत्पन्न कर दी तो इन्हीं प्राणों के मानो देखो, पांच भाग और हो गएं, जिनको नाग, देवदत्त, धनजय कूर्म और कृकल, यह पांच उपप्राण बन गए। यह पाँच उपप्राण बन गए, जब दस प्राण बन गए पांच प्राण और पांच उपप्राण और क्योंकि आगे इनके विभाजन नहीं हो सकता था, क्योंकि यहीं तक सीमित हो गए। आगे इनका विभाजन नहीं हो सकता था, इसी मानव शरीर में मानो देखो, जब यह दस प्राण बन गएं अब मनीराम का तो यह कर्त्तव्य था, यह कामना उत्पन्न करता रहा। कामनाओं का केन्द्र बना रहा। कामना उत्पन्न करना इसका स्वभाव बन गया, क्योंकि ज्ञान का माध्यम होने के नाते।

तो मेरे प्यारेऐसा महर्षि कपिल जी ने कहा है !ऋषिवर !, क्या, जब यह कामना उत्पन्न होती रही, मुनिवरोंदेखो !, यह पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और पांच कर्मेन्द्रियाँ का जन्म हो गया। इसी मानव शरीर में, पांच ज्ञानन्द्रियाँ पांच, कर्मेन्द्रियाँ इनका जन्म हो गया, क्योंकि स्थूल रूप से था, परन्तु इनके विषय नहीं थे। आज इनके विषय देखो, प्राणों के, पांच प्राण और पांच उपप्राण बन गएं और देखो, इनके साथ में, मन स्वयं अपना इन्द्रियों का जो विषय था, उन विषयों के साथ मन का सन्निधान होने के नाते, बेटा मानव ! का बाह्य स्वरूप बन गया। इसी मानव का जब बाह्य स्वरूप बन गया। अब बाह्य स्वरूप में क्या हो सकता था, परन्तु देखो, जब अधिक तृष्णा और आगे कामना उत्पन्न करना, इसका मनीराम का कर्तव्य था, क्योंकि ज्ञान इसके साथ होने के नाते, कामना

उत्पन्न होती रही, जब कामना उत्पन्न हो गई, तो बेटा इन्द्रियाँ भी तृप्त हो गई। ! क्योंकि इन्द्रियाँ अपना कार्य करने लगी। जब अधिक कामना उत्पन्न होने लगी, तो उन अधिक कामनाओं का नाम ही बेटा! तृष्णा के रूप में उत्पन्न हो जाना है, उनको तृष्णा कहा जाता है।

नाग प्राण का प्रभाव

मानो देखो, जब तृष्णा उत्पन्न हो गई, तो कामना तो ज्यों की त्यों रही, कामना उत्पन्न होती रही। अब बेटादेखो !, तृष्णावादी जो प्राणी है, उसकी आज्ञा के अनुकूल कार्य हो जाता है, तो बेटाऔर यदि आज्ञा के अनुकूल कार्य नहीं होता ,सुन्दर है !, तो असुन्दर हो जाता है। परन्तु जब इसमें भी और व्यापकता आ जाती है, जब बेटा आज्ञा के ! अनुकूल कार्य नहीं होता, तो अपमान होता है और जब आज्ञा के अनुसार कार्य होने लगता है होता ही रहता है, तो एक काल वह आता है, कि मानव में अभिमान की मात्रा उत्पन्न हो जाती है। तो मेरे प्यारेमान अपमान दोनों का जन्म हो गया !ऋषिवर !, जब मान और अपमान हो गया बेटाजब मान होगा !, तो कामना उत्पन्न होगी, मानो काम शक्ति उत्पन्न हो जाती है, और जब अपमान आ गया, तो क्रोध की उत्पत्ति हो गई। ममता से भरा हुआ जो क्रोध है, वह मानव के जीवन का विनाश कर देता है बेटा ! तो मेरे प्यारेआदि ऋषियों ने कहा है !ऋषिवर !, आदि आचार्यों ने कहा है हे मानवयदि तुम आज अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहते हो !, महान बनाना चाहते हो, तो यह जो कामनाओं की उत्पत्ति होती है आज इसके ऊपर तुम अपना अधिपथ्य करो। क्योंकि यदि इसके ऊपर नही हो सकेगा, कामना उत्पन्न रही तो क्रोध उत्पन्न होगा, क्रोध का सम्बन्ध नाग प्राण से रहता है। देखो, इसको नाग प्राण इसीलिए कहते हैं क्योंकि जब मानव को क्रोध उत्पन्न होता है, तो नाग जो प्राण है, इसका ऊपर मुख हो जाता है, और मानव के शरीर में जो अमृत होता है, अमृत जो बहता रहता है। उसको पान करता रहता है, और क्रोध आते ही उसका विष बना देता है। विष जितना

बन जाता है, बेटा! मानव के जीवन का उतना ही विनाश होता चला जाता है।

सुन्दर विचारों से वायुमण्डल की पवित्रता

तो मेरे प्यारे मैं इस सम्बन्ध में अधिक वाक्य उच्चारण नहीं करूंगा। केवल !ऋषिवर ! यह, कि आज हमें नाग, देवदत्त, धनंजय कुरू और कृकल इन प्राणों को जान लेना चाहिए। इनका कार्य क्या है? इनके कार्यो को भी विचार लेना चाहिए, क्योंकि मनीराम तो कार्य देता है। यदि कार्य नहीं देगा तो इनके विभाग नहीं बन सकेंगे। क्योंकि सबसे प्रथम प्राणों को कार्य दिया जाता है। प्राण नाभि केन्द्र से और देखो, मस्तिष्क से होते हुए, घ्राण के द्वार से चले जाते हैं। मुनिवरों! देखो, ऋषि ऐसा कहते हैं कि मानव के जितने सुन्दर विचार होते हैं, जितना मानव का शुद्ध आहार और व्यवहार होता है, उतना ही मानव के शरीर में सुन्दर परमाणुओं की उत्पत्ति होती है, और जीतने परमाणु शरीर के जितने सुन्दर विचारों के परमाणु होंगे तो एक एक श्वास के, एक एक प्राण की अग्रित गति में, एक एक श्वास के साथ में अरबों खरबों परमाणु बेटा एक एक श्वास ! के द्वारा हमसेबाहरी हो जाते हैं, मानो उसका ऊपरी रूप बन जाता है। अब जितने विचार मानव के सुन्दर होते हैं, महान होते हैं, उतना ही मुनिवरों! वह वायुमण्डल पवित्र होता है।

मेरे प्यारेमहानन्द जी ने ए !क काल में कहा था, कि यह राष्ट्रवाद सुन्दर नहीं बन रहा है। मानो यह समाज अवन्नतिशील हो रहा है। तो मैंने इनके प्रश्नों का उत्तर देते हुए यही का था, कि बेटामानव की विचार शक्ति अशुद्ध हो गई है !, देखो, विचार शक्ति अशुद्ध होने के नाते, परमाणुवाद सुन्दर नहीं रहा है, क्योंकि प्रकृति का यह स्वरूप होता है कि परमाणुओं से सुगठित है और जितना परमाणुवाद विचित्र होता है, शुद्ध होता है, महान होता है, उतना ही यह वायुमण्डल पवित्र होता है। जितना वायुमण्डल पवित्र होगा उतना ही राष्ट्रवाद क्या, मानववाद क्या, ऋषिवाद क्या सभी पवित्र होता है, बेटा!। तो मेरे प्यारेमहर्षि कपिल जी ने कहा है !ऋषिवर !, कि इस मनीराम ने देखो, प्राण का विभाग दे दिया कि नाभि केन्द्र से चल करके, तुम घ्राण के द्वार पर चले जाओ।

अपान का क्षेत्र बना दिया। अपान मृत्यु का स्वरूप बना दिया है किसी किसी काल में । परन्तु मैं इसकी विशेष व्याख्या नहीं करने जा रहा हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः केवल इतना ही है, कि यह जो अपान है, यही मानव की अवस्था को निगलता रहता है। जो भी आहार करता है, इसको निगलने का कार्य अपान का होता है। अपान अपना कर्त्तव्य करता रहता है। इसी प्रकार बेटा! प्राण, अपान, उदान जो भी हम आहार व्यवहार किया करते हैं, आहार किया कराते है, नाना प्रकार के पदार्थों का पान करते है, देखो, ये जो प्राण है यह तपाता है, पचाता है, रस बना देता है, और उस रस को बना करके जो बेटासामान्य प्राण है !, इसको अर्पित कर दिया जाता है। ये सब विभाजन, सब इस मनीराम के द्वारा होता है।

तो मेरे प्यारेजब यह पांचो प्राण बन जाते है !ऋषिवर !, देखो, व्यान बन जाता है, व्यान का जो क्षेत्र है, वह कण्ठ से ऊपरला क्षेत्र है। बेटा जो महान योगेश्वर !जब इस व्यान प्राण को जान लेता है, व्यान प्राण की जो गति है, मानो वह कहाँ तक है, व्यान प्राण अस्तित्व में कैसे कार्य करता है और ब्रह्मरन्ध्र में क्या क्या कार्य करता है। बेटा ! इन प्राणों के स्वरूपों को जानने वाला, जो योगेश्वर होता है, वह इस ब्रह्माण्ड में जितने लोक लोकान्तर हैं, वह सबकी गति को जान लेता है बेटा ! मेरे प्यारे मैंने !ऋषिवर ! अभी वर्णन करते हुए कहा था, कि ब्रह्मरन्ध्र में नाना प्रकार की सूक्ष्म नाड़ियाँ होती हैं। उनका सम्बन्ध, नाना लोक लोकान्तरों से होता है, क्योंकि यह जो हमारा मानव शरीर है यह सूक्ष्म सा पिण्ड है। क्योंकि ब्रह्माण्ड की और पिण्ड की कल्पना की है आदि आचार्यों ने।

प्राणों का कार्य

तो मेरे प्यारेआगे वेद के ऋषियों ने कहा है !ऋषिवर !, कपिल जी ने कहा है, कि हम मानो देखो, नाग प्राण बन जाते है इन प्राणों का कार्य क्षेत्र बन जाता है, कार्यवाहक प्रारम्भ हो जाता है, तो नाग, देवदत्त, धनञ्जय इत्यादि बनते हैं, जब यह पांचों प्राण बनते है इन पांचों प्राणों को कार्य अर्पित किया जाता है। जब मानव को, क्योंकि मानव

को, नाग प्राण प्रायः यह कार्य करता है, कि अमृत का विष बनाता है, जब इसकी इस प्रकार की अवस्था आती है और देवदत्त अपृत कार्य करता है और धनंजय घृणाकृतित कार्य करता है। इसी प्रकार बेटाअपना अपना कार्य !वाहक करते हुए, इन्द्रियों का बाह्य स्वरूप बनता हुआ, इस मानव का संसार में प्रार्दुभाव हो जाता है। आज मेरे प्यारे ! आज हमें पुनः से योगी बनना है !ऋषिवर, क्योंकि यह बाह्य स्वरूप तो हमारा बन गया, अब योगी बनना है। और योगी कैसे बनोगेइ ?सी पर विचार विनिमय करना, हमारा सभी का कर्त्तव्य होता है। मानो देखो, योगी वास्तव में वह होता है, जो अपने मनस्तव को अपने अधिकार में कर लेता है। जो मानो देखो, ब्रह्माण्ड की कल्पना अपने मन से ही कर लेता है, अपने हृदय ही में ही संसार की कल्पना नहीं, परन्तु इसका दिग्दर्शन कर लेता है।

संन्यासी

मेरे प्यारेहमारे ऋषि मुनियों ने ये कहा है !ऋषिवर !, आचार्यों जनों ने यह कहा है, अनुभवी पुरूषों ने यह कहा है कि आज जो मानव योगी बनना चाहता है, वह सबसे प्रथम अपनी जो तृष्णा हैं, उनको सूक्ष्म बनाना है। मानो देखो, संसार में कामनाओं का अंकुर उत्पन्न नहीं होने देना है। जब वह कामना उत्पन्न होगी तो जन्म अवश्य होगा। क्योंकि कामनाओं के ऊपर विजय पाना है और कामनाओं के ऊपर विजय कौन पाता है? बेटा ! हमारे यहाँ एक संन्यास की कल्पना की जाती है। मानो देखो, मेरे प्यारे ! महानन्द जी एक वाक्य कहा करते हैं, कि संन्यासी जन भगवा वस्त्र क्यों धारण करते हैं? तो हमारे ऋषि मुनियों ने कहा है कि वह इसीलिए किए जाते हैं, क्योंकि यह वस्त्र ही नहीं होता, मानव का अन्तःकरण भी इसी प्रकार का होना चाहिए, क्योंकि मानव के अन्तःकरण में जब अग्नि स्वरूप हो जाता है। क्योंकि भगवा वस्त्र को अग्नि स्वरूप वस्त्र कहा जाता है। जब मानव का अन्तःकरण ज्ञान और विज्ञान से, उस महान प्रभु के लिए से इतना सुगठित हो जाता है, इतना महान बन जाता है, क्या उसका अन्तःकरण इतना सुन्दर और इतना तप जाता है, क्या नवीन अंकुर उत्पन्न होते ही उसके शरीर में ही

भस्म हो जाते हैं। तो मेरे प्यारे भगवा वस्त्र धारण करने का अभिप्रायः केवल !ऋषिवर ! शरीर की रक्षा करना नहीं है, अन्तःकरण को तपाना है, अन्तःकरण को तपाया ज्ञान रूपी अग्नि से, तपाया जाता है बेटा ।! मानो अपनी महानता के द्वारा तपाया जाता है। तो मैं इस सम्बन्ध में, अधिक विचार नहीं दूंगा, केवल यह, कि हम अपने महान विचारों को लेकर चलना चाहते हैं, महानता को लेकर योगी बनना चाहते हैं।

अन्तःकरण से तप

बेटायोगी कैसे बनोगे !? विचार यह आता है, बेटा! योगी उस काल में बनोगे, जब अन्तःकरण को तपा दिया जाएगा। काहे में, बेटादेखो !, उस मनीराम को एकत्रित करने में, जो मन है, यह जो मन है यह बड़ा महान चंचल है बड़ा दूरी दिग्दर्शिता है, दर्शन करता रहता है संसार के। इसमें संलग्न हो जाता है। परन्तु सबसे प्रथम तृष्णा पर विजय पाना है, सबसे प्रथम तो काम और क्रोध पर विजय पाना है। काम और क्रोध पर विजय प्राप्त कर सकोगे? बेटादेखो !, संसार ने यह माना है, क्या प्राण और मन मन से शक्तिशाली संसार में कोई वस्तु है अथवा नहीं। यह प्रश्न आता है, परन्तु देखो, इसको उत्तर ऋषि मुनियों ने दिया है, क्या मन से शक्तिशाली प्राण है। इस मन को प्राण में संलग्न कर दो, इसमें इसकी निष्ठा हो जानी चाहिए, तो इसमें इसका तारतम्य होता चला जाएगा, मानो देखो, जहाँ ज्ञान और प्रयत्न, मन और प्राण दोनों की साम्यावस्था हो जाती है, वहीं बेटा! देखो, मानव का अन्तःकरण तपने लगता है। तपायमान होने लगता है, जब यह देखो, मन अपनी इंद्रियों को, जब मन प्राण से संलग्न होने लगता है, निष्ठा होने लगती है, उस समय बेटादेखो !, क्रोध भी, मान अपमान भी नहीं होता, क्योंकि मानव को संसार में मानव को बेटा! देखो, यह मान ठग लेता है प्राणी को, या वास्तव में हमारे बेटामैं तो इस स !ंसार को दृष्टिपात करता चला आ रहा हूँ। यह बेटा !संसार मानो पुत्र से नहीं ठगा जाता है, पत्नी से नहीं ठगा जाता बेटाठगा जाता है मानव !, मान के आँगन में आ करके । यह मान नहीं होना चाहिए प्राणी को, क्योंकि जब मान की उत्पत्ति हो जाती है, मान जब पराकाष्टा पर

चला जाता है, तो मानव के आवगमन का एक चक्र बनता रहता है।

तो मेरे प्यारे वेद के ऋषियों ने कहा है कि मान अपमान दोनों त्यागने के !ऋषिवर ! लिए हमें मन को उस शक्तिशाली प्राण में लगा देना है। जो मन से शक्तिशाली कोई वस्तु है, वह है प्राण। मानो प्राण और मन दोनों को एकाग्र करने का नाम ही बेटा! देखो, एक साधना कहलाई जाती है। उसी को साधक अपने मस्तिष्क में, अपने हृदय में इसी को सदैव एकत्रित करते रहते है, मानो देखो, उसी को विचारधारा में लाते रहते हैं, उसी का सत्संग किया करते हैं। जब भी मन की गति अगृत होती है उसी काल में, यह उसी का सत्संग करते हैं। प्राण के ऊपर ही विचारधारा जाती रहती है।

मुक्ति

आगे चल करके कपिल जी ने कहा है, कि इन दोनों का मिलान करने से ही, यह जो दस प्राण हैं, मानो जो ये जो इन्द्रियों के विषय है, ये मन में लय हो जाते हैं। मन की गति जब प्राण में लय होती है यह प्राण जो प्रयत्न का अग्रित विभाग हो गया था, वह उसी में लय हो जाता है। लय हो जाने के पश्चात् मानो इसकी जो नाना प्रकार की कामनाओं की तरंगे उत्पन्न होती रहती हैं, जो व्यापार होता रहता है, वह सब प्राण में लय होता रहता है। जब प्राण में लय होता रहता है। तो यह पांचों प्राण नाग, देवदत्त आदि में इन इन्द्रियों का विषय इन प्राणों में लय हो जाता है और इन प्राणों का मुख्य प्राणों में लय हो जाता है, जिसको हम प्राण, अपान, उदान, समान कहते हैं, मानो देखो, ज्ञान और प्रयत्न दोनों का मिलान हो जाता है। ऋषि कहते हैं, उस अवस्था का नाम मुक्ति कहा जाता है।

अनिर्वचनीय विषय

तो मेरे प्यारेआगे मानव यह प्रश्न करने लगे !, कि आगे क्या होता है जब ज्ञान और ? प्रयत्न दोनों एकाग्र हो जाते हैं? तो आगे क्या हो जाता है, महर्षि कपिल जी ने कहा है, कि आगे यह योगी का अनुभव रह जाता है, मानो यह अनिर्वचनीय विषय रह जाता है, यह अवाणी है, इसका वाणी से वर्णन नहीं किया जाता, इसको अनिर्वचनीय विषय

कहा जाता है।

तो मेरे प्यारेआज !ऋषिवर ! के हमारे आचार्य, आज जैसा हमारे, मेरे प्यारे महानन्द ! जी ने कुछ सूक्ष्म सा प्रश्न किया था, उसका मैने संक्षिप्त में उत्तर दिया। महर्षि कपिल जी महाराज ने यह अपना विचार ऋषि मुनियों में व्यक्त किया। उन्होंने का कि भई ! मेरे विचार तो ऐसा है, कि मानव के शरीर में जितना विभाजनवाद है, यह सब मन और प्राण का है और प्रकृति में, जिस संसार में पृथ्वी से ले करके सूर्य मण्डल क्या, जितने भी लोक लोकान्तर हैं, इनका जो विभाजन हो रहा है, जितनी विभाजन क्रिया, तुम्हें प्रतीत होती है, यह मन और प्राण दोनों की है। ज्ञान और प्रयत्न दोनों ही प्रतीत होते चले जा रहे हैं। जब ऋषि ने बेटायह वर्णन करते हुए कहा है !, कि यह संसार मुझे केवल विभाजन में प्रतीत हो रहा है और यह मन और प्राण की ही क्रिया है, और कोई द्वितीय क्रिया मुझे प्रतीत नहीं होती है, क्योंकि तृतीय और क्रिया कोई है ही नहीं, क्योंकि ज्ञान और प्रयत्न दोनों की ही समता, मुझे प्रतीत होती चली जा रही है।

मन से विभाजन

तो बेटाइतने में उनके गुरुदेव आ पहुंचे और उन्होंने कहा कि यह क्या कर रहे हो !, कपिल जी? उन्होंने कहा कि मेरी विचारधारा है, कि यहाँ संसार में जो यह मन है, इसी के द्वारा संसार का विभाजन होता है। पृथ्वी में जो रस का विभाजन होता है, वह भी मन के द्वारा है, वनस्पतियों में जो नाना प्रकार के रसास्वादन होते हैं, वह भी इसी मन के द्वारा ही होता रहता है। ये जो संसार मुझे मानवत्व से लेकर के और यह जो लोक लोकान्तरों तक जो ये जगत है, यह मुझे मन और प्राण का ही प्रतीत होता है भगवन ! मुझे और कोई वस्तु प्रतीत नहीं देती।

तो मेरे प्यारेऋषि ने कहा है !ऋषिवर !, कि बेटा तुम तपस्वी बनो। !तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! उस समय जब मानव तपस्वी बन जाता है, ऋषि ने कहा तुम तपस्वी बनो, वास्तव में तुम्हारा वाक्य सुन्दर है। क्योंकि परमात्मा का जो विषय है, जो महान अपृति मुक्ति का विषय है, वह मानव वाणी से वर्णन नहीं कर सकता है और जो करता है तो

वह मुक्ति के विषय को जानता नहीं।

परमात्मा का वास्तविक बोध

तो मेरे प्यारेवेद के ऋषियों ने कहा है !ऋषिवर !, आचार्यजनों ने कहा है, कि मैं नहीं कहता, इस वाक्य को, देखो, हमारा ही वाक्य नहीं है, आदि आदि ऋषियों का यह वाक्य है। यह महान् पुरुषों का एक सुन्दर मार्ग है। जिसको अपनाने से मानव सुन्दर बना करता है, तो वेद के ऋषियों ने कहा है, आचार्यजनों ने कहा है, कि आज हम उस मार्ग को जानने के लिए, प्रतिष्ठित रहने के लिए, सदैव उत्सुक रहते हैं, कि हम उस मार्ग को जाने, जहाँ हम परमात्मा को, वास्तव में जान सकें। तो मेरे प्यारे ! तुम !वेद के ऋषि ने कहा है कपिल जी ने और उनके गुरु ने कहा कि बेटा !ऋषिवर तपस्वी बनो। जब मानव तर्कवाद में चला जाता है, नाना प्रकार का तर्क आ जाता है, परमात्मा के ऊपर भी नाना प्रकार का अश्वन होने लगता है, और आत्मा के ऊपर मानो देखो, जब ये होने लगता है, तो मुनिवरों! वेद के ऋषि ने कहा, हे पुत्र उसी का नाम ! आत्मा है, क्योंकि जहाँ ज्ञान और प्रयत्न दोनों लय हो जाते हैं, जहां ये दोनों लय हो जाते हैं, एक अवस्था में चले जाते हैं, एक हो जाते हैं, उसी का नाम आत्मा है, क्योंकि गुण से गुणी कदापि भी पृथक नहीं होता। इसीलिए आज तुम तपस्वी बनो।

इंद्रियों का तप

उन्होंने कहा बहुत सुन्दर महर्षि कपिल जी महाराज तपस्वी बने। !इंद्रियों को तपाने का कार्य, तपस्वी किसे कहते हैं? बेटातपस्वी वह होता है !, जो मानव अपनी इन्द्रियों को तपा लेता है, अपनी प्रवृत्तियों को तपा लेता है। देखो, पांच ज्ञान इन्द्रियाँ पांच कर्म इन्द्रियां को तपा लेता है। तपाता किसमें है? बेटा! ज्ञान में, विवेक में। जब मानव तप जाता है, तो वह मानव अन्त में यह कहा करता है, कि नेति नेति का शब्द उसके लिए स्वाभाविक हो जाता है।

महान आत्माओं का कर्तव्य

तो मेरे प्यारेआज का !ऋषिवर ! ये हमारा वाक्य यह कहता चला जा रहा? कि हमें

वास्तव में संसार में, जो भी मानव आता है, वह प्रभु के जगत में, प्रभु के राष्ट्र में, कोई मानव प्रबल नहीं होता, कोई उच्च नहीं होता, क्योंकि परमात्मा सर्वोप्रथम है, पूज्य है, महान है। मेरे प्यारेमहर्षियों ने तो यहाँ तक कहा है !ऋषिवर !, उसकी अनुपम विद्या को विचार विनिमय करते हुए, वेद की पुनीत विद्या को विचार विनिमय करने के लिए महर्षि शांडिल्य जी ने तो यहाँ तक कहा है, और भृगु जी ने भी यहाँ तक कहा है, कि हे प्रभुयदि हम !ारी सहस्रों वर्षों की अवस्था हो और हम आपके ज्ञान विज्ञान का अनुसन्धान करते रहे, तो प्रभुवह अवस्था भी हमारी सूक्ष्म है !, भगवन! ऐसा ऋषियों ने कहा, बेटा! मेरे प्यारेवेद का जो विषय है !ऋषिवर !, परमात्मा का जो विषय है, ब्रह्माण्ड और देखो, ज्ञान और विज्ञान का जो विषय है, यह एक महान् विषय है। इसको विचार विनियम करने के लिए, मानव को अपनी प्रवृत्तियों को तपाने की आवश्यकता रहती है, जैसा मैंने पूर्व काल में प्रगट करते हुए कहा है। मानव का प्रार्दुभाव और मानव का लय हो जाना, यह बेटा !प्राण और मन की ही दोनों दशा है। इनको विचार विनिमय करना, हमारा कर्त्तव्य है। इसी को विचारना है, क्योंकि मानव संसार में आया है, प्रपञ्च में, क्योंकि, यह जो मानव का शरीर है, यह भी एक प्रकार का प्रपञ्च है। बेटा! जब इस प्रपञ्च वाले, इस मानव शरीर को विचार विनिमय करने के लिए, यहाँ, इस संसार में आते हैं, बेटा इसी !को विचार विनियम करना है, अनुसन्धान करना है। इस प्रपञ्च को विचारना है, यह जो नाना प्रकार की इन्द्रियों का विषय है, इसको विचारो। विचार करके इसको संकुचित्त बनाओ, संकुचित्त बना करके, विचारों में विशालता और इनके जो विषय हैं, उनमें सूक्ष्मता लाना, ये महान पुरूषों का कर्त्तव्य हुआ करता है बेटा ! यह महान आत्माओं का कर्त्तव्य होता है, कोई कोई आत्मा होती है, जो मानव को सुन्दर मार्ग देकर चली जाती है बेटा! आज हमें देखो, उस महान पुरूषों को विचार लेना चाहिए और उन के ऊपर हमें अपने जीवन को न्यौछावर कर देना चाहिए। ऐसा हमारा पुनः से विचार होता चला आया है।

आओ मेरे प्यारे आज का हमारा वेद पाठ क्या कहता चला जा रहा था। !ऋषिवर ! आज के वेद पाठ में, उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन आता चला जाता

रहा था। कल मुझे समय मिलेगा महानन्द जी की एक इच्छा है, कि परमपिता कर्त्ता है, कि अकर्त्ता है। कल यह सूक्ष्म सा विचार चलेगा। आज का हमारा वाक्य यह कहता चला जा रहा है कि प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्याएं, सभी को संसार में साधक बनना है और साधक बनने के लिए हम इस संसार में आए हैं। साधना के लिए। साधना तो हमें करनी ही है। यहाँ उत्तम साधना नहीं करोगे, तो कुसाधना करोगे,)यही तक शब्द ध्वनि है(परन्तु करोगे अवश्य। इसीलिए हमारे ऋषि मुनियों ने कहा है कि भई साधना करने के लिए, जब तुम आए हो, तो ऊँची साधना क्यों न की जाएं। यहां ऊँची से ऊँची कल्पना और ऊँची से ऊँची साधना होनी चाहिए। मुझे एक वाक्य स्मरण आता चला गया। यह वाक्य मुझे बहुत प्रिय लगा करता है।

कल्पवृक्ष का कथानक

बेटाएक समय देव ऋषि नारद इस मृत मण्डल में आ गए !, तो उन्होंने विचारा, कि मैं किसी प्राणी को स्वर्ग में ले चलूंगा। तो जब वह आकर इस संसार में भ्रमण करने लगे, तो देखो, एक मनुष्य बड़ा दुःखित हो रहा है। ऐसा कहते हैं, कि उसकी पत्नी उसे नित्य प्रति दण्ड दिया करती थी। प्रातःकाल में उसे दण्ड दिया। वह मानव बड़ा दुःखित हो रहा था और वह प्रभु से याचना कर रहा था कि प्रभु अब मैं जीवन नहीं चाहता ! केवल मृत्यु चाहता हूँ। देव ऋषि नारद बोले यह मनुष्य तो बड़ा दुःखित हो रहा है और उससे कहा कि चलो, आज मैं तुम्हें स्वर्ग में ले चलूं। वह प्राणी बोला चलिए, भगवन !

अब नारद मुनि और वह मानव दोनों भ्रमण करते हुए स्वर्ग के द्वार पर जा पहुंचे। स्वर्ग के द्वार पर जा करके नारद मुनि ने कहा देखो, भाई! यह स्वर्ग का द्वार है, मैं भगवान् विष्णु से आज्ञा लेने जा रहा हूँ, तुम इस कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान हो जाओ और यहाँ सुन्दर प्रभु का चिन्तन करो। नारद मुनि तो स्वर्ग में जा पहुंचे और वह मानव उस कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान हो गया, जहाँ मन्द सुगन्ध वायु चल रही थी। मानव के मन में कल्पना होती है, कि अरे, यह तो बड़ा सुन्दर स्थान है, यहाँ तो तेरे लिए एक

आसन होना चाहिए था। अब बेटावह जो कल्पवृक्ष था !, कल्पना करते ही एक सुन्दर आसन लग गया। उस आसन पर विराजमान हो गया। जब ऐश्वर्य ने उसे लालायित कर दिया, तो उस मनुष्य के मन में कल्पना जागी, कि यहाँ तो मेरे लिए विश्राम करने वाला आसन भी होना चाहिए था। अब कल्पना की, तो आसन लग गया। उस आसन पर विराजमान हो गया। विराजमान होने के पश्चात् अब उस मनुष्य के मन में कल्पना आई, कि अरे, यहाँ तो नाना अप्सराएं होनी चाहिएं थी, ऐश्वर्य के लिए। अब कल्पना करते ही, वहाँ ऐश्वर्य के लिए अप्सराएं भी आ पहुंची। इतने में उस मनुष्य के मन में कल्पना जागी, कि यदि मृत लोकवाली अब पत्नी होती, तो तेरे ऊपर डण्डा होता। अब कल्पना करते ही मृत्यु लोक वाली पत्नी भी आ पहुंची, डण्डे सहित। अब मानव बड़ा दुःखित हुआ। आगे वह मानव और उसके पश्चात् उसकी पत्नी जी, दीर्घगति से भ्रमण कर रहे हैं।

तो इतने में नारद मुनि जी आ पहुंचे और उन्होंने दीर्घ वाणी में कहा, कि अरे, यह क्या? कल्पना को त्याग। उस मनुष्य ने कल्पना को त्यागा। कल्पना के त्यागते ही न तो पत्नी जी हैं, न अप्सराएं हैं न आसन है केवल वही कल्पवृक्ष विराजमान है। देव ऋषि नारद मुनि ने कहा, अरे, महामूर्ख अब तुझे इस कल्पवृक्ष के नीचे कल्पना ही ! करनी थी, तो यहाँ भी तूने अशुद्ध कल्पना की। अरे, यदि तू यहाँ ऋषि बनने की कल्पना करता, तो ऋषि बन जाता। यदि देवता बनने की कल्पना की होती, तो देवता बन जाता।

कर्म की अनिवार्यता

तो मुनिवरोंवाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः क्या !? कि यह जो सर्वश जगत है, यह एक प्रकार का कल्पवृक्ष है। यहाँ मानव आया है, ऊँची से ऊँची कल्पना करने के लिए। यहाँ तुम्हें कल्पना करनी है, कर्म करने हैं, अशुद्ध कर्म करोगे, परन्तु कर्म किए बिना तो रह नहीं सकते, इसलिए तुम्हें मुक्ति के लिए कर्म क्यों नहीं करने चाहिए?तो वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि आज प्रभु के जगत में, प्रत्येक प्राणी साधक

बनने के लिए आया हैं, साधक बनना है। यदि कोई मानव यह कहने लगे किजब तक संसारी भोगों में प्रवृत्ति है, जगत् में प्रवृत्ति है, वह साधक है, तो वह मिथ्या वाक्य उच्चारण करता है। वास्तव में संसार में प्रभु की सृष्टि में प्रत्येक प्राणी साधक ही बना रहता है। साधना करना उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। साधना करनी चाहिए। यही आज का हमारे वाक्यों का अभिप्राय है, हमें मन को, जो प्राण शक्तिशाली है, उसकी, उसमें प्रार्दुभावता, उसमें उसका सन्निधान कर देना चाहिए। आज का हमारा यह वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। कल मुझे समय मिलेगा, तो कल तुम्हारे शेष प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

आज के इन वाक्यों का अभिप्रायः क्या है, कि हमें प्रभु का चिन्तन करना है, अपने मानव जीवन को उत्तम बनाना है, महान् बनाना है। यह है आज का वाक्। आज वेद का पाठ होगा। उसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी।

२२ 12 04 1969 पुष्प 11 प्रातः परमात्मा कर्त्ता या अकर्त्ता

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने, पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, नित्य प्रति वेदमन्त्रों का पठन पाठन प्रायः होता ही रहता है। क्योंकि वेदों के, पठन पाठन के, भी नाना प्रकार होते हैं उच्चारण करने के, जैसे जटा पाठ, घन पाठ, माला पाठ, विसर्ग पाठ, उदात्त, अनुदात्त और भी नाना प्रकार होते हैं। हमारे यहाँ एक माला पाठ होता है, मेरे प्यारे महानन्द ! जी यह कहा करते हैं, कि हम इन पाठों के जो भेदन है, इनके नाना जो प्रकार हैं, उनमें एक माला पाठ होता है। इसे माला पाठ क्यों कहा जाता है? हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने एक वाक कहा है। इसके सम्बन्ध में, है कि माला कहते हैं जहाँ मनके और धागा होता है। धागे में पिरोएं हुए मनके होते हैं। उसको माला कहते है। इसी प्रकार यह माला पाठ इसलिए कहा जाता है कि वेद का जितना भी ज्ञान है, अथवा इसका विज्ञान है और वेद की जो प्रत्येक ऋचा है, प्रत्येक मन्त्र है, वह ओ३म् रूपी धागे में पिरोया हुआ है। इसीलिए हमारे ऋषि मुनियों ने जब वेदमन्त्र का उच्चारण करना प्रारम्भ

होता है। तो प्रारम्भ में ओ३म् का उच्चारण किया जाता है। क्यों किया जाता है? इसीलिए किया जाता है, क्योंकि जितना यह जगत है, यह ब्रह्माण्ड है, यह उस परमपिता परमात्मा की महानता में पिरोया हुआ है। जो दृष्टिपात आता है। क्योंकि मानव ज्ञान और विज्ञान के शिखर पर पहुंच जाता है, अथवा कोई भौतिक विज्ञान में चला जाता है कोई आध्यत्मिक विज्ञान का विश्लेषण करने लगता है। परन्तु वह सब उस परमपिता , परमात्मा में पिरोया हुआ है।

सृष्टि का प्रार्दुभाव

हमारे यहाँ जब यह माना जाता है कि ज्ञान, यह वास्तव में परमात्मा से ही कटिबद्ध है, उसी से सुगठित है, तो यह ब्रह्माण्ड भी, जितना भी परमाणुवाद है, जितने भी ये प्रपञ्च हैं, अथवा सर्वश: जगत् है यह उस परमात्मा में ही पिरोया हुआ है। परन्तु इन , वाक्यों में नाना प्रकार के दोषारोपण आ सकते है यदि इस सर्वश जगत को उस परमपिता परमात्मा में पिरोया ही स्वीकार कर लेते है तो वह नाना प्रकार के अवगुण मानव में आते रहते हैं, अथवा प्रकृति में आते रहते हैं, क्या वह भी परमात्मा से ही सुगठित है? तो यहाँ इसका ऋषि मुनियों ने उत्तर दिया है, और कहा है, कि वह परमात्मा, नाना प्रकार के जो अवगुण है, उनसे वह दूरी रहता है। उनसे वह पृथक रहता है। जब मुनिवारों! विचारने लगते हैं कि सृष्टि का प्रार्दुभाव कैसे होता है? क्या सृष्टि का प्रार्दुभाव मन के रूपों से होता है जैसे धागा और मनके होते हैं इसी प्रकार होता है अथवा इससे पृथक् होता है तो हमारे यहाँ आदि आचार्यों के भिन्न भिन्न प्रकार के उसमें विचार हैं। महर्षि वायु जी का विचार कुछ और है, अंगिरा जी का विचार और है? परन्तु मैं इन विचारों को तुम्हारे समक्ष, नियुक्त किए देता हूँ। अब जो तुम्हारे आँगन में आए उसे स्वीकार कर लेना।

एक ही ब्रह्म में सर्वस्व जगत्

महर्षि अंगिरा जी कहते है, सबसे प्रथम तो वायु जी, आदित्य जी, आदित्य जी कहते है, कि वह जो परमात्मा है, उसमें ही सर्वश जगत् पिरोया हुआ है। वह जो प्रकृति है,

यह मानो परमात्मा के गर्भ में विराजमान रहती है और परमात्मा का जो महतत्त्व है, उसी के आश्रित मानो देखो, महतत्त्व के उत्पन्न होते ही, यह प्रकृति और परमात्मा दोनों देखो, प्रकृति का सन्निधान ब्रह्म से होता है, प्रकृति रच जाती है, मानो इसका व्यापक रूप बन जाता है। व्याप्य और व्यापक दोनों में सुगठिता दोनों में रहने के नाते मानो देखो, उसमें एक विकृत अध्यान धारा, आश्रित होने लगती है। ऐसा हमारे यहाँ वायु जी ने कहा है। मैं संक्षिप्त परिचय कराऊंगा, अधिक इसमें विवेचना नहीं दे सकूंगा, परन्तु यहाँ अंगिरा जी कहते हैं, कि नहीं, संसार में मानो एक ही ब्रह्म है। उसी ब्रह्म का देखो, यह सर्वस्व जगत् है उसी में यह व्याप्त है, उसी में यह सब कुछ हो रहा है। वह जो अज्ञान छाया हुआ है वह मानो जो अज्ञान छाया हुआ है वह मानो देखो, जीव रूप में परणित होता रहता है। परन्तु जहाँ जीव का अज्ञान दूर हो जाता है तो वह एकां ब्रह्मे हो जाता है। यह ऐसा महर्षि अंगिरा जी का विचार है।

तीन पदार्थों की स्वीकार्यता

परन्तु देखो, मैं तुम्हें अभी अभी बेटानिर्णय कराऊंगा !, कि इसमें हमें कौन से वाक्य को स्वीकार करना है। महर्षि अंगिरा जी ने जब ऐसा कहा, कि एको ही ब्रह्म की ही सत्ता इस जगत में विराजमान रही है, यह सब हमें ब्रह्म का स्वरूप ही प्रतीत हो रहा है, जैसे मानो गो के दुग्ध में मानो देखो, घृत ओत प्रोत है। इसी प्रकार मानो जैसे वायु मण्डल में सर्वत्र विद्युत विराजमान है, ऐसे ही वह ब्रह्म है। परन्तु देखो, प्रकृति भी इसी का स्वरूप माना जाता है, उसी के गर्भ में रहती है और यह सर्वस्व जगत् उसी के गर्भ में ओत प्रोत रहता है। यह महर्षि अंगिरा जी का विचार है। परन्तु उनका निदान किया हुआ, एक वाक्य है। उसके पश्चात् आदित्य, अंगिरा वायु जी का जो विचार है, वायु जी का ये विचार है, कि संसार में देखो, कारण, उपादान कारण, निमित्त कारण, मानो देखो, उन्होंने तीन प्रकार के पदार्थ स्वीकार किए हैं। मानो देखो, जैसे जीव है, उन्होंने जीवात्मा, ब्रह्म और प्रकृति, ये तीनों ही उन्होंने स्वीकार किए है, परन्तु उन तीनों को स्वीकार करके उन्होंने कहा है, कि यह जो जीवात्मा है, यह इस मानव के शरीरों में

व्याप्ता रहता है, क्योंकि जीवात्मा अनन्त हैं, इनकी कोई गणना नहीं हो सकती है, जीवात्मा अनन्त है, परन्तु यह जो प्रकृति है, प्रकृति और ब्रह्म दोनों ये सर्वत्र नित्य माने जाते है, यह किसी भी काल में नष्ट नहीं होते। प्रलय काल में भी अपने अपने स्वरूप में रमण करते रहते हैं। अपने स्वरूप में यह विराजमान रहते है परन्तु जब यह स्वीकार किया जाता है वायु जी ने कहा है, एक वेदमन्त्र को ले करके उन्होंने कहा है व्यापं ब्रह्म आत्म ब्रह्मे ब्रह्मवस्ती सुप्रजा कथन नविस्ति सुप्रजाः यहाँ महर्षि वायु जी ने कहा है, वायु जी ने कहा है कि यह जो तीनों हैं, परन्तु इसमें ब्रह्म जो है, परन्तु ब्रह्म इस प्रकृति के, प्रकृति और ब्रह्म दोनों का सन्निधान होता है परन्तु दोनों के सन्निधान से, दोनों की अकृति होने के नाते, मानो जो इस प्रकृति में जो जगत् है, यह प्रकृति रूप में रच जाता है जो हमें दृष्टिपात आता है। मानो वह जो ब्रह्म है, वह महान सूक्ष्म, महा सूक्ष्म है परन्तु यदि उसमें यह माना जाता है कि इस महान् प्रकृति का जगत का रचयिता, जगत का रचयिता ब्रह्म है, तो वायु जी ने ऐसा स्वीकार नहीं किया। वायु जी ने कहा है कि अहं ब्रह्मे आकृतिः मा मान्नम् ब्रह्मे अस्त सुप्रजो व्याप्म् ब्रह्म नित्य प्रति रुद्राः वायु जी ने कहा है, कि वास्तव में ब्रह्म का, प्रकृति का, दोनों का व्याप्य और व्यापक स्वरूप माना जाता है, परन्तु देखो, वह अपृति, प्रकृति का अपना भी कोई अस्तित्व होता है। ब्रह्म व प्रकृति जहाँ दोनों का सूक्ष्म सा सन्निधान होता है सूक्ष्म से सन्निधान से ही मानो देखो, इस प्रकृति में व्यापकता आ जाती है, प्रकृति में एक रच भाव आ जाता है, क्योंकि रचना का जो स्वाभाविक गुण है, वह महर्षि वायु जी ने प्रकृति में स्वाभाविक माना है। परन्तु देखो, जैसे ब्रह्म का स्वाभाविक गुण, उसकी चेतना है, परन्तु वह ब्रह्म की ही चेतना प्रकृति में कुछ सूक्ष्म सन्निधान होने से ही मानो देखो, प्रकृति का जो स्वाभाविक गुण है, वह उमड़ आता है। मुनिवरोंदेखो !, उमड़ने के नाते, इस संसार की रचना हो जाती है। मानो ब्रह्म जो है, वह इस प्रकृति का वास्तव में वायु मुनि जी ने कर्त्ता ही स्वीकार नहीं किया।

देखो, जो यह जीवात्मा है, यह इस प्रकृति के आँगन में विराजमान हो करके, अपना कर्म करता रहता है। इसमें ही मानो देखो, चित्त का आभास जीव के अब्रह्म में है।

परन्तु वह जो ब्रह्म है, ब्रह्म में चित्त स्वीकार नहीं किया। यदि ब्रह्म में चित्त स्वीकार किया जाता, तो वायु जी कहते है कि यदि ब्रह्म में चित्त स्वीकार किया जाता, तो उसकी रचना में यह प्रतिभा अकृत होती, क्या वह उसका परिणाम भी ब्रह्म में अनिवार्य है, क्योंकि जो भी चेतना हो, अचेतना हो, परन्तु जो भी रचना रचता है, उसके परिणाम की उसे जिज्ञासा अवश्य होती है, क्योंकि यह उसका स्वभाव रहता है। जैसे एक मानव है, परन्तु जो भी मानव कोई रचना रचता है, किसी भी प्रकार की रचता है, वह योग की रचो, आध्यात्मिकवाद की रचो, परन्तु भौतिकवाद की रचो, ज्ञान विज्ञान में पहुंच जाओ, परन्तु अन्त में उसके परिणाम कि, उसे जिज्ञासा अवश्य होती है। इसी प्रकार वायु जी ने कहा है, सम्भवन्यानम् ब्रह्मे व्यापम् ब्रह्मा प्रति अस्ति विश्वा रधोन्तमम् प्रमाणः वेद के ऋषि ने कहा है, वायु जी ने कहा है कि वास्तव में यदि ब्रह्म को यह स्वीकार किया जाएं, कि ब्रह्म ही सृष्टि का कर्त्ता धर्त्ता है, तो उस ब्रह्म में सदैव परिणाम की जिज्ञासा होना स्वाभाविक हो जाता है।

मानव का असम्भव विचार

परन्तु देखो, ऐसा वायु जी ने स्वीकार किया है, तो मैं भी इसका समर्थन प्रत्येक वाक् का अभी तक नहीं कर रहा हूँ। मैं केवल ऋषियों के विचार तुम्हारे समक्ष, नियुक्त कर रहा हूँ, क्योंकि कोई भी मानव अपने मन में, अभिमान करने लगे, इसलिए मैं नियुक्त कर रहा हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है बेटा! वायु मण्डल के परमाणुओं से, वायुमण्डल के परमाणु मुझे ये बाध्य भी कर रहें है, कि यदि कोई मानव अभिमान करने लगे, कि मैंने संसार में नवीन कोई रचना रची है, नवीन ब्रह्म के विषय में कुछ निर्णीत किया है, तो यह मानव का असम्भव विचार है। यह मानव का निजी विचार नहीं होना चाहिए, क्योंकि ज्ञान नित्य है। देखो, वह ब्रह्म का जो ज्ञान है, वह अनित्य है, मानो देखो, उसकी कोई सीमा नहीं है। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने भिन्न भिन्न प्रकार के विचार, हमारे समक्ष नियुक्त किए हैं। नाना प्रकार के विचार हैं बेटायदि तुम कहो !, तो मैं यहाँ सहस्रो ऋषियों के विचार तुम्हारे समक्ष, नियुक्त कर सकता हूँ, परन्तु मैं इस सम्बन्ध में

नही जाना चाहता, मैं परमाणुवाद या वायुमण्डल के इन वाक्यों में नहीं जाना चाहता हूँ। केवल वाक्य यह प्रगट करना है कि वायु मुनि जी ने क्या कहा है।

ब्रह्म के सन्निधान से रचना

वायु मुनि जी ने बहुत से प्रमाण दिए। उन्होंने कहा कि वास्तव में देखो, ब्रह्म के सूक्ष्म से सन्निधान से ही प्रकृति का स्वभाव उमड़ आता है और उसी स्वभाव से पञ्च महाभूतों में क्रिया आ जाती है। क्योंकि, जितना प्रकृतिवाद है, वह पञ्च महाभूतों में विराजमान है और महाभूतों के एक एक गर्भ में, जो जो उनका गुण है, उनका जो स्वभाव है, मानो वह शान्त रूप से विराजमान है। ब्रह्म का सूक्ष्म सा सन्निधान होते ही, सूक्ष्म सा वृत्त होते ही मानो देखो, उनके स्वभाव उमड़ जाता हैं और पञ्च महाभूतों का यह ब्रह्माण्ड रच जाता है बेटा! परन्तु देखो, किसी लोक में, कोई तत्त्व प्रधान हो जाता है, अपने स्वभाव से और किसी लोक में कोई तत्त्व प्रधान हो जाता है, जैसे मैंने पूर्वकाल में भी कहा है, इस पृथ्वी पर देखो, पार्थिव तत्त्व प्रधान होता है, परन्तु सूर्यमण्डल में अग्नि तत्त्व प्रधान होता है और बृहस्पति मण्डल में वायु तत्त्व प्रधान होता है, ध्रुव मण्डल में बेटा जल तत्त्व प्रधान होता है। !

परन्तु इसी प्रकार अपने अपने तत्व को यहाँ, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की रचना, इस पञ्च महाभूतों से कोई पृथक नहीं होती। इन्हीं पञ्च महाभूतों के अन्तर्गत बेटा नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की रचना होती रहती है। जैसे हमारा यह सूर्य ! मण्डल है, जैसे यह हमारा, ये पृथ्वी मण्डल है, मानो पृथ्वी मण्डल में, पार्थिक तत्त्व वाले प्राणी विचरण करते हैं, परन्तु देखो, वागेश्वरीय मण्डल में अग्नि तत्त्व वाले प्राणी हैं और बृहस्पति मण्डल में वायु तत्त्व प्रधान प्राणी हैं। वैसे ही प्राणी, वैसी ही योनियाँ विचरण करती रहती हैं। परन्तु देखो, यहाँ आत्मा अनन्त होने के नाते बेटा यहाँ अनन्त ! प्रभु के ब्रह्माण्ड में, मानो इस प्रकृति मण्डल में, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की अनन्तता है। दोनों में प्रकृति में भी अनन्तता है, उसकी कोई सीमा नहीं है। परन्तु जैसे ब्रह्म की चेतना की कोई सीमा नहीं है, इसी प्रकार देखो, प्रकृति, उसी के आँगन में

रमण होने के नाते, उसकी भी कोई सीमा स्वीकार नहीं की गई है।

ब्रह्म कर्त्ता या अकर्त्ता

महर्षि वायु जी ने कहा है, कि मेरा जो अपूत विचार है वह किसी ऋषि से भिन्न नहीं हो सकता। परन्तु उन्होंने कहा है, कि मेरा जो अन्वेषण है, मेरा जो विचार है, हमारा यह विचार माना गया है, क्या, वह जो ब्रह्म है, वह अकर्त्ता है। परन्तु सूक्ष्म सा सन्निधान प्रकृति से अवश्य होता है। परन्तु हम उस सूक्ष्म से मिलान को हम क्या कह सकते हैं? उसको हम कर्त्ता स्वीकर करें अथवा न करें? इसके ऊपर भी हमारा कुछ बल है, परन्तु यहाँ वेद के कुछ मन्त्र स्पष्टता देते चले जा रहे हैं, उन्होंने कहा है, वेद के मन्त्रों में कहा है ब्रह्मे विश्वा रहनमम् आप्रति रूद्रों असवत्रि कृति रूद्राः वेद का आचार्य कहता है, वेद के मन्त्र को लेकर के कि वास्तव में देखो, सूक्ष्म से सन्निधान से, सूक्ष्म से मिलान से, मानो यह नहीं हो सकता, कि वह प्रकृति का रचयिता हो गया है, इस ब्रह्माण्ड का रचयिता हो गया है, क्योंकि जैसे यदि बेटा! यह स्वीकार किया जाएगा, कि इस प्रकृति का, इस संसार में कोई अस्तित्व नहीं है, तो प्रकृति का नित्य मानना असफल हो जाएगा। वह मानव के लिए सुन्दर नहीं होगा। यदि यह स्वीकार किया जाएं, कि केवल ब्रह्म में ही प्रकृति रमण करती रहती है, यह ब्रह्म का ही स्वरूप माना गया है, तो बेटा! यह जो नाना प्रकार के दोषारोपण हैं, यह भी ब्रह्म में स्वीकार करने हो जाएंगे।

परन्तु इससे ब्रह्म परिणामी होता चला जाएगा, यह महर्षि वायु जी का विचार है, बेटा ! उन्होंने कहा है कि मैं इस वाक्यको स्वीकार नहीं करूंगा, परन्तु देखो, एक समय महर्षि वायु जी के समीप बेटा !देखो, महर्षि आदित्य जी और महर्षि अंगिरा जी, आदि ऋषियों का एक समाज एकत्रित हुआ। परन्तु उसमें उनके विचारों को, विचार विनिमय करने के लिए, महाराज! हम आपके विचारो से सहमत नहीं है, परन्तु हम आपके विचारो को स्वीकार नहीं करते, महर्षि वायु जी ने कहा कि मैं यह नहीं कहता, कि तुम मेरे विचारों को स्वीकार करो, परन्तु जो वेद कहता है, परम पुनीत विद्या कहती है, मैं तो उसके आधार पर अवश्य प्रगट कर रहा हूँ। रहा यह वाक्य कि तुम स्वीकार करो

या न करो, परन्तु जो मेरा यह विचार है, परन्तु ये यह वायुमण्डल में विचरण करेगा और मानो जो वेद की पवित्र विद्या है उसमें से मैंने इन वाक्यों की जानकारी की है, इसका निदान किया है। इसको विचारा है और मेरे विचारों को तुम नष्ट नहीं कर सकते। परन्तु जब तत्त्व मुनि ने कहा कि भईहम ! आपके विचारों को नहीं, परन्तु हमें भी तो इसका कुछ ज्ञान हो जाएं, क्योंकि जब हम एक ही ब्रह्म को स्वीकार करते हैं, एक ही ब्रह्म है, मानो देखो, यह प्रकृति उसी के गर्भ में विराजमान रहती है। रहा यह वाक्य, कि हम यह स्वीकार करें, कि दोषारोपण जो होते हैं, वह प्रकृति के हैं, अथवा ब्रह्म के हैं, क्योंकि देखो, यह जो प्रकृति है इसमें जड़ता है। जड़ता होने के नाते, हम यह कैसे स्वीकार करेंगे, कि इसका भी या ब्रह्मे ब्रह्मे अस्ति सुक्रता। मानो ब्रह्म के सन्निधान होते ही से क्योंकि ब्रह्म की चेतना तो प्रकृति को प्राप्त होती है उसके पश्चात् ही प्रकृति , आप भी स्वतन्त्र हैं। परन्तु जहाँ स्वतन्त्रता का प्रश्न आया, वहाँ ऋषि मुनियों ने कहा है कि भईयह वाक्य तो सुन्दर है !, क्या तुम विचारों में तो स्वतन्त्र हो, मैं भी विचारों में स्वतन्त्र हूँ, परन्तु प्रत्येक प्राणी मात्र संसार में अपने अपने विचारों में स्वतन्त्र है, परन्तु स्वतन्त्रता वह भी सुन्दर नहीं होती, जिस स्वतन्त्रता में आगे चलकर के परतन्त्रता आ जाती है।

न्याय के गर्भ में प्रभु की दया

उन्होंने कहा कि मेरे विचारो में, मुझे परतन्त्रता प्रतीत नहीं होती है, उन्होंने कहा कि तो क्या परमात्मा की दया स्वीकार करना असंभव हो जाएगा? उन्होंने कहा कि परमात्मा की दया, परमात्मा का सदैव न्याय होता है, उसके न्याय के गर्भ में ही उसकी दया होती है, परन्तु न्याय के ही गर्भ में दया होती है। इसीलिए मैं इस वाक्य को स्वीकार

नहीं करूंगा। परन्तु ऋषि मुनियों में एक विवाद हो गया। इस विवाद में महर्षि आदित्य जी ने कहा कि तुम्हारा वाक्य तो सुन्दर है, कि न्याय के गर्भ में ही दया है। परन्तु देखो, जब न्याय और दया प्रभु की स्वीकार करते अथवा नहीं, परन्तु जब न्याय दया स्वीकार करते हो, तो यह देखो, ब्रह्म तुम्हारे विचारों से परिणामी हो गया है।

परन्तु जब यह वाक्य महर्षि वायु मुनि जी के समीप आया, तो वायु मुनि जी ने विचारा और वायु मुनि जी ने विचार करके कहा कि वास्तव में वाक्य सुन्दर है, परन्तु इसके ऊपर विचारा जाएं। विचार विनिमय होने लगा। महर्षि वायु जी ने विचार करके, कुछ मानो समाधिष्ट होकर के, विचार विनिमय करके उन्होंने बुद्धि के सुन्दर पटल में जा करके और चित्त के आँगन में जा करके, चित्त और बुद्धि के दोनों का सन्निधान करते हुए, वायु जी ने उत्तर दिया कि वास्तव में मानो देखो, मैं इस वाक्य को स्वीकार इसलिए नहीं कर रहा हूँ, कि ब्रह्म की न्याय और दया मैं इस रूप से स्वीकार करूं। परन्तु मेरा जो वास्तविक जो वेद का विचार है, वह ऐसा है कि वह जो ब्रह्म है, क्या मानो देखो, ब्रह्म की जो न्याय और दया है, केवल वह वहीं तक सीमित रहती है जहाँ तक उसका प्रकृति में सूक्ष्म सा सन्निधान होता है, क्योंकि प्रकृति का यह स्वाभाविक गुण होता रहता है, क्योंकि जीव के, जीवात्मा और प्रकृति दोनों के सन्निधान से मानो देखो, न्याय और दया स्वाभाविक होती रहती है। वह की नहीं जाती। परन्तु जब इस वाक्य को स्वीकार किया गया, तो यहाँ नास्तिकवाद की तरंगे उत्पन्न होने लगीं। परन्तु जब नास्तिकवाद की तरंगे उत्पन्न होने लगी, तो इसमें भी भिन्न भिन्न प्रकार के विचारोपण होने लगे। उस समय मुनिवरों! यह स्वीकार किया गया, कि आज हम वास्तव में यह वाक्य कैसे स्वीकार करें, तो ऋषि मुनियों के लिए किसी द्वितीय काल में विचार विनिमय करने के लिए, समय प्रदान किया गया।

जीवात्मा का आकार

इसमें बेटादेखो !, महर्षि मंगले केतु महाराज के आश्रम में एक सभा हुई। परन्तु उस सभा में महर्षि वायु मुनि जी महाराज, महर्षि तत्त्व मुनि महाराज, सोमकेतु भृंगी ऋषि,

आखूती ऋषिवरों का बेटा पुनः एक समाज हुआ। परन्तु समाज में यही प्रश्न उत्तर ! होने लगे। उस समय महर्षि तत्त्व मुनि महाराज और महर्षि अंगिरा जी और आदित्य मुनि महाराज यह सभी आदि ऋषिवर विराजमान हो गए। परन्तु उन ऋषियों के समाज में पुनः से संघर्ष होने लगा, विचार विनिमय होने लगा और परन्तु अन्त में देखो, यह विचार हुआ, महर्षि वायु जी ने कहा, वास्तव में जब हम यह स्वीकार कर लेते हैं, कि परमात्मा वास्तव में क्या हैमानो उन्होंने कहा ?, अम्ब्रः ब्रह्मे कृत्रि रुद्रा वह जो ब्रह्म है वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म अणु माना गया है। परन्तु ऋषि मुनियों के विचार में, एक वाक्य आया, कि आत्मा को कितना सूक्ष्म अणु स्वीकार करोगे? उस समय बेटा! महर्षि वायु जी ने कहा है, कि मानव के सिर का जो केश होता है, एक बाल होता है परन्तु उसका गोल विभाग कर लिया जाएं और उसका गोल विभाग के साठ भाग करोगे और जो साठवां जो भाग होगा, उसके भी निन्यानवे भाग करोगे, वह जो निन्यानवेवां भाग है, उसके बराबर जीवात्मा स्वीकार की गई है।

तो मेरे प्यारेमहर्षि वायु मुनि महाराज ने जब ऐसा कहा !ऋषिवर !, आदित्य मुनि महाराज मानो, बौखला गए, उनके हृदय में महान तरंगे उत्पन्न होने लगीं। उन्होंने कहा कि वास्तव में हम यह स्वीकार कर सकते है, कि अब इस प्रकार स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु जब हम अब, परमात्मा को, ब्रह्म को कितना अणु मानोगे? उन्होंने कहा है, कि ब्रह्म इतना अणु है, इतना सूक्ष्म है, कि यह जीवात्मा का निन्याननेवां भाग है, मानो इसके 99वां जो भाग है उसके भाग ही किए जाएं और 99 भाग किए जाएं 60, इतना सूक्ष्म ब्रह्म स्वीकार किया गया है।

तो मेरे प्यारेआज हम !ऋषिवर ! ये स्वीकार कर सकते हैं, क्या जीवात्मा के लिए क्या, ब्रह्म के लिए क्या, क्या क्या हम स्वीकार करें, परन्तु जब यह वाक्य बहुत ही अस्तो में आता है, मानो संघर्ष का एक विषय बन जाता है, उस समय महर्षि वायु जी ने कहा है, कि भई मेरा तो यह विचार है कि मैं तो ब्रह्म को अकर्त्ता ही स्वीकार करता हूँ। ! देखो, आदित्य मुनि जी ने कहा, कि वास्तव में तुम ब्रह्म को स्वीकार कर लो, कि वास्तव में, यह जो ब्रह्म है, यह अकर्त्ता है, परन्तु जब प्रकृति को सूक्ष्म सा भी इसमें

व्याप्य और व्यापक स्वीकार करोगे, तो मानो तुम ब्रह्म को अकर्त्ता स्वीकार कर लो, परन्तु यदि देखो, सूक्ष्मता भी स्वीकार कर लोगे। (पुस्तक से)

तो उसी समय देखो, ब्रह्म संसार का रचयिता माना जाएगा। जब यह वाक्य उनके मस्तिष्कों में आया, तो वायु मुनि जी और आदित्य जी दोनों के विचार विनिमय होने लगे। जब दोनों का विचार विनिमय होने लगा, तो दोनों के विचारों में व्यापकता आने लगी और उस समय वह स्वीकार किया गया, कि वास्तव में इस विवाद में न जाओ, क्योंकि ब्रह्म का जो विषय है, वह बुद्धि का विषय नहीं, केवल अनुभव का विषय रह जाता है। आदित्य मुनि जी ने जब यह एक वाक्य कहा, तो उस समय वायु मुनि जी ने कहा, कि यह तो हम वास्तव में स्वीकार कर सकते हैं। अन्त में ब्रह्म को नेति नेति उच्चारण कर सकते हैं, परन्तु जहाँ तक बुद्धि की सीमा है, जहाँ तक शब्दों की सीमा है, वहाँ तक मैं ब्रह्म को अकर्त्ता ही स्वीकार करता रहता हूँ, क्योंकि वास्तव में मुझे उसमें कोई प्रतीति प्राप्त नहीं होती है इसीलिए मैं उसे कर्त्ता स्वीकार कर ही नहीं सकता। वायु मुनि जी ने यह वाक्य स्वीकार करके, आदित्य मुनि ने कहा कि क्यों नहीं कर सकते? क्योंकि इसमें तो तुम्हारा सिर नीचे हो जाएगा, क्योंकि जब भी कोई यौगिक वाक्य आएगा, उसी समय तुम्हारा सिर नीचा हो जाएगा, सिर नीचा हो जाना ही ऋषि के लिए मृत्यु के तुल्य स्वीकार किया गया है। जब आदित्य जी ने यह वाक्य उच्चारण किया, तो वायु जी ने कहा कि वास्तव में, मैं इस वाक्य को कैसे स्वीकार करूं मैं ? क्या इन वाक्यों को, एक ही ब्रह्म स्वीकार कर लूं। उन्होंने कहा कि नहीं, एक ब्रह्म को स्वीकार मत करो, परन्तु इन तीन पदार्थों को नित्य स्वीकार कर लो। देखो, आत्मा, परमात्मा और प्रकृति तीनों ही वाक्यों को ले कर चलो। जहाँ सूक्ष्म सा भी व्याप्य और व्यापक भाव दोनों में आ जाएगा, उसी समय उसी की चेतना स्वीकार की जाएगी। वहाँ उस चेतना में यह स्वीकार मत करो, कि यह जो चेतना आई है, उसका परिणाम ब्रह्म होगा। ब्रह्म उसका परिणामी नहीं होगा, क्योंकि उसका परिणामी केवल जीवात्मा अथवा प्रकृति ही होगी, क्योंकि ब्रह्म को तो उस रूप में तुम वास्तव में अकर्त्ता स्वीकार कर लो, मत स्वीकार करो, यह तो तुम्हारा विचार है, परन्तु जहाँ यह विचार स्वीकार किया

जाएगा, कि व्याप्य व्यापक रूप दोनों का आते ही, मानो उसमें तुम्हें कुछ न कुछ स्वीकार करना ही होगा, और कोई न कोई तुम्हारे समीप, क्योंकि ब्रह्म की जो चेतना है, वह ब्रह्म की चेतना प्रकृति में स्वीकार करनी होगी। क्योंकि वास्तव में प्रकृति की जो रचना है, उसकी रचना तुम स्वाभाविक स्वीकार कर लोगे। परन्तु यदि रचना स्वाभाविक स्वीकार कर ली, और वह स्वीकार भी उस रूप से, तुम स्वीकार कर रहे हो, जबकि ब्रह्म की व्याप्य और व्यापक रूप आ जाएगा। जब व्याप्य और व्यापक रूप दोनों को स्वीकार करोगे, तो प्रकृति में जो चेतना है, वह सूक्ष्म सी ब्रह्म को स्वीकार करने के नाते, मानो देखो, उस महान् प्रकृति की रचना तुम्हें स्वाभाविक स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि यह सार्वभौमिक सिद्धांत हो सकता है। सार्वभौम सिद्धान्त स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं है, और न किसी ऋषि को हो सकती है।

ब्रह्म भी एक सूक्ष्म अणु

परन्तु रही यह वार्त्ता कि परमात्मा की दया और न्याय जो एक वाक्य संसार में रह जाता है की परमात्मा न्याय करता है, अथवा दया और न्याय दोनों ही किया करता है, तो वेद का ऋषि कहता है, आदित्य जी कह रहें, कि वह जो दोनों की चेतना है, दोनों की जो प्रधि अस्ति है, मानो देखो, यह स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि ब्रह्म भी एक सूक्ष्म अणु है और वह जो अणु है उस सूक्ष्मता में ही एक महान् चेतना है, प्रबल चेतना है, उस चेतना के प्रभाव से ही जहाँ जहाँ उसका चेतना भाव जाता है, वहीं एक सुन्दर रचना, कहीं चित्त की रचना होती रहती है, कहीं प्राण की सुन्दर रचना होती है, कहीं मन की रचना होती है, कहीं इन्द्रियों की रचना है। यह रचना उसके प्रतिबिम्ब से ही स्वीकार की जा सकती है। परन्तु वह जो पञ्च महाभूत हैं, उसमें तो प्रकृति का स्वाभाविकत्व और परब्रह्म परमात्मा की सुन्दर व्याप्य और व्यापकता का भाव वहाँ आ ही जाता है। परन्तु जहाँ यह स्वीकार किया जाता है कि ब्रह्म में वह जो आत्मा है, आत्मा इस मानव शरीर में स्वतः जहाँ जहाँ उसका प्रतिबिम्ब जाता है, वहीं वहीं रचना होती चली जाती है, जैसे प्रकृति में सुन्दर रचना होती चली जाती है

और प्रकृति में रचना कहीं मानो देखो, यह जगत् रच गया, परमाणुओं में गति आ गई, लोक लोकान्तर रच गए, परमाणुओं के सुगठित होने से ही मानो यह सुन्दर रचना हो गई। इसी प्रकार देखो, यह आत्मा जहाँ प्रतिबिम्ब जाता है, वहीं सुन्दर से सुन्दर रचना होती चली जाती है। वह कहीं चित्त बन गया, कहीं अहंकार बन गया, कहीं बुद्धि का निर्माण हो गया, कहीं मन की रचना हो गई, ज्ञान इन्द्रिय, कर्म इन्द्रियों की रचना हो गई। इसी का व्यापक रूप बनता चला जाता है। (शब्द ध्वनि से)

प्रकृति के पांच गुण

परन्तु इसी को संकुचित्त किया जा सकता है क्योंकि मैंने प्रकृति में पांचों गुण, मैंने तुम्हें पूर्व काल में उच्चारण करते हुए कहा है, कि प्रकृति के पांच गुण हैं, देखो, जिनको हमारे यहाँ ध्रुवा, ऊर्ध्वा, व्यापकता, प्रसारण और आकुञ्चन कहा गया है। यह प्रकृति के पांचो गुण हमारे यहा स्वीकार किए गएं हैं मानो देखो, यही पांचो गुण हमारे यहाँ देखो, यह जो मानव के शरीर में चित्त है, अहंकार है, बुद्धि है, मन है, मानो देखो, इनमें भी वह पांचों गुण और प्राण हैं, इनमें स्वीकार किए जाते हैं, इनमें हमें भास होता रहता है। कि वास्तव में इनको व्यापिक भी किया जाता है, और इनको आकुञ्चन, बहुत सूक्ष्म भी बनाया जा सकता है।

हमारे यहाँ, ऋषि मुनियों ने तो ऐसा कहा है, ऋषिजन जो होते हैं इसीलिए वह में इस वाक् को स्वीकार करते है, क्या वह प्राणों को और मन को देखो, संकुचित्त बना करके, अपने सूक्ष्म शरीर में भी पहुँच जाते हैं और इनको व्यापक बना करके, स्थूल शरीर में भी आ जाते हैं मानो देखो, इन वाक्यों से हमें सिद्ध होता है कि वहाँ आत्मा को माता के गर्भ की भी आवश्यकता नहीं रहती।

परन्तु मैं इस वाक्य की चर्चा तो मैं किसी काल में करूंगा। मैं वाक्य उच्चारण करते करते दूर चला जा रहा हूँ। वाक तो बेटामैं वहीं ! चला जाँऊ, जहाँ तुम्हारा वाक्य चल रहा था, क्योंकि तुम भी प्रश्न करने वाले होगे, क्योंकि तुम्हारी बुद्धि में भी सदैव नाना प्रकार की तरंगे उत्पन्न होती रहती हैं। मुझे उसमें कोई संकोच नहीं है, यहाँ बेटा! ऋषि

मुनियों के जो विचार, जो विचारधारा है उनको उच्चारण किया करता हूँ। रहा यह वाक्य, कि हमारा कोई निजी विचार हो, उस वाक्य को भी मैं किसी काल में या अभी प्रगट कर सकूंगा। परन्तु केवल आज तो यह उच्चारण करते चले जा रहे थे, कि आदि ऋषियों में यह संघर्ष होता चला आया है। परन्तु इस संघर्ष से हमें यह स्वीकार होता है, इस संधर्ष में हमें यह प्रतीत होता चला जा रहा है कि परमात्मा मानो देखो, न्याय और दया का प्रश्न चल रहा था। परमात्मा में न्याय है अथवा दया है, मुनिवरों ऐसा स्वीकार ! किया गया है, कि यह जो प्रकृति का निदान होता है, व्याप्य और व्यापक दोनों का जो स्वरूप आता है, मानो देखो, इसी के गर्भ में, उसके व्याप्त होने में ही, मुनिवरों! उसके आश्रित में, परमात्मा निर्गुण और सगुण की चर्चा चल रही थी। मैं इसकी भी चर्चा करता चला जा रहा था। परमात्मा निर्गुण है अथवा सगुण है।

परमात्मा का निर्गुण व सगुण रूप

मुनिवरोंपरमात्मा एक रूप में नि !र्गुण माना गया है, उसमें अकृति है और मानो किसी किसी स्थान में उसको, ऋषि मुनियों ने बेटासगुण भी स्वीकार किया है !, क्योंकि प्रकृति में उसकी चेतना होने के नाते उसी की चेतना से बेटा! ब्रह्म को सगुण स्वीकार किया गया है और वह क्योंकि निदान मात्र से ही, उसको पृथक् ऋषियों ने स्वीकार किया, उसको कहा कि निर्गुण है, इसमें कोई गुण नहीं है, मानो वह तो एक अणु है, वह केवल प्रकृति में सूक्ष्म सी चेतना दे देता है। यह स्वीकार किया है परन्तु देखो, इसमें कौन से वाक् को स्वीकार किया जाएं, यह वाक्य बेटा मैं अपना वाक्य कोई ! प्रगट नहीं करना चाहता। मुझे तो ऋषि मुनियों के विचार, उनकी जो धाराएं हैं, उनको उच्चारण करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। यह परमात्मा की मेरे ऊपर अनुपम कृपा है कि वह दया कर देते हैं, मानो देखो, उसी में अप्रति विचार हैं।

तो मेरे प्यारेआगे विचारधारा च !ऋषिवर !ल रही थी, कि ऋषि मुनियों ने परमात्मा को निर्गुण और सगुण दोनों ही स्वीकार किया है। रहा यह वाक्य कि किस ऋषि की दृष्टि में कौन सा वाक्य यथार्थ है, तो ऋषि मुनियों ने कहा है, कि परमात्मा निर्गुण रूप में

ही स्वीकार करना बहुत ही सुन्दर होगा। रहा यह वाक्य हम देखो, इस वाक्य को भी और गम्भीरता में ले जाना चाहते थे। चाहते हैं। थे नहीं, क्योंकि थे में तो सन्देह हो जाएगा, मैं सन्देह में नहीं जाना चाहता हूँ। केवल वाक्य यह प्रगट करना चाहता हूँ, कि वास्तव में जब हम ब्रह्मा को देखो, ऐसे निर्गुण स्वीकार कर लेते हैं, तो इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं होती, क्योंकि आत्मा का अपना अस्तित्व होता है, प्रकृति का अपना अस्तित्व होता है। रही परमात्मा की न्याय और दया का वाक्य, क्योंकि प्रत्येक मानव यह कहता है, कि परमात्मा न्यायकारी है, वह न्याय करता रहता है, क्योंकि न्याय ही परमात्मा, न्याय के गर्भ में ही परमब्रह्म की दया विराजमान रहती है। ऐसा कहते है, परन्तु देखो, बेटाआदि ऋषियों ने इसके ऊपर भी मन्थन किया !, आदि ऋषियों ने भी इसके ऊपर मन्थन किया कि कोई जीवात्मा अपराध करने के पश्चात् वह कारागार में नहीं जाना चाहता। परन्तु देखो, वह जीवात्मा इस काल में देखो, अपने कारागार में नहीं जाना चाहता है, क्योंकि जहाँ तक वह सीमा में रहता है, क्योंकि जब तक यह जो शरीर है, जब तक शरीर का बन्धन है, मानो स्थूल शरीर का बन्धन है, वहीं तक देखो, यह अज्ञान रहता है, कि वह जाना नहीं चाहता, परन्तु जहाँ इसमें स्वतन्त्र भाव आ जाता है, स्वतन्त्र भाव में बेटाक्योंकि प्रकृति में ऐसी ऐसी सूक्ष्म रचना हैं !, कि एक दूसरी वायु, एक दूसरा मण्डल, एक दूसरी तरंगे, प्रकृति की होती हैं, उसमें ही ऐसा स्वभाव होता है कि वही जीवात्मा को कारागार में और देखो, कारागार से पृथक करने का उसमें भी स्वभाव आता है।

व्याप्य और व्यापक भाव

परन्तु इसमें यह फिर से यह प्रश्न उत्पन्न होता है, कि यह जीवात्मा प्रकृति के अधीन हो गई। क्योंकि देखो, जीवात्मा प्रकृति के अधीन हो गई, ऋषि मुनियों ने कहा कि नहीं, जैसे परमात्मा और प्रकृति में व्याप्य और व्यापक रूप होता है, इसी प्रकार जीवात्मा में और प्रकृति में दोनों में व्याप्य और व्यापक भाव होता है। व्याप्य और व्यापक भाव से बेटा !देखो, अपने अपने भोगों को भोगती रहती है। ऐसा भी स्वीकार

किया गया है कि परन्तु देखो, मैं इस वाक्य का समर्थन नहीं कर रहा हूँ। परन्तु महर्षि वायु जी ने बहुत कुछ संघर्ष किया है, इस सम्बन्ध में। उनके विचारों में, उन्होंने बेटा! ऋषि मुनियों को इस वाक्य में बाध्य कर दिया है। बाध्य करने के पश्चात, जैसी अन्तिम परम्परा है, बुद्धि की अन्तिम पराकाष्ठा है, आगे ऋषि मुनियों ने यह कहा कि भई ! आगे चल करके तो यही वाक्यमानो देखो, केवल अनुभव का रह जाता है। , आगे का वाक्य अनुभव पर त्यागना चाहिए, परन्तु जहाँ तक बुद्धि का निदान है, बुद्धि की जहाँ तक सीमा है, वहाँ ऋषि मुनियों ने यह स्वीकार किया है, कि न्याय और जो दया होती है यह प्रकृति के ही गर्भ में विराजमान होती है, प्रकृति में ऐसी सुन्दर रचनाएं होती हैं, ऐसी तरंगित होती हैं, मानो देखो, क्योंकि जितने कारागार हैं, वह सब कारागार प्रकृति के आँगन में रहते हैं। वह ब्रह्म के आँगन में नहीं रहते, मानो वह प्रकृति के आँगन में रहते है, चाहे राष्ट्रीयवाद हो अथवा वह सूक्ष्मवाद हो। मानो देखो, जैसे मानव के मन में एक तो स्थूल से पाप करता है उसको धिराज, राजा के कर्मचारी स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु वह राजा के कारागार में भी पाप कर लेता है वह मानसिक पाप करता है, जब मानसिक पापों को कौन स्वीकार करता है? बेटायह जो प्रकृति का वाद है !, प्रकृति का जो मण्डल है मानो देखो, चित्त का जो मण्डल है, उस चित्त में पुनः संस्कार उत्पन्न होते रहते है, और उन्ही संस्कारों से बेटा वह संस्कार स्वयं चित्त में से उत्पन्न ! होते रहते हैं, उन्हीं संस्कारों के अनुसार इस जीवात्मा का आवागमन होता रहता है। बेटाऐसा स्वी !कार किया गया है।

अरबों वर्ष पूर्व के ऋषियों का विमर्श

परन्तु मैं बेटादेखो !, इन वाक्यों को कहाँ ले जा रहा हूँ। आज तुम्हें बेटा! बहुत पूर्व काल के पश्चात्, मुझे इन वाक्यों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उच्चारण करने का, मैं और भी गम्भीरता में जाना चाहूँगा, क्योंकि मैं इससे पूर्व शब्दों में इसका और भी गम्भीरता से विश्लेषण करूंगा। आज तो केवल मैं इतना वाक्य उच्चारण करने जा रहा हूँ, कि महर्षि वायु मुनि महाराज, अंगिरा जी, आदित्य जी, महर्षि तत्त्व मुनि महाराज, सोमकेतु

मंगलांग ऋषि महाराज, सौमाब्री, अन्वाष्णी ऋषि आदि ऋषियों का समाज बेटा यह ! आज नहीं हुआ, इन वाक्यों को बेटा लगभग अरबों वर्ष हो गएं जब यह समाज ! एकत्रित होता था, मानो यह ऋषि मुनियों के विचारार्थ होते थे। परम्परा से होते चले आए हैं, आज कोई नवीन वाक्य नहीं है।

मंगलेतरु ऋषि महाराज

आज का मानव जैसा, मेरे प्यारे! महानन्द जी ने मुझे उच्चारण किया है, मानो उन्होंने कहा है, ब्रहेस्ति सुप्रजा मानब्रति प्रणास्ती। आज का मानव देखो, इसको ढकोसला उच्चारण कर देता है, तो मैं महानन्द जी के वाक्यों पर नहीं जाना चाहता, क्योंकि न जाने ये कहाँ कहां से, क्या क्या वाक्य लाया करते हैं। इन वाक्यों में मैं ही नहीं जाना चाहता हूँ। केवल हमारा यही विचार है, कि जीवात्मा का सन्निधान भिन्न है और प्रकृति का भिन्न है और जहाँ ब्रह्म और प्रकृति का व्याप्य और व्यापक स्वरूप है इसी प्रकार जीवात्मा और प्रकृति का व्याप्य और व्यापक स्वरूप है, परन्तु अपने अपने व्याप्य और व्यापक स्वरूप में अपना अपना कार्य कर रहे हैं क्योंकि प्रकृति को ही ऋषि मुनियों ने बेटाअकर्त्ता ही स्वीकार किया है। अन्त में यह निर्णय हुआ !, मंगलेतरु ऋषि महाराज का यह निर्णय किया, क्या यह वाक्य वास्तव में, सर्वोपरि सिद्धान्त हो सकता है। परन्तु आगे चल करके, इस सिद्धान्त में सूक्ष्मता आ सकती है, यह अमिट हो सकता है, परन्तु जो सार्वभौम, जो बुद्धि की पराकाष्ठा है, परा परम्परा है, परा प्रणाली है, परन्तु उस दृष्टि से अमिट नहीं होगा, परन्तु यह निर्णय होने के पश्चात् सभा समाप्त हो गई। सभा समाप्त हो जाने के पश्चात, परन्तु देखो, मैंने अभी अभी अपने कुछ सूक्ष्म से विचारों को प्रगट किया है बेटा ! यह वाक्य तो ऐसा भंयकर वन है, इसमें जाने के लिए बेटा! किसी काल में जाते थे, अब तो समय इतनी आज्ञा नहीं देता है, अब तो भोगो की प्रतीति होने के, भोगो को भोगने के नाते, सब कुछ होता रहता है। परन्तु देखो, कोई काल था, जब इन गम्भीर वाक्यों पर कई कई माह वाक् चलता रहते थे। बेटा आज ! मुझे इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है। आज का यह वाक्य अब समाप्त भी होने जा

रहा है। आज के वाक्यों का अभिप्रायः यह है, कि हम परमात्मा को वास्तव में क्या स्वीकार करें। बेटाकल मुझे समय मिलेगा !, तो इसमें मैं भी अपने में कुछ निजी विचार प्रगट कर सकूंगा, कि मेरा स्वतः, हमारा सिद्धान्त क्या रहा है? इसमें कुछ अपने और कुछ महर्षि कपिल इत्यादियों ने, इस वाक् को क्या स्वीकार किया है, कल मुझे समय मिलेगा, तो इसके ऊपर कुछ सूक्ष्म से विचार दिए जा सकेंगे। व्यापक नहीं, सूक्ष्म सूक्ष्म विचार। आज भी मैंने सूक्ष्म विचार दिए हैं, क्योंकि इसके ऊपर नाना प्रकार के तर्कवाद भी हो सकते हैं और होते रहते हैं। तो ये वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है, कल मुझे समय मिलेगा, तो शेष चर्चाएं कल प्रगट की जाएगी।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो भगवन !'

पूज्यपाद गुरुदेवः 'तो बेटा आज का वाक् तुमने स्वीकार कर लिया तुम्हारे प्रश्नों का ! उत्तर।

पूज्य महानन्द जीः 'भगवन अभी मेरे विचारों में सूक्ष्मता रह गई है। !'

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य इसका !अच्छा बेटा .....देखो, किसी काल में और बहुत सुन्दर रूपों से वर्णन करेंगे। उत्तर प्रश्नों के रूप में होगा। '

पूज्य महानन्द जीः 'हां भगवनमैं भी यही चाहता हूँ !, कि उत्तर प्रश्न भी हों।

पूज्यपाद गुरुदेवः अच्छा बेटा कल तुम्हारे दो प्रश्न हो सकते हैं। !'

पूज्य महानन्द जीः 'अच्छा भगवन् !'

पूज्यपाद गुरुदेवः तो मुनिवरों आज का यह वाक्य अब समाप्त। अब वेदों का पाठ ! होगा, इसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी।

ओ३म् मानं भागा वसुः रेवं माणां चरी वन्धना ब्रह्म माणाम् ओ३म् रेवं भागा मनु प्रागणा देवं आ भा ना........।

२३ 12 04 1969 पुष्प 11 रात्रि ब्रह्म की चेतना, ब्रह्म की चेतना

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, कुछ मनोहर, वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने, पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, उस मनोहर पवित्र वेदवाणी, जो आनन्दमयी

कल्याण प्रदायिनी, उस वेदवाणी का प्रसारण, उसकी महिमा, मानव के मस्तिष्क में समाहित हो जाती है, तो मानव का कण्ठ, उस महामना माता की, उज्ज्वल धारा में परणित हो जाता है। जब हम ये विचार, हमारे यहाँ परम्परागतों से ब्रह्म विचार भी होता रहता है, आत्म चिन्तन भी होता रहता है। परन्तु इससे पूर्व शब्दों में, हमारे यहाँ कुछ संस्कृत शब्दों में ब्रह्म विचार चल रहा था, ब्रह्म की चेतना के सम्बन्ध में, विचार विनिमय होता चला जा रहा था। हमारा यह वाक् हमारी जो अनुपम प्रतिभा है वह नाना प्रकार के पठन पाठन में सुगठित रहती है। जैसे हमारे यहाँ वेदमन्त्रों के नाना प्रकार होते हैंजैसा हमने कल के शब्दों में भी उच्चारण किया था ,, कि जटा पाठ, घन पाठ, माला पाठ, विसर्ग पाठ, उदात्त, अनुदात्त और भी नाना प्रकार होते हैं।

माला पाठ

हमने इन वाक्यों को बहुत पुरातन काल हुआ बेटा जब इनका अध्ययन करने का ! सौभाग्य प्राप्त हो गया था। आज हमें पुनः से, उस महामना देव की अनुपम दया से, हमें पुनः से यह अवसर प्राप्त होता चला जा रहा है, कि हम अपने विचार, अपने उद्गम विचारधाराओं को उच्चारण करते रहे। हमारे यहाँ एक माला पाठ होता है, बेटा ! इससे पूर्व शब्दों में भी हमने उच्चारण किया है, कि माला पाठ किसे कहते हैं मैने ? कल के वाक्यों में कहा था !बेटा, कि धागा और मनके दोनों सुगठित हो करके एक माला दीप होने लगती है। इसी प्रकार यह जो जगत् हमें प्रतीत हो रहा है, यह जो ब्रह्माण्ड, लोक लोकान्तरों वाला प्रतीत हो रहा है, बेटायह सब !, उस ब्रह्म और प्रकृति के व्याप्य और व्यापकता का सम्बन्ध होने के नाते, शृंखलाबद्ध प्रतीत होता चला जा रहा है। क्योंकि उसी की शृंखला है और उस शृंखला में जब हम विचार विनिमय करने लगते हैं, कि उस बह्म की, आनन्दमयी जो अनुपम ज्योति है, चेतना है, वह जब प्रकृति के आँगन में ओत प्रोत हो जाती है तो बेटा प्रकृति का स्वभाव स्वतः उत्पन्न होने ! लगता है। परन्तु मैं इससे पूर्व शब्दों में ऋषि मुनियों के विचारार्थ प्रगट कर रहा था। हम यह उच्चारण करते चले जा रहे थे कि आदित्य मुनि महाराज का क्या सिद्धान्त है

और अंगिरा जी क्या उच्चारण करते चले जाते हैं और वायु जी ने क्या कहा है, ये विचार थे।

पूज्य महानन्द जीः भगवनइन विचारों में ! कुछ हमारा परम्परा से मतभेद रहा है।

पूज्यपाद गुरुदेवः हां, उच्चारण करो।

पूज्य महानन्द जीः भगवनहमारा मतभेद यह ह !ै कि जैसा आपने वायु मुनि के शब्दार्थों में कुछ वाक्य कहा था, कि वायु जी इन तीनों को इसी प्रकार स्वीकार करते हैं, तो इससे तो भगवनये जो नाना प्रकार के ऋषियों के सिद्धान्त हैं !, यह अमिट हो जाते हैं और नास्तिकवाद की तरंगे उत्पन्न होने लगती हैं।

नास्तिकवाद

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य यह कैसे माना जा सकता है कि अभी तक हम यही !बेटा ..... नास्तिक उसको कहते हैं ?नहीं विचार पाए हैं कि नास्तिकवाद कहते किसको हैं, जिसको स्वयं अपना आत्मविश्वास नहीं होता, क्योंकि संसार में जितना नास्तिकवाद होता है, वह केवल उसकी आत्मा को, अपने ऊपर स्वयं अधिकार न होने के नाते ही, वह स्वतः ही नास्तिक कहलाए जाते हैं क्योंकि संसार में केवल प्रभु का चिन्तन करने वाला ही आस्तिक नहीं होता, मानो प्रभु का चिन्तन जो आत्मिक श्रद्धा से करता है और आत्मा के स्वरूप को जानता है, वह संसार में वास्तविक आस्तिक होता है। रहा यह वाक्य कि नास्तिकवाद की तरंगे उत्पन्न होने लगती हैं, आज हम यही नहीं जान पाते। बेटातुम्हारे शब्दों से ! यही हमारे में नाना प्रकार की शंकाएं उत्पन्न हो जाती हैं, कि नास्तिक तो मैं परम्परा से उसे कहा करता हूँ, जो बेटा वेद की पोथी को जानने ! वाला हृै, परन्तु वेद के स्वरूप को नहीं जानता, वह वास्तव में नास्तिक होता है। बेटाको नहीं स्वीकार करना !परन्तु रहा यह वाक्य कि प्रभु !, मानो प्रभु को हम अमिट कर देते हैं, तो इससे आज मानव यह स्वीकार नहीं कर सकता कि हम नास्तिक बन गएं हैं, अथवा यह नास्तिकता है। हम प्रभु के अस्तित्व को अच्छी प्रकार जानने लगते हैं, जब त्रैतवाद का हम समर्थन करते हैं, तो इसमें नास्तिकवाद का कोई शब्द आना

ही नहीं चाहिए, और न इसमें हमें नास्तिकवाद प्रतीत होता है, रहा यह वाक् क्योंकि मैने पूर्व काल में यह वाक् प्रकट करते हुए कहा है, कि हम जब यह विचार विनिमय करने लगते है, कि हम त्रैतवाद को, या प्रभु को अकर्त्ता स्वीकार करते हैं। क्या प्रभु अकर्त्ता है, क्योंकि उसकी अकर्त्ता में ही कर्त्ता की प्रतीति होने लगती है। क्योंकि मानव ने जो सिद्धान्तों में जो नाना प्रकार का भेदन आ जाता है, आगे चल करके, बेटा ! बुद्धि की जो पराकाष्ठा है, उसमें जा करके तो एक ही तुलना हो जाती है। रहा यह वाक्य कि हम नास्तिकवाद में परणित हो जाएं, तो यह वाक्य सुन्दर नहीं होता, क्योंकि इसमें मुझे तुम्हारे शब्द प्रतीत नहीं हो रहे है, मुझे तो कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि यह वाक्य तुम कहीं से चुनकर लाए हो।

पूज्य महानन्द जीः हास्य..... भगवन् ऐसा तो नहीं है। !

पूज्यपाद गुरुदेवः नहींमुझे यह प्रतीत हो रहा है !, क्योंकि मैं इस वाक्य को कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। अच्छा, बेटाउस वाक्य को चलने दो !, जो हमारा विषय चल रह था। इन वाक्यों में जाने के लिए हमें इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा, क्या हम इस वाक्य में चले जाएं, कि यह संसार नास्तिक है, आस्तिक है, परन्तु हम तो यह जानते हैं, कि संसार में प्रत्येक मानव को, प्रत्येक प्राणी को आस्तिक होना चाहिए, क्योंकि आस्तिकपना ही मानव की आत्म उन्नति है। क्योंकि आत्मा की उन्नति का यदि कोई मूल कारण है, तो उसका आस्तिकवाद है, क्योंकि आस्तिकवादी प्राणी बेटा! संसार में, किसी भी काल में बेटा वह निराशा को प्राप्त नहीं होते। वह सदैव आशावादी होते हैं। ! आशावादी जो प्राणी हुआ करते हैं, वह वास्तव में बेटाअपनी आत्मा को उन्नति कर !के संसार सागर से पार हो जाते हैं। जो ये संसार हमें नाना के मान अपमान का हमें प्रतीत हो रहा है, जिसमें मान अपमान के भंवर है, जिसमें मानव को सदैव यह अकृत रहता है, कि इसमें नष्ट न हो जाऊं, परन्तु मानव इनसे उपराम होकर के अपने जीवन

को उन्नत बनाता चला जाता है।

प्रकृति का स्वभाव

तो बेटामैं अपने वाक्यों को प्रारम्भ करने जा रहा था !, कि महर्षि वायु मुनि महाराज और आदि ऋषियों का जब समाज एकत्रित होने लगा, उसमें एकत्रित होते हुए तो मुनिवरोंआगे चल करके ! देखो, महर्षि भृंगी जी ने एक वाक कहा महर्षि वायु जी से, क्या महाराजजब आप यह स्वीकार करते हैं !, कि इस प्रकृति का स्वयं चेतना स्वभाव उत्पन्न हो जाता है, चेतना के प्रभाव से, चेतना के सूक्ष्म से सन्निधान से, मानो प्रकृति का स्वभाव उत्पन्न हो जाता है, क्या इस आत्मा का भी इस प्रकार स्वभाव उत्पन्न हो जाता है, अथवा यह भी प्रकृति का ही स्वभाव माना गया है। मेरे प्यारे उस !ऋषिवर ! समय महर्षि वायु जी ने कहा कि हमारा तो यह विश्वास है, वेद का शब्द कहता है, वेद का ऋषि, और वेद कहता है कि आत्मा ब्रह्मेव्रतं प्रभा वसुकृति रुद्रो व्यापम् गति तक प्रमाणः अस्ति सुकृति रुद्रो कामा वेद का आचार्य कहता है, हमारे यहाँ महर्षि वायु जी का जो सिद्धान्त है, परन्तु मैं उसको तुम्हारे समक्ष, नियुक्त कर रहा हूँ। उन्होंने यह कहा है, कि यह जो मानव का शरीर है, यह भी प्रकृति का, जैसे यह ब्रह्माण्ड है, जैसे ब्रह्माण्ड में देखो, परमात्मा की सूक्ष्म सी चेतना उत्पन्न होने पर, प्रकृति का स्वभाव उत्पन्न हो जाता है, इसी प्रकार यह तो आत्मा इस सूक्ष्म से ब्रह्माण्ड में क्योंकि इस संसार की कल्पना की है। जैसा यह ब्रह्माण्ड जैसा यह जगत हमें प्रतीत हो रहा है, इसी प्रकार हमारा जैसे यह ब्रह्माण्ड है ऐसे यह सूक्ष्म सा पिण्ड स्वीकार किया जाता है, इसी प्रकार इस बाह्य जगत् में, इस बाह्य ब्रह्माण्ड में इस सर्वश लोक लोकान्तरों वाले जगत में, जैसे प्रकृति की स्वयं, चेतना उत्पन्न हो जाएँ स्वयं उसका स्वभाव चेतना से उत्पन्न होता है, एक अणु की चेतना से उत्पन्न होता है, परन्तु उसी चेतना से हमारा जो ये मानव शरीर है, इसमें भी आत्मा व्याप्य और व्यापक रूप से इसका सन्निधान होने पर, मानो इस शरीर में भी, चित्त इत्यादियों का स्वभाव स्वतः उत्पन्न होने लगता है। परन्तु जैसे ब्रह्म को स्वीकार किया गया है, इसी प्रकार हमारे यहाँ आत्मा को भी

स्वीकार किया गया है। महर्षि वायु मुनि महाराज ने जब यह वाक्य उच्चारण करते हुए मुनिवरों !देखो, जब यहाँ ऋषि मुनियों में एक क्रान्ति उत्पन्न हो गई। वहाँ महर्षि वायु मुनि महाराज के समक्ष मुनिवरोंमहर्षि सन्धुत ऋषि महाराज ! जो मुनिवरों! महाराज कुरकात्री मुनि के पौत्र कहलाए जाते थे, परन्तु वह भी उनके समीप, और महर्षि कुरकात्री मुनि उनके समीप आ पहुंचे। परन्तु देखो, आगे आदित्य जी महाराज और महर्षि अंगिरा जी, इन सभी ऋषियों का समाज एकत्रित हो गया। एकत्रित हो जाने के पश्चात् मुनिवरों! देखो, सभा क्योंकि मंगलेत्वर ऋषि महाराज के आश्रम में थी, मंगलेत्वर ऋषि महाराज को सभापतित्व चुना। परन्तु सभापति होने के नाते, वहाँ मुनिवरोंदेखो !, वाद विवाद की श्रृंखला प्रारम्भ होने लगी। मानो देखो, हमारे यहाँ, ऋषि मुनियों का, आध्यात्मिक वेत्ताओं का वाद विवाद इस प्रकार का नहीं होता, जो मानव मानव को नष्ट करने की चेतना उनके हृदय में उत्पन्न हो। मानो देखो, अपने आत्मा के उत्थान के लिए, और आत्म तत्त्व के लिए, उनका विचार विनिमय चला करता है।

आत्मा और ब्रह्म की चेतना की भिन्नता

तो मेरे प्यारेजब मंगलेत्वर महाराज !ऋषिवर ! से जब महर्षि भृंगी आदि ऋषियों के प्रश्न, उत्पन्न होने लगे, तो उस समय मुनिवरों! वायु मुनि महाराज को पुनः समय दिया गया, और यह कहा गया मंगलेत्वर ऋषि महाराज ने यह कहा कि महाराज आज ! आप कुछ इनके प्रश्नों के उत्तर दीजिए। उन्होंने कहा ऋषि मुनियों ने कहा, कि महाराज ! हम यह जानना चाहते है आप हममें सबसे श्रेष्ठ प्रतीत होते हैं, हम आपको मन ही मन में प्रणाम करते हैं, परन्तु हमारा यह प्रश्न है कि आप आत्मा को भी जैसे ब्रह्म की चेतना को स्वीकार करते हैं, ऐसे ही आत्मा की चेतना को स्वीकार करते हैं, क्या हम यह जानना चाहते हैं, कि चेतना भी भिन्न भिन्न होती है, संसार में? क्या एक ही चेतना ब्रह्म की हम स्वीकार करते है, क्या आत्मा की चेतना भिन्न होती है? उन्होंने मुनिवरों ! देखो, जब इस प्रश्न को स्वीकार किया और उनके प्रश्नों का आदर करते हुए, महर्षि वायु मुनि जी ने कहा है कि वास्तव में ब्रह्म की चेतना, महान सूक्ष्म है और उससे कुछ

स्थूल रूप में आत्मा की चेतना स्वीकार की गई है। रहा यह वाक्य की कि तुम ऐसा स्वीकार करने लगते हो, कि ब्रह्म की जो चेतना है, ब्रह्म ही इस आत्मा में स्वीकार किया जाएं, ब्रह्म ही इस आत्मा गर्भ में स्वीकार किया जाएं, तो इसको मैं कदापि भी स्वीकार नहीं कर सकूंगा।

परन्तु जब वायु मुनि महाराज ने यह वाक्य, ऋषि मुनियों के समाज में एकत्रित होने लगे ऋषि मुनियों ने पुनः यह वाक कहा कि जब ब्रह्म अति सूक्ष्म है, ब्रह्म देखो, मानो जैसा तुमने अभी अभी इन शब्दों में उच्चारण किया था और इससे पूर्व विचारधाराओं में, क्या यह जो आत्मा है, यह मानो केश के गोल भाग के साठ विभाग किए जाएं और साठवां जो भाग है उसके निन्यानवें भाग किए जाएं उस निन्यानवें भाग को आत्मा को स्वीकार किया गया है और ब्रह्म का जो आकार स्वीकार किया गया बुद्धि के आँगन में, वह केवल जो निन्यानवां भाग है, उसके निन्यानवें भाग करो और जो निन्यानवां भाग है उसके साठ भाग करो और साठवां भाग आपने ब्रह्म को स्वीकार किया है, क्यों नहीं तुम आत्मा में ब्रह्म का प्रविष्ट स्वीकार कर रहे हो?

परन्तु इसका उत्तर देते हुए, महर्षि वायु मुनि महाराज ने वेद के कुछ शब्दों को उच्चारण करते हुए कहा, कि ब्रह्म व्यापय प्रभे अस्तिः अप्रति रुद्रो मा मान्व प्रति कृतानि रूद्राः अश्वेति रुद्रो भागं मम्वेति अक्सत्म् आभांचि आत्मा मध्यम् प्रमेणो अविस्त सुप्रजा। उन्होंने कहा कि यदि हम आत्मा के स्वभाव को भिन्न स्वीकार करते हैं, तो ब्रह्म को उसमें प्रविष्ट होने की आवश्यकता क्या है, हम क्यों स्वीकार करें? इसका हमें उत्तर दीजिए। परन्तु महर्षि इसमें भृंगी जी ने कहा कि क्या, उसको इसलिए स्वीकार किया जाए, क्योंकि एक ही ब्रह्म जगत मेंजो महान् सूक्ष्म है ,, और वह सब जगह ओत प्रोत है, मानो वह आत्मा और प्रकृति सब में ओत प्रोत हो रहा है। इसमें महर्षि वायु मुनि जी ने कहा है, कि यह वेद का शब्द कहता है, सन्निधानं प्रभे अकृति रुद्रो अणु प्रमाणाः अकृति रूद्राः उस समय वायु जी ने कहा कि मैं इस वाक्य को इस प्रकार स्वीकार किया करता हूँ कि ब्रह्म को वास्तव में सर्वत्र ओत प्रोत स्वीकार करने में हमारा कोई मतभेद नहीं है। परन्तु यदि यह स्वीकार किया जाएं, कि आत्मा में ही ब्रह्म प्रविष्ट होता

है, मानो इससे तो यह प्रतीत होता है, कि आत्मा के गर्भ में, ब्रह्म विराजमान है। वह जो ब्रह्म की चेतना है, वह जब मानो प्रकृति का स्वभाव उत्पन्न कर देती है, तो क्या इसी प्रकार आत्मा के स्वभाव को उत्पन्न नहीं कर सकेगी?

आत्मा का स्वभाव

परन्तु जब यह वाक् उत्पन्न हुआ, तो महर्षि भृंगी ने कहा, सौमां प्रति बद्धयं नाम प्रणो अस्ति व्यापं ब्रह्मे व्यापको नित्य प्रमाणाः आस्ति सुप्रजाः परन्तु उस समय जब महर्षि भृंगी जी ने कहा कि महाराज! क्या वही व्याप्य और व्यापक का स्वरूप जब उत्पन्न होने लगता है, जब प्रकृति में चेतना उत्पन्न हो जाती है, प्रकृति का स्वभाव उत्पन्न हो जाता है, परन्तु आत्मा का स्वभाव क्या है? मैं यह जानना चाहता हूँ, उस समय मुनिवरोंदेखो !, महर्षि वायु जी ने कहा कि आत्मा का जो स्वभाव है, मानो वह भी जैसे ब्रह्म में कुछ चेतना है, इसी प्रकार चैतन्य देव, चेतनता इसमें स्वीकार की जाती है और जब इसमें चेतना स्वीकार की जाती है, तो हम यह जानना चाहते हैं कि आत्मा की चेतना का स्वभाव क्या है? उस समय महर्षि वायु जी ने कहा कि आत्मा की चेतना का जो स्वरूप है, यह केवल वाणी का विषय नहीं है, यह सब अनुभव का विषय माना गया है। परन्तु जब वायु मुनि जी ने ऐसा कहा, तो महर्षि भृंगी जी ने का कि जब जब यह अनुभव का विषय है, तो ब्रह्म का विषय भी अनुभव का स्वीकार कर लेना चाहिए। क्या यह कैसे स्वीकार किया जाता हैक्या व्यापय और व्यापक जो है मानो देखो ?, प्रकृति की स्वयं चेतना उत्पन्न हो जाती है, प्रकृति का स्वभाव क्या है? उस समय ऋषि ने कहा, कि प्रकृति का जो स्वभाव है, वह जड़ता है, मानो देखो, उसमें जड़पन है, जड़वत् होने के नाते, सूक्ष्म सा सन्निधान होते ही उसका स्वभाव उत्पन्न हो जाता है? मानो उन्होंने कहा कि उसका स्वभाव क्या है क्योंकि उसका व्याप्य और व्यापक होते ? ही उसका स्वभाव क्या है, जो उत्पन्न हो जाता है। उन्होंने कहा कि प्रकृति का स्वभाव है, रचना, उसकी रचना उत्पन्न होने लगती है जैसे ब्रह्म की चेतना से यह बाह्य जगत् उत्पन्न हो जाता है? इसका प्रसारण हो जाता है, इसमें व्यापकवाद की उत्पति हो जाती

है, मानो उसको स्वभाव उत्पन्न हो जाता है, इसी प्रकार आत्मा की जो चेतना है, आत्मा की चेतना का आभास चित्त पर आते ही, चित्त अपना व्यापार कार्य प्रारम्भ कर देता है। उन्होंने कहा कि क्या आत्मा चित्तवत् है? उन्होंने कहा कि आत्मा चित्तवत् भी स्वीकार किया जाता है और नहीं भी किया जाता। परन्तु उस समय वायु मुनि जी के विचारों में मुनिवरों! देखो, एक महान् क्रान्ति प्रारम्भ होने लगी। महर्षि भृंगी जी ने जब यह कहा कि आत्मा में क्या तुम चित्त को स्वीकार करते हो? उन्होंने कहा कि वास्तव में आत्मा में, व्यापार में चित्त स्वीकार करते हैं, वास्तव में देखो, वह चित्त से भी क्योंकि किसी काल में भिन्न स्वीकार की गई है। ऐसा भी स्वीकार किया गया है, कि आत्मा में चित्त को स्वीकार करने से आत्मा इसमें सन जाती है, इसमें लिपायमान हो जाती है, किन्तु परन्तु यहां यह वाक्य कहा जाता है जहाँ चित्त में लिपायमान होने का प्रश्न उत्पन्न हो जाता है, वहाँ यह भी उत्पन्न हो जाता है कि यह जो आत्मा की चेतना है, आत्मा की जो परिस्थिति है, मानो ये केवल चित्त के ऊपर उसका आभास आता है, उसका एक प्रतिबिम्ब आता है, जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब मानो देखो, कुम्भाकार में आता है, मानो देखो, वहाँ सूर्य उसमें लिपायमान नहीं हो जाता है।

तपस्या से विश्वास

परन्तु इस प्रकार जब ऋषि मुनियों में यह वाक्य प्रारम्भ होने लगा, तो और वायु मुनि महाराज का मुनिवरोंदेखो !, और भी ऋषि मुनियों ने क्रान्ति आ गई, वायु मुनि महाराज के प्रति। महर्षि आदित्य मुनि महाराज ने कहा कि महाराज यह वाक्य तो तुम्हारा ! सुन्दर है, परन्तु इसका हम आदर करते हैं, परन्तु हम कैसे स्वीकार करें? हमें आत्मा में कैसे इसका विश्वास हो? उन्होंने कहा कि आत्मा में विश्वास जब होगा, जब तुम इसके ऊपर तपस्वी बन जाओगे। तो मुनिवरोंदेखो !, यहां जब महर्षि वायु मुनि जी ने यह घोषणा की मानो देखो, नाद किया कि तपस्वी बनो, तो ऋषि मुनियों में एक और भी क्रान्ति उत्पन्न होने लगी। महर्षि मंगलेत्वर ऋषि महाराज ने कहा कि हम क्या जितने मानव हैं, क्या इनमें तुमसे अधिक कोई तपस्वी ही नहीं है? परन्तु देखो, जब यह कटु

शब्दों का प्रतिपादन होने लगा, तो वायु मुनि महाराज मौन हो गएं और मौन होकर के यह कहा कि मेरा विषय नही है वाद विवाद का, ये मेरा इस प्रकार कटु शब्दों में आ जाना, मेरा कोई विषय नहीं है। परन्तु मैं तो एक वाक्य जानता हूँ, कि जो वाक्य तुम्हारे आँगन में या मेरे विचारों में नहीं आयेगा, परन्तु वह केवल अनुभव का विषय रह जाता है, उसको वाणी उच्चारण नहीं कर सकती, क्योंकि ब्रह्म का जो वास्तविक रचना है, ब्रह्म का जो वास्तविक स्वरूप है, आत्मा को जो स्वरूप है, मानो देखो, उसके बुद्धि से तुम उसको स्वरूप को जानकारी में नहीं ला सकोगे। इसीलिए उसको अनुभव किया जाएं और अनुभव करने के पश्चात् उस समय देखेंगें कि तुम कोई वाक्य भी उच्चारण कर सकोगे। परन्तु आदित्य मुनि महाराज ने कहा कि वास्तव में वाक्य तो आदरणीय है, इस वाक्य को हम आदरपूर्वक स्वीकार करने के लिए तत्पर हैं, क्योंकि ब्रह्म का विषय, आत्मा का विषय अन्तिम जो इसकी परम्परा है, मानो देखो, वह सब अनुभव का विषय रह जाता है।

तो मेरे प्यारेहमारे यहाँ !ऋषिवर !, परम्परागतों से यह स्वीकार किया गया है, कि हम ब्रह्म की चेतना में संलग्न हो जाएं, और आत्मा की चेतना को स्वीकार करते हुए, हम वास्तव में उन वाक्यों को अनुभव में लाने का प्रयास करें। जब मुनिवरों मानव इसका ! अनुभव कर लेता है, बुद्धि से परे इसका अनुभव हो जाता है, तो उस समय बेटा ! उसकी वाणी यहाँ संसार के तत्त्वों में उसकी वाणी उच्चारण करने के लिए तत्पर नहीं होती।

तो मेरे प्यारेआज का यह वाक् हमारा क्या कहता चला जा रहा है !ऋषिवर !, कि हमारे यहाँ एक जटा पाठ होता है, परन्तु जटा पाठ की जो श्रृंखला है, वह इस प्रकार मानी गई है, इस प्रकार हमारे यहाँ स्वीकार की गई है क्या जैसे वह जैसे माला में, धागे और मनके होते हैं, आज मेरे प्यारेऋषि मुनियों ने यह कहा है क्या !, माला पाठ को कैसे स्वीकार करेंदेखो !बेटा ?, वेद की जो प्रत्येक ऋचा है, वेद का जो प्रत्येक वाक् है, वह ओ३म् रूपी धागे से पिरोया हुआ है। बेटा ओ३म् रूपी धागे से पिरोया ! हुआ होने के नाते से वह मानो देखो, वह श्रृंखलाबद्ध हो रहा है। इसी प्रकार मुनिवरों !

वह जो ब्रह्म की चेतना है, इस ब्रह्म की चेतना में मानो देखो, ये सब जितना जगत है, यह मनके के स्वरूप में परणित हो रहा है। परन्तु जैसे धागा पृथक है, अकर्त्ता है, क्योंकि इसमें वह शृंखलाबद्ध है क्योंकि प्रकृति के स्वभाव में शृंखलाबद्ध होने के नाते। इसलिए बेटाहम उस परब्रह्म परमात्मा की याचना किया करते हैं !, कि हे परब्रह्म परमात्मानहम आपकी आराध !हे चैतन्य देव !ना कर रहे हैं, क्योंकि आपका ही स्वरूप हमें प्रकृति में प्रतीत होने लगता है, प्रभो इसलिए हम आपको बारम्बार नमस्कार कर रहे हैं।

कर्त्ता अकर्त्ता के विषय में गुरुदेव का निष्कर्ष

आज मैं इसको वाद विवाद का विषय नहीं बनाना चाहता हूँ बेटा । मैंने !बहुत पूर्व के काल में, कल के वाक्यों में यह कहा था कि हमारा निजी क्या विचार है इस सिद्धान्त में हमारा निजी क्या विचार है। क्योंकि मैंने कई काल में देखो, परमात्मा को कर्त्ता भी स्वीकार करता चला आया हूँ, परन्तु कई काल में इसको अकर्त्ता भी स्वीकार किया गया है। तो मेरे प्यारेहमारा जो सार्वभौम सिद्धान्त है !ऋषिवर !, विचारधारा है, बुद्धि की जो अन्तिम प्रणाली है, बेटाहम भी वायु ! मुनि जी के सिद्धान्त को स्वीकार करते चले आएं हैं। रहा यह वाक्य, कि इस वाक्य को इस प्रकार स्वीकार करने लगूं, कि हमारा प्रधिअस्तवम् ब्रह्मे आभ्यास्ति सुद्रा यह संसार कैसे यह स्वीकार करता है ब्रह्म को। बेटाइस वाक्य में मुझे अधिक जानकारी नहीं है !, परन्तु मैंने ऋषि मुनियों के सिद्धान्त तुम्हारे समक्ष, नियुक्त किए हैं, जो भी तर्कवाद से, मानो देखो, बुद्धि संगत होता है, उस वाक्य को अन्तिम परम्परा कहते हैं, और उसको मानना बुद्धिमानों का कर्त्तव्य होता है, बेटा! । सबसे ऊँचा जो कर्त्तव्य है, वह इसको इसी प्रकार स्वीकार किया जाता है।

पूज्य महानन्द जीः गुरु जी मैं आपसे एक प्रश्न करने वाला था। !उसमें दो प्रश्नों के लिए कहा था, क्योंकि आधुनिक काल का जो जगत् है वह दो प्रकार का सिद्धान्त स्वीकार करता है। एक तो ये करता है कि वह जो ब्रह्म है, वह आत्मा में विराजमान

है और आत्मा को, प्रकृति को, गति ब्रह्म देने वाला है और एक यह स्वीकार करता है, कि जैसे कुम्भाकार में जल है और उसी जल को समुद्र में अर्पित कर दिया जाएं, तो वह भी समुद्र बन जाता है, इसी प्रकार एक ही ब्रह्म है और एक ही ब्रह्म में यह सर्वश जगत् ओत प्रोत है। एक सिद्धान्त यह है जो आधुनिक काल में परणित हो रहा है, क्योंकि वर्तमान काल में मैं दृष्टिपात कर रहा हूँ। आज मैंने सूक्ष्म शरीर से कुछ मानव की प्रवृत्तियों का भी कुछ निरीक्षण किया है, परन्तु जहाँ यह वाक् प्रारम्भ हो रहे है यह बहुत सुन्दर अस्ति सुप्रजा तो भगवन! कुछ इस प्रकार की विचारधाराएं हैं। भगवन! कुछ मानवों में मुझे यह गति प्रतीत हुई है, कि एक आधुनिक काल के प्राणियों में यह गति कि एक आचार्य दयानन्द जी हुए हैं, जिनको हम ऋषि भी कहते हैं क्या उन्हें पूर्व काल में शमीक ऋषि के नामों से उसकी आत्मा का उत्थान स्वीकार करते हैं। शब्द) (.....ध्वनि के रूप में उपलब्ध नहीं हैआपने और

मैंने पूर्व काल में इस वाक्य को स्वीकार किया था, आधुनिक काल में उसको दयानन्द के नाम से परणित किया जाता है, तो उन्होंने आपके काल के शब्दों से कहा है कि ऋषि दयानन्द के सिद्धान्त को समाप्त कर दिया।

ब्रह्म का जो स्वरूप

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य.....बेटा वास्तव में यदि वह पुनीत पवित्र आत्मा शमीक ऋषि ! की थी, उस समय यह वाक्य होते तो हम यह जानकारी कर लेते। इसमें क्या बात है, रहा यह वाक्य कि आधुनिक काल का समाज किसी के, गुरु के सिद्धांत को हम स्वीकार नहीं करते, तो इसका अभिप्रायः यह नहीं कि हमें उनके वाक्यों को स्वीकार ही करता है, क्योंकि यदि संसार में मानव यह स्वीकार करने लगे, कि एक मानव ने जो शब्द उच्चारण किया है, वह सार्वभौम सिद्धान्त हो गया है। इसका अभिप्रायः यह नहीं है। यह तो मानव की बुद्धि है, मानव का तर्क है, मानव का सिद्धान्त है, इसमें सब स्वतन्त्र है, क्योंकि यह जो ज्ञान है, यह भी परमात्मा की एक अनुपमधारा है। यह अनन्त है, जैसे ब्रह्म अनन्त है, और प्रकृति अनंत है इसी प्रकार उसमें जो ज्ञान उत्पन्न

होता है, वह भी अनन्त है। इस अनन्तता को तुम सीमितता में लाना चाहते हो, तो बेटा यह वाक्य तो मेरे आँगन में स्वीकार नहीं !किए जाते, क्योंकि यह न आने वाले वाक्य है, रहा यह वाक्य, कि आधुनिक काल का यह समाज यह क्या कहता है, कि एको ब्रह्मा मानो एक ही ब्रह्म के गर्भ में है, तो मैंने पूर्व ही आदित्य और महर्षि अंगिरा जी के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता चला आ रहा हूँ, और उनको तर्कवाद पर लाने के लिए मैं सदैव तत्पर रहता हूँ। रहा यह वाक्य कि चाहे कोई दयानन्द आचार्य हो, कोई भी मानव हो, और इस संसार के ज्ञान विज्ञान को एक सूक्ष्म सी बुद्धि से अपने आँगन में लाना चाहता है। तो बेटामैं यह वाक्य स्वीकार नहीं कर सकता !, क्योंकि परमात्मा का ज्ञान अनन्त है। बेटा तुमने यह स्वीकार किया होगा कि आत्मा कितनी ! सूक्ष्म है, और उससे अति सूक्ष्म ब्रह्म है। ब्रह्म की जो अति सूक्ष्मता है, चेतना है, अति ब्रह्म का जो स्वरूप है, क्या, उसे मानव वाणी से उच्चारण कर सकता है?परन्तु यह असंभव है। रहा यह वाक्य कि वेदों से यह वाक्य आते हैं, क्योंकि वेदों का ज्ञान अनन्त है। एक एक शब्द की अनेक कामनाएँ, व्याख्याएं होती हैं। एक ही व्याख्या नहीं होती, अनन्त व्याख्या हो सकती है, और नाना प्रकार की व्याख्याएं होती हैं और नाना प्रकार के ज्ञान विज्ञान की धाराएं भी उत्पन्न हो सकती हैं, परन्तु मैं कोई संदेह का वाक्य नहीं उच्चारण करना चाहता, जो सार्वभौम सिद्धान्त है, मैंने उन वाक्यों को तुम्हारे समक्ष, प्रगट किया है। तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा है। यह वाक्य बहुत पूर्व काल के पश्चात, यह वाक्य बेटा! तुम्हारे समक्ष आ गया, मै इन वाक्यों को उच्चारण करने के लिए तत्पर नहीं होता हूँ, यह तो इसलिए क्योंकि तुम्हारा गंभीरता से प्रश्न था न प्रति कहाँ से तुम इस वाक्य को लाए हो, इसलिए मैंने उत्तर दे दिया है । मैं तो सदैव ही ब्रह्मा की महिमा को गाता रहा हूँ और उसकी महिमा का गुणगान गाना ही चाहिए, प्रत्येक प्राणी को। अब रहा यह वाक्य कि आधुनिक काल में कोई सम्प्रदाय या कोई भी अस्वस्त स्वीकार नहीं करता है।

पूज्य महानन्द जीः भगवनआप ऐसा उच्चारण नहीं कर सकते !, क्योंकि ऋषि दयानन्द

को हम सम्प्रदाय स्वीकार नहीं करते।

पूज्यपाद गुरुदेवः हां हां बेटातुम्हारा यह वाक्य सत्य है !, कि तुम सम्प्रदाय स्वीकार नहीं करते हो, परन्तु सम्प्रदायवाद वहाँ आ जाता है, जब एक ही ऋषि के वाक्यों की सार्वभौम सिद्धान्त स्वीकार कर लेते हैं। तो बेटा! उसमें रूढ़ि आ जाती है, और रूढ़ि आ जाने का नाम ही हमारे यहाँ सम्प्रदाय कहते है। इसमें ऐसा कोई वाक्य नहीं, कि तुम्हें इस पर क्रोध आ जाएं। ऐसा प्रतीत होता है, कि तुम दयानन्द के सिद्धान्त को स्वीकार करते हो।

पूज्य महानन्द जीः हास्यऐसा तो नहीं है !भगवन ....., क्योंकि ऋषि मुनियों के तो सभी विचार स्वीकार कर लेने चाहिएं।

तपे विचारों में अपरिवर्तनता

पूज्यपाद गुरुदेवः हाँ हाँ, हमारा इसमें कोई पृथक् विचार तो नहीं है, हम इन वाक्यों को स्वीकार करते हैं। प्रश्न यह है कि जो महान व्यक्ति होते हैं, उनकी प्रशंसा करनी ही चाहिये। परन्तु रहा यह वाक्य, कि हमारे विचारों में परिवर्तन लाना चाहता है। तो बेटा ! जो तपे हुए विचार होते हैं, उनमें परिवर्तन किसी भी काल में नहीं आया करता है, क्योंकि हमारे विचार परम्परा से तपे हुए हैं। अब तुम इन संसार के वाक्यों को चुनकर हमारे समीप लाओ, तो यह वाक्य स्वीकार नहीं किया जाता, क्योंकि जहाँ परमात्मा की दया को स्वीकार करते हैं, बेटाअन्तिम प्रणाली जो बुद्धि की होती है !, उस पर जाना चाहिए। क्योंकि नीचे यह वाक्य स्वीकार कर सकते हैं, कि परमात्मा न्यायकारी भी है, दयालु भी है, किन्तु जब उसको तर्कवाद पर लाते हैं, बुद्धिवाद पर लाते हैं, प्रज्ञावादी बुद्धि के आँगन में लाते हैं। तो उस समय हमें यह सिद्धान्त प्रतीत होता है। परन्तु नीचे तो सभी को यह स्वीकार कर लेना चाहिए क्योंकि यदि इन वाक्यों को, जो मैंने अभी अभी तुम्हारे समक्ष नियुत किए है इस सिद्धान्त से अपठित प्राणियों में क्रान्ति आ सकती है, क्रान्ति आने की संभावना रहती है इस लिए हमें प्रारम्भ में यह वाक्य उच्चारण में कोई दोषारोपण नहीं होता। क्योंकि परमात्मा न्यायकारी है दयालु है। ज्ञानमार्ग

में और भक्तिमार्ग में बड़ी भिन्नता होती है, क्योंकि जो भक्तजन होते हैं, वह सर्वश परमात्मा को कण कण में स्वीकार करते हुए, उसकी याचना करते हुए, अपने को संसार से पार ले लाते हैं। परन्तु उन मानवों का संसार में गिरने का भय रहता है। भय की प्रतीति इसलिए होती हैं क्योंकि उनमें विवेक तो होता है, कण कण में होने के नाते, परन्तु बुद्धिवादी का जो ज्ञान है, उस ज्ञान को जो विवेक है, वह उसके समीप न होने के कारण, यहाँ गिरने का सन्देह रहता है। मैं इस वाक्य को अधिक विडम्बना में नहीं लेना चाहता हूँ। रहा यह वाक्य कि यह मानव क्या स्वीकार करता है बेटा यह वाक्य ! बहुत गम्भीर है। यह कोई शास्त्रार्थ का विषय नहीं रह जाता है। यह तो केवल अपने विचारों का और अनुभव का विषय है, तपस्या का विषय है, क्योंकि जो प्राणी संसार में तपते नहीं है, उन प्राणियों को एक एक वाक्य का भय रहता है और भय इसलिए रहता है कि वह यह जानते रहते हैं, कि कहीं तुम्हारा वाक्य नष्ट न हो जाएं, कहीं तुम्हारा वाक्य मिट न जाएं, तो यह मानव के मन में प्रवृत्ति रहती है। प्रत्येक मानव यह चाहता है की जिस सिद्धान्त को वह स्वीकार कर लेता है, उसकी वह पुष्टि करता है कि वह वाक्य मिट न जाए, अमिट रहना चाहिए। बेटायहाँ यह ! वाक्य तो है नहीं। तुमने यदि इसका प्रश्न किया है, तो मैंने उसका सुन्दर रूप से उत्तर दे दिया है। तुम परम्परा से जानते हो, कि मैंने कितने समय प्रश्चात् इन वाक्यों का उच्चारण किया है। यह भी तुम्हारे प्रश्नों के अनुसार हम वाद विवाद की वेदी पर न जाएं, परन्तु इसको विचार की वेदी बनाएं, विचार करें और तर्कवाद पर ले जाएं और तर्कवाद से भी सिद्ध न हो, तो तपस्वी बनें, मौन हो जाएं, उस ब्रह्म की चेतना में, आत्मा की चेतना में, अपने को अनुभव करें। आत्मा में विश्वास धारा को उत्पन्न करें, तो बेटा यह सब ! वाक्य सिद्ध हो सकते हैं। इसमें कोई विवाद नहीं है।

रहा यह वाक्य कि आधुनिक काल का मानव एक ही ब्रह्म को स्वीकार करता है। वास्तव में मानव को ऐसा प्रतीत होने लगता है, कि एक ही ब्रह्म है, क्योंकि जिस समय यह आत्मा ब्रह्म के स्वरूप को अपने में एकत्रित कर लेती है, और ब्रह्म के स्वरूप को यह जान लेती है, केवल अगम्मता से और उस अनुभव से जो वाणी से उच्चारण नहीं किया

जाता, उस योगी को ऐसा प्रतीत ही होने लगता है, कि संसार में एक ही ब्रह्म की चेतना है। यह जो जगत है, यह परिवर्तन होने वाला है और ब्रह्म की एक चेतना है, जो संसार में चेतनित मानी गई है। तो बेटायह वाक्य उस काल में होता है !, जब मानव का बुद्धिवाद समाप्त हो जाता है। मैंने तो तुम्हारे समक्ष, बुद्धिवादियों की चर्चा प्रगट की है और वह बुद्धिवादियों के वाक्य भी तर्क संगत हैं, इसलिए इस वाक्य को स्वीकार करने में किसी प्रकार का दोषारोपण नहीं होना चाहिए। यदि इस वाक्य को मैं और गम्भीरता से ले जाँऊ तो यह भी मुझे शोभा नहीं देता।

परन्तु मैंने ब्रह्म के, आत्मा के, और ब्रह्म और प्रकृति और आत्मा के, कुछ रूप को वर्णन किया है। अब तुम भी बेटा इस सिद्धान्त को !परम्परा से स्वीकार करते चले आए हो। इसलिए मैं कहा करता हूँ कि तुम इस वाक्य को कहीं से लाए हो? क्योंकि मैं का शब्द हमें शोभा नहीं देता, कि हम मैं का उच्चारण करें। क्योंकि मैं में ही तो प्रकृतिवाद होता है। जितना भी यह मानव है, यह मैं में ही प्रकृतिवादी होता है। जैसे ओ३म् का उच्चारण होता है अ, उ और म्, मानो ओ३म् जो शब्द है यह सार्वभौम शब्द है। यह ब्रह्म का वाची है और उ आत्मा का वाची है और यह जो म् है यह प्रकृति का वाची है। क्योंकि प्रकृतिवादी ही मैं का उच्चारण किया करते हैं। यह मेरा आश्रम है, यह मेरा शरीर है, यह मेरी आत्मा है, यह मेरा परिवार है, यह मेरा जगत है, यह मेरा देश है, मानो इस प्रकार जो मैं की प्रवृत्ति प्रकृतिवाद में आती है।

प्रकृतिवाद

तो बेटामैं यह उच्चारण करना चाहता हूँ !, तुम मुझे मैं का शब्द का उच्चारण नहीं करना चाहते। जितना भी मैं वाद है वह सब प्रकृतिवाद है। और जितना ओ३म् वाद है, मानो विचारवाद है, हम वाद है, यह सब ब्रह्मवाद माना गया है। इसलिए हमें मैं का प्रतिपादन मैं का उच्चारण करना भी हम यह स्वीकार करते हैं कि मैं का संस्कार चित्त में यदि अंकुरित हो गया है, तो इसका वृक्ष होगा, और वृक्ष होगा तो बेटा प्रकृतिवाद ! में पुनः से आना होगा। तो इसलिए हमारा जो यह शब्द है, इस वाक्य को तुम मैं में

न लाना, क्योंकि जब अधिक कुतर्क होने लगता है, तो मानव को मैं में आना स्वाभाविक हो जाता है, इसलिए कुतर्क नहीं होना चाहिए, केवल तर्कवाद होना चाहिए।

महात्मा दयानन्द

रहा यह वाक्य, कि हम यह स्वीकार करते रहते हैं, जैसे तुमने दयानन्द की आत्मा का प्रश्न किया, जब वह आत्मा शमीक ऋषि के रूप में थी, तो बेटा वह इन्हीं वाक्यों का ! समर्थन करती थी।इन्ही वाक्यों को स्वीकार करती थी, उन्हीं वाक्यों को ले करके उन्होंने त्रैतवाद को स्वीकार किया है। यदि उनके पुरातन के संस्कार नहीं होते, शमीक ऋषि वाले, माँ की जो प्रीति, ऋषिवर का वाक्य था अटूटी जी, यदि वह माता उसे सुन्दर नहीं बनाती, उसका सुंदरत्व न होता तो यहाँ संसार में बेटा जैसा हमें प्रतीत ! हुआ है, वायु मण्डल से, परमाणुवाद से, देखो, उस भयंकर काल में आ करके, उस महान विभूति ने, त्रैतवाद की घोषणा की और उनका वह शब्द अकाटय रहा है। इसलिए उनका आदर करना चाहिए। उस पवित्र ऋषि आत्मा का आदर करना हमारा स्वभाव है, क्योंकि आदर करने में हमारा कोई अग्रित नहीं होता, हम अकटित नहीं होते। अन्यथा जहाँ एकवाद हो, वहाँ त्रैतवाद की कोई महत्वता नहीं रह जाती है, वहाँ त्रैतवाद नहीं रह जाता है। इसलिए त्रैतवाद का प्रसार अधिक हुआ, क्योंकि वह एकवाद से अधूरे थे। अधूरे इसलिए थे, क्योंकि एकवाद वह प्राणी उच्चारण कर सकता है, जो मानव ब्रह्म के स्वरूप में अपनी आत्मा को परणित कर देता है और वह अनुभव का विषय, मानो वह एकवाद की घोषणा, वह किसी भी काल में नहीं कर सकता, बेटा इसलिए ! हमारा जो यह वाक्य है, वह इसलिए है क्योंकि वास्तव में संसार के प्राणियों में ज्ञान की प्रतिभा होनी चाहिए। आज इन वाक्यों में ज्ञान की प्रतिभा होनी चाहिए। आज हम इन वाक्यों को लेकर अधिक टिप्पणी नहीं करना चाहते, क्योंकि वाक्य का समय समाप्त ही होने जा रहा है।

आज के वाक्यों का अभिप्रायः यह है कि हमारा जो विचार का विषय है, उसको विचारमय बनाना चाहिए। जो विवाद का विषय है, विवाद किन वाक्यों का करोगे?

मानो, जो मानव संसार में दुराचारता में रहता है, जो आत्मविश्वासी नहीं होता, बेटा ! उसका तुम सदैव संसार में विरोध करते रहो, उसके प्रति अपना वाद प्रगट करते रहो और जो मानव चिन्तनवादी है, ब्रह्म का चिन्तन करता है, आत्मा का चिन्तन करता है, प्रकृति का चिन्तन करता है, सिद्धान्त में ऊँचा चला जाता है, उसका सदैव आदर करना चाहिए, और संसार में नास्तिक प्राणी वही होते हैं, जो वेद के पठन पाठन करने वाले होते हैं। जो वेद को यह कहता है कि मैं वेद को स्वीकार नहीं करता और वह चरित्र को स्वीकार करता है, वह नास्तिक नहीं। एक मानव वेद का पठन पाठन करने वाला, अक्षरों का, परन्तु दुराचार में है, तो बेटाजो वेद को स्वीकार नहीं करता !, वह उस वेदपाठी से सुंदर कहलाया जाता है इसलिए वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है, कि वेद का नाम प्रकाश है, प्रकाश में मानव को परणित हो जाना चाहिए। मानव को अन्धकार में नहीं रहना चाहिए। इस प्रकृति के आवेशों में रहना है, परन्तु इनके इतने आवेशों में नहीं रहना चाहिए कि उसकी आत्मा को जो विश्वास है, आत्मा में तो तन्मय हो जाना है उससे वह दूर हो जाएं।

महापुरूषों की परम्परा

इसीलिए महापुरूषों की परम्परा से यह कर्त्तव्य चला आया है, कि जो मानव दुराचार में परणित होते हैं, उससे शान्त रह करके, उसका मन ही मन में विचार करो, मानो मन ही मन में उसके प्रति घृणा उत्पन्न हो जानी चाहिए। वास्तव में ऋषि मुनियों ने तो यहाँ तक कहा है कि घृणा से भी मानो संस्कारों का जन्म होता है, इसलिए घृणा मत करो। परन्तु यदि घृणा करनी है, तो आत्मा से नहीं, वह शब्दों से करो, क्योंकि शब्दों की जो घृणा है, वह संस्कारों का जन्म नहीं देती, और जो मन का चिन्तन घृणा का है, वह मानव को जन्म जन्मान्तरों में ले जाता है। इसीलिए हमारे यहाँ मन से भी घृणा नहीं करनी चाहिए। केवल शब्दों से घृणा करनी चाहिए। हमारे यहाँ ऋषि मुनि स्पष्ट उच्चारण किया करते थे। मुझे स्मरण आता रहता है जब माता गार्गी राजा जनक की सभा में पहुंची। महान सभा थी, वह नग्न रहती थी, उस समय राजा जनक ने कहा

गार्गीतुम मेरी सभा में नग्न आ रही हो !, तुम्हें लज्जा नहीं आती, उस समय सात्विक शब्दों में क्या कहा था, गार्गी ने, कि हे राजा जनक क्या तू ब्रह्म ज्ञान में परणित ! होना चाहता है? जब तुम एक कन्या को नग्न नहीं दृष्टिपात कर सकते, तो तुम ब्रह्म ज्ञान को क्या प्राप्त कर सकोगे। बेटा जब इन शब्दों का राजा जनक के अन्तःकरण ! में प्रहार हुआ, तो राजा उनके चरणों में ओत प्रोत हो गए।

वाक्यों के उच्चारण करने का क्या अभिप्रायः है? कि मानव को शब्दों से ही घृणा करनी चाहिए, यदि घृणा करनी है, तो राजा जनक की सभा में गार्गी ने वह वाक्य प्रगट किए, जिन्हें कोई मानव श्रवण नहीं कर सकता था। परन्तु राजा जनक सात्विक था, और मन से घृणा नहीं थी। जो मानव मन से घृणा करता है, उसका संसार में कहीं आदर नहीं होता है। जब उसका आत्मा में ही आदर नहीं होता, मानव के शरीर में ही उसके विचारों का आदर नहीं होता है, तो यह ब्राह्य जगत भी उसका आदर नहीं किया करता है।

तो हमें विचार विनिमय करना है, हम विचार की वेदी पर आए हैं, हमें सब वाक्यों को विचार विनिमय करके चलना हैं। क्योंकि वास्तव में मानव विचारों का क्षेत्र है। आज का हमारा यह वाक्य समाप्त होने जा रहा है। आज के हमारे वाक्यों का अभिप्रायः है कि हम ब्रह्म की चेतना को स्वीकार करते हुए, शब्)द ध्वनि के रूप में उपलब्ध(.....

मुनिवरोंदेखो !, उस ब्रह्म में परणित होते चले जाएं, उस ब्रह्म में लीन होते चले जाएं, जो ब्रह्म मानो सर्वत्र ओत प्रोत है, प्रकृति उसी के सन्निधान से अपना कार्य कर रही है, परमात्मा अकर्त्ता रहता है। परन्तु देखो, उसी में हमारा परणित हो जाना, उसी में समाहित हो जाना, बेटा! देखो, वह मुक्ति का एक प्रबल साधन हमारे यहां, उन्नत प्रदीप, कहा गया है। जैसे हमने कपिल के शब्दार्थों में, हमने कुछ वाक्य प्रगट किए गएं थे, बेटा! । महर्षि कपिल मुनि महाराज ने बहुत ही सुन्दर शब्दों में प्राण की और मन की महत्वता स्वीकार की। परन्तु इन दोनों के मध्य में, आत्मा की चेतना को भी उन्होंने भी स्वीकार किया था, उस समय। यदि कोई आत्मा की चेतना को स्वीकार नहीं करेगा और इसको गुण और गुणी स्वीकार कर लोगे, तो बेटा! इसमें नाना प्रकार के दोषारोपण

आ सकते हैं। इसलिए देखो, इस वाक्य को स्वीकार करना हमारा सभी का कर्त्तव्य है, और परमात्मा की याचना करते हुए, हमें बेटा! इस संसार सागर से जो मान अपमान वाला संसार है, इससे हमें पार होना है, इसके साथ हमारा वाक्य समाप्त हो गया है। आज का वाक्य समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा, इसके पश्चात् यह वाक्य समाप्त होता गया।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो भगवन मैं तो आप से कल भी प्रश्न करने !तो भगवन ! वाला था।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्यसमय आयेगा प्रश्न करते रहना !बेटा....., इसमें क्या वाक्य हैं?

पूज्य महानन्द जीः अच्छा भगवन् !

पूज्यपाद गुरुदेवः तो अब वेद का पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जीः अच्छा भगवन् आज्ञा !'

पूज्यपाद गुरुदेवः ओ३म् गता रयित्वनाः आत्मा भद्राणि गयश्चमा रेवं आभाहम्।

ओ३म् उदुग्रीवा चरी इदं मां धेनु गया आभा मनो प्राची रथा अमृता माणां देवं भागाम्

ओ३म् देवं मया सर्वं भद्रा ब्रह्मणाम्

२४ 16 04 1969 पुष्प 12 संस्कार

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंअभी अभी हमारा पर्यन्त समय समाप्त हुआ !, आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज पूर्व से हमने जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ नित्य प्रति कुछ मनोहर वेदों का प्रसारण होता रहता है जिसका कार्य महान् और पवित्र कहा गया है। आज हम इस महान् पवित्र वेदवाणी का प्रसारण करते हुए हमारा वाक्य उस परमपिता परमात्मा की महती, महामना, महिमा का उच्चारण करता चला जा रहा था जिसकी महिमा हमें लोक लोकान्तरों में दृष्टिपात आती है, जिसका महान् प्रकाश इस संसार को क्रियाशील बना रहा है, जिसकी महानता अनुपम मानी गई है। आज हम अपने उस प्रभु का गुणगान गाते चले जाएं। हे परमात्मन् तू महान् है ! अनन्ततव में विराजमान हैं, तू अनन्त है, तेरी कोई सीमा नहीं है। हे प्रभु आपके !

समन्न सभी बालिकाएं हैं, एक बालक जन्म लेता है और वृद्धपन को प्राप्त हो जाता है। मानो वृद्धपन उसकी अवधि का है, जैसे कृषि करने वाले वैश्य को कृषि वसन्त ऋतु में परिपक्व हो जाती है, तो प्रभुऐसी ही आपके लिए वसन्त ऋतु वह है !, जब मानव वृद्धपन को प्राप्त हो जाता है और वृद्धपन में वह आपको ही प्राप्त होता चला जाता है, उसका जो चित्त है, वह एक महानता में परणित रहता है।

चित्त

मेरे प्यारेऋषिवर !, मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे एक अद्वितीय प्रेरणा देते चले जा रहे हैं। आज जब हम यह विचार करने लगते हैं, कि हमारा यह जीवन कितना अद्वितीय है, कितना महान है और महानता में सदैव परणित रहता है। जब यह वाक्य और भी गम्भीरता में परणित किया जाता है, तो हमें ऐसा प्रतीत होने लगता है, कि उस परमपिता परमात्मा की महती, अनुपम कृपा में हम सदैव रमण करते चले जा रहे हैं। मेरे प्यारेमहानन्द जी कहा करते हैं !, कि मानव का संस्कार क्या है? संस्कारों से ऊपर, चित्त के मंत्रों का प्रतिपादन आता चला जा रहा था चित्तम व्रवहा, चित्तम् रुद्रा, चित्तम् मानव चत्ते प्रमाणः चित्तयम्। मानो यह जो चित्त है, इसमें मानव के जन्म जन्मान्तरों के संस्कार विराजमान होते रहते हैं। यह संस्कारों का मूल क्षेत्र कहलाया गया है। हमें तो बेटाअनुभव में भी आता रहता है !, कि वास्तव में मानव के लाखों वर्ष के संस्कार भी कभी न कभी आने प्रारम्भ हो जाते हैं।

संस्कार

इसी प्रकार मुनिवरोंजब माता के गर्भ में प्यारा पु !त्र होता है, तो उस समय माता पिता दोनों ही संस्कार की पवित्र वेदी पर जाते हैं। संस्कार उसे कहते हैं, जहाँ से वस्तुओं का मिलान होता है। दो वस्तुओं का मिलान माता के गर्भस्थल में ही ओत प्रोत हो जाता है, । जब वही बालक बन करके माता के गर्भ से पृथक होता है, उन परमाणुओं को एकत्रित करने वाला मेरा प्यारा प्रभु है। जैसे चित्त के संस्कार होते हैं और माता पिता की भावना होती है, माता पिता का जितना शुद्ध कर्म होता है, उन्हीं

भावनाओं को ले करके प्रभु बालक की सुन्दर रचना कर देता है। माता के गर्भस्थल में जो रचयिता रचता है, वह सुन्दर रूपों से रचा करता है। मेरे प्यारे जो चित्त !ऋषिवर ! का संस्कार है और माता की जो सुन्दर भावना है, उन भावनाओं को ले करके, प्रभु इस मानव का निर्माण किया करता है और वह जो निर्माण है, वह अद्वितीय है, महान है और पवित्र है, परन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनमें अनन्ता विराजमान है। मानव के शरीर में भी अनन्तता विराजमान है जैसे ब्रह्माण्ड में तुम्हें अनन्तता प्राप्त होती है। मुनिवरोंदेखो !, प्रत्येक मानव संस्कार से ही प्राप्त होता है। जब मानव का ! कोई संस्कार नहीं होगा, तो मानव का मिलन होने का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है। आज कोई मानव यह कहता है, कि यह जो शरीर है, यह छिन्न भिन्न होने के पश्चात् इसका कोई जन्म नहीं होता। मानो देखो, शरीर आत्मा का जन्म नहीं, परन्तु केवल रूपान्तर होता रहता है, भोगों को भोगने के लिए क्योंकि भोगों के अधीन ही मानव की स्वकीय क्रिया विराजमान रहती है। इसलिए आवागमन किसका है? आत्मा न कहीं आता है, न कहीं जाता है, परन्तु उसका आवागमन इसलिए उच्चारण का देते है क्योंकि वह आवागमन आँगन में, माता के गर्भस्थल आना है। आने के नाते उसमें पूर्ववत् संस्कारः विशेषाः देखो, साधारणतया किसी ने क्लिष्ट नाना प्रकार के संस्कारों की कटिबद्धता ले करके, उसी प्रकार के माता पिता उसका संस्कार अग्रित किया करते हैं। तो मेरे प्यारेयदि संसार में किसी चित्त में संस्कार नहीं होगा !ऋषिवर !, तो यहाँ जन्म लेने का कोई कारण बनता ही नहीं, क्योंकि कारण तभी बना करता है, जब कोई संस्कार होता है, कोई न कोई उसकी प्रतिभा संसार में शेष रह जाती है और उन्हीं संस्कारों से मानव का जन्म होता है। क्योंकि परमपिता परमात्मा चित्त से रहित है, इसलिए परमात्मा का जन्म नहीं होता, जहाँ चित्त होता है, वही जन्म होता है और जहाँ चित्त भी नष्ट हो जाता है, वहाँ मुक्ति का वाक्य माना जाता है। आज कोई मानव यह प्रश्न करने लगता है, कि जब मुक्ति में चित्त नहीं रहता, मानो कोई भी संस्कार नहीं रहता, तो मुक्ति से संसार में आने का कोई कारण बनता है अथवा नहीं? इसमें कुछ ऐसा कहा गया है, कि यह जो आत्मा है, इसमें अल्पज्ञता होने के नाते, परमात्मा में

सामान्य होने के कारण, इसमें कुछ न कुछ अंकुर रूपों से कोई न कोई संस्कार ऐसा सूक्ष्म रहता है, जिसकी कोई अवधि होती है। आज इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ। केवल यह उच्चारण करने आ पहुंचा हूँ, कि संस्कार अवश्य होने चाहिए। संस्कार कहते किसे हैं? संस्कारों की प्रतिभा क्या है? संस्कार कहते हैं, जो मानव चित्त में अंकुर विराजमान हो जाते हैं, बीजों का संस्कार कहा जाता है। माता के गर्भस्थल से जब बालक का जन्म होता है तो उस बालक को पिता अपने भुजाओं से अमृतत्व का पान कराता है, शहद इत्यादियों का पान कराता रहता है और वह कहता है कि हे बालकतू मेरे गृह में आया है !, क्यों आया है? गृह में आने का क्या तात्पर्य है? हमारे ऋषि मुनियों ने कहीं कहीं तो इसे आवागमन का ही क्षेत्र कहा है, कहीं कहीं इसे देने लेने का क्षेत्र कहा है, तो मैं इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा नहीं प्रकट करूंगा, केवल यह कि बालक को जब यह कहा जाता है, तो वह बालक कोई वाक्य उच्चारण नहीं करता। उसके पश्चात् बालक का नामकरण संस्कार कर देते हैं, उपनयन संस्कार कर देते हैं, कहीं जन्म संस्कार कर देते हैं, नाना प्रकार के संस्कारों का जन्म होता रहता है। वह संस्कार प्रायः बालक स्वीकार नहीं करता है, परन्तु बालक का जो अन्तःकरण है, जिसको हम चित्त कहते हैं, उसमें पिता कहा हुआ शब्द, आदित्य बन करके, उसके अन्तःकरण में अंकित हो जाता है। अंकित क्यों हो जाता है? क्योंकि बालक का हृदय निर्मल होता है, स्वच्छ होता है, सात्विक होता है। वह संस्कार इस प्रकार के अंकित होते हैं, कि वह बेटा किसी भी काल में नष्ट नहीं होते। उसके पश्चात् जब बालक का ! नामकरण संस्कार होता है, तो नामकरण के साथ साथ नामोच्चारण किया जाता है, हे बालकजब तू कोई शब्द उच्चारण नहीं कर रहा ह !ै, तो मैं तेरे नाम का उच्चारण कर रहा हूँ, क्योंकि तेरी आत्मा का कोई नाम नहीं है, तत्त्वों का कोई नाम नहीं है, जिनसे सुगठित हुआ पिण्ड प्रतीत हो रहा है, जैसे देखो, गृह का नाम है, गृह पृथ्वी के परमाणुओं से बना है, अग्नि में उसे तपाया है, परन्तु मेरा गृह यह संस्कार उसके मस्तिष्क में लग जाता है, क्योंकि उसका परिश्रम और उसके चित्त में जो संस्कार विराजमान हो गएं हैं। इसी प्रकार हमारे यहाँ कुछ ऐसी परम्परा मानी जाती है, कि

तब माता और पिता नामोच्चारण करते हैं, तो उस समय माता पिता दोनों के हृदय की महानता की कोई सीमा नहीं होती। परन्तु मैं यह कहा करता हूँ, कि ऐसे माता पिता जो अपने बालक की संस्कारों में परिणत कर देते हैं, नामकरण संस्कार है, यज्ञोपवित संस्कार है, वेद के पठन पाठन करने का संस्कार है और भी नाना संस्कार होते हैं। हमारे यहाँ सोलह संस्कार माने गएं हैं। उन सोलह संस्कार में क्या क्या प्रतिक्रिया है यह सूक्ष्म रूप से मैं अभी कुछ परिणत किए देता हूँ।

गर्भाधान संस्कार

देखो, जिस समय माता पिता के गर्भस्थान में विराजमान हो करके, अपने अग्नितिः मानो यज्ञ वेदी में पवित्रता से जैसा ऋषि मुनियों ने परिणत किया है, जब पुरूष अग्नि बन करके ऋषि प्रदीप्त होता है, तो वह जो अग्नि का पुरूष है, वही पुरूष उस वेदी में प्रविष्ट हो करके, वेदी उसे भस्म कर देती है। भस्म करके उन परमाणुओं को शुष्क बनाया जाता है। माता के गर्भाशय में, उन्हीं परमाणुओं से सुगठितता आ जाती है, पवित्रता आ जाती है। उस माता को जितना भी शीतल पदार्थ होगा, जितनी भी शीतल औषधियां होगी उनका पान करना चाहिए, क्योंकि वह जो अग्नि है, जो प्रदीप्त हो गई थी, उस अग्नि का प्रभाव इतना न रहे कि उत्तेजक हो करके ग्रस्त न हो जाएं। तो वहाँ शीतल औषधियों का पान करने को कहा है, जैसे ब्रह्मडण्डी है, जैसे शंकला है, आगुरुणी है यह नाना प्रकार की औषधियों का पान किया जाता है। जैसे चित्रखण्डा है मानो चित्ररेखा है, नाना प्रकार की वनस्पतियां होती हैं, इनका पान करना माता के लिए बहुत अनिवार्य होता है क्योंकि माता को बालक को जन्म देना है, केवल माता तू आनन्द के लिए, यहाँ संसार में नहीं आती, अपनी वेदी से तूझे अग्नि को और पुरूष को उत्पन्न करना है, क्योंकि यह प्रभु की सुन्दर रचना है। जब प्रभु ने यह संसार रचा था, जब मानव की रचना हो गई थी, तो उसके पश्चात् अग्नि आ गई, पुरूष रचा गया क्योंकि यह जो पञ्च महाभूतों का रस है, वह पृथ्वी है, पृथ्वी का जो रस है, वह वनस्पतियाँ हैं और वनस्पतियों का जो रस है नाना प्रकार के पुष्प हैं और नाना प्रकार के पुष्पों का

जो रस है, वह फल है, और फलों का जो रस है, वह पुरूष माना गया है और पुरूष का जो रस है वह वीर्य माना गया है।

मुनिवरोंदेख !ो, यह तो सुन्दरम् ब्रह्मे अपप्रतिः यह सभी संकुचित्त भाव में परणित कर दिया है। जब यह वीर्य उत्पन्न हो गया, तो उसके पश्चात् प्रभु ने एक सुन्दर वेदी बनाई, जिस को माता के, माता के अग्रितियों में स्वीकार किया गया है, वही वेदी है, जिसके गर्भ से हम जैसे प्यारे पुत्रों का जन्म होता है। यह सुन्दर वेदी है, इसको और कोई नाम उच्चारण करना, केवल विहग्रिति माना गया है। मैं इस वाक्य को और गम्भीरता से नहीं ले जाना चाहता। परन्तु वह जो वेदी है, उसको विचारना है, उसके ऊपर अनुसन्धान करना है, व्यापकता से परणित करना है, जैसे यज्ञ वेदी में नाना प्रकार के सुगन्धिदायक पदार्थों को अग्नि पान करने के पश्चात् सूक्ष्म बना देती है और वह वायु मण्डल में परणित कर देती है, जिससे वायुमण्डल बन जाता है। इसी प्रकार इस वेदी में जितने माता पिता, यज्ञमान के सुन्दर विचार होंगे, उतना ही वेदी का भाव पवित्र होगा और पवित्र होने के नाते आगे चलकर के, वेद के ऋषियों ने कहा है, आचार्य जनों ने कहा है, गिरि प्रताम् मना कृति अम्ये अस्ति सुत्रा नम्या नम् अप्रतिः कि वह यज्ञ वेदी है, जिसमें जब बालक प्रविष्ट होता है तो शीतल औषधियों का पान करना चाहिए।

सीमंतोनयन संस्कार

उसके पश्चात् मुनिवरोंजब तीन मास का गर्भाशय हो जाएं !, तो माता पिता को संयम और नियम संकलन धारण कर लेना चाहिए। उस समय पुरूष का कर्त्तव्य है, कि वह सेलखंडा, चित्रलता, आभ्याणी, संकला इन चारों औषधियों को ला करके, इनको माता को पान करा देना चाहिए, क्योंकि यह चारों औषधियां बुद्धिवधक होती है, वीर्य वर्धक होती हैं, माता के गर्भस्थल में सुन्दर बालक पनपने लगता है। आगे चल करके जब वही बालक पांच माह का होता है, छठे माह में एक और संस्कार होता, जिसको सुरी दण्डक नाम का संस्कार भी कहते हैं, तो उस समय पुरूष का कर्त्तव्य है, कि वह अपनी पत्नी को सुन्दर सुन्दर औषधियों का पान कराए, जिसमें चित्ररेखा, ब्रह्मदण्डी,

मानधुनी, अन्नवाती और सहदेई इन चारों औषधियों का पान करा देना चाहिए। क्योंकि यह बुद्धिवर्धक है, कामधेनु हैं और यह ओज को प्रबल बनाने वाली हैं और हृदय को उज्ज्वल करने वाली हैं।
मुनिवरोंजब नवा माह प्रारम्भ हो जाएं !, उस समय सहदेई सानखण्डा, आनवादरी इत्यादि औषधियों का पान कराकर के माता को उज्ज्वल बनाया जाएं, तो माता के गर्भ में बिना विघ्न बाधाओं के बालक पृथक हो जाएं, जैसे एक बेल से फल परिपक्क हो जाने के पश्चात्, स्वतः ही पृथक हो जाता है। बेल को कोई कष्ट नहीं होता और फल पृथक हो जाता है। इसी प्रकार हमें यह विचार विनिमय करना है। जब बालक को जन्म हो, तो उस समय माता पिता का कर्त्तव्य है, कि सोने की सलाखा ले करके, सोना नहीं हो तो उससे उत्तम जो धातु हो, मानो रत्न इत्यादि धातु हो, उसको जल में आवृत करें और जल में मन्थन करने के पश्चात् मधु हो और मधु के साथ में सहदेई हो और सूक्ष्म सा प्राग्नि हो और इन चारों का एक ही स्थान में मन्थन करने के पश्चात् बालक को प्रारम्भ में अर्पित कर देना चाहिए, जिससे उसके कण्ठ में कोई भी किसी प्रकार की विरागनी हो, आधागंना हो, वह सब दूर हो जाएं और बालक की जो नाभि है, उसमें किसी प्रकार की कष्टता न रह जाएं।
बेटायह विज्ञान तो बहुत प्रबल है !, मैं इन वाक्यों का कहाँ तक प्रतिपादन करता रहूँगा, केवल वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है, कि माता पिता का बहुत कर्त्तव्य होता है। मेरे प्यारेमहानन्द जी यह कहा करते हैं !, कि आधुनिक काल के जो माता पिता हैं, वह तो इसको जानते ही नहीं है, परन्तु मैंने तभी यह भी कहा है, कि गृहस्थ के अधिकारी संसार के सब प्राणी नहीं होते, कुछ ही प्राणी हुआ करते हैं, जो उत्तम से उत्तम संतानों को जन्म देते है। सन्तानों का उत्तम हो जाना बहुत अनिवार्य है। मुनिवरों ! जब यहाँ नक्षत्रों का ज्ञान होता है, यहाँ ऐसा भी कहा गया है, कि जब चित्रा और पूषा नक्षत्र दोनों का मिलान होता है और उस समय माता के गर्भस्थापना हो जाती है तो उस माता के गर्भस्थल से अधिराज का जन्म होता है। इसी प्रकार जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों अपनी परिधि में हो और पृथ्वी इनके मध्य में हो, पृथ्वी का ग्रहण हो और

उनके ऊपर पूषा नक्षत्र की छाया हो और उस काल में माता के गर्भस्थल की स्थापना हो जाएं, तो महान बुद्धिमान वेदों का प्रकाण्ड पण्डित उत्पन्न हुआ करता है। जब ग्रहण हो तो तृती हो और जब रोही, राहु आदि का वायु में प्रभाव हो और पृथ्वी में दोष हो और उस काल का जब माता के गर्भस्थल से जन्म होता है हे माता वह वास्तव में ! तेरा पुत्र कामी बनता चला जाता है।

तो मेरे प्यारेमैं इस वाक्य को अधिक गम्भीरता म !ऋषिवर !ें सूक्ष्म नहीं बनाना चाहता। मेरे प्यारे महानन्द जी ने जैसा कहा है मैं उसके अनुसार कुछ वाक्य प्रारम्भ ! करने लगा। यहाँ यह वाक्य प्रारम्भ होता चला जा रहा था, कि माता पिता को बहुत कुछ अपना कार्य करना है, कर्त्तव्य से विहीन नहीं होना है। कर्त्तव्य में संलग्न होना है, जिससे हम राष्ट्र और समाज मानवत्व को उत्तम बनाते चले जाएं। इसके पश्चात् आगे चल करके बालक का नामकरण ओर चूड़ा संस्कार करना चाहिए। मैंने नामकरण की परिभाषा और उसका किरत किया है कि वह नामोच्चारण करे। नाम उच्चारण करके बालक के मुख में कुछ स्वर्ण का आवरणों से मन्थन करके मधु और परागनी इत्यादियों का मिश्रण करके, बालक के मुख में अर्पित करें और मन्त्रों का उच्चारण करे, सौभावृत्ति अन्नमा प्राति आपुशमनाः प्रथे अस्तम् पदार्थानि रुद्रो भाक्षणी रुद्रो महा चाणम् अव्रेती पावकचाम् मम्र अस्ति सुप्रजाः माता और पुरोहित दोनों इस मन्त्र का उच्चारण करें और उच्चारण करके उस बालक के कंठ में औषधियों का प्रभाव करें। जैसे औषधियां मधु हैं, सुन्दर हैं, शूक्ष्मत्व हैं, इसी प्रकार बालक हृदय सूक्ष्मत्व और विचारवान होना चाहिए, इसका भाव हमारे यहाँ यह माना गया है।

मुण्डन संस्कार

इसके पश्चात् जब बालक का मुण्डन संस्कार होता है, क्योंकि वह जो केश है, उनमें नाना प्रकार के दोष होते हैं, उन दोषों को दूर करने के लिए मुण्डन संस्कार का विधान, हमारे ऋषि मुनियों ने कहा है। उस मुण्डन संस्कार में यह है, कि औषम्ब्रह्मे सुन्दर जल और यदि नदियों का जल ही बहुत ही सुन्दर हो। जल को ले करके, उस जल में

सेददही, ब्रह्मदण्डो, मामबागनी काश्नी और गिलीय का रस उसमें परणित करे और उससे जो तीक्ष्ण विरिधी है, उसको उसमें ही विरिधी करें और बालक के जो केश हैं, उनको उसी से धोने का हमारे यहाँ विधान है। उसके पश्चात् जो वह तीक्ष्ण अस्त्र है, उसको उन औषधियों में विरिधो किया जाएं और उसके पश्चात् बालक का मुण्डन संस्कार होना चाहिए। मुण्डन के पश्चात् पुरोहित और माता पिता मन्त्रों का पठन पाठन करते रहते हैं, क्योंकि जहाँ से वह केश अर्पित हुए हैं, उसके स्थान में सुन्दर भावना बन जाएं। यह जो मस्तिष्क है, इस मस्तिष्क से ही मानव का द्वितीय जन्म हुआ करता है। मस्तिष्क ही सुन्दर होना चाहिए, क्योंकि मस्तिष्क में ही ब्रह्मरन्ध होता है, और मस्तिष्क में ही लाखों ऐसी नाड़ियां होती हैं जिनका सम्बन्ध लोक लोकान्तरों से हुआ करता है। इसलिए कहा गया है, कि यह जो एक एक केश है, इसके निचले विभाग में लगभग नाड़ियों का प्रभाव रमण करता रहता है। इसलिए इन औषधियों का 101 प्रभाव होना चाहिए, जिससे वह जो नाड़ियां हैं, उनमें यह औषधियां विद्युत का कार्य करे। औषधियों में गति प्रबल हो जाएं। ब्रह्मरन्ध्र में गति प्रबल हो जाएं। ऐसा हमारे वेद का भाव है। जितनी ब्रह्मरन्ध्र में, नाड़ियों में गति होगी, उतनी ही बुद्धि तीक्ष्ण होगी और बुद्धि में महानता होगी, उद्यानता होगी, ऐसा हमारे यहाँ आया है।

वाक्यों का उच्चारण करने का अभिप्राय यह है, कि हमारे यहाँ संस्कार ही होता है। यदि संस्कार नहीं होगा, तो मानव का जन्म ही नहीं होगा। ऋषि मुनियों ने कहा है, कि जितना मानव का आत्मा संस्कारों से रहित हो जाता है, उतना उसके जन्म में सूक्ष्मता हो जाती है और जितने संस्कार क्लिष्ट होते हैं, अशुद्ध होते हैं, उतना ही मरण और जीना मानव की आत्मा के लिए स्वतः लगा रहता है।

अब कष्ट में आया, अभी कष्ट से चला गया, अभी शरीर धारण किया और अभी मृत्यु को प्राप्त हो गया। तो मुनिवरोंजो माता पिता शोधन करने वाले होते हैं !, पवित्र अग्नि और वेदी बन करके पुत्र की स्थापना करते हैं। उसको बेटा !संसार में किसी प्रकार का शोक नहीं होता, क्यों हमारे यहाँ सतोयुग काल में ऐसा कहा जाता है, कि पिता और माता से पूर्व पुत्र नष्ट नहीं होता था, क्योंकि शोधन था, विचारधारा थी, विचारों की

सुगठितता थी। इसलिए हमारे यहाँ जीवात्मा को कर्म करने में स्वतन्त्र माना गया है, इसमें परतन्त्रता नहीं आती, परन्तु कहीं कहीं परतन्त्रता भी स्वीकार करते हैं। परन्तु जहाँ यह प्रश्न आता है, कि कर्म कितना ही किया जा सकता है, कितना ही स्थूल किया जा सकता है, कितना ही व्यापक किया जा सकता है, कितनी महानता वाला किया जा सकता है। उसी से जीवन में एक महानता की एक अद्भुतता उत्पन्न होने लगती है।

मुण्डन संस्कार में औषधियों का रस

तो मेरे प्यारेहमारे यहाँ उसके पश्चात् जब मुण्डन संस्कार में !ऋषिवर !, वह औषधियों का रस आवृत्त कर दें और उन केशों का पृथ्वी में दग्ध कर देना चाहिए जिससे वह जो विष है, वह परमाणुओं में अधिक मिश्रण न हो। उसके पश्चात् माता पिता और पुरोहितजन ओर भी जो महान् व्यक्ति होते हैं, उन सभी को सेहदई और सेलखण्डा और गिलोय इन तीनों का रस ले करके, इसमें मधु को प्रविष्ट करके, बालक को पान करा देना चाहिए और कुछ उसके सिर पर मन्थन कर देना चाहिए, जिससे वह ओर भी गतिशील हो जाएं। उसके पश्चात् उसको शुद्ध पवित्र जल में स्नान करा करके, उस बालक को सुन्दर सुन्दर पदार्थों का पान करा देना चाहिए।

यह है बेटाहमारा यह वाक्य !, जो मैंने दर्शनों के सिद्धान्तों से कुछ अपने वाक्यों को प्रकट किया है। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों की यह परम्परागत मानी गई है। मुझे स्मरण आता रहता है, यहाँ नाना संस्कारों का जन्म होता है। बेटा एक नहीं। यज्ञोपवीत ! संस्कार होता है। उसमें यज्ञो पवित्रम् ब्रह्मे मानो तीनों प्रकार के ऋणों का अर्पित किया जाता है। मैं आज सोलह संस्कारों का प्रतिपादन नहीं कर रहा हूँ। महानन्द कोई काल आ !जीएगा, तो मैं इसे भी उच्चारण कर सकूंगा। आज के तुम्हारे इन प्रश्नों का उत्तर देता चला जा रहा हूँ कि हमारे यहाँ गृह आश्रम में बहुत सूक्ष्मता होती है, इसमें केवल आनन्द के लिए गृह आश्रम नहीं होता है। गृह आश्रम होता है, कर्त्तव्यता को पालन करने के लिए, प्रभु के ब्रह्माण्ड को, जो प्रभु ने रचना की है, उस ऋण से उऋण होने के लिऐ हम सब जगत में आए हैं। महापुरूषों को, ऋषि मुनियों को, गृह

में प्रविष्टता में और उनको उपदेश देना, ऋषि मुनियों और महापुरूषों का कर्त्तव्य हो जाता है।

तो मेरे प्यारेआज मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट !ऋषिवर ! करने नहीं आया, इस सम्बन्ध में। केवल अपने सूक्ष्म से विचार प्रकट करने आया हूँ, कि हमारा जीवन हमारी महानता उस परमात्मा से सुगठित रहती है, इसीलिए हमें परमपिता परमात्मा को अपने मध्य में परणित कर देना चाहिए। मानव को पापाचारों में रमण नहीं करना चाहिए, अश्लीलता में रमण नहीं करना चाहिए। हमारे यहाँ जितने भी वाद है, कर्त्तव्यवाद माना हैं। जितने वाक्य आज मैंने प्रकट किए हैं, यह कर्त्तव्यवाद की पवित्र वेदी में स्वीकार किए गएं हैं, हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने एक वाक्य और कहा है, कि पुत्र उत्पन्न करने से पूर्व मानव को विचारशील हो जाना चाहिए, कि माता पिता को उससे पूर्व देखो, एक शंख रेखा औषधि होती है और प्रतिभा होती है, और ब्रह्मदण्डी तीनों का मिलान किया जाता है और उसे पान किया जाता है जिसको आधाम् ब्रह्मे चित्रांगनी भी कहते हैं। इन औषधियों का पान करा करके, दुग्ध के साथ लगभग एक वर्ष तक ब्रह्मचारी रहे और उसके पश्चात् पुत्र की स्थापना करें। ऐसा हमारे यहाँ, परम्परागतों से माना है, ऋषि मुनियों का यह सिद्धान्त है।

बेटा मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। इस सम्बन्ध में मुझे अधिक ! वाक्य नहीं प्रकट करने हैं, केवल यह है, कि जो माता पिता चाहते हैं, कि हम अपनी सन्तान को महान् और पवित्र बनाना चाहते हैं, तो उनका संस्कार करो, क्योंकि संस्कार चित्त में होते हैं, संस्कारों की जो प्रतिभा है, वही तो मानव को उत्तम बनाती है। बेटा ! देखो, एक बालक का नामकरण संस्कार कर देते हैं, उस बालक को जब नामोच्चारण कर देते हैं, तो वह बड़ा प्रसन्न होता है, कि मुझे ही सम्बोधित हो रहा है। बेटा ! सम्बोधित उसी को किया जाता है, ऐसा हमारे यहाँ विचारधाराओं में स्वीकार किया गया है। तो आज का यह वाक्य, मैं समाप्त करने जा रहा हूँ। आज के इन वाक्यों का अभिप्राय है, कि हमें उस परमपिता परमात्मा की उपासना करनी चाहिए। हे परमात्मन् ! माता पिता सुन्दर होने चाहिए। तेरे राष्ट्र में, तेरी महानता का वर्णन करते हुए, तेरा

नियुक्त किया हुआ जो सिद्धान्त है, विचारधारा है, ज्ञानमय ज्योति है, उसको रमण करते चले जाएं। उसी में अपने विचारों को और अपने कर्तव्य कटिबद्ध करते हुए, मान अपमान को त्याग करके, इस संसार सागर से पार होने का प्रयत्न करें। हे प्रभु तेरा ! जो आदित्य सिद्धान्त है, तेरी जो आदित्यमय विचारधारा है, उसको ले करके प्राणियों का मस्तिष्क उत्तम होना चाहिए। अब मुझे समय मिलेगा, तो शेष चर्चाएं किसी काल में प्रकट की जा सकेंगी।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो भगवन्वाक्य तो बहुत ही सुन्दर !गुरुदेव !, परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इन विचारों के तो संसार में बहुत ही सूक्ष्म व्यक्ति हैं।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य प्रतीत नहीं ऐसा। !बेटा .....

पूज्य महानन्द जीः भगवन्ऐसा ही प्रतीत होता है !, कि आपके इन वचनों से, अच्छा भगवन्आपका समय तो बहुत ही सूक्ष्म रहा !।

पूज्यपाद गुरुदेवः बेटा कल अधिक समय उच्चारण किया जा सकेगा। !

पूज्य महानन्द जीः अच्छा भगवन् !

पूज्यपाद गुरुदेवः तो मुनिवरोंआज के इन वाक्यो !ः का अभिप्राय यह है, कि संस्कार होने चाहिए, पुरोहित उत्तम हों। संस्कारों से ही मनुष्य संसार में आता है। अशुभ शुभ किसी भी प्रकार के संस्कार हो। इसलिए प्राणियों को संस्कार करने चाहिए और बालक को सुन्दर सुन्दर आयुष्मान, आयुर्विद हो, सहस्रों वर्षों की अवस्था हो, ऐसा सुन्दर आशीर्वाद पुरोहित और जो महान् व्यक्ति हैं, देना चाहिए, जिस समय बालक का अन्तःकरण उसके चित्त पर, उनकी आयु की एक शृंखला बन जाएं, एक रेखा बन जाएं। ऐसा सुन्दर आशीर्वाद दे करके, मानो देखो, आकृति पूर्ण अग्रितिः यज्ञम् ब्रह्मा देवांतम् देवालयोः देवताओं से ऐसी कामना करे, वेद मन्त्रों में भी ऐसी कामना करे। तो आज का यह वाक्य समाप्त होने जा रहा है। अब वेदों का पाठ होगा। 21/ न्यू डबल 129 स्टोरी लाजपत नगर में दिया हुआ प्रवचन

२५ 03 09 1969 पुष्प 12 भगवान श्रीकृष्ण

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद

मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ जो पठन पाठन का सुन्दर कर्म है, वह परम्परागतों से और उसी पद्धति से सुगठित है, जिस पद्धति के आधार पर, मानव के जीवन की प्रतिभा, मानव के जीवन में एक अलौकिकवाद उत्पन्न होने लगता है। जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं, कि हमारी जो वैदिक परम्परा है, पठन पाठन का जो विचित्र कर्म है, उस कर्म को हम पुनः पुनः अपनाते हुए, अपने मानवतव को अग्रणीय बनाते चले जाएं। हमारे यहाँ समय समय पर महापुरूषों का आगमन होता रहा है, और उन महापुरूषों के आगमन में, एक विचित्रवाद छाता चला आया है। परम्पराओं से ही, वैदिक परम्परा को उन्नत बनाने के लिए, मानव का परम धर्म हो जाता है। क्योंकि मानव की जो मीमांसा है, वह मननशील के आधार पर निर्धारित है, क्योंकि मानव वही कहलाता है, जो मननशील होता है, जिसके मन का कोई संकलन होता है, मन की कोई धारा होती है, परन्तु उसकी, उसी के जीवन में महानता की एक ज्योति सदैव प्रकट रहती है। तो मेरे प्यारे जब हम प्रत्येक !ऋषिवर ! वाक्य को अपनाने का अथवा मनन करनेका साधन बनायेंगे, तो हमारा जीवन वास्तव में एक ज्योति में ही लिंग हमें प्रतीत होने लगेगा।

जैसे हमारे यहाँ शिव की विवेचना आती है, शिव नाम परमपिता परमात्मा का है, क्योंकि यह जो सर्वश, जगत हमें प्रतीत हो रहा है, यह सर्वश, जगत इस प्रकार है, जैसे एक पिण्ड रूप होता है, मानो वह सर्व जगत पिण्ड के सदृश्य है, इसी में नाना प्रकार के लोक लोकान्तर हमें प्रतिभा से प्रतीत होते चले जा रहे हैं। तो मेरे प्यारे !ऋषिवर ! मैं लोक लोकान्तरों की विवेचना में तो अधिक नहीं जाना चाहता हूँ, वाक् केवल ये उच्चारण करना है, कि हमें ये विचार विनिमय करना है कि हमारा जीवन कितना सुगठित होना चाहिए, हमारे जीवन की जो वास्तविक मीमांसा है, यह मनन शील के आधार पर ही मानी गई है। तो मेरे प्यारेआओ !ऋषिवर !, आज हम महापुरूषों की चर्चा करने जा रहे थे। मुझे आज वह प्रातः स्मरणीय, वह जगत, वह समाज आज मुझे स्मरण आ रहा है, जिस समाज में मानो देखो, गऊ अप्रभे अस्तम् मधु केत्वा हृदयस्तं ब्रह्मे

जहाँ प्राणी मात्र की रक्षा करने वाले, महापुरूष जब उत्पन्न हो जाते हैं, तो बेटा ! प्रत्येक प्राणी मात्र की रक्षा में, एक उज्ज्वलता की, एक उज्ज्वल भावनाएं उज्ज्वलवाद छाता चला जाता है, जिस उज्ज्वलता की पवित्र ज्योति को अपनाते हुए, हमारा जीवन, हमारी मानवता उसी के आधार पर बेटा एक स्तम्भ के तुल्य स्थिर हो जाती है। !

भगवान कृष्ण का जीवन

आओ, आज हम विवेचना करते चले जाएं, कि हमारे यहाँ समय समय पर, ऐसे सुन्दर महापुरूषों का आगमन होता रहा है। उनकी परस्पराएँ, रचनाएं परम्परागतों से उनका जीवन किस प्रकार का रहा है इसकी विवेचना मैंने बहुत पूर्व काल में भी की है, आज भी मुझे स्मरण आता चला जा रहा है। तो मेरे प्यारेहमारे यहाँ !ऋषिवर !, आज मुझे वह प्रातः स्मरणीय भगवान कृष्ण का जीवन स्मरण आता चला जा रहा है। भगवान् कृष्ण के जीवन में बेटा सदैव अग्नि प्रदीप्त रहती थी। !उनका जीवन, उनके पठन पाठन का मानो जो कर्म था, मनन करने की जो पद्धतियां थी, वे बड़ी विचित्रता में सदैव परणित रही हैं, उन पद्धतियों को अपनाने के लिए, आज हम सदैव ललाहित रहते हैं कि वास्तव में उन पद्धतियों को पुनः से अपनाया जाएं, उन पद्धतियों के आधार पर, ज्ञान और विज्ञान की पुनः विवेचनायें की जाएं, और उस विज्ञान को पुनः से लाना चाहिए, जिस विज्ञान को जान करके बेटा! भगवान कृष्ण का पाठ्यक्रम, और विचित्रता में सदैव परणित रहा है।

तो मेरे प्यारे !ऋषिवरआज का वेद का पाठ क्या कह रहा था !, कि हम वास्तव में ये विचारे, हम वास्तव देखो, मानव की मीमांसा को विचारने वाले बनें, परन्तु मानव की मीमांसा उसी काल में विचारी जा सकती है, जबकि हम महापुरूषों के विचारों को, और उनके विचारों से, हमारा अध्ययन होगा। तो मेरे प्यारे मुझे भगवान !ऋषिवर ! कृष्ण का जीवन, मैं जीवन के सम्बन्ध में तो पूर्व ही काल में प्रकट करूंगा परन्तु भगवान कृष्ण ने एक वाक्य कहा था, जिस समय मुनिवरोंदेखो !, कुरूक्षेत्र में, दोनों सेनाओं के मध्य में विराजमान थे, अर्जुन सखा उनके सहित थे। भगवान कृष्ण के

समन्न, मुनिवरोंदेखो !, महाराजा अर्जुन को, व दोनों पन्नों को दृष्टिपात करके, शोकातुर हो गये, जब शोक में लवलीन हो गएं, तो उस समय भगवान कृष्णा ने कहा था कि हे अर्जुन यह शोक में इस प्रकार !का मोह आया है? देखो, कर्त्तव्यवाद को जो मानव मोह के वशीभूत हो करके त्याग देता है, उस मानव का यह लोक और परलोक दोनों ही नहीं रहा करते हैं इसलिए आज तुम शोकातुर न हो। क्योंकि विचार है, आज तुम अपने कर्त्तव्य और न्नत्रियपन को न त्यागों।

परन्तु मैं आज न्नत्रिय धर्म की विवेचना तो करने नही जा रहा हूँ, भगवान कृष्णा ने एक वाक् कहा था, जब अर्जुन ने यह कहा कि महाराज आपने जो यह कहा कि सूर्या ! अंग्रते अबभ्रा कृति कि सूर्य को मैंने ज्ञान दिया और अन्नवा को दिया, तो प्रभु सूर्य ! तो परम्परागतों का है और अन्नवा को बहुत समय हुआ और आपका जन्म तो हमें अभी प्रतीत होता है। उस समय भगवान श्रीकृष्णा ने एकही वाक्य कहा था, कि हे अर्जुनमैं उन जन्मों को जानता हूँ !, परन्तु तू नही जानता। तो मुनिवरोंदेखो !, उन्होंने एक ही वाक् कहा था कि मैं जानता हूँ तू नही जानता तो मेरे प्यारे हमें !ऋषिवर ! उस मानवता को अपनाना है, जिसके हम जानने वाले बनें। क्या जाने कि अपने जन्म जन्मान्तरों की प्रतिभा को जानने वाले बनें और उस प्रतिभा को जान करके बेटा ! संसार सागर से पार होने का प्रयास करें।

राष्ट्र का परम उद्देश्य

आज का हमारा, हम विचार विनिमय करते चले जाएं कि भगवान कृष्णा का जीवन किस प्रकार का था। मानो जिस समय उन्होंने अन्नवा को ज्ञान दिया, महाराजा सूर्य को उन्होंने ज्ञान दिया, तो मुनिवरोंदेखो !, उस समय भगवान कृष्णा कौन थे? यह विचारना है। मुनिवारों! महाराजा सूर्य को, वैदिक ज्ञान का और विज्ञान का प्रसारणा कराने वाला कौन है? मेरे प्यारेऐसा कहा जाता है !ऋषिवर !, उस समय की यही भगवान अप्रवे अस्ति मनु जी, मुनिवरों! देखो, मनु जी का ही आत्मा था, मानो देखों कृष्णा जी का आत्मा मनु जी के शरीर में परणित हो रही थी, उस काल में। क्योंकि

भगवान मनु जी ने ही भगवान मनु की पद्धतियों में प्रायः आता रहता है, कि उनके जीवन में एक अग्नि की प्रतिभा ओत प्रोत रही। तो मुनिवरोंदेखो !, भगवान मनु ने सबसे प्रथम राष्ट्रीय विधान को बनाया और विधान बनाते हुए उन्होंने कहा है कि धर्म और मानवता की रक्षा करना, राष्ट्र का परम उद्देश्य है, क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में, मानो राष्ट्रीय विचारों में धर्म और मानवता की रक्षा नहीं होती है, वह राष्ट्र और पद्धति को कदापि भी नहीं चुनना चाहिए। मुनिवरोंदेखो !, सबसे प्रथम इसी आत्मा का, सर्वप्रथम जन्म महाराजा मनु का हुआ। उसके पश्चात् मुनिवरों! देखों, उन्होंने महाराजा सूर्य को और अक्षवा को ज्ञान दिया क्योंकि भगवान मनु के पुत्र का नाम सूर्य था। सूर्य नाम का राजा था। परन्तु उसके पश्चात् उनके पुत्र का नाम अक्षवा था। उन्हीं को उन्होंने मुनिवरों! देखो, यह ज्ञान की विचारधारायें और देखो, राष्ट्रीय पद्धति का वर्णन कराया और ब्रह्म ज्ञान दे करके, मुनिवरों वह अपने परमधाम को प्राप्त हो गएं थे। !

इसी प्रकार जब आज हम यह विचारने लगते हैं, कि भगवान मनु के पश्चात् और भी नाना जन्म हुए, जिनकी मीमांसा से मुझे लाभ नहीं है, यदि मैं उन जन्मों को उच्चारण करने लगूं, केवल मैंने प्रारम्भ के जन्म की विवेचना की है, आज मैं भगवान कृष्णा के जीवन और उस कर्त्तव्यवाद पर जा रहा हूँ। क्योंकि वास्तव में इसमें जाने में मुझे कोई लाभ प्राप्त नहीं होता है। आज मैं उनके जीवन की प्रतिभाओं को अथवा उनकी आकृतियों को वर्णन करता रहूँ, तो इससे मुझे लाभ नहीं। परन्तु विचार विनिमय यह करना है कि भगवान कृष्णा के जीवन ने सदैव समय समय पर आ करके, किस प्रकार की मानव पद्धति को अपनाने का प्रयास किया, मानो वैदिक परम्परा को अपनाते हुए, भगवान् कृष्णा ने एक वाक्य कहा था, कि जहाँ समाज में गऊओं की रक्षा होती है, गो नाम के पशु की रक्षा करनी है, गो नाम इन्द्रियों की रक्षा करनी है, मानो देखो, वहाँ राष्ट्रीय विचारधारा और मानव पद्धति को भी विलक्षण बनाना है।

पशु की प्रसन्नता से दुग्ध

बेटामुझे स्मरण आता है !, जब मानव भगवान कृष्णा मुनिवरों! देखो, मार्ग से आते तो

वह एक ध्वनि किया करते थे, और उसी ध्वनि के आधार पर मानो एक नाद होता और गऊएं प्रसन्न हो करके, दूध देने के लिए तत्पर हो जाती। वह गऊएं जब तत्पर हो जाती थी, तो उस समय उनके दुग्ध को पान किया जाता था। जब पशु प्रसन्न हो करके दुग्ध को देता है मुनिवरोंदेखो !, तो वह स्वामी के लिए बुद्धिवर्धक होता है। आज कोई मानव मुनिवरों! देखो, पशु के दुग्ध को लेना चाहता है, परन्तु देखो, उसके हृदय में यह वेदना रही है, कि मैं इसको दुग्ध प्रदान कर सकूं, तो आचार्य कहते हैं, भगवान कृष्णा ने भी कहा है, कि वह दुग्ध रक्त के तुल्य ही होता है, वह दुग्ध मानव के मस्तिष्क को कदापि भी उत्तम नहीं बना सकेगा, क्योंकि मानव के मस्तिष्क का प्रसन्नता से, उसका जन्म होता है मानव के मस्तिष्क का जो जन्म है, वह उसकी प्रसन्नता से ही सम्बन्धित सुगठित रहता है। तो मेरे प्यारे भगवान कृष्णा ने कहा कि सबसे प्रथम पशु को प्रसन्न !ऋषिवर ! देखो !किया जाएं। मुनिवरों, वह उनकी रक्षा करने में कितने दक्ष रहते थे। मुझे स्मरण है, मुनिवरों! मार्ग में जाते रहते, वेदों का अध्ययन प्रारम्भ रहता, गऊओं की रक्षा होती रहती, दोनों प्रकार की गऊओं की रक्षा करना, उनका परम कर्त्तव्य था। सबसे प्रथम मुनिवारों! गऊ नाम के पशु की, क्योंकि उससे राष्ट्रीय परम्परा ऊँची बनती है। राष्ट्रीय सम्पदा क्या है? जो मुनिवरोंदेखो !, राष्ट्र में दुग्ध देने वाला पशु है, उसी से मानव की बुद्धि ऊँची बनती है, मानव की बुद्धि में ऊर्ध्व गति से आती है। अहा, ऐसे उत्तम पशु राजा के राष्ट्र में और उनकी रक्षा करना यह सब का परमधर्म, कर्त्तव्य हो जाता है।

तो मेरे प्यारेभगवान क !ऋषिवर !ृष्णा का जीवन कितना महान और गोपनीय और विचित्रता में सदैव परणित रहा है। परन्तु देखो, उन्होंने नाना प्रकार की वार्त्तायें प्रकट कराते हुए कहा है, कि आज हम वास्तव में इस आत्मा तत्त्व को जानने का प्रयास करें, जिस आत्म तत्त्व को जान करके ही, हम संसार रूपी सार से पार हो जाते हैं। तो मुनिवरोंदेखो !, भगवान कृष्णा वेदों का पठन पाठन करते रहते। एक समय उनकी ! पत्नी जी उनसे निवेदन करती रहती, कि महाराजआप भोजन भी नहीं पान करते हो !, सदैव ऐसे गोपनीय विषय में संलग्न हो जाते हो, कि आपको संसार का ज्ञान नहीं रह पाता। भगवान कृष्णा ने कहा कि देवीमैं क्या करूं !, यह जो वेदों का ज्ञान है यह

ऐसा गोपनीय विषय है, कि मेरा हृदय प्रसन्न होता है और इसे त्यागने के लिए मेरी इच्छा नहीं होती, कि आज मैं इस वैदिक परम्परा को त्याग दूं अथवा मेरे हृदय से, यह गोपनीय विषय मेरे हृदय से दूरी चला जाएं। मुनिवरोंदेखो !, दोनों पति और पत्नी दोनों एकान्त स्थान में विराजमान होते, वेदों की चर्चा प्रारम्भ होती रहती, विचार विनिमय चलता रहता परन्तु देखो, उनका हृदय मग्न रहता कि आज वैदिक विचारधाराओं की छत्र छाया में हमारा जीवन सदैव परिणित रहता है।

भगवान कृष्ण की भौतिक विज्ञान में पारंगतता

तो मुनिवरों जीवन जहाँ केवल गऊओं की रक्षा !जहाँ भगवान कृष्ण का जीवन बेटा ! करने में, वेद की परम्परा को ऊँचा बनाने में था, वहाँ केवल वह भौतिक विज्ञान में कितने पारंगत थे। भौतिक विज्ञान में बेटा उनकी कितनी विलक्षण गति थी। मुझे ! स्मरण है क्या मैंने देखो, महाभारत काल का अच्छी प्रकार अध्ययन करने के पश्चात, मुझे स्मरण है कि कितना विज्ञान उनके द्वारा था। उन्होंने वेदों से ही नाना प्रकार के यन्त्रों का आविष्कार किया था। भगवान कृष्ण मौनधुक नाम की रेखा को जानते थे, और मौनधुक रेखा को जानते थे, परन्तु उन्होंने एक सुधेतुक नाम का यन्त्र बनाया था, जिस यन्त्र में बेटा! उनकी विशेषता थी? क्या विशेषता थी, बेटा! जब मुनिवरोंदेखो !, प्रायः महाभारत में आता है, प्रायः देखो, श्रवण भी किया गया है, कि जब महाराजा जयद्रथ को देखो, नष्ट करने का प्रसंग आया, तो उस समय महाराज अर्जुन ने एक प्रतिज्ञा की थी कि सूर्य अस्त होने से पूर्व अपने प्राणों को त्याग दूंगा, मानो यदि जयद्रथ का वध न कर पाया, जब यह आया तो आज परन्तु वह समय दिवस आया और गुरु द्रोणाचार्य, दुर्योधन इत्यादियों ने देखो, जयद्रथ को अपने ही स्थान में उन्हें शान्त कर दिया, जहाँ वह दृष्टिपात भी नही आ पाता था, परन्तु भगवान कृष्ण ने यह विचारा कि अब यह विचारा कि अब क्या होना चाहिए। यदि ऐसा हो गया, सूर्य अस्त हो गया और जयद्रथ के दर्शन न हुए, तो मेरा जो सखा अर्जुन है, यह प्राणों को अवश्य त्याग देगा। मुनिवरोंदेखो !, तो उन्होंने जो मौनधुक नाम का यन्त्र था, उसको अन्तरिक्ष में छा दिया।

जब अन्तरिक्ष में छा दिया, तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि सूर्य शान्त हो गया है, अन्धकार छा गया है। मुनिवरोदेखो !,उस समय जयद्रथ इत्यादि सब आ पहुंचे !, कि अब अर्जुन के प्राणों को नष्ट होते दृष्टिपात करेंगे। मुनिवरोंदेखो !, जब वह सब महाराजा अर्जुन के निकट विराजमान हो गए, अब भगवान कृष्णा के पास सोमधुक नाम का यन्त्र था, सोमधुक नाम का यन्त्र जब उन्होंने अपरित किया, देखो, उसका विस्तार किया, तो उस दूसरे यन्त्र का प्रभाव समाप्त हो गया और सूर्य उदय हो गया और यह कहा कि हे अर्जुन! तू कहाँ है? देखो, यह सूर्य उदय हो रहा है, तू क्यों नहीं इसे बाणों, अस्त्रों से छेदन कर देता, देखो, जयद्रथ तेरे सन्मुख है। मुनिवरोंदेखो !, कितना विलक्षण विज्ञान ! था उस काल में, मुझे स्मरण है क्या, वह, महाराजा जयद्रथ को इस प्रकार की एक प्रतिज्ञा की थी, उन्होंने देखो, इस प्रकार की प्रतिभा को जाना था, क्या, जब महाराज अर्जुन ने जयद्रथ के सिर को, देखो, जब अपने तरकशों पर, अपने मानो देखो, अपने यन्त्रों पर स्थिर कर लिया, उस समय भगवान कृष्णा ने कहा हे अर्जुन किसी प्रकार ! की विडम्बना मत कर देना।यदि इसका मस्तक नीचे गिर गया, तो तेरा मस्तिष्क भी नीचे गिर जाएगा। इसीलिए यह मस्तक ऐसे स्थान में जाना चाहिए। कहा जाता है मुनिवारों! देखो, कि अपरेति जयद्रथ के पिता, गंगा के किनारे तप कर रहे थे, भगवान का चिन्तन कर रहे थे, उस समय उनका, मस्तक तरकसों पर विराजमान होता हुआ, मुनिवारों! देखो, पिता के आँगन में सिर पहुंचा और उन्होंने विचारा, कि यह क्या है? ज्यों ही मस्तक नीचे गया, पिता का मस्तक भी नीचे आ गया, उसी यन्त्र से, उसी यन्त्र का प्रभाव था, कि पिता और पुत्र दोनों का ही वध हो गया। विचार विनिमय में यह है, कि आज हमें यह विचार विनिमय करना है कि हम विज्ञान में भगवान कृष्णा का विज्ञान कितना पारंगत था।

परन्तु देखो, मुनिवरोंइस विज्ञान के साथ ! साथ जहां इस प्रकार की विज्ञानधारा थी, कि वह इस प्रकार जानते थे कि क्या, मैं नाना प्रकार के यन्त्रों से अपने जीवन को ऊँचा बना सकता हूँ, परन्तु वहाँ उनके मन में यह विशेष विडम्बना रहती थी, कि मुझे आध्यात्मिकवाद का अध्ययन करना चाहिए। जहाँ मुनिवरोंदेखो !, उनका जीवन सदैव

इस प्रकार का रहता था, कि वह केवल यन्त्रों में ही संलग्न रहते थे, एक मानधुक नाम की जो रेखा थी, जिसको सौनधिक नाम की रेखा भी कहते थे। जिसका वेदों में बड़ा सुन्दर वर्णन आता है, परन्तु उन्होंने अध्ययन किया। अध्ययन करने के पश्चात् यह जो यज्ञ वेदी है, इसका जो परमाणुवाद है जब अन्तरिक्ष में जाता है तो उसी परमाणुवाद से उन्होंने बेटा! देखो, इस यन्त्र को जाना था, इस रेखा को जाना था। महाभारत काल का जब संग्राम हुआ, तो भगवान कृष्ण यह जानते थे, कि यदि मैंने इसकी कृति को नहीं जाना, तो यह समाज नष्ट भ्रष्ट हो जाएगा।

संग्राम का क्षेत्र रेखाओं से प्रतिबंधित

ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने जितना महाभारत, संग्राम का क्षेत्र था, उसके निकट उस रेखा को स्थिर कर दिया था, उस रेखा का परिणाम यह था, उस रेखा की जो वैज्ञानिकता थी, वह इस प्रकार की थी कि जितना भी परमाणुवाद, मानो, जितना यन्त्रों से संग्राम होता रहा, उन यन्त्रों के जितने अन्तर्गत रहते थे उनकी मृत्यु हो जाया करती थी, भगवान कृष्ण ने बेटा! उस रेखा को अच्छी प्रकार सुगठित कर दिया था। मानो देखो, बेटा! उसका प्रभाव यह भी था, कि देखो, चार चार, पांच पांच योजन के ऊपरले मार्ग में जा करके वह परमाणु पहुंचते थे, परन्तु उससे ऊपर कोई परमाणु न जावे, जिससे दूसरे व्यक्ति, उस महान् ऐसे विषैले यन्त्रों से ये समाज नष्ट भ्रष्ट न हो जावे। भगवान कृष्ण के समीप ऐसा विज्ञान रहता था। परन्तु जहाँ वैदिक परम्परा को इस प्रकार अपनाने में सदैव तत्पर रहते थे वहाँ उनका जीवन इस प्रकार का रहता था कि उनके जीवन में सदैव अग्नि को प्रतिभा रहती थी। उस अग्नि को धारण करते हुए, भगवान कृष्ण ने ज्ञान और विज्ञान को जानने का प्रयास किया।

भगवान कृष्ण यह भी जानते थे, कि मैं मंगल की यात्रा कर सकता हूँ। परन्तु मंगल की यात्रा करने के लिए, उन्होंने सौकित नाम के एक यन्त्र को निर्धारित किया था, जिस यन्त्र में विराजमान होकर के, उन्होंने ऐसे सूक्ष्म महा परमाणुओं को जानने का प्रयास किया, जो पञ्चम नाम का जैसे परमाणु, महापरमाणु, त्रिसेणु, चतुर्सेणु, पचसेनु, अकरेती

और सातवां जो सेणु होता है, परन्तु उसको जान करके देखो, सातवां जो सेणु होता है, वह इतना सूक्ष्म और शक्तिशाली होता है कि वह मंगल की यात्रा करने में, वह व्यक्ति सफल हो जाता है। मुनिवरों भगवान कृष्णा यन्त्रों में विराजमान होते और तो ! वह लोकों की यात्रा कर लेते थे, परन्तु आत्मा रूपी यन्त्र को बना करके, लोक लोकान्तरों को क्या, परमात्मा के सर्वत्र ब्रह्माण्ड में भ्रमण कर लेते थे। उनका जीवन ऐसा माना है, हमारे यहां बेटा मैं तो यह !कहा करता हूँ कि उन्होंने अपने जीवन भर में एक भी पाप कर्म नहीं किया बेटा! इस प्रकार का महान व्यक्ति था। आज तो मैं प्रभु से यह कहा करता हूँ कि हे प्रभु महानन्द जी ने आधुनिक काल के कुछ !जैसा मेरे प्यारे ! राष्ट्रों की और प्रजा की, विडम्बना प्रकट की है, तो मैं तो प्रभु से यह कहा करता हूँ ! कि भगवान कृष्णा जैसी पुनीत आत्मा आयें और अद्भुत आत्मायें संसार में होनी चाहिए, जिससे देखो, यह समाज और राष्ट्र उन्नतशील होता चला जाएं और मानव समाज का कल्याण हो जाएं। मानव पुनः से ज्ञान और विज्ञान की वेदी पर आ जाएं और जब प्रत्येक मानव को, प्रत्येक देव कन्या को ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा आ जाती है वहाँ बेटापाप कर्म भी नहीं होता और जहाँ पाप कर्म नहीं होता !, विचार धारा व्यापक होती हैं और जहाँ व्यापक विचार धारा होती हैं वहाँ बेटा! मानव हर प्रकार से देखो, सुखद होने का प्रयास करता रहता है। इसी प्रकार, आज हमें वास्तव में यह जानना है कि यह भगवान कृष्णा जी का जीवन किस प्रकार का था, हम उस जीवन को, वास्तव में लाने का प्रयास करना चाहिए, कि उनके जीवन में कितनी सुन्दरता थी।

महा पुरुषों का जीवन

मुझे स्मरण है, कि आज के दिवस इस संसार में बेटादेखो !, पृथ्वी मण्डल पर, देखो, भगवान कृष्णा के आगमन होने की बड़ी प्रतीक्षा हो रही थी। प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्याओं के हृदय में ऐसी उत्कठ प्रतीक्षा हो रही थी, कि ऐसी पुनीत आत्मा आनी चाहिए, क्योंकि देखो, जितने भी महापुरूष होते हैं, उनका जो जन्म होता है, उनकी जो जीवन चर्या होती है, वह ऐसे ही आपत्तिकाल में होती है। क्या उनके जीवन सदैव

इसी प्रकार के उत्पन्न हुआ करते हैं, क्योंकि महान आत्मा कदापि भी ऊँचे ऊँचे गृहों में जन्म नहीं लेती है जैसा मुनिवारों! देखो, ज्ञानश्रुति महाराजा ने कहा था, अपने मन्त्री से।

मुझे स्मरण है, क्या, महाराजा ज्ञानश्रुति ने अपने पुरोहित से कहा, कि हे पुरोहित ! जाओ, किसी ब्रह्म ज्ञानी के दर्शन कर आओ। उस समय मुनिवारों! पुरोहित जी महाराज देखो, राष्ट्र गृहों में भ्रमण करने लगे, मानो देखो, पृथ्वी मण्डल पर जितने राष्ट्र थे, सब राष्ट्रों में भ्रमण करने के पश्चात् मन्त्री जी मानो देखो, वह महाराजा के द्वारा आए और महाराज से कहा कि महाराज मुझे किसी महापुरूष के दर्शन नहीं हुए। !उन्होंने कहाँ तुम कहाँ गएं थे? उन्होंने कहा कि महाराज मैंने इस पृथ्वी मण्डल के सर्वत्र राष्ट्रों का ! भ्रमणकिया है और सर्वत्र राष्ट्रों का भ्रमण कराने का परिणाम यह कि मुझे कोई, किसी ब्रह्मज्ञानी के दर्शन नहीं हुए। उन्होंने कहा कि अरे, मन्त्री जीक्या तुम राष्ट्र गृहों में !, ऊँचे ऊँचे भवनों में, ब्रह्मज्ञानी की कामना करते हो। क्या ब्रह्मज्ञानी उन गृहों में नही प्राप्त होते हैं, जाओ, ब्रह्मज्ञानी और महापुरूष देखो, भयंकर वनों में तुम्हें प्राप्त होंगे। तो मुनिवरोंदेखो !, वह मन्त्री जी, ज्ञानश्रुति के वाक्यों का पान करने के पश्चात, भयंकर वन में जा पहुंचे। भ्रमण करते हुए, मुनिवरों! उन्होंने गाड़ीवान मानो रेवक ऋषि के द्वारा जा पंहुचे, महर्षि रेवक मुनि महाराजा देखो, वह एक एक गाड़ी के नीचे अपने जीवन को व्यतीत कर रहे थे। अहा मन्त्री जी, उनके चरणों में ओत प्रोत हो करके बोले भगवन् ! मैं आपके दर्शन करने आया हूँ, आप कौन हैं? उन्होंने कहा कि मुझे तो रेवक ही कहते हैं, गाड़ीवान रेवक मेरा नाम है। उस समय मुनिवारों! देखो, मन्त्री जी ने कहा, क्या भगवनआप ही महर्षि रेवक हैं !? ऋषि कहते हैं कि मुझे ऋषि तो नहीं कहते, परन्तु रेवक अवश्य कहते हैं। क्योंकि ऋषियों का हृदय तो इतना उदार और पवित्र होता है कि वह अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं किया करते हैं, तो मुनिवरों! देखो, रेवक मुनि के दर्शनों को पान करने के पश्चात्, वह भ्रमण करते हुए, मुनिवरों! देखो, वह ज्ञानश्रुति के द्वारा आ पहुंचे। महाराजा ज्ञानश्रुति से कहा कि महाराजदेखो !, ब्रह्मे द्वितीयो गाड़ीवान रेवक के मैंने दर्शन किए हैं और उनके दर्शनों को करके आ रहा हूँ भगवन! । उनके

दर्शन अमृतम ब्रहमे अमृत के तुल्य हैं। मुनिवरों! देखो, ज्ञानश्रुति ने कहा कि बहुत सुन्दर।

मन्त्री जी तो अपने राष्ट्र का कार्य करने लगे। बहुत सी मुद्राओं के सहित बेटा! महाराजा ज्ञानश्रुति ने प्रस्थान किया और ऋषि के द्वार जा पहुंचे और और ऋषि रेवक मुनि के द्वारा उनके चरणों में नत मस्तिक हो गये। नाना प्रकार की मुद्रायें उन्हें प्राप्त कराई और उन्होंने कहा कि हे भगवन यह मेरी !तुच्छ भेंट स्वीकार कीजिए। उन्होंने कहा कि अरे, शूद्र !तुम यह क्या उच्चारण कर रहो हो। उन्होंने कहा कि प्रभु मैं आपके समीप ! इसलिए आया हूँ कि आपका जो इष्ट देव है, उसका मुझे ज्ञान कराईए, मै उसके ज्ञान के लिए, आपके समीप आया हूँ। तो मुनिवरों वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः ! यह कि जब ज्ञानश्रुति जी महाराजको, जब उन्होंने शूद्र कहा, कि तुम शुद्र हो, मैं इसको स्वीकार नही करूंगा, अहां मुनिवरोंदेखो !, उन्होंने विचारा कि ये सूक्ष्म मुद्रायें है। अहा, तब राजा ने अपनी एक सुन्दर पुत्री को लेकर के, उस पुत्री के कण्ठ में, भुजों में सुन्दर सुन्दर आभूषणों से सुशोभित करके, रथ में विराजमान हो करके, ज्ञानश्रुति ने बेटा अपने गृह से प्रस्थान किया और भ्रमण करते हुए गाड़ीवान रेवक ! जब वह कन्या को अर्पित करने !ने द्वारा आए और रेवक से कहा लीजिए भगवन लगे, उस समय रेवक ने कहा अरे, महा शुद्र! यह क्या करने लगे? उन्होंने कहा प्रभु ! मुझे इसका ज्ञान कराइये। उन्होंने कहा तुम शुद्र हो मुनिवरोंदेखो !, वह कन्या को राष्ट्र गृह में परणित कराया, परन्तु उस समय रेवक जी ने कहा तुम चाहते क्या हो? उन्होंने कहा प्रभुमैं यह चाहता हूँ कि जिस देवता की तुमने अब तक उपासना की है !, मैं उस देवता का ज्ञान चाहता हूँ, उस उपदेश को मुझे कराईए। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर, मैं तुम्हें ज्ञान कराऊंगा परन्तु यह शूद्रपन तुममें कहाँ से आ पहुंचा है?

भगवान कृष्ण का जीवन

तो मेरे प्यारे! ऋषिवरवाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है !, कि जितने भी महापुरूषों का जन्म होता है, वह ऊँचे भवनों में नहीं होता वह मानो देखो, आपत्तिजनक

स्थानों में हुआ करता है। भगवान कृष्ण का जीवन मुनिवरों! उनका जो जन्म है, वह महाराजा कंस के कारागार में हुआ, परन्तु देखो, किस प्रकार का कारागार था, उसको बेटा तुमने दृष्टिपात किया होगा। !अहा, उनके कारागार में जन्म लेने वाले महापुरूषों में बेटाउनका जीवन कितना अग्रणीय रहा है !, कितना महान रहा है, कितनी पवित्रता में उनका जीवन सदैव परिणत रहा है।

मेरे प्यारे मैं कोई आज अधिक चर्चा तो प्रगट करने नही आया हूँ वाक् !ऋषिवर ! उच्चारण करने का अभिप्रायः यह है, कि भगवान कृष्ण का जीवन, कितना सदैव उन्नत रहा है और उस उन्नत जीवन में मैं विशेष चर्चायें तो मैं कल ही प्रकट करूंगा, आज तो मुझे केवल यह उच्चारण करना है कि वह ज्ञान में, विज्ञान में कितने पारंगत थे। वेद की परम्परा को उन्नत बनाने में, उनका सदैव जीवन संलग्न रहता था। गोपनीय विषयों को, सदैव विचार विनिमय करते रहते थे।

परन्तु ऐसा भी उनके जीवन में आता है, कि एक समय वह सौमतीति नाम की जो रेखा है, उसको जानने में वह लगभग मुनिवरों! देखो, दस दिवस हो गएं, और अन्न भी प्राप्त नहीं होता था। उसके अनुसन्धान में संलग्न रहते थे। उनके जीवन में कोई ऐसा अवसर प्राप्त नहीं हुआ, कि जो संसार में आ करके, वह किसी प्रकार के पाप कर्म करने के लिए तत्पर हो जाएं।

तो मेरे प्यारेआज के हमारे इन वाक्यों का अभिप्राय क्या है !ऋषिवर !, कि हमें उन महान पुरूषों की विवेचना और उनकी जो मीमांसा है, उनकी जो विडम्बना है, उनको विचारना चाहिए, क्योंकि उनको विचार करके ही हमारा जीवन उन्नत बन सकता है, अन्यथा हमारे जीवन को उन्नत बनाने के लिए, और कोई मार्ग हमें प्राप्त नहीं होता है।

महापुरूषों की वेदनाओं

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज के हमारे इन वाक्यों का अभिप्राय क्या है कि हम भगवान कृष्ण के जीवन को, विचार विनिमय करते चले जाएं। भगवान कृष्ण ने कहा है, कि हे अर्जुनतू नहीं जानता और मैं जन्म जन्मातरों के !, बहुत से जन्मों को जानता हूँ, मैं

नाना जन्मों को जानता हूँ, क्योंकि मेरा जो जन्म है वह अलौकिता से परणित रहता है, मानोदेखो, वह एक सुन्दरता से सुगठित रहता है, अहा, इसलिए हे अर्जुन आज ! तुम मुझे जानने का प्रयास करो।परन्तु मैंने यह ज्ञान, जो आज मैं तुम्हें अर्पित करा रहा हूँ, यह ज्ञान और विज्ञान मैंने अद्वा को और सूर्य को कराया है। अहा, इससे पूर्व भी कराता चला आया हूँ, इसके पश्चात् भी मैंने कराया है। तो मेरे प्यारे !ऋषिवर ! आज के हमारे इन वाक्यों का अभिप्रायः यह है, कि हमें उन महापुरूषों की वेदनाओं को विचारना चाहिए और उस वैदिक परम्परा को अपनाना चाहिए, जिसमें, ज्ञान और विज्ञान है। जैसा मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने !वर्णन कराते हुए कहा है कि आज का संसार तो चन्द्रमा की यात्रा कर रहा है। मैंने यह कहा है, बेटा !कि पूर्व काल में, तो मंगल और बुद्ध इत्यादियों में भ्रमण किएं जाते थे अहा, ओर समय आता रहता है, इसी प्रकार विज्ञान उन्नतशील होता रहता है। यह जो परम्परा है यह इसी प्रकार की चलती आई है। मानव को जानकारी की उत्सुकता रहती है प्रत्येक पदार्थ को जानने के लिए वह सदैव तत्पर रहता है, उसे जानना चाहिए। जानकर अपने जीवन को उन्नत और महान पवित्रता में परणित कर देना चाहिए। जिससे वैदिक परम्परा ऊँची बने और ऊँची बनने के पश्चात् उसका पुनः उत्थान होता रहे और उसमें एक नवीनवाद आता रहे। वेद की परम्पराओं से ही तो चर्चा तो प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम मानो, अलौकिक जीवन को विचारते रहे, और महापुरूषों के जीवन को विचारते हुए, अपने जीवन को उन्नत बनाते चले जाएं, अपने जीवन में उन वाक्यों को निर्धारित करते चले जाएँ जिन वाक्यों से देखो, हमारा जीवन उन्नत होता है, पवित्र होता है। मानवता उसी से आती है, बेटा !

तो मेरे प्यारेआज का हमारा यह वाक् क्या कहता चला जा रहा है !ऋषिवर !, कि हम ज्ञान और विज्ञान के पूर्णतव, उस वेदी पर जाने का प्रयास करें, जिस वेदी पर जाने के पश्चात, हमारा जीवन, मन मग्न होता है, हर्षित होता है, राष्ट्र उन्नत बनता है यह है बेटाआज का हमारा वाक् !, मैं कोई विशेष चर्चा तो प्रगट करने नही आया था, कल मैं भगवान कृष्णा के ज्ञान और विज्ञान की चर्चाएं क्योंकि भगवान कृष्णा ने यह कहा कि

राजा के राष्ट्र में धर्म और मानवता की रक्षा होनी चाहिए। धर्म और मानवता की रक्षा दोनों एक ही तुल्य होती है, क्योंकि हिंसक राष्ट्र नहीं होना चाहिए, दुग्ध देने वाला जो पशु है, वह राजा के राष्ट्र मे अधिकतर होना चाहिए। जब अधिक होंगे, तो राजा का राष्ट्र उन्नत होगा और उस राज्य के राष्ट्र में बुद्धिमता होगी। यह है बेटा! आज का हमारा वाक्य। आज के वाक्यों का अभिप्रायः यह कि हम वैदिक परम्पराओं को जानते हुए, महापुरूषों के जीवन से, ऊँचे से ऊँचे अपने जीवन को बनायें और महापुरूषों के जीवन से शिक्षा पाते हुए, हम आगे चलते चले जाएं, जैसे सूर्य प्रकाश देता है, ऐसे हम भी अपने जीवन को प्रकाश देने का प्रयास करें, ज्ञान रूपी प्रकाश को देने से संसार ऊँचा बनता है यह है बेटाआज का हमारा वाक् !, अब मुझे समय मिलेगा, तो बेटा मैं ! शेष चर्चाएं कल प्रगटकरूँगा, आज का वाक् अब समाप्त हो गया।

पूज्य महानन्द जीः भगवनवाक् तो वास्तव में ! आपका बहुत सुन्दर, परन्तु समय बड़ा सूक्ष्म।

पूज्यपाद गुरूदेवः बेटाकल समय मिलेगा !, तो कल अधिक चर्चाएं प्रगट करेंगें।

पूज्य महानन्द जीः अच्छा भगवन् !

पूज्यपाद गुरूदेवः तो मुनिवरोंआज का यह वाक् अब समाप्त होता गया !, कल समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगें, अब वेद का पाठ होगा।

सेठ महावीर प्रसाद की कोठी सी 3/मॉडल टाऊन 9, दिल्ली में दिया हुआ प्रवचन

२६ 04 09 1969 पुष्प 12 भगवान श्रीकृष्ण

मेरे प्यारेआज मैं वहीं चला जाऊं !ऋषिवर !, जहाँ मैंने कल के वाक्यों को शान्त किया था। आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा था, कि परमात्मा अनन्त है, परमात्मा की उपासना करना और प्रत्येक वस्तु पर चिन्तन करना। जिस मार्ग को भी अपनाना चाहते हो, उस पर हमारा चिन्तन होना चाहिए, निद्यासन होना चाहिए। यदि हमारा चिन्तन नहीं होगा, तो उस मार्ग में हम असफल होकर के, प्रकृति के उस आँगन में पहुंच जाएंगे, जहाँ प्रकृति माँ हमें एक समय ठुकराती चली जाएगी। यह हमें अपने पगों से दूर करेगी और हम इसके समीप आयेंगे। प्रकृति भी हमारे जीवन की महिमा को त्याग

देगी। तो मेरे प्यारेआज मैं उन महापुरूषों की वेला पर जाना चाहता हूँ !ऋषिवर !, जिन महापुरूषों ने जीवन की प्रतिभा को जाना है, जो अपने सुख और ऐश्वर्य को त्याग करके, इस संसार सागर में आ करके, अपनी विचित्रता का दिग्दर्शन कराते हुए, इस संसार से चले गये। बेटामैं उन महापुरूषों की चर्चायें प्रकट कर रहा था !, कल का वाक्य भी हमारा ऐसा ही था। आज भी मैंने एक वाक्य कहा था, कि आज हम उन महापुरूषों के ऊपर विचार विनिमय करना चाहते हैं, जिन महापुरूषों ने अपने जीवन को वास्तव में इस संसार में, इस मानव वेला में ज्ञान और विज्ञान में, जगत को दिग्दर्शन कराया। उन महापुरूषों की चर्चा आज प्रकट करने जा रहे थे।

कारागार में माता देवकी

बेटामैंने कल के वाक्यों में का था !, कि भगवान श्रीकृष्णा का जन्म ऊँचे ऊँचे भवनों में नहीं हुआ, महाराजा कंस के कारागार में हुआ। महाराजा कंस उग्रसेन के पुत्र थे। महाराजा कंस के हृदय में अभिमान की मात्रा अधिक थी। अभिमान होने के नाते, भगवान श्रीकृष्णा के माता पिता देवकी और वसुदेव को अपने कारागार में बंद कर लिया था, क्योंकि उन्होंने एक समय नारद मुनि से कहा था, कि महाराज मेरी मृत्यु कैसे ! होगी? उन्होंने कहा कि तुम्हारी जो बहन है, इसी के गर्भ से सातवें स्थान में एक पुत्र का जन्म होगा, वह तेरी मृत्यु का कारण बनेगा। उस समय महाराज कंस ने विचारा, कि मैं उस पुत्र के जन्म होते ही नष्ट करूंगा, क्योंकि मृत्यु को आने ही नहीं दूंगा, जब मेरी मृत्यु उनके भुजों में है।

माता देवकी और, माता यशोदा का संकल्प

मुनिवरोंदेखो !, अभिमान में मनुष्य क्या नहीं करता। !अपनी बहन देवकी और वसुदेव दोनों को अपने कारागार में स्थिर कर लिया। मुनिवरोंदेखो !, वह कारागार में रहे। ! मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत हो क्या नहीं कर सकता। मृत्यु के भय से वह सूक्ष्म सूक्ष्म कन्याओं को नष्ट करने लगा। जब सातवें की आशा कृति हुई, तो महाराजा कंस के अत्याचारों से समाज में एक बड़ी क्रान्ति आई और क्रान्तिवादियों ने यह कहा कि अरे,

क्या करें, यह तो, इसने अपने ही सम्बन्धियों को कारागार में स्थिर कर लिया, वह हमें क्यों नहीं मृत्यु दण्ड देगा, वह परमात्मा से याचना करने लगे, कि हे प्रभु तू इनकी ! रक्षा कर। सातवां जो जन्म है, उनके गर्भ से उत्पन्न होने वाला शिशु है, उसकी रक्षा कर। प्रजा की आत्मा की जो एक ध्वनि थी, परमपिता परमात्मा ने वह स्वीकार की और स्वीकार करने का परिणाम यह हुआ, कि जिस दिवस उनका जन्म होने वाला था, उसी दिन वह जमुना में स्नान करने जा पहुंचे। अहाम !ाता देवकी को, माता यशोदा के दर्शन हुए और यशोदा से कहा भोजक प्रभे अकृतानम् पुत्रो ग्रतानि पुत्रे अभ्यै कृतानि अस्तिती उन्होंने कहा कि मैं गर्भवती हूँ, मेरी यदि पुत्री होगी, तो मैं तुम्हें अर्पित कर सकती हूँ और पुत्र को मेरे यहाँ अर्पित कर देना। दोनों की एक प्रकार संकलना बन गयी। उन दोनों का संकल्प हो गया।

भगवान कृष्ण का जन्म

मुनिवरोंवही रात्रि थी। आज मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है !, जैसे भगवान कृष्ण का जीवन आज हुआ हो, क्योंकि आज वही दिवस है, वही रात्रि है, जिस दिवस आज से साढ़े पांच हजार वर्ष से कुछ अधिक हुआ, जब भगवान श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। तो जब जन्म हुआ, तो उस समय कारागार पर जितने भी सेवक थे, वह गाढ़ निद्रा में परणित हो गएं, क्योंकि जिसको प्रभु जीवन देता है और जो स्वयं पवित्र आत्मा हो, तो उसको कौन नष्ट कर सकता है संसार में। क्या आज कोई मानव प्रयत्नशील रहे, कि मैं अमुक व्यक्ति को नष्ट कर सकता हूँ तो कोई कर ही नहीं सकता।

तो मेरे प्यारेअब जितने सेवक थे !ऋषिवर !, सब विश्राम करने लगे और सब गाढ़ निद्रा में परणित हो गये। पुत्र का जन्म होते ही वसुदेव अपने बालक को एक सूक्ष्म से पात्र में ले करके, उन्हें जमुना को पार करना था। जमुना को पार करते हुए यशोदा द्वारा उस पुत्र को त्याग दिया। उसी रात यशोदा के कन्या को जन्म हुआ। यशोदा ने उसे अपने पति को अर्पित कर दिया। देवकी ने उसे स्वीकार कर लिया। दिवस होते ही कंस ने कहा कि क्या, पुत्र है या पुत्री ?उन्होंने कहा महाराज पुत्री है। !महाराजा

कंस ने उसे भी नष्ट कर दिया। कुछ दिवस हुए कि नारद पुनः आ गये। देव ऋषि नारद ने कहा कहिए भगवन !? कंस ने कहा कि महाराज मैंने तो सर्व शिशु को नष्ट कर ! दिया है। तो उन्होंने कहा कि तुम्हारी मृत्यु का जो कारण बन गया है, वह तो माता यशोदा के यहाँ पुत्र चला गया, वह नष्ट नहीं हो सकेगा, यह वाक्य कंस ने श्रवण किया परन्तु उन्होंने अपने नाना योद्धा, क्षत्रियों को एकत्रित किया और उनसे कहा कि उसे नष्ट करो। परन्तु वह कैसे नष्ट हो सकता था? महापुरूषों की महिमा अलौकिक होती है, उनका जीवन भी अलौकिक होता है, और उनके नेत्रों की और सब इन्द्रियों की प्रतिभा एक अलौकिक होती है। उनकी अलौकिकता को कोई नष्ट नहीं कर सकता।

मेरे प्यारेभगवान श्रीकृष्ण ने अनेक सेवकों को नष्ट किया !ऋषिवर !, परन्तु वह स्वयं ज्यों के त्यों रहे। देखो, गृहों में जितना भी दही और धृत्त था वह महाराजा कंस के यहाँ जाता था। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि धृत्त गृहों में रहना चाहिए या इसे मुझे पान कराओ। मेरे पान करने का अभिप्राय यह है, कि प्रत्येक गृह में इसका प्रविष्ट रहना चाहिए। यह राजा के यहाँ, इस प्रकार कर नहीं जाना चाहिए। देखो, बाल्यकाल में उसकी इतनी तीव्र बुद्धि थी, कि वह अपनी तीव्रता से कार्य करते थे। जहाँ उनका जीवन इतना बलिष्ठ और इतना चातुर्यता में था, उतना ही उनका यौगिकता में पारंगत था।

सोलह कलाओं के ज्ञाता

मुझे स्मरण है, कि वह सोलह कलाओं को जानते थे। षोडश कलायें क्या होती हैं ?मानो वह ज्ञान में पारंगत होता है, जो षोडश कलाओं को जानता है। मैंने तुम्हें एक समय वर्णन कराया था, कि यह षोडश कलाएं क्या होती हैं? बेटा सबसे प्रथम कला ! का देखो, प्राचीदिग्, दक्षिण दिग्, प्रतीचीदिग्, उदीचीदिग् चार यह कलायें मानी गई हैं। पृथ्वी कला, वायु कला, अन्तरिक्ष कला और समुद्र कला, चार कलायें यह थी और तृतीय स्थान में सूर्यकला, चन्द्रकला, अग्नि कला और विद्युत कला चार कलायें यह थीं, जिनको जानने के लिए भगवान श्रीकृष्ण सदैव तत्पर रहते थे। जैसे विद्युत है, अग्नि है और अन्तरिक्ष इनमें जितनी प्रतिभा होती है, उसको जानते थे। उसके पश्चात् मन कला,

चक्षु कला, श्रोत्र कला और घ्राण कला इन सबको वह जानते थे। यह षोडश कलायें कहलाई जाती हैं जिनको भगवान श्रीकृष्ण अच्छी प्रकार जानते थे। इसलिए योग में उनकी इतनी गति थी, और राष्ट्रीय विधान में भी उनकी प्रगति महान, विशाल रहती थी। जो षोडश कलाओं को जानने वाला महापुरूष होता है, वह इस संसार में महान कहलाया जाता है। आज हमें उन विचारों को विलक्षण बनाना है, जिससे हमारा जीवन उन्नत बनने के लिए तत्पर होता चला जाएं।

मुनिवरों भगवान श्रीकृष्ण इन षोडश कलाओं को जानकर नित्य प्रति साधक के साधक ! रहते थे और राष्ट्रीय विधान में भी राष्ट्रीयवेत्ता रहते थे। प्रातः काल में जब रात्रि रहती थी, तारामण्डल अपना प्रकाश लिए हुए होते थे, रात्रि के गर्भ में उस समय अपने संस्थान को त्याग देना और चिन्तन करना निध्यासन करना मानो यौगिक प्रक्रियाओं पर विचार विनिमय करना, विशालता को विचारना जैसे देखो, प्राचीदिग् है, दक्षिण दिग् है, प्रतीचीदिग्, और उदीची दिग् है, इन चारों दिशाओं को वह जानने का प्रयास करते रहते थे, उनमें कितना व्यापकयाद है, एक दूसरी दिशा में कितनी सुगठितता है, जैसे पृथ्वी है, इसमें कितना खनिज है, खाद्य है, इन सबको विचार विनिमय करना और वायु में कितनी तरंगे हैं, कितने वेग से भ्रमण करती है, किस किस समय में, क्या क्या कार्य करती है, यह सब विचार विनिमय करना उनका कार्य था समुद्र को जानने का प्रयास करते रहते कि समुद्र में कितने प्रकार के प्राणी रहते हैं, किस प्रकार से उत्थान होता है, यह सब कुछ जानने का वह प्रयास करते रहते थे। इन बारह कलाओं को जानने के पश्चात् वह जानते थे, कि हम इन बारह कलाओं के ऊपर संयमी कैसे बन सकते हैं। उन्होंने विचारों में एक लेखनीबद्ध की थी, तो मुझे स्मरण है उन्होंने कहा था, यदि हम अपनी चारों कलाओं को अच्छी प्रकार नहीं जानेंगे, तब तक इन पर संयम कर नहीं पायेंगे, वह चारों कलायें कौन सी हैं? सबसे प्रथम मन कला, चक्षु कला, श्रोत्र कला और घ्राण कला इन चारों कलाओं का ज्ञान होने के पश्चात् हम इस संसार के ब्रह्मवेत्ता, संसार के विज्ञानवेत्ता, भौतिक और आध्यात्मिक दोनों में एक विशालता को प्राप्त हो सकते हैं। इन सब कलाओं को जानने वाला संसार में एक महान योगी

कहलाता है, किस प्रकार का योगी? आज कोई यह उच्चारण करने लगता है, कि मैं चन्द्रमा में, मंगल में और बृहस्पति में जाने वाले यन्त्रों का निर्माण करना चाहता हूँ, तो ऐसे जो महापुरूष षोडश कलाओं को जानने वाले होते हैं, क्योंकि इन षोडश कलाओं में से ही परमाणुओं की उद्बुद्धता होती रहती है, परमाणुओं की उद्बुद्धता होने के नाते ही भिन्न भिन्न प्रकार के परमाणु उत्पन्न होते रहते हैं, उन परमाणुओं को सुगठित करना, यह सब महापुरूषों का कर्त्तव्य होता है। इन परमाणुओं पर उनका अधिपथ्य हो जाता है। अधिपथ्य हो जाने के पश्चात् वह भौतिकवाद हो, चाहे आध्यात्मिकवाद हो, उनमें अधूरापन किसी काल में भी रह ही नहीं सकता।

भगवान मनु

तो मुनिवरोंमुझे भगवान श्रीकृष्ण का जन्म स्मरण है !, परन्तु ऐसे महापुरूषों का जन्म हुआ कहाँ? बेटाजितने भी महापुरूष होते हैं !कंस के कारागार में। मुनिवरों !, उनका कहीं पर्वतों में जन्म हुआ? कहीं कारागार में हुआ? देखो, इसी प्रकार की प्रतिभा प्राप्त होती रहती है। कल के वाक्यों में मैंने कहा था कि भगवान कृष्ण ने महाराजा अर्जुन से कहा था, कि मैं बहुत से जन्मों को जानता है। परन्तु तू, नहीं जानता है परन्तु उन्होंने देखो, वैश्वावस्वत् जो भगवान मनु जी हुए हैं, वह भगवान मनु द्वितीय काल में हुए, परन्तु उससे पूर्व काल में वह शम्भू महाराज के नाम से हुए। सर्वसृष्टि में बेटा ! चौदह मनवन्तर होते हैं और चौदह मनु होते हैं। एक एक मनु, एक एक अकृत्र समय में आता रहता है, देखो, चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों की सृष्टि होती है। परन्तु उन अवस्थाओं में चौदह मनु होते हैं, ब्रह्मा की सहस्र आयु होती है और चौदह मनमन्तर होते हैं और प्रत्येक मनमन्तर में एक मनु होता है सृष्टि के प्रारम्भ में जो प्रथम मनु था, वह भगवान श्रीकृष्ण के रूपां वृत्ति आस्ति आत्मा ब्रह्मे कृत्रि मानो वही आत्मा थी, जिन्होंने सूर्य और अद्वा को ज्ञान दिया, क्योंकि सूर्य और अद्वा जो हुए, सर्वप्रथम मनमन्तर में हुए, इसी प्रकार द्वितीय मनु हुए, तृतीय मनु हुए, इसी प्रकार अब यह सातवां मनमन्तर प्रारम्भ हो रहा है। इस समय जो चल रहा है वह सातवां मनमन्तर

चल रहा है। यह भी कुछ काल में समाप्त हो जाएगा और आठवां प्रारम्भ हो जाएगा। इसी प्रकार चौदह मनमन्तर होते हैं, प्रत्येक मनमन्तर में एक मनु होता है। एक मनमन्तर की आयु घृति मानी गई है, मानो जैसे ब्रह्म का एक अहोरात्र होता है, अहोरात्र भी बड़ा विलक्षण माना गया है, ब्रह्म की एक रात्रि, एक कल्प के समान होती है, एक कल्प के समान एक दिवस होता है, इसी प्रकार ब्रह्म की सौ वर्ष की आयु होने के पश्चात् यह सृष्टि प्रारम्भ, समाप्त हो जाता है। मैं इस अध्ययन में अधिक नहीं जाना चाहता। वाक्यों का प्रारम्भ यह चल रहा था, कि हम यह विचार विनिमय करते चले जाएं कि महापुरूषों का जो जन्म है, वह ऊँचे ऊँचे भवनों में नहीं होता।

मुनिवरोंभगवान श्रीकृष्णा राष्ट्रीय विचारों में कितने पारंगत थे। यह प्रत्येक मानव ! को उसका ज्ञान है वह कितना राष्ट्रीय विचारों में मानो विज्ञान में कितने पारंगत थे और कर्म काण्ड में उनकी कितनी रुचि थी वेद के पारंगत पंडित होने के नाते, वेद का ज्ञान होने के नाते, महान वेत्ता कहलाए जाते थे। मुझे स्मरण है कि जब वह गोपनीय विषय को विचार विनिमय करते थे। आज का वह पुनीत सुन्दर दिवस है, जब भगवान कृष्णा का इस पृथ्वी मण्डल पर आगमन हुआ था। मेरे प्यारेमहानन्दजी यह कहा करते हैं !, कि क्या यह मुक्त आत्मा थी अथवा मुक्ति में सूक्ष्मता रह गई थी। तो मैंने इन वाक्यों को पूर्व काल में टिप्पणियां करते हुए प्रकट करते हुए कहा है, कि वास्तव में यह मोक्ष आत्माएं संसार में आती हैं और परोपकार करके यहाँ से चली जाती हैं। वह मानो समाज के लिए और भी कोई कर्म करते, वह कर्म उनमें व्याप्त नहीं है, क्योंकि उनका विचार, उनकी प्रतिभा साधारण कर्म से उपराम होती है, इसीलिए मानव को आश्चर्यजनक प्रतीत होता है, उनका जीवन। उनके जीवन में यह विशेषता होती है, वह साधारण से अलौकिक पुरूष कहलाते हैं, क्योंकि वह दृष्टिपात करते हुए भी दृष्टिपात नहीं किया करते, वह भोगों केओ भोगते हुए भी भोगों को नहीं भोग्य करते हैं। क्योंकि महापुरूषों की यह एक विशेषता होती है। समाज के हित के जो कार्य होते हैं, उनमें वह दूसरों को मिथ्या प्रतीत होता है, परन्तु वह मिथ्या उनकी व्याप्ता नहीं है, क्योंकि उनका जो जीवन है, उनकी जो अलौकिक विचारधारा है, वह अपनी कोई विचारधारा नहीं होती,

वह जो उनका पूर्व संस्कार, संकलन होता है और जो संकलन करके आते हैं, उसी संकल्प के आधार से उनके जीवन में एक अलौकिकता होती है, इसलिए उन्हे भगवान इत्यादियों की उपाधियां प्राप्त हो जाती हैं।

भगवान में क्या विशेषता है? भगवान भी तो इस संसार में कार्य कर रहा है, परन्तु प्रकृति उसको व्याप्त नहीं कर सकती। व्याप्य और व्यापक का सम्बन्ध होता है। इसी प्रकार महापुरूषों का और साधारण पुरूषों का भी व्याप्य और व्यापक रूपों से सुगठित सम्बन्ध होता है। आज हम उनके जीवन से शिक्षा पाने का प्रयास करें। वास्तव में ऐसा नहीं, कि जहाँ उन्होंने गऊओं की, पशुओं की रक्षा की है। आज के मानव को जैसा मेरे प्यारेमहानन्द जी ने मुझे वर्णन कराया है !, आज का मानव उनको भक्षण कर रहा है, भक्षण नहीं करना चाहिए। क्योंकि महापुरूषों से यही शिक्षा प्राप्त होती है। मेरे प्यारेमहानन्द जी ने और भी नाना महापुरूषों की चर्चायें प्रकट की हैं !, उनका एक मन्तव्य रहता है, कि धर्म और मानवता की रक्षा होनी चाहिए, यौगिकता की रक्षा होनी चाहिए। सभी महापुरूषों का एक ही मन्तव्य रहता है, इनके विचारों में सुगठितवाद रहता है। सुगठितवाद को सदैव विचार विनिमय करना, प्रत्येक देव कन्या का कर्त्तव्य रहता है।

भगवान कृष्ण की शिक्षा

तो मेरे प्यारेआज का हमारा वाक्य क्या कहता चला जा रहा है !ऋषिवर !, कि हम भगवान कृष्ण को विचार विनिमय में करें और उनके जीवन से शिक्षा अध्ययन करें। शिक्षा का काम करें। उन्होंने कहा कि मोह ममता में इतना तल्लीन नहीं होना चाहिए। कर्त्तव्यवाद प्रथम है और मोह ममता उसके पश्चात रही है। कर्त्तव्यवाद में अपने जीवन को उन्नत बनाने के लिए, मानव को सदैव तत्पर रहना चाहिए। सबसे प्रथम मानव का कर्त्तव्यवाद होता है, उसकी ऊँची प्रतिभा होती है, उस प्रतिभा को विचार विनिमय करना है। हमें वास्तव में महानता को अपनाने का प्रयास करना चाहिए, जिसको अपनाने से हमारा जीवन, हमारी मानवता ऊँची बनती है। हम वास्तव में महापुरूषों के ऊपर विचार

विनिमय कर सकें।

बेटा भगवान राम बारह कलाओं के जानने वाले थे। भगवान् कृष्णा !षोडश कलाओं को जानने वाले थे। भगवान राम प्रथम चार कलाओं को नहीं जानते थे और भगवान कृष्णा षोडश कलाओं को जानते थे, आगे और भी नाना प्रकार की विग्रति कलायें रहती हैं। उनका विवरण किसी अगले काल में करेंगे। आज तो केवल यह, कि हमें उन वाक्यों को विचार विनिमय करना है, जिन वाक्यों से हमारा जीवन, हमारा राष्ट्रवाद, हमारी मानवता, ऊँची बनें। ऊँची बनाने का अभिप्राय है कि जितना भी समाज में, मानववाद में उत्तम से उत्तम विचार होंगे, उतना ही पवित्र वातावरण होगा। जितना वातावरण पवित्र होगा, उतना ही प्रकृतिवाद होगा और जितना प्रकृतिवाद सुन्दर होगा, परमाणुवाद सुन्दर होगा, उतना ही प्रकृति से हमें किसी भी प्रकार की हानि प्राप्त नहीं हो सकेगी। इसलिए बेटा महापुरूषों की आवश्यकता होती है। उनके जीवन दिवस को मनाने की ! इसलिए उत्कृष्ट इच्छा होती है, कि उनका कार्य हमारे समक्ष आता रहे, उनका जीवन और उनकी प्रतिभा से हम शिक्षा को अध्ययन करते रहें, पान करते रहें।

भगवान कृष्णा ने देखो, महाराज कंस के नाना वीरों को बाल्यकाल में नष्ट कर दिया था। देखो, महाराज इन्द्र की पूजा होती थी, भगवान कृष्णा ने प्रजा से कहा, कि इन्द्र की पूजा न करो, भगवान की पूजा करो। सब प्रजा ने उस महापुरूष को प्रतिभा को, बाल्यकाल में ही स्वीकार किया। अन्त में महाराजा कृष्णा ने कंस को भी नष्ट किया। नष्ट करके उसके पश्चात् वह गुरू आश्रम चले गये। गुरु आश्रम से पनपेतु ऋषि महाराजा के आश्रम में वह चले गएं और द्वारिका का, माता पिता को राष्ट्र अर्पित कर दिया। बेटावह राज्य करने लगे !। कंस ब्रह्मे अपरातन् अपने नाना वह कृति मानो उग्रसेन जो कंस के कारागार में था, वह राज्य उन्हें प्राप्त हो गया। तो भगवान कृष्णा के जीवन में यह प्राप्त होता है, कि यदि राष्ट्र नाना प्रकार के पापों से सुगठित है, तो उस राष्ट्र को भी नहीं रहना चाहिए, उस राजा को नष्ट करना चाहिए, जो दूसरों के अधिकारों को नष्ट करता है, दूसरों के श्रृगारों को नष्ट करता है दूसरों के, अधिकारों को जो राजा लेता है, वह राजा नहीं होता, वह महान द्रोही होता है, सब प्रजा का महापुरूषों का

कर्त्तव्य है, कि उस राजा को नष्ट भ्रष्ट कर दें। यह है बेटा हमें जो उनके जीवन से ! शिक्षा प्राप्त होती हैं, हमें वास्तव में उनकी जीवनचर्या से, हमें अपने जीवन को उन्नत बनाना है। यह है आज का हमारा वाक्य। आज के हमारे वाक्य का अभिप्राय यह है कि हम राष्ट्रवाद में, विज्ञानवाद में, आध्यात्मिक हो, भौतिकवाद हो, मानो वह लोकलोकान्तरों की यात्रा भी अपनी आध्यात्मिक विज्ञान से करते थे और भौतिकवाद में भी उतने पारंगत थे। तो उनके जीवन से हमें यह प्राप्त होता है, कि षोडश कलाओं को जानने से, संसार की प्रत्येक वस्तु को, परमाणु को, अच्छी प्रकार जान सकते हैं और हम विज्ञान में भौतिकवाद और आध्यात्मिकवाद में ऊँचे और पारंगत बन सकते हैं। यह है आज का हमारा विचार। अब समय मिलेगा, तो मैं शेष चर्चायें कल प्रकट करूंगा। अब वेदों का पाठ होगा। कृष्ण जन्माष्टमी के पर्व पर सेठ महावीर प्रसाद के यहाँ) माडल टाऊन, दिल्ली में दिया हुआ प्रवचन(